

प्रकृति और काव्य

[संस्कृत खण्ड]

डा० रघुवंश

प्रकाशक

माहित्य-भवन लिमिटेड,

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण अक्टूबर, १९५१

मूल्य ६।।)

मुद्रक—देवीप्रसाद मैनी, हिन्दी-साहित्य प्रेस, इलाहाबाद

समर्पण—

पूज्य डा० रामकुमार वर्मा जी

को

जिनके प्रोत्साहन से मैं यह

कार्य सम्पन्न कर सका

परिचय

डा० रघुवंश हिन्दी के विचारशील तरुण लेखक है। यद्यपि विधाता ने इनके हाथ की बनावट पूरी करने में बहुत कृपणता का परिचय दिया है—इनके हाथ इतने दुर्बल और निःशक्त हैं कि वे उनसे लिख भी नहीं सकते, पैरों की सहायता से हाथों को हिलाकर लेखनी चलाते हैं—परन्तु फिर भी तीक्ष्ण बुद्धि और उदार मन देकर उन्होंने अपनी कृपणता का कलङ्क मिटा दिया है। इन्होंने संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेज़ी साहित्य का खूब मनन किया है। किसी भी साहित्यिक प्रभाव का वे बड़ी बारीकी से विश्लेषण करते हैं, उसके तह में जाते हैं और उसका वास्तविक स्वरूप समझने का प्रयत्न करते हैं। इनका प्रथम लेख जब विश्वभारती पत्रिका में प्रकाशनार्थ आया तो हमारे एक मित्र ने मुझसे कहा कि इस लेख का कुछ भी अर्थ नहीं हो सकता। छपने के पूर्व मैंने बड़े ध्यान से उस लेख को पढ़ा था और मैंने अपने मन में उसके संबन्ध में निश्चित मत बना लिया था। मेरा विचार था कि उस लेख में एक भावी विचारक का रूप स्पष्ट दिख रहा है। बाद में प्रयाग विश्वविद्यालय ने रघुवंश जी को उनके सुचिन्तित निबंध 'हिन्दी काव्य में प्रकृति' से सन्तुष्ट होकर डी० फिल की उपाधि दी। वह निबंध पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत पुस्तक उनकी साहित्यिक आलोचना संबंधी दूसरी रचना है। इसमें भी उन्होंने काव्य में प्रकृति के स्थान की ही विवेचना की है किन्तु विवेच्य साहित्य का क्षेत्र इस बार और भी विस्तृत हो गया है। संस्कृत और प्राकृत के काव्य इस पुस्तक में प्रधान रूप से आलोच्य बने हैं।

श्री रघुवंश जी के सोचने का और सोची हुई बात को प्रकाशित करने का ढंग अपना है। वे पिटे पिटाए मार्ग पर नहीं चलते बल्कि प्रत्येक

वस्तु को नये ढंग से और नई दृष्टि से देखने का प्रयत्न करते हैं। कभी-कभी वे ऐसे नतीजे पर पहुँचते हैं जिनसे वे लोग सहमत नहीं हो सकते जो परम्परा-प्रथित मार्ग के पथिक हैं। किसी वस्तु के याथार्थ्य तक पहुँचने के लिये वे उसका सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं। वस्तुतः वह भेदक दृष्टि वाले आलोचक हैं। उनका अध्ययन विशाल है और दृष्टि विश्लेषप्रवण। जो पुस्तक पाठकों के सामने है वह इस बात की साक्षी स्वयं है।

मैं बड़े हर्ष के साथ हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में इस पुस्तक का स्वागत करता हूँ। मेरा विश्वास है कि यह पुस्तक साहित्य में अपना स्थान बना लेगी और इसके पाठक इससे लाभान्वित होंगे। श्री रघुवंश जी अथक परिश्रम करने वाले लोगों में हैं। वे सदा लिखने-पढ़ने में लगे रहते हैं। हमारा साहित्य उनसे बहुत अधिक पाने की आशा रख सकता है। मेरी हार्दिक शुभकामना है कि वे स्वस्थ रहकर साहित्य को नये-नये ग्रंथों से समृद्ध करते रहे।

काशी विश्वविद्यालय

२१-७-५१

हजारीप्रसाद द्विवेदी

अपनी बात

प्रस्तुत ग्रन्थ इतना विस्तृत हो गया है कि भूमिका रूप में कुछ कहने का साहस नहीं होता। मेरी योजना के अनुसार इस अध्ययन से सम्बंधित कुछ निष्कर्षों को विश्लेषण तथा स्थापना के साथ यहाँ देना चाहिए था। परन्तु अब मैं निर्देश मात्र करके उनको किसी स्वतंत्र निबन्ध के लिये छोड़ रहा हूँ।

भारतीय कवि प्रकृति को अपने निकट पाता है और उससे उसका आत्मीय परिचय है। उसकी दृष्टि में प्रकृति मानवीय जीवन से अनुप्राणित है, संभवतः इसी कारण प्रकृति के स्वतंत्र जीवन को उसने स्वीकार कम किया है। कवियों ने जिस प्रकार प्रकृति को अपने काव्य में प्रस्तुत किया, और जिस शैली में चित्रित किया है, उसके अध्ययन से हम उनके काल-क्रम पर विचार कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय जीवन के सभी अंग एक सूत्र में बँधे रहे हैं। क्या दर्शन, क्या धर्म और क्या साहित्य, सभी क्षेत्रों में भारतीय आदर्शवाद की छाप है। हम कला के द्वारा साहित्य के आदर्शों की माप कर सकते, तथा साहित्य के द्वारा कला सम्बंधी आदर्शों की कल्पना कर सकते हैं। साहित्य और कला का यह अविच्छिन्न सम्बंध प्रकृति चित्रणों से और भी सिद्ध होता है। जो व्यक्ति भारतीय सौन्दर्य सम्बंधी दृष्टिकोण से परिचित नहीं वह जैसे यहाँ की कला-कृतियों (चित्रकला आदि) के सौन्दर्य को नहीं समझ सकता, उसी प्रकार संस्कृत काव्य के प्रकृति सौन्दर्य से भी अनभिज्ञ है। सौन्दर्य सम्बंधी आदर्श को हम इस प्रकृति-काव्य में अधिक प्रत्यक्ष देख सकते हैं। यही नहीं वरन् विभिन्न युगों के कला सम्बंधी स्तर पर इस अध्ययन के द्वारा प्रकाश भी पड़ सकता है।

इस कार्य के सम्पादन में अनेक लोगों का सहयोग और प्रोत्साहन

रहा है, और उन सबका मैं बहुत अभारी हूँ। पूज्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने अपने व्यस्त समय कार्यक्रम से समय निकाल कर इस पुस्तक को देखने और परिचय लिखने की जो कृपा की है, वह उनका मेरे प्रति स्नेह ही है। पं० रामप्रियजी तथा भाई गंगाप्रसाद श्रीवास्तव जी ने मेरी विशेष सहायता की है और मैं उनका कृतज्ञ हूँ। श्री उदयशंकर शास्त्री जी ने पुस्तकों आदि से मेरी बहुत सहायता की है, पर सम्बन्ध की निकटता के कारण मैं उनके प्रति आभार प्रकट करने का साहस भी नहीं कर सकता।

३० जुलाई १९५१

४ टैगोर टाउन,

प्रयाग

रघुवंश

विषय-सूची

प्रथम भाग

काव्य और प्रकृति

प्रथम प्रकरण — प्रकृति और काव्य [३-३५]

१ प्रकृति का प्रश्न

प्रकृति का रूप और भाव—२. भौतिक प्रकृति, ३. दृश्य प्रकृति
(क) दृष्टा और दृश्य—(ख) दृश्यात्मक जगत्, ४. रहस्यात्मक
प्रकृति—(क) प्रकृति और ईश्वर ।

प्रकृति के मध्य में मानव—५. सर्जनात्मक विकास—(क) चेतना
की स्थिति, ६. मानव की स्वचेतना—(क) व्यंजना और
प्रयोजन, ७ अनुकरणात्मक प्रतिबिम्ब—(क) ज्ञान और
भाव, ८. प्रत्यक्ष से कल्पना ।

मानवीय भावों का विकास—९. संवेदना की स्थापना, १०. भावो
का विकास, ११. माध्यमिक—वार्मिक भाव, १२ सौन्दर्य-
भाव ।

प्रकृति में सौन्दर्यानुभूति— १३. सौन्दर्य का प्रश्न, १४. सौन्दर्य
मनस्-परक, १५. वस्तु-परक, १६. दृष्टिकोण विशेष, १७.
प्रकृति में सौन्दर्य—(क) भावात्मक मनस्-पक्ष—(ख)
रूपात्मक वस्तु पक्ष, १८. प्रकृति सौन्दर्य के रूप—(क)
महत्—(ख) सवेदक—(ग) सचेतन ।

काव्य में प्रकृति सौन्दर्य— १९. काव्य सौन्दर्य है—(क) काव्यानु-
भूति—(ख) काव्याभिव्यक्ति—(ग) काव्यानन्द, २०. प्रकृति
का आलम्बन रूप—(क) स्वानुभूत सौन्दर्य—(ख) प्रति-

त्रिभ्रत सौन्दर्य, २१. प्रकृति का उद्दीपन-रूप—(क) प्रकृति की पार्श्व-भूमि—(ख) भावो की पार्श्वभूमि, २२. रहस्य भावना, २३. उपमान-योजना ।

द्वितीय प्रकरण—काव्यशास्त्र और प्रकृति [३६-५६]

१ काव्य-शास्त्र

अनुभूति का पक्ष—२. भिन्न दृष्टिकोण : सादृश्य और अनुकरण, ३. व्यापक उपेक्षा, ४. स्थापित आदर्श, ५. कुछ सकेत—(क) काव्य-प्रतिभा ।

शब्द और अर्थ—६. अभिव्यक्ति-पक्ष, ७ शब्द का भाव-रूप, ८. शब्द का ध्वनि त्रिभ्र, ९. अलंकार—(क) उपमान ।

रस-सिद्धान्त—१०. रस की स्थापना—(क) रसानुभूति—(ख) काव्यानन्द, ११ शात और सौन्दर्य-भाव—(क) आलम्बन-रूप की उपेक्षा, १२. उद्दीपन-विभाव, १३. आरोप—(क) रसाभास और भावाभास ।

कवि-शिखा—१४. देश और काल, १५. कवि-समय ।

तृतीय प्रकरण—प्रकृति चित्रांकन की शैलियाँ [६०-११७]

१. प्रकृति का विस्तार, २. प्रकृति का चित्रांकन—(क) रूपात्मक—(ख) भावात्मक, ३. शैली का अर्थ ।

वर्णनात्मक शैली—४. वर्णना का रूप, ५. रेखा-चित्र, ६. संश्लिष्ट योजना—(क) महाकाव्य की परम्परा—(ख) नाटको की परम्परा—(ग) गद्य-काव्य ।

चित्रात्मक शैली—७. प्रस्तुत और अप्रस्तुत, ८. स्वतःसम्भवी कल्पना—(क) सौन्दर्य-कल्पना—(ख) वैचित्र्य की प्रवृत्ति, ९ प्रोटोनि-सम्भव कल्पना—(क) कलात्मक प्रयोग—(ख) वैचित्र्य कल्पना, १०. भावात्मक व्यजना—(क) स्वाभाविक—(ख) कलात्मक—(ग) माघ और श्रीहर्ष ।

वैचित्र्य की शैली—११ कला का आदर्श, १२. (क) सहज वैचित्र्य—(ख) बाण की संश्लिष्ट वैचित्र्य शैली—(ग) स्थिति और भाव का वैचित्र्य—(घ) आरोप की प्रवृत्ति, १३. चमत्कृत प्रयोग—(क) पौराणिक कल्पना और आरोप—(ख) वस्तु-स्थिति मात्र, १४. ऊहात्मक शैली—(क) उक्ति-वैचित्र्य मात्र

चतुर्थ प्रकरण—विभिन्न काव्य-रूपों में प्रकृति [११८-१७३]

१. काव्य के भिन्न रूप, २. आलम्बन-रूप ।

गीति-काव्य की परम्परा—३. गीति का रूप, ४. काव्यादर्श और गीति-काव्य, ५. वैदिक गीतियों पर एक दृष्टि, ६. पाली गाथाएँ, ७. गीतगोविन्द, ८. दूत-काव्य—(क) शिष्ट वातावरण, ९. साहचर्य-भावना : विश्वास—(क) आत्मीयता—(ख) भावशीलता, १०. वर्णना का विस्तार ।

सुकृत्क तथा ऋतु-काव्य—११. परम्परा का विकास, १२. वर्णनात्मक सूक्तियाँ, १३. सहज भावशीलता-भावरोप, १४. ऋतु-काव्य—(क) वर्णना की स्थिति, १५. भाव-तादात्म्य : भावोल्लास—(क) आरोप, १६. आत्मीयता का वातावरण—(क) आरोप में आत्मीयता

महाप्रबन्ध-काव्य—१७. कथा-काव्य और प्रकृति, १८. महाभारत के विस्तार में, १९. रामायण में कथा का आधार, २०. वर्णना की योजना, २१. सौन्दर्यानुभूति : आनन्दोल्लास, २२. प्रतिकूल भाव-स्थिति, २३. आत्मीय सहानुभूति, २४. आदर्शिकरण ।

पञ्चम प्रकरण—विभिन्न काव्य-रूपों में प्रकृति (क्रमशः) [१७४-२२६]

महाकाव्यों की परम्परा—१. वर्णना कर आदर्श—(क) प्रकृति का स्थान, २. कथा-वस्तु कर आधार : देश, ३. काल,

४. स्थिति, ५. प्राकृतिक घटनाओं की नियोजना - (i) स्वाभाविक, ६. (11) आदर्श, ७. (111) अलौकिक, ८. वातावरण का निर्माण—(क) सहज अनुरूप—(ख) सघन वातावरण—(ग) अन्य कवियों में, ९. चारित्रिक संकेत, १०. भविष्योन्मुखी, ११ आत्मीय साहचर्य—(क) प्रकृति और जीवन, १२. आत्मीय सहानुभूति—(क) उपालम्भ, १३. जीवन का आरोप—(क) अप्रत्यक्ष और अलकृत, १४. भावतादात्म्य का वातावरण—(क) निर्भर सौन्दर्य, १५. भावोल्लास, १६. भावारोप की स्थिति ।

षष्ठ प्रकरण—विभिन्न काव्यों-रूपों में प्रकृति (क्रमशः) [२२७-२७६]

गद्य-कथा-काव्य—१. कथा और प्रकृति, २. देश-काल का आधार—(क) देश—(ख) काल, ३. वातावरण निर्माण—(क) सहज अनुरूप—(ख) भावात्मक प्रसार, ४. नियोजित घटनाएँ, ५. आत्मीय सहानुभूति:पात्र—(क) सम्बन्ध ।

नाट्य-काव्य की परम्परा—६. प्रकृति का स्थान, ७. देश-काल की स्थिति, ८. कालिदास, ९. तीन नाटक, १०. भवभूति, ११. श्रीहर्षदेव, १२. प्राकृतिक घटना, १३. कालिदास १४. भवभूति, १५. श्रीहर्ष, १६. वातावरण—(1) अनुरूप, १७ (11) सहज, १८. (111) भावात्मक—(क) श्रीहर्ष और भवभूति, १९. आत्मीय सहानुभूति, २०. कालिदास, २१. भवभूति ।

सप्तम प्रकरण—उद्दीपन के रूप में प्रकृति [२८०-३३२]

१. उद्दीपन की सीमा—(क) भाव और प्रकृति का आधार—(ख) अनुभावों का माध्यम—आरोपवाद

महाप्रबन्ध काव्य—२. महाभारत, ३. रामायण—(क) आरोप ।

गीत-काव्य—४. उन्मुक्त भावना, ५. कामोद्दीपक वातावरण, ६. प्रत्यक्ष उद्दीपन ।

- दूत-काव्य—७. मूल प्रेरणा, ८. उद्दीपन का वातावरण, ९. आरोप द्वारा, १०. विलास का रूप ।
- मुक्तक-काव्य—११. सहज उद्दीपन का सकेत, १२ आरोप का माध्यम—(क) ऐश्वर्य्य और विलास ।
- ऋतु-काव्य—१३. सहज भावशीलता, १४. प्रभावशील स्थिति, १५. प्रेरक-उद्दीपन, १६. वातावरण में, १७. आरोप का माध्यम, १८. ऐश्वर्य्य विलास ।
- महाकाव्य—१९. अश्वघोष—(क) आरोप, २०. कालिदास—(क). सहज स्थिति—(ख) वातावरण—(ग) प्रत्यक्ष रूप में—(घ) आरोप—(ङ) विलास, २१. पद्यचूडामणि, २२ सेतुबन्ध, २३. जानकीहरण, २४. किरातार्जुनीय—(क) प्रत्यक्ष आरोप और विलास, २५. शिशुपाल वध—(क) प्रत्यक्ष उद्दीपक—(ख) आरोप—(ग) विलास, २६. नैषधीय ।
- गद्य-काव्य—२७. कादम्बरी ।
- नाट्य-काव्य—२८. कालिदास, २९. मृच्छकटिक, ३०. अन्य नाटक, ३१. मालतीमाधव ।

द्वितीय भाग

कवि और प्रकृति

प्रथम प्रकरण—वाल्मीकि [३३५-३६६]

१ आदि कवि

- उपवन तथा वन—२. उल्लेख—(क) उपवन, ३. वन, ४. विश्वामित्र के साथ—(क) चित्रकूट का मार्ग—(ख) दण्डकारण्य—(ग) पचवटी—(ङ) पम्पा का मार्ग—(च) किष्किन्धा ।
- आश्रम का जीवन—५. वसिष्ठ का—(क) राम की कुटी—(ख) दण्डक वन—(ग) अगस्त्य का आश्रम—(घ) सीता विहीन आश्रम ।

पर्वतीय प्रदेश—६. चित्रकूट—(क) ऋष्यमूक—(ख) महेन्द्र—(ग)
मैनाक—(घ) अरिष्ट ।

सरिता, सर और सागर—७. सरिता—(क) मन्दाकिनी—(ख)
अन्य, ८. सर या भील, ९. सागर ।

काल और ऋतु—१०. सायकाल और रात्रि—(क) चन्द्रोदय, ११.
वसत ऋतु, १२. वर्षा ऋतु, १३. शरद् ऋतु, १४. हेमन्त
ऋतु ।

द्वितीय प्रकरण—कालिदास [३६७-४०३]

१. महाकवि ।

देश के संकेत—२. रघु की दिग्विजय, ३. सुनन्दा द्वारा, ४. मेघ-
दूत मे ।

उपवन और वन—५. उपवन—(क) यक्ष का उपवन—(ख)
प्रमदवन ।

सर, सरिता और सागर—६. सर, ७ सरिता—(क) गंगा और
संगम—(ख) मेघदूत, ८. सागर

पर्वत प्रदेश—९. मेघ के मार्ग मे—(क) हिमालय और कैलास,
१०. अन्य पर्वत—(क) माल्यवान तथा चित्रकूट

आश्रम जीवन—११. शाकुन्तल मे ।

आखेट-प्रसंग—१२. दशरथ की मृगया ।

काल-स्थिति—१३. प्रातःकाल, १४ सन्ध्याकाल, १५. चन्द्रोदय ।

ऋतु-वर्णन—१६. ग्रीष्म—(क) रघुवंश, १७ वर्षा, १८. शरद्—
(क) रघुवंश, १९. हेमन्त, २० शिशिर, २१. वसन्त—

(क) रघुवंश—(ख) कुमारसम्भव—(ग) उत्सव ।

तृतीय प्रकरण—प्रवरसेन [४०४-४५८]

१. कलाकार—(क) प्रकृति का प्रयोग

प्रस्थान—२. शरद् वर्णन, ३. मार्ग—(क) तट पर आगमन ।

सागर-दर्शन—४ दर्शन, ५. बाण से क्षुब्ध, ६ मानवीकरण ।
पर्वतोत्पादन—७. संज्ञोभ, ८. उत्पादन कार्य, ९. प्रत्यावर्तन ।
सेतु-निर्माण का उपक्रम—१०. शैलक्षेपण ।

सेतु-पथ का निर्माण—११. सागर का शांत भाव, १२ कार्यारम्भ,
१३. कार्य की पूर्णता, १४. सेतुपथ, १५. प्रस्थान ।

सुवेल पर्वत—१६. रूप-दर्शन ।

काल-वर्णन—१७ सूर्यास्त, १८. अन्धकार का प्रवेश, १९.
चन्द्रोदय, २०. प्रातःसन्ध्या ।

चतुर्थ प्रकरण—त्राणभट्ट [४५६-५००]

१. चित्रकार ।

ग्राम्य प्रकृति—२. श्रीकंठ देश, ३. विन्ध्य का मार्ग ।

वन-प्रदेश—४ विन्ध्याटवी—(क) जीर्ण शाल्मली—(ख) शुक्र-
निवास, ५. शून्याटवी, ६ हर्षचरित में विन्ध्य-वन ।

पर्वतीय देश—७. कैलाश की घाटी—(क) घाटी का वन ।

सर-सरिता—८. पम्पासर, ९. अच्छोद सर, १०. आकाश गंगा ।

आश्रम-स्थिति—११. अगस्त्य, १२ जात्रालि, १३. बौद्ध आश्रम ।

मृगया-प्रसंग—१४. शत्रु-मृगया—(१) कोलाहल—(क) वन की
स्थिति—(ख) आखेट का दृश्य ।

अशुभ उत्पात—१५ भयानक रूप ।

काल-परिवर्तन—१६. काल का रूप—(क) मध्याह्न, १७. सन्ध्या :

आश्रम मे—(क) अन्धकार प्रवेश—(ख) हर्षचरित :

व्यापार—(ख) शोक से प्रभावित, १८. रात्रि : चन्द्रोदय—

(क) स्वतंत्र, १९. प्रभात—(क) भावशील—(ख) मार्ग में

प्रातःकाल

ऋतु-वर्णन—२०. ग्रीष्म—(क) पवन-प्रवेग—(ख) दावानल

प्रकोप, २१. वर्षा, २२. शरद्, २३. वसन्त ।

पञ्चम प्रकरण—अन्य कवि [५०१-५६०]

बुद्धघोष—१ प्रभावित प्रकृति, २. उपवन—(क) वानन, ३. सर
और सरिता, ४. काल परिवर्तन—(क) अन्धकार—(ख)
चन्द्रोदय, ५. ऋतु (१) वर्षा—(क) शरद—(ख) वसन्त ।

भारवि—६. पर्वतादि, ७. वनादि, ८. सन्ध्या और चन्द्रोदय,
९. ऋतु वर्णन ।

कुमारदास—१०. पर्वतीय मृगया, ११. काल-परिवर्तन—(क)
वसन्त ।

साध—१२ सागर, १३. रैवतक पर्वत, १४. सन्ध्याकाल—(क)
अन्धकार—(ख) चन्द्रोदय, १५. प्रभातकाल, १६. ऋतु-
वर्णन

श्रीहर्ष—१७. देशो का उल्लेख, १८. उद्यान, १९. सरोवर, २०.
प्रातःकाल, २१. सायंकाल—(क) चन्द्रोदय ।

प्रथम भाग

काव्य और प्रकृति

प्रथम प्रकरण

प्रकृति और काव्य

§ १—सर्जनात्मक विश्व की अभिव्यक्ति प्रकृति है। भारतीय साख्य-दर्शन में प्रकृति पुरुष के आकर्षण से सर्जन-विस्तार कर रही है। और

यह प्रतीक ऐसा सजीव है कि इसका प्रचार प्रकृति का प्रश्न

दर्शन के तत्त्ववाद की सीमा से बाहर भी रहा है।

प्रकृति की इस व्याख्या में विश्व का सारा विस्तार आ जाता है। परम्परा जिस अर्थ में प्रकृति को ग्रहण करती है, उसमें भी समस्त बाह्य-जगत् को उसके इंद्रिय-प्रत्यक्ष की रूपात्मकता तथा उसमें अधिष्ठित चेतना के साथ प्रकृति माना जाता है। परंतु इस व्यापक सीमा के अन्तर्गत कितने ही स्तरो को अलग-अलग प्रकृति के नाम से कहा जाता है। तत्त्ववादियों ने प्रकृति का प्रयोग दृश्य-जगत् के लिए किया है, और साथ ही किसी अन्य सत्य के लिए भी। जहाँ तक ईश्वरवादियों का प्रश्न है वे प्रकृति को ईश्वर का स्वभाव मानकर चलते हैं। परंतु तत्त्ववादी सारे सर्जन को भौतिक-तत्त्व और विज्ञान-तत्त्वों में समझते हैं। कभी-कभी भौतिक-तत्त्व को प्रकृति और विज्ञान-तत्त्व को परम-सत्य भी माना गया

है।^१ पर वैसे प्रकृति की व्याख्या के लिए इन दोनों का प्रयोग किया गया है। वास्तव में तत्त्ववाद के इन दो तत्त्वों के अन्तर्गत प्रकृति की सहज व्याख्या छिपी है। सर्जन का रूप और भाव, उसकी स्थिति और गति ये दोनों प्रकृति की कठिन से कठिन तत्त्ववादों व्याख्याओं में उसी प्रकार अन्तर्निहित हैं जिस प्रकार साधारण व्यक्ति के मन में स्पष्ट हैं।^२ प्रकृति का यह रूप और भाव ही है जिससे मानव युगों से परिचित है और जिसके आधार पर उसका विकास सम्भव हो सका है।

प्रकृति का रूप और भाव

§ २—भारत और योरप दोनों ही देशों के तत्त्ववाद में प्रकृति के रूप और भाव को लेकर अनेक वाद चले हैं। वास्तव में प्रकृति की स्थिरता और चेतना ने मानव के मन को सदा भौतिक प्रकृति प्रश्नशील और जिज्ञासु रखा है। कभी उसने एक को सत्य माना, कभी दूसरे को; कभी उसने एक से दूसरे की व्याख्या की और कभी दूसरे से पहले की। पर यह प्रश्न युगों से चला आ रहा है। मिथयुग मानव की प्रवृत्तियों का विकास-युग था। इस युग के आगे बढ़ते ही मानव विश्व-रूप प्रकृति के प्रति प्रश्नशील हुआ। यह चारों ओर क्या है, कैसे है और क्यों है। अपने चारों ओर की नाना-रूपात्मक, आकार-प्रकारमयी, ध्वनि-नादों से युक्त, प्रवाहित गतिमान् परिवर्तनशील सृष्टि के प्रति मानव जिज्ञासु हो उठा। इसी प्राकृतिक आधार पर आगे बढ़कर तत्त्ववादी भौतिक-तत्त्व तथा विज्ञान-तत्त्व जैसे सिद्धान्तों तक

१. तत्त्ववाद के क्षेत्र में भौतिक-वाद और विज्ञान-वाद की दो विभिन्न विचार-धाराएँ रही हैं, और साथ ही कुछ विद्वानों ने इनका समन्वय भी किया है।

२. साधारण व्यक्ति और सहज बोध का अर्थ यहाँ सर्वसाधारण से सवधित नहीं है। यहाँ इनका प्रयोग व्यावहारिक योग्यता के रूप में किया गया है, जिसके आधार पर विचारक व्यापक रूप से मानवीय अनुभवों की तुलनात्मक विवेचना करता है (स्टाल्ट; माइन्ड ऐन्ड मैटर, प्र० प्र०, पृ० ६)।

पहुँचे है।^३ दार्शनिकों ने समन्वय का मार्ग भी निकाला है जिसमें प्रकृति के दोनो पक्षों को स्वीकार किया है। और साधारण सहज बोध की सीमा में भी हम इसी निष्कर्ष तक पहुँचते हैं। साधारण व्यक्ति यथार्थ जगत् को स्वीकार करके चलता है। वह हरी घास, नदी और वृक्ष सभी को आकार-प्रकार तथा रंग-रूप में ग्रहण करता है; इनको सत्य मानने के लिए स्वाभाविक रूप से विवश है। पर साधारण व्यक्ति के मन में इनके यथार्थ होने के प्रति सन्देह उत्पन्न होने के अवसर भी आते हैं। दिक् और काल की असीमता, द्रव्य और गुण का परिवर्तन होनेवाला स्वभाव, इन्द्रियो के विरोधी तथा भ्रमात्मक प्रत्यक्ष इस सन्देह को पुष्ट करते रहते हैं। यद्यपि परिणामवाद अधिक दूर तक सत्य नहीं माना जा सकता, पर साधारण व्यक्ति परिणामवादी होता है। इस स्थिति में वह न तो प्रकृति के रूप को छोड़ पाता है और न भाव-पक्ष की उत्सुकता त्याग सकता है। वह प्रकृति में भौतिक के साथ किसी अन्य सत्ता को भी स्वीकार करके चलता है। इस प्रकार भौतिक प्रकृति के रूप और भाव दोनों पक्षों को ग्रहण करके हम आगे बढ़ सकते हैं।

§ ३—जिस भौतिक प्रकृति के रूप और भाव पक्षों को हम स्वीकार कर चुके हैं, उसके विस्तार में 'हम' मानव भी आ जाते हैं। मानव का दृश्य-प्रकृति प्रकृति के मध्य में क्या स्थान है, यह एक दूसरा प्रश्न है जिस पर अगले अनुच्छेदों में विचार किया जायगा। पर यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि प्रकृति के रूप और भाव को समझने के लिए मानव को अपनी अनुरूपता का सब से बड़ा प्रमाण प्राप्त है। मनुष्य के पास शरीर है और मनस् भी, साधारण सहज-बोध के धरातल पर इनमें से वह किसी को अस्वीकार करके नहीं चल सकता।

३. ग्रीक तत्ववादियों में प्लेटो विज्ञानवादी और अरिस्टाटिल भौतिकवादी हैं। बाद में योरुप में स्पिनोजा और बार्कले विज्ञानवादी और हाब्स तथा ह्यूम भौतिकवादी हुए हैं। हेगल तथा कात समन्वयवादी कहे जा सकते हैं।

और इसी के सामान्तर वह समझ सका है कि प्रकृति का बाह्य-रूप है और उसमें अन्तः भाव-रूप चेतना भी है। तत्त्ववाद जिसे मनस्-तत्त्व और वस्तु-तत्त्व कहता है; उसे हम व्यावहारिक दृष्टि से मनस् और वस्तु मान सकते हैं। और मानव में इन दोनों की अभिव्यक्ति मानस और शरीर के माध्यम से होती है। मनस् तथा वस्तु और मानस तथा शरीर के सम्बंध के विषय में तत्त्ववाद के क्षेत्र में अनेक मत और वाद हैं।^४ पर अपने-अपने क्षेत्र में स्वतंत्र मान कर भी इन दोनों में सम्बंध स्वीकार किया जा सकता है। यह सचेतन प्रक्रिया का सम्बंध होगा। मानसिक घटनाओं में कुछ शारीरिक घटनाओं का सम्मिलन होना है और उसी प्रकार शारीरिक अवस्थाओं पर मानसिक स्थितियों का प्रभाव पड़ता है, और यही सचेतन प्रक्रिया हम स्वीकार कर सकते हैं। इस प्रकार प्रकृति के रूप और भाव पक्षों को ग्रहण करने के लिए हमारे मन और शरीर की सचेतन-प्रक्रिया आवश्यक है।^५

क—इस सीमा पर हमारे सामने दृश्य-जगत् का प्रश्न स्पष्ट हो जाता है, दृष्टा मानस और दृश्य प्रकृति का सम्बंध उपस्थित होता है।

दृष्टा और दृश्य

शरीर की सचेतन प्रक्रिया के साथ मानस (मन) वस्तु-जगत् का दृष्टा है और इस कारण मानवीय दृष्टि से दृश्य-प्रकृति के सम्बंध में उसका महत्त्व अधिक लगता है। इस मनस् के प्रतिबिम्ब पड़ने से दृश्य-जगत् की सत्ता मानी जा सकती है। मन जिस शरीर से सचेतन है, उससे एक विशेष स्थिति में सम्बंधित है, साथ ही विश्व की अनेक वस्तुओं की विभिन्न घटनाओं का दृष्टा भी है। मन इन्द्रिय-प्रत्यक्षों के द्वारा भौतिक वस्तुओं का स्थिति-ज्ञान प्राप्त करता है। शरीर में इन्द्रियो का विभाजन भौतिक तत्वों के अनुरूप हुआ है; अथवा यों भी कहा जा सकता है कि मन अपनी प्रतिकृति भौतिक तत्वों

४. जेम्सवार्ड, नेचुरलिज़्म ऐन्ड एगनास्टिसिज़्म में साइकोफिजिकल पैरोलजिज़्म।

५. वही; वही में ऐनीमेटेड इन्टरपेक्शनिज़्म।

पर इन्द्रियों के माध्यम से डालता है। यह एक ही सत्य को कहने की दो भिन्न रीतियाँ हैं। यह निश्चित नहीं है कि वस्तु-गुण उनकी स्थितियों के आधार पर हैं अथवा प्रत्यक्षीकरण की क्रिया पर निर्भर हैं, परंतु व्यावहारिक दृष्टि से यह मान्य है। क्रियात्मक प्रवृत्ति के रूप में तन्मात्राओं, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और ध्वनि की स्थितियों का बोध मन नासिका, जिह्वा, चक्षु, स्पर्श तथा श्रवण इन्द्रियों के माध्यम से करता है। परंतु इनके आधार में भौतिक तत्वों के रूप में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश हैं। फिर मन केवल इन्द्रिय-प्रत्यक्षों के आधार पर नहीं चलता, उसमें विचारात्मक अनुमेय के साथ स्मृति तथा संयोग पर आधारित कल्पना का भी स्थान है। इस प्रकार मन इन्द्रिय-प्रत्यक्ष के दृश्य-जगत् को कल्पनामय भाव-जगत् में प्रतिबिम्बित कर उसका दृष्टा बन जाता है।

ख—यह दृष्टा का वस्तु-जगत् अपनी दृश्यात्मकता में केवल वस्तुओं की विभिन्न स्थिति और परिस्थिति है। वस्तु भी वस्तु-तत्त्वों की घटनात्मक स्थिति मात्र है। वस्तु कहने से कई माध्यमिक गुणों के दृश्यात्मक जगत् समवाय का बोध होता है, साथ ही किसी भौतिक घटना की मन से सम्बंधित स्थिति का ज्ञान भी होता है। वस्तु के प्राथमिक गुण दिक्-काल का ज्ञान सम्बंधात्मक है और अनुमान पर स्थिर है। इनका ज्ञान किसी विशेष स्थिति या बिन्दु के सम्बंध की सापेक्षता पर ही सम्भव हो सकता है। ये दोनों अपरिवर्तनशील हैं और इनमें जो परिवर्तन जान पड़ता है वह तत्वों के परिवर्तन तथा उनकी गतिशीलता से विदित होता है।^६ दिक्-काल के विचार से हमारे सामने प्रकृति की गति, उसके परिवर्तन और क्रियात्मक प्रवाह का प्रश्न आ जाता है, जिस प्रकार रेलगाड़ी से भागते हुए दृश्यों की स्थिरता पर

६ ग्रीक दार्शनिक हेराक्लायट्स ने सर्वप्रथम गति और परिवर्तन का सिद्धान्त निश्चित किया था। भारतीय तत्ववाद् में बौद्ध-दर्शन में इसका विचार है।

विचार करते समय ट्रेन की गति का ध्यान आ जाता है। भाव-रूप दिक्-काल में स्थित वस्तु का बोध माध्यमिक गुणों के आधार पर होता है। इनमें रूप अधिक महत्त्वपूर्ण है, इसके बाद ध्वनि से आकाश, गंध से पृथ्वी, रस से जल और स्पर्श से वायु का सम्बंध है। इनके ग्रहण की मानसिक प्रक्रिया में विचार और कल्पना दोनों ही स्थितियों में संयोग और विरोध का आश्रय लेना पड़ता है, जिसका आधार साम्य है। इस साम्य के लिए सामान्य और विशेष का भेद होना आवश्यक है। वस्तु में रहनेवाला नित्य धर्म सामान्य है और दृश्य-जगत् में उसकी विशिष्ट स्थितियाँ ही सामने आती हैं। इस प्रकार सामान्य और विशेष के द्वारा प्रकृति के रूप तथा भाव-पक्ष की दृश्यात्मकता स्थापित होती है।^७

§ ४—यह कहा गया है कि मानव स्वतः ज्ञान के सामानान्तर अपने और अपने ही अनुरूप प्रकृति को समझ सका है। प्रकृति का चेतन भाव-पक्ष हो अथवा उसका जड़ रूप-पक्ष, दोनों रहस्यात्मक प्रकृति उसके मन और शरीर से सामञ्जस्य ढूँढते चले हैं। मानव प्रारम्भ से स्वचेता नहीं था, इस कारण प्रकृति सम्बंधी उसका ज्ञान भी अधूरा था। दिक्-काल का सम्बंधात्मक ज्ञान मानव के मानसिक विकास में बहुत पीछे की बात है, प्रारम्भ में विभिन्न इन्द्रिय-प्रत्यक्षों को समवाय रूप में समझने की भावना विकसित नहीं हुई थी। वस्तुओं के रूप-रंग, तथा उनसे सम्बंधित ध्वनि, गंध तथा स्वाद को अलग-अलग ग्रहण करके उनका सामञ्जस करने में मन असमर्थ था; और दिक्-काल की अस्पष्ट छाया में मन विकल था। मानसिक विकास में यह प्रकृति की रहस्यमयी भावना और रूप आध्यात्मिक रहस्यवाद की आधार-भूमि है। प्रथम भय प्रदान करने वाले देवताओं से कुछ आगे प्रकृति में शक्ति के प्रतीक विभिन्न देवताओं की स्थापना हुई थी।

क—मानव मन की यह प्रवृत्ति है कि वह अपरिचित को साम्य के

७. वैशेषिकों ने द्रव्य मानकर इन्हें नित्य माना है।

आधार पर जानने का प्रयास करता है। रहस्यमयी भावना के आधार पर एक और प्रकृति शक्तियों को देवत्व के साथ प्रकृति और ईश्वर मानवीय आकार और भावनाओं से युक्त कर दिया गया है। दूसरी ओर इन शक्तियों में एक समान चेतना का सञ्चरण भी भासित हुआ। अतः आध्यात्मिक साधना के इसी क्रम में क्रियात्मक कारण के रूप में ईश्वर की कल्पना की गई है, और भावात्मक विज्ञान से सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए विश्वात्मा की स्थापना हुई। इस प्रकार प्रकृति सम्बंधी रहस्य-भावना में प्रकृति के रूप और मानवीय भावना के संयोग से प्रकृतिवाद का विकास हुआ है, और मानव रूप तथा प्रकृति चेतना के संयोग से ईश्वरवाद की स्थापना हुई है।^८

प्रकृति के मध्य में मानव

प्रकृति के रूप और भाव की स्थापना के पश्चात् उसमें मानव की स्थिति समझ लेना आवश्यक है। प्रकृति और काव्य सम्बंधी विवेचना में मानव बीच की कड़ी है, क्योंकि काव्य मानव की अभिव्यक्ति है। विश्व-सर्जना में मानव का स्थान अकिञ्चन है, परंतु जिस विज्ञानमय मनस् तत्त्व की स्वचेतन स्थिति मानव में है, उससे वह विश्व-चेतना का केन्द्र बन जाता है। वास्तव में मानव प्रकृति की शृंखला-क्रम की एक कड़ी है। हम अपनी मानवीय दृष्टि से प्रकृति और मानव को अलग मानकर चलते हैं।

§ ५—प्रकृति के इस क्रम को समझने के लिए सर्जनात्मक विकास-वाद की स्थापना आवश्यक हो जाती है। गमन के साथ परिवर्तन में पूर्व तत्त्व की स्थिति की स्वीकृति से एक प्रकार से विकास का रूप मिल जाता है। इसको समझने के लिए भी प्रकृति के रूप और भाव-पक्ष सहायक हैं। गमन-शक्ति के प्रवाह

८. जान ओमन, नैचुरल ऐन्ड सुपरनेचुरल तथा जे० जी० फ्रेजर, वार्षिक ऑव नेचर में इस विषय का विस्तार है।

में तत्त्वों का केन्द्रीकरण होता है, फिर विभिन्नता के साथ अनेक रूपता उपस्थित होती है, और अन्त में निश्चित होकर उनमें एक-रूपता आती जाती है। इस प्रकार विभिन्न-धर्मों सर्जन में एक रूपता और क्रम चल रहा है। सहज बोध के स्तर पर रूपात्मक प्रकृति में एक से अनेक की प्रवृत्ति के साथ अवाध सचेतन प्रवाह (भावात्मक) को लेकर इस विकास को समझा जा सकता है। सर्जन की अनेकता में उसका नियम सन्निहित है, और इसी विभिन्नता में उसका प्रवाह चल रहा है। प्रत्यक्ष जगत् में यही हम देखते हैं।^९ एक-एक बीज में सहस्र-सहस्र बीजों का रहस्य छिपा हुआ है। एक रस दूसरे से मिल कर तीसरे भिन्न रस की सृष्टि करता है। यह विकास समान परिस्थितियों में एक ही प्रकार से होता है। वनस्पति जगत् के समान ही प्राणि जगत् में यह नियम लगता है। प्राणि का शरीर केवल बाह्य-जगत् से प्रभावित ही नहीं होता, वरन् बाह्य परिवर्तनों के साथ क्रियाशील होने के लिए परिवर्तित भी होता है। बाह्य-प्रकृति की आन्तरिक अनुरूपता के माध्यम से शरीर पूर्णता प्राप्त (विकास) कर सका है। और मानव के जीवन में यह अनुरूपता बहुत कुछ पूर्ण मानी जा सकती है।

क—जहाँ तक मानव-शरीर का प्रश्न है वह बाह्य-प्रकृति की क्रिया-प्रतिक्रिया का परिणाम हो सकता है। प्राणि-शरीर में भिन्नता बाह्य कारणों से उत्पन्न होती है और यह विभिन्नता अनुरूप चेतना की स्थिति होने के कारण प्रकृति द्वारा चुन ली जाती है। यह विभिन्नता अगली वंश-परम्परा में चलती जाती है। परन्तु मानव शरीर की इस उन्नत स्थिति को स्वीकार कर लेने पर भी मानव के विकास का

९ इस सर्जनात्मक विकासवाद का डार्विन के विकास (भौतिक) से सम्बन्ध नहीं है। यह सिद्धांत प्रकृति के विषमीकरण और एकीकरण के आधार पर विकसित हुआ है। आधुनिक युग में एच० वर्गर्सॉ ने अपने 'क्रियेटिव युवोल्यूशन' में इसे नया रूढ़ि दिया है।

प्रश्न हल नहीं होता । मानव की मानसिक विभिन्नता इस विकास की सबसे बड़ी कठिनाई है, मस्तिष्क की सूक्ष्म क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप में इसको समझ पाना सम्भव नहीं है । इस प्रकार प्रकृति के जड़-चेतन प्रसार में मानव (शरीरधारी) इससे एक रूप होकर भी अपनी मानस-शक्ति के कारण अलग है । परंतु मानव की मानस-चेतना और प्रकृति की चेतना में जो अनुरूपता है, उससे मानस का एक पक्ष स्पष्ट हो जाता है । प्रकृति की चेतना का अनुभव हमको निज की चेतना के तादात्म्य में होता है । चेतना का अर्थ शरीरवर्तनों से परिचित होना है, और ध्यान की स्थिति का बदल जाना परिवर्तन का भान होना है । प्रकृति के माध्यमिक गुणों को लेकर दिक् का छोटा सा छोटा बिन्दु हमारी-चेतना की एकाग्रता का परिणाम हो जाता है और वह इस स्थिति में असीम की ओर प्रसारित भी रहता है । इस प्रसरण का भान चेतना को होता रहता है । यह घटना-क्रम के रूप में काल का अनुभव मानव-चेतना और प्रकृति-चेतना की अनुरूपता का परिणाम है । परंतु इस अनुरूपता से मानस की पूरी व्याख्या नहीं हो सकती ।

§ ६—मानव की मनस्-चेतना और प्रकृति की सचेतना में एक प्रमुख भेद है और उसी के आधार पर हम मानस को समझ सकते हैं । मानव आत्मवान् स्वचेतनशील है । उसकी मानव की स्वचेतना चेतना यदि प्रकृति-चेतना का भाग है तो उसमें प्रसारित भी है । इस चेतना के बोध के लिए उसमें 'स्व' की भावना आवश्यक है । यह 'स्व' की भावना जितनी व्यक्त और व्यापक होगी उसी के अनुसार चेतना का प्रसार भी बढ़ता जायगा । प्रकृति का दृश्य-जगत् उसकी अपनी दृष्टि की सीमा है, साथ ही अपने अनुभव के विषय का पूरा ज्ञान उसे तभी हो सकता है, जब उसका अपना 'स्व' स्पष्ट हो । मानसिक विकास के साथ मानव का 'स्व' अधिक व्यापक और स्पष्ट होता गया है । उसका क्षेत्र प्रत्यक्ष बोध से भावना और कल्पना में

भी पैल जाता है। इस प्रकार प्रकृति की चेतना के मध्यम से मानव मानस-क्री वह स्थिति आ जाती है जिसमें वह अपनी चेतना से स्वयं परिचित है।^{१०}

क—मानव की स्वचेतना के विकास में समाज का योग भी रहा है। मानव प्रारम्भ से सामाजिक प्राणी रहा है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के अनुभव को जान तो नहीं सकता, परंतु उसका व्यजना और प्रयोजन अनुमान लगा सकता है; फिर अपने व्यक्तिगत अनुभवों से तुलना करके किसी एक सिद्धि तक पहुँच जाता है। इस दृष्टि से व्यक्ति की स्वचेतना सामाजिक चेतना का एक रूप भी मानी जा सकती है। मानव-समाज की स्थिति के विषय में हमारा विश्वास प्रकृति को समझने के पूर्व का है। इसका अर्थ यह नहीं है कि मानव को प्रकृति के सम्पर्क में आने के पूर्व सामाजिकता का बोध था। प्रकृति का सम्पर्क समाज के पूर्व का निश्चय ही है। परंतु जब मानव ने प्रकृति के विषय में अपनी कोई धारणा बनाई, उस समय उसमें सामाजिक प्रवृत्तियों का पूर्ण विकास हो चुका था। स्वचेतना के इस सामाजिक आधार पर प्रकृति दो प्रकार से मानी जा सकती है। प्रयोजन से हीन भौतिक-क्रम तथा सम्बंधों में उपस्थिति प्रकृति का वर्णनात्मक रूप तथा प्रयोजन से युक्त इच्छा-शक्ति के आधार पर उसका व्यञ्जनात्मक रूप प्रकृति में व्यञ्जना की यह भावना, प्रयोजन का यह स्वरूप, मानव समाज के व्यक्ति की अपनी इच्छा-शक्ति की अभिव्यक्ति में मिलता है। इस प्रकार जब मानव प्रकृति के भाव से सामाजिक सम्बंध स्थापित करता है, तब वह व्यञ्जनात्मक हो उठती है, और जब उसके रूप में सामाजिक प्रयोजन टूटता है, प्रकृति प्रयोजनात्मक रह जाती है।^{११}

१०. इसकी व्याख्या के लिए लेखक की पुस्तक 'प्रकृति और हिन्दी-काव्य' के प्रथम भाग का द्वितीय प्रकरण देखना चाहिए।

११. जेम्स वार्ड, नैचुरलिज़्म ऐण्ड एगनास्टिसिज़्म (प्र०, प्र०)।

§ ७—इस सीमा तक हम देख सके हैं कि प्रकृति की सचेतन स्थिति और मानव की स्वचेतन स्थिति में अनुरूपता के साथ क्रियात्मक सम्बंध भी है । यहाँ भारतीय 'सच्चिदानन्द' को भी इस प्रकार समझा जा सकता है । प्रकृति चेतना की विस्मृत (जड) स्थिति है, और ब्रह्म पूर्ण चेतना की स्थिति है तथा मानव (जीव) इन दोनों के बीच की स्थिति में है । वह अपनी स्वचेतना से एक ओर प्रकृति को सचेतनशील करता है, दूसरी ओर स्वचेतना को पूर्ण चेतना की ओर प्रेरित करके आनन्द का सम प्राप्त करता है । परंतु हम यह कह चुके हैं कि प्रकृति को अपना स्वचेतना से सचेतन करने के साथ ही मानव प्रकृति चेतना से अनुरूपता ग्रहण करता हुआ स्वचेता भी हुआ है । इस प्रकार साधारण प्रत्यक्ष-ज्ञान के धरातल पर हमारे पास दो जगत् हैं, एक अन्तर्जगत् और दूसरा बहिर्जगत् । ये दोनों एक दूसरे की अनुरूपता का सन्तुलन करते हुए क्रियाशील होते हैं ; मानव की चिकीर्षा मानसिक व्यापारों की प्रेरक-शक्ति के रूप में इनके आधार में है । अन्तर्जगत् मानों बहिर्मुख होकर विस्तृत हो उठता है, और बहिर्जगत् मानों अन्तर्जगत् में एकाग्र हो जाता है । परंतु हम अपनी दृष्टि से प्रकृति को देखते हैं, उसके प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव में हमारी इच्छा-शक्ति की प्रेरणा रहती है । इस कारण प्रकृति पर मन की क्रियाशीलता हमारी क्रिया का रूप बन जाती है । अन्तर्जगत् जब बहिर्जगत् पर क्रियाशील होता है, हमको वस्तु-ज्ञान होता है; और जब बहिर्जगत् का प्रभाव अन्तर्जगत् ग्रहण करता है, उस समय हमको वस्तु की अनुभूति होती है ।^{१२} इस प्रकार मानव की चेतना पर जब प्रकृति की चेतना का प्रभाव पड़ता है, वह अनुभूति के सहारे 'स्व' की ओर गतिशील होता है । और जब मानव

१२. लेखक के 'नाटक का विकास' नामक लेख में विस्तृत व्याख्या की गई है (पारिजात, जून १९४७) ।

चेतना प्रकृति-चेतना के सम्पर्क में आती है, उस समय प्रकृति का प्रत्यक्ष-बोध होता है। वास्तव में प्रकृति का यह वस्तु-ज्ञान और वस्तु-अनुभूति उसके रूप और भाव पदों की स्वीकृति मात्र हैं जो मानस और प्रकृति के अनुकरणात्मक प्रतिबिम्ब भाव के परिणाम हैं।

क—इन अनुकरणात्मक स्थितियों को ज्ञान और भाव कहा जा सकता है। किसी दृश्य को देखने की एकाग्रता के साथ व्यक्ति की मनःस्थिति में चिकोर्षा निश्चित है और इससे उसके ज्ञान और भाव मन में दो प्रक्रियाओं का विकास सम्भव और स्वाभाविक है। रूप आकार आदि के सहारे वह उससे परिचित होता है और उसके जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। यह उसका दृश्य के सम्बन्ध में ज्ञान-पद है। परंतु साथ ही इन्द्रिय सम्पर्क से उसको उस दृश्य की अनुभूति प्राप्त होती है, और यह अनुभूति-पद है। इन दोनों को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता, ये मानसिक स्थितियों के रूप में एक दूसरे के आश्रित और सम्बंधित हैं। प्रकृति अनुकरण के सम्बेदानात्मक भाव-पद में प्रारम्भ से पीड़ा और तोष की वेदना भी सन्निहित रही है। और आगे के विवेचन में हम देखेंगे कि यह पीड़ा और तोष की वेदना का स्थान कलाओं के विकास में महत्वपूर्ण है। इनका सम्बन्ध मानव के नाद तथा शारीरिक संचलन से सीधा रहा है, परंतु प्रकृति के रंग-रूप, प्रकाश तथा गंध स्पर्श आदि का सम्बेदानात्मक प्रभाव मन पर पड़ता है। नृत्य, संगीत, वास्तु तथा चित्र-कला आदि के मूल में इसको खोजा जा सकता है।^{१३}

§ ८ वस्तु के ज्ञान और भाव पदों के साथ पीड़ा और तोष की वेदना सन्निहित है, और वह हमारे प्रत्यक्ष-बोध की सबल प्रेरक शक्ति रही है। जीवन की संरक्षक सहज-वृत्ति इसी के माध्यम से अपना मार्ग प्रशस्त करती है। श्रवण-बोध के प्रत्यक्ष से कल्पना

१३. लेखक की पुस्तक 'प्रकृति और काव्य' का द्वितीय प्रकरण, अनु० १२-१६ तक दृष्टव्य।

ध्वनि-नाद मे क्रमिक लय-ताल के साथ गम्भीर एकाग्रता से उत्पन्न तोषानुभूति रहती है। इसी प्रकार दृश्य में रूग्, रंग, प्रकाश आदि के साथ एकाग्र-गम्भीरता से उत्पन्न तोष की वेदना होती है। आज कला और काव्य से इनका सम्बंध नहीं जान पड़ता, परंतु इनके विकास के मूल मे वे अवश्य रहे हैं। मानसिक चेतना के विकास मे प्रत्यक्ष-बोध के बाद स्मृति और संयोग के आधार पर पर-प्रत्यक्ष का स्तर आता है। यह एक प्रकार से प्रत्यक्ष-बोध का अनुकरणात्मक दृश्य-जगत् है। इसमे भी सामाजिक विकास के साथ प्रकृति सम्बन्धी भाव-रूप का भेद रक्षित है। सामाजिक प्रयोजन के प्रधान होने से वे परप्रत्यक्ष विचारात्मक होते हैं और प्रकृति की व्यञ्जना की प्रधानता से वर्णनात्मक। कला और काव्य मे इन भाव-रूप परप्रत्यक्षों का अधिक महत्व है। प्रकृति के वर्णनात्मक प्रतिबिम्ब को उसके भावात्मक अनुकरण के साथ चित्रित करने के लिए केवल परप्रत्यक्ष यथेष्ट नहीं है, उसमें कल्पना का स्वतन्त्र योग आवश्यक है। परप्रत्यक्ष मे न तो प्रत्यक्ष की पूर्णता होती है और न भावात्मक प्रभावशीलता की उतनी शक्ति ही। स्मृति से कल्पना अधिक उन्मुक्त है, उसमे हम अपने अनुरूप रूप-रंग भर लेते हैं और छायातप प्रदान कर लेते हैं। इसी कारण कल्पना का रूप प्रत्यक्ष की भावना से अधिक निकट है।^{१४}

मानवीय भावों का विकास

पिछले अनुच्छेद मे मानसिक चेतना के बोधात्मक विकास पर विचार किया गया है। यह कहा गया है कि मानसिक स्थिति को बोध, संवेदना तथा चिकीर्षा की अलग-अलग स्थितियों मे नहीं बाँटा जा सकता।^{१५} इसलिए मानवीय भावों के विकास मे प्रकृति का संयोग

१४ वहा, वही, तृतीय प्रकरण।

१५. रिबोट, दि साइकोलॉजी ऑफ इमोशनस्, (इन्ट्रोडक्शन से पृ० १३)।

बहुत दूर तक रहा है। मानसिक धरातल पर राग या सम्बेदना हमारी चेतना का अंश है। यह सम्बेदना बोध के प्रत्यक्षा तथा चिकीर्षा के साथ मिलकर मानसिक जीवन की समस्त अभिव्यक्ति है।

§ ६ सम्बेदना का व्यापक अर्थ प्रकृति के रूप में अन्तर्हित भाव है जिसे यहाँ हम प्रभावशीलता कह सकते हैं। यह विश्व-सर्जन की आन्तरिक प्रेरणा शक्ति है। सृष्टि का क्रिया-सम्बेदना की स्थापना संचलन कार्य है, पर यह प्रभाव कारण और परिणाम दोनों ही माना जा सकता है। चेतना के स्तर से पूर्व पिंड में दो प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। एक भौतिक-रासायनिक प्रवृत्ति जो आकर्षण के रूप में मानो जा सकती है और दूसरी पिंड की आंतरिक प्रवृत्ति जो उत्क्षेपण कही जा सकती है। ये दोनों हमारे भाव-जगत् के मौलिक आधार के दो सिरे हैं। शरीर-विकास में जीव के स्तर की रागात्मक सम्बेदना के मूल में जीवन और संरक्षण की सहज-वृत्तियाँ पाई जाती हैं। चेतना के मानसिक स्तर की सम्भावना के पूर्व ये सहजवृत्तियाँ शरीर से सम्बंधित हैं और सहज प्रेरणा के अनुरूप अपना कार्य करती हैं। मानव-शरीर भी इसी आन्तरिक एकता में स्थिर है और आन्तरिक वेदनाओं में क्रियाशील है। शरीर की यह आन्तरिक वेदना मानवीय चेतना से सम्बंधित होकर भी उसका भाग नहीं है। ये आन्तरिक वेदनाएँ जीवन की सहज-वृत्ति के रूप में, बिना किसी बाह्य कारण के, इन्द्रिय-वेदन के आधार न होने पर भी, भौतिक पीड़न और तोष का अनुभूति का स्रोत हैं। अन्तर्वेदनाओं से बाह्य-प्रकृति का सम्बंध इन्द्रिय वेदनाओं के माध्यम से है। इन्द्रिय-वेदन मानस की बहुत प्रारम्भिक स्थिति में विशुद्ध माने जा सकते हैं, नहीं तो वे प्रत्यक्ष का रूप ग्रहण कर लेते हैं।^{१६} तोष और पीड़न की जो सुख-दुःखात्मक अनुभूति इन्द्रिय-वेदनाओं से सम्बंधित है, वह प्रत्यक्ष-बोध से सम्बंध स्थापित कर लेती है और

आगे चलकर प्रप्रत्यक्षीकरण द्वारा विचार और कल्पना से भी सम्बंधित हो जाती है। यही सम्बेदना भावों के विकास में सौन्दर्य-बोध के मूल में है।

§ १०—मानसिक विकास में भावों की निश्चित रूप-रेखा सहजवृत्तियों के आधार पर बन सकी है। जीवन के साधारण अनुभव में हम देखते हैं कि पशु पक्षियों का जीवन इन सहजवृत्तियों भावों का विकास के आधार पर सरलता से चल रहा है, और जीवन की पूर्ण प्रक्रिया में मानव-जीवन के समानान्तर है। देखा जाता है जरा से खटके से चिड़िया उड़ जाती है, उनको आपस में लड़ते भी देखा जाता है। पशु-पक्षियों में अपने बच्चों के प्रति रक्षात्मक ममता की सहजवृत्ति होती है। पशुओं पक्षियों में सहचरण और कलात्मक सहजवृत्तियाँ भी पाई जाती हैं। परंतु जब मानवीय भावों का विकास इनके आधार पर होता है, उस समय जैसा पहले गया है इनमें बोध का अंश भी रहता है। और इस रूप में इनमें प्रकृति का योग देखा जा सकता है। प्रारम्भ में प्रकृति का अस्पष्ट बोध भय-भाव का कारण था, यद्यपि जीवन-यापन और संरक्षण के साथ यह सम्बंधित रहा है। प्रत्यक्ष-बोध के इस युग में मानव अपनी रक्षा के लिए अन्य जीवों से अधिक आकुल था। भय तथा कठिनाइयों को अतिक्रमण करने के साथ क्रोध-भाव का सम्बंध बाह्य प्रकृति के रूपों से सम्भव है। आश्चर्य तथा अद्भुत-भाव का विकास प्रकृति के आकार-प्रकार रंग-रूप के अस्पष्ट तथा सदिग्ध बोध के आधार पर हुआ है। सामाजिक तथा आत्म-भाव के विकास का सीधा सम्बंध प्रकृति से नहीं है, पर सहचरण और स्वानुभूति के अर्धन्तर का रूप प्रकृति के साथ मिल जुल गया है जो प्रकृति पर मानवीय आरोप के द्वारा व्यक्त होता है। मानव के कलात्मक भाव ने प्रकृति के अनुकरण से सौन्दर्य-भाव का विकास किया है।^{१७}

^{१७} लेखक की पुस्तक 'प्रकृति और हिन्दी-काव्य' का तृतीय प्रकरण दृष्टव्य है।

§ ११—आज मानवीय भावों की स्थिति विपम हो गई है। भय और क्रोध जैसे प्राथमिक भावों को हम उनके प्रारम्भिक रूप में नहीं पाते।

अनेक परिस्थितियों तथा अन्य भावों के सम्मिश्रण से इनमें अनेक रूपता तथा विषमता आ गई है। इन भावों की स्थिति माध्यमिक और अध्यन्तरित हो गई है।^{१८} साधारणतः इन भावों का सम्बन्ध प्रकृति से नहीं है। परन्तु भावों के उच्च-स्तर पर आचरणात्मक सत्त्वों से सम्बन्धित भाव, सौन्दर्य-भाव से प्रभावित हुए हैं। इस प्रकार प्रकृति की सौन्दर्य-भावना में आचरणात्मक भावों का आरोप किया जाता है। धार्मिक भाव माध्यमिक है और इसके आधार में जो भय, आश्चर्य आदि भाव रहे हैं उनका सम्बन्ध प्रकृति से सीधा भी था। प्रकृति-देवताओं का अस्तित्व भय के आधार पर माना जाता है। आश्चर्य-भाव के साथ इन देवताओं को प्रकृति के विभिन्न रूपों में प्रसरित देखा गया, क्योंकि इस युग में प्रत्यक्ष-बोध अधिक स्पष्ट होकर परप्रत्यक्ष और कल्पना में साकार हो रहे थे। अनन्तर प्रकृति की उपादेयता का अनुभव हो चुकने पर इन देवताओं में यह भाव भी सन्निहित हो गया। विकास के मार्ग में जैसे-जैसे सामाजिक तथा आत्म-भावों का संयोग होता गया, वैसे ही इनकी स्थापना प्रकृति के देवताओं के सम्बन्ध में हुई है। भावना के क्षेत्र में देवता को मानवीय आकार और भाव प्रदान किया गया। इस प्रकार धार्मिक भावना के विकास से प्रकृति के रूप और भाव दोनों का संयोग रहा है।

§ १२—धार्मिक भाव के समान ही सौन्दर्य-भाव एक सरल भाव नहीं है, इसका विकास मानवीय मानस के साथ हुआ है। सौन्दर्य-भाव के विकास की प्रत्येक स्थिति प्रकृति से सम्बन्धित रही है। मानव को प्रकृति के प्रत्यक्ष-बोधों में सुख-दुःख की

१८. डब्लो जेम्स, दि प्रिन्सिपल्स ऑफ साइकोलजी, एमोशनस् से।

सम्बेदना प्राप्त हुई। उसने प्रकृति का क्रीडात्मक अनुकरण किया। उसने कलात्मक निर्माण के लिए प्रकृति से सीखा है। उसके यौन-संबंधी रागात्मक भाव के लिए प्रकृति के रंग-रूप आदि प्रेरक रहे हैं। और इन सब भावों का संयोग सौन्दर्य-भाव के विकास में हुआ है। इनके अतिरिक्त अन्य सामाजिक तथा आत्म-सम्बन्धी भावों का योग इसमें है। इस विकास में प्रत्यक्षों से लेकर कल्पना तक का पूरा विस्तार पाया जाता है।

अध्यन्तरित भावों के लिए समाज को एक निश्चित स्थिति आवश्यक है। साथ ही मानसिक विकास का उच्च-स्तर भी वाञ्छनीय है। विशेष स्थिति में उद्देश्य को लक्ष्य करके भविष्योन्मुखी भावों की प्रेरणा जागरित होती है। कदाचित् इसीलिए इन भावों में अधिकांश काव्य में संचारी-भावों के रूप में स्वीकृत है। आशा, निराशा, चिन्ता आदि ऐसे ही भाव हैं। इनके विपरीत अतीत के विषय में उद्देश्य के प्रति भावों की स्थिति जागृत होती है। इन भावों में पश्चाताप, अनुताप आदि हैं। इन भावों का प्रकृति से सीधा सम्बन्ध न होकर भी अन्व भावों के साथ संयोग हो जाता है, प्रकृति का सम्पर्क किसी की स्मृति जगा कर चिन्तित कर सकता है। इसके अतिरिक्त इन भावों की मनःस्थिति में हमारे मन में प्रकृति के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है।^{१९}

प्रकृति में सौन्दर्यानुभूति

§ १३—पिछले अनुच्छेदों में सौन्दर्य-भाव की विषमता के विषय में संकेत किया गया है। हम देख चुके हैं कि इसके विकास में प्रत्यक्ष, कल्पना तथा भावों की प्रतिक्रिया की एक विषम सौन्दर्य का प्रश्न मानसिक स्थिति रही है। साथ ही प्रकृति ने इसके विकास में कितना योग दिया है, इसका भी उल्लेख किया गया है।

१९. लेखक की पुस्तक 'प्रकृति और हिन्दी-काव्य' का-तृतीय प्रकरण
अनु० १४-१६।

अब निश्चित करना है कि प्रकृति को सौन्दर्य-रूप में हम किस प्रकार देखते हैं; आज प्रकृति-सौन्दर्य की रूप-रेखा मानव के मानस में किस प्रकार की है। परन्तु सौन्दर्य जो कला और काव्य की अभिव्यक्ति का विषय है, केवल भाव के रूप में नहीं माना जा सकता। वह तो जैसा हम काव्य की विवेचना के अवसर पर देखेंगे अनुभूति के साथ अभिव्यक्ति और प्रभावशीलता (रसात्मकता) का भी विषय है। इस कारण प्रकृति-सौन्दर्य की रूप-रेखा प्रस्तुत करने के पूर्व विभिन्न सौन्दर्यानुभूति सम्बंधी सिद्धान्तों पर विचार कर लेना उचित है, और देखना है कि उनमें प्रकृति को किस दृष्टिबिन्दु से ग्रहण किया गया है। जैसे प्रकृति में हम रूप और भाव दोनों को स्वीकार कर चले हैं, उसी प्रकार प्रकृति के सौन्दर्य में रूप और भाव दोनों को स्वीकार करना पड़ता है।

§ १४—इन दोनों को आधार मान कर विद्वानों ने सौन्दर्य की व्याख्या वस्तु-परक और मनस्-परक दो पक्षों में की है। इनमें कुछ सौन्दर्य-शास्त्री विषय के मनस्-परक पक्ष को प्रमुखता देते हैं। इस पक्ष को स्वीकार करनेवाले विद्वानों में भी किसी ने स्वानुभूति पर अधिक बल दिया है और किसी ने अभिव्यक्ति का आश्रय लिया है। और किसी ने प्रभावशीलता का रसात्मक आधार प्रस्तुत किया है। क्रोशे अभिव्यक्तिवादी हैं, परन्तु उन्होंने स्वानुभूति को अभिव्यक्ति की पूर्ण स्थिति के रूप में स्वीकार किया है। ई० एफ० कैरियट इसी प्रकार ममस्त भावाभिव्यक्तियों को बिना किसी अपवाद के सौन्दर्य मानते हैं।^{२०} स्वानुभूति से सम्बंधित सुखानुभूति का मत है। इसके मूल में शरीर-शास्त्री सौन्दर्य के आचार्यों द्वारा प्रतिपादित समानुपात से स्नायु प्रेरणा के साथ सुखात्मक प्रभाव-

२०. क्रोशे, एस्टिथेटिक्स और ई० एफ० कैरियट; थियूरी ऑव ब्यूटि (पृ० २९६)

शीलता है। इस विचार धारा मे सम्बंधित मतो मे कला और सौन्दर्य सम्बंधी प्रवृत्तियो का नग्न रूप सामने आता है। एच० आर० मार्शल ने इसी शरीर-विज्ञान के आधार पर मानस-शास्त्रीय दृष्टि को अधिक व्यापक रूप-प्रदान किया है। इनके मत मे सुखानुभूति को इन्द्रिय-वेदन से प्रत्यक्ष-बोध के आधार पर उच्च मानसिक स्थिति से सम्बंधित माना गया है। यह अनुभूति सुख-दुःख की सम-स्थिति पर इन्द्रिय सम्वेदनाओ की प्रभावात्मक सुखमय प्रतिक्रिया का कलात्मक आनन्द रूप है।^{२१} इसी आधार पर सी० सन्दायन अपने सिद्धान्त के लिए मानसिक उच्च-स्तर स्वीकार करते है। ये अभिव्यक्ति सौन्दर्य के लिए वस्तु-रूप प्रकृति की सम्वेदनात्मक शक्ति के साथ प्रत्यक्षो का क्रमिक सामञ्जस्यपूर्ण सम्बन्ध तथा अन्य पिछले अनुभवों का संयोग आवश्यक मानते है।^{२२} अभिव्यक्ति से सम्बंधित क्रीडात्मक अनुकरण का सिद्धान्त है। कार्ल ग्रस ने इस क्रीडात्मक अनुकरण को कलात्मक अभिव्यक्ति की निकटता मे एक रूप माना है, केवल कलात्मक अभिव्यक्ति का सम्बन्ध वे ज्ञान-इन्द्रियों से स्वीकार करते है।^{२३} स्पेन्सर अभिव्यक्ति सौन्दर्य के इस निर्भरानन्द को कला-सौन्दर्य के साथ संचित शक्ति-प्रवाह के रूप मे प्रत्यक्ष बोध तथा परप्रत्यक्षो मे सम्बंधित करते है। कात की कल्पनात्मक 'स्वतंत्र-क्रीडा' मे स्वानुभूति तथा बोध का समन्वय है। इसमे सौन्दर्य की अभिव्यक्ति क्रीडात्मक अनुकरण से अधिक मानसिक सत्य के रूप मे स्वीकृत है। परंतु इन मतों की व्याख्या मे भाव के साथ रूप की स्वीकृति भी है।

§ १५—जिस प्रकार अभिव्यक्ति और अनुभूति आदि से सम्बंधित सौन्दर्य की व्याख्याओ मे विषयि के साथ विषय (वस्तु) सम्बंधित है,

२१. एच० आर० मार्शल, एस्थेटिक प्रिन्सिपल, 'ब्यूटीफुल' प्रकरण से।

२२. सी० सन्दायन, दि सेंस ऑव ब्यूटी।

२३. दि प्ले ऑव मैन, एस्थेटिक स्टैन्ड प्वाइन्ट से।

उसी प्रकार विषय (वस्तु-रूप) पर बल देनेवाले मिद्धान्तो मे विषयि
 वस्तु-परक (मनस्-भाव) की स्वीकृति है। प्रतिभाम सिद्धान्त
 के अनुसार वस्तु तत्त्वतः तो सुन्दर नहीं है, पन्तु
 उसके प्रतिभासित सौन्दर्य के लिए वस्तु-रूप आवश्यक है। वस्तु का
 सौन्दर्य प्रतिभामित है और उसमे विशेष गुणो की स्थिति उसका आधार
 है। वस्तु के इन गुणो मे मानवीय मानस प्रसागित रहता हे और इस
 प्रकार वस्तु-रूप के साथ भाव का समन्वय हो जाता है। छाया-प्रसार
 मे चेतन-भाव के अधिक व्यापक प्रसार और विकाम के साथ सौन्दर्य
 सम्बन्धी अन्तः सहानुभूति का मिद्धान्त सामने आता है। इसके आधार
 में सर्वचेतनवादी दृष्टिभिन्दु है। समस्त वनस्पति का दृश्यात्मक सौन्दर्य
 मानव की विकसित चेतना की अन्तः सहानुभूति है। :मा से आगे चल
 कर स्वच्छन्दवादी सौन्दर्य-सिद्धान्त विकसित हुआ है। इसी सहानुभूति से
 सम्बधित सहचरण भावना के साथ यौन-भाव भी आ जाता है।^४ इस
 प्रकार समस्त सौन्दर्य की व्याख्याओ मे वस्तु-रूप प्रकृति और मनस्-
 रूप मानस को स्वीकार किया गया है।

§ १६—इन पक्षो को स्वीकार कर लेने पर भी हम प्रकृति में
 सौन्दर्य की कल्पना मानस से स्वतत्र नहीं कर सकते। प्रकृति की
 दृष्टिकोण विशेष सौन्दर्य-भावना मनस्-परक है और हमारी कलात्मक
 दृष्टि से सम्बधित है। क्रोशे के अनुसार प्रकृति का
 सौन्दर्य कलाकार की दृष्टि मे आता है।... प्रकृति कला की समता में
 मूर्ख और जब तक मानव उसे वाणी नहीं देता, मूक है।^{२५} इसी
 प्रकार एस० अलोकबेडर के मत से प्रकृति तभी सुन्दर लगती है जब हम
 उसे कलाकार की दृष्टि से देखते हैं और एक सीमा तक हम सभी कला-

२४. इन मतों की व्याख्या 'दि क्रिटिकल हिस्ट्री आव माडर्न पस्थिटिक्स्'
 में है।

२५. 'पस्थिटिक्' पृ० ९९ तथा 'सेन्स ऑव पस्थिटिक्' पृ० ८९।

कार हैं। हममें छिपा हुआ कलाकार प्रकृति को सौन्दर्य-दान देता है।^{२६} प्रकृति का सारा विस्तार सौन्दर्य-रूप में नहीं रहता है, उसके प्रत्येक दृश्य को सौन्दर्य की रूप-रेखा में बाँधने के लिए चयन करना पड़ता है। हमारा मन चयन करके विभिन्न संयोगों से सौन्दर्य का चित्र पूरा करता है, जैसे कलाकार अपने रंगों के संयोग द्वारा सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करता है।^{२७} साधारण व्यक्ति और कलाकार में प्रकृति की सौन्दर्यानुभूति के विषय में केवल मात्रा का भेद है। दोनों ही अपने लिए सौन्दर्य का सर्जन करते हैं, केवल कलाकार में व्यापक और प्रत्यक्ष ग्रहण करने की प्रवृत्ति होती है, जिससे उसे अभिव्यक्ति की प्रेरणा मिलती है। इसके अतिरिक्त साधारण व्यक्ति के प्रकृति-सौन्दर्य के आकर्षण में इस प्रकार के इन्द्रिय सम्बेदना और प्रत्यक्ष-बोध के विभिन्न मानसिक स्तर हो सकते हैं। परन्तु इसको सौन्दर्यानुभूति की समष्टि या समवाय नहीं माना जा सकता। ई० एम० बर्टलेट के मतानुसार 'प्रत्येक व्यक्ति प्रकृति को सुन्दर कलाकार के समान नहीं बना देता, जैसा कलाकार कला को बनाता है। साधारण व्यक्ति तो प्रकृति को सुन्दर और असुन्दर दोनों प्रकार से देख सकता है।'^{२८} इससे यह स्पष्ट है कि प्रकृति सौन्दर्य के लिए कल्पनात्मक मानसिक स्तर होना चाहिए। साधारण-जन अपनी मानसिक स्थिति की विकास सीमा तक प्रकृति सौन्दर्य का अनुभव कर सकता है। साधारण स्थिति में व्यक्ति किसी वस्तु के प्रत्यक्ष की सम्बेदना प्राप्त करता है जो सुखकर हो सकती है। परन्तु वही व्यक्ति जब वस्तु के सौन्दर्य की ओर आकर्षित होता है, तब वह वस्तु के वास्तविक प्रत्यक्ष-अर्थ से अधिक महत्वपूर्ण अर्थ में वस्तु का कल्पनात्मक बोध प्राप्त करता है। और इस स्थिति विशेष से

२६. ब्यूटी ऐन्ड अदर फार्मस, द्वि० प्र०, पृ० ३०।

२७. सन्टायन, दि सेन्स ऑव ब्यूटी, पृ० १३३।

२८. टाइप्स ऑव एस्थेटिक जजमेंट, नेचुरल ब्यूटी, पृ० २२८।

कलात्मक आनन्द सम्बन्धित है ।

§ १७—कहा गया है कि प्रकृति सौन्दर्य्य हमारी कलात्मक दृष्टि का फल है और कुछ अंशों में हम सभी में कलाकार की प्रवृत्ति रहती है । इस प्रकार प्रकृति सौन्दर्य्य के विषय में हमारी प्रकृति में सौन्दर्य्य भावज्ञता (प्रकृति का भाव पक्ष) प्रधान लगती है; परन्तु उसके रूप-पक्ष की उपेक्षा नहीं की जा सकती । प्रकृति का रूप उसके सौन्दर्य्य का आधार है, यद्यपि रूप के लिए मानवीय मानस की स्वीकृति आवश्यक है । फिर भी इस रूप में प्रकृति का अपना योग मान्य है । इस रूप के आधार पर भाव क्रियाशील होता है और सचयन द्वारा सौन्दर्य्य की स्थापना करता है । इस प्रकार प्रकृति की सौन्दर्य्यानुभूति में भाव और रूप की विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें यह कहना असम्भव हो जाता है कि प्रधान कौन है । वस्तुतः भाव और रूप का यह वैचित्र्य ही सौन्दर्य्य है ।

क—प्रकृति सौन्दर्य्य के भाव-पक्ष में एक प्रभावशाली भावना है जो समष्टि रूप से इन्द्रियो के विभिन्न गुणों की सम्वेदनात्मकता पर आधारित है और रूप-पक्ष में वस्तुओं के गुणों पर निर्भर है ।

भावात्मक मनम्-
पक्ष यह सुखानुभूति इन्द्रिय वेदनाओं में प्रत्यक्ष-बोध और कल्पना के रूपों की सम्वेदना से सम्बन्धित है । परन्तु सौन्दर्य्य में इनका योग निरति की निरपेक्ष भाव-स्थिति पर सम्भव है । सौन्दर्य्य का दूसरा भावात्मक रूप सहचरण की सहानुभूति में स्वीकार किया जा सकता है । प्रकृति अपने क्रिया-व्यापारों में मानव जीवन के अनुरूप जान पड़ती है, साथ ही प्रकृति मानवीय चेतना और भावों से युक्त होकर भी उपस्थित होती है । मानवीय संस्कृति के इस युग में प्रकृति के प्रति साहचर्य्य की यह भावना उसके सौन्दर्य्य की प्रबल आकर्षण शक्ति है और प्रकृति के प्रति मानव की स्वच्छन्द प्रकृति का रूप इसमें सन्निहित है । हमारी चेतना तथा हमारे प्रायों से सचेतन और सप्राण प्रकृति हमारी भावनाओं में निमग्न होकर सुन्दर लगती है । यह मानसिक

अनुकरण का प्रकृति पर प्रतिबिम्ब-भाव है जो हमको स्वयं सुन्दर लंगने लगता है। परन्तु जब व्यजनात्मक दृष्टि से यह प्रतिबिम्ब-भाव अधिक व्यक्त तथा स्पष्ट हो जाता है, तब प्रकृति का सौन्दर्य अधिक आकर्षक हो जाता है। यह सौन्दर्यानुभूति सम्बेदनशील व्यक्ति को ही हो सकती है। वह प्रकृति सौन्दर्य में अपनी व्यंजना शक्ति द्वारा उन अभिव्यक्तियों के प्रतिबिम्ब देखने में समर्थ होता है, जो साधारण व्यक्ति के लिए असम्भव है।^{२९}

✓ ख—भाव के बिना रूप कुछ नहीं है, इसी प्रकार रूप के आधार बिना भाव-स्थिर नहीं हो सकता। इन दोनों पक्षों की व्याख्या अलग-रूपात्मक वस्तु-पक्ष अलग करने का एकमात्र उद्देश्य विषय को अधिक बोध-गम्य बनाना है। प्रकृति अनेक रूप-रंगों में हमारे सामने उपस्थित होती है—उसमें आकारों की सहस्र-सहस्र रूपात्मकता सौन्दर्य और उसके कलात्मक प्रदर्शन में योग प्रदान करती है। ज्योमित के नाना आकार प्रकृति के रूप में बिखरे हुए हैं जो प्रकृति के सौन्दर्य के चित्रपट को सीमादान करते हैं। इस प्रकार रूप और आकार विभिन्न सामाग्रियों में प्रत्येक दृश्य को हमारी चेतना से सम-रूप में उपस्थित कर सौन्दर्य प्रदान करते हैं। साथ ही प्रकृति की गति और संचलन हमारे आत्म-प्रसार के लिए विशेष आधार हैं। उसमें असंख्य ध्वनियों के सूक्ष्म भेद व्याप्त हैं और गूँध-स्पर्श का योग उसके सौन्दर्य की समष्टि का अंश है। प्रकृति में आकार-प्रकार की व्यापक विभिन्नता है, उसमें रंगों के सूक्ष्म भेद और छायातप हैं और उसकी ध्वनियों में अनन्त स्वर-लय हैं। इनको पकड़ पाना कला के सुन्दर से सुन्दर रूप में बठिन है। परन्तु कला में जो चयन और प्रभावोत्पादक शक्ति है उसमें सौन्दर्य में सजीवता और मप्राणता की गम्भीर व्यंजना सन्निहित हो जाती है। यह

२९. काव्य में प्रकृति सौन्दर्य का यह रूप मानवाय चेतना, आकार तथा मधुक्तीडाओं के आरोप से सम्बन्धित है।

संचित और केन्द्रित प्रभाव प्रकृति के प्रसारित सौन्दर्य्य में नहीं होता, यद्यपि कलाकार अपना आदर्श उसमें ढूँढ़ सकता है क्योंकि प्रकृति के पास उसके चयन के लिए अपार भंडार है।^{३०}

§ १८—सौन्दर्य्य जिस विशिष्ट भाव स्थिति से सम्बंधित है, उसका विभाजन सम्भव नहीं है। परन्तु भावों की प्रमुखता की दृष्टि से कुछ रूपों का उल्लेख किया जा सकता है। स्वीकृत स्थायी-भावों प्रकृति सौन्दर्य्य के रूप में कुछ विशेष रूप से मानवीय जीवन में सम्बंधित हैं। इसी प्रकार प्रकृति सौन्दर्य्य के क्षेत्र में कुछ भाव दूसरे भावों में लीन हो जाते हैं। प्रकृति के सम्बन्धनात्मक सौन्दर्य्य में विरोधी भावों के रूप में जुगुप्सा का भाव सम्मिलित है। प्रकृति की महत् भावना में भय तथा विस्मय के भाव मिल जाते हैं। इसी प्रकार प्रकृति की साहचर्य्य भावना में अभ्य भावों का आरोप हो जाता है। मानवीय चरित्र तथा धर्म सम्बंधी मूल्यों का समवाय प्रकृति में प्रतिबिम्ब रूप में हो सकता है। इस प्रकार प्रकृति-सौन्दर्य्य का विचार तीन प्रमुख रूपों में किया जा सकता है।

क—महत् की सौन्दर्य्य-भावना प्रकृति की अनन्त शक्ति, विशाल आकार तथा व्यापक विस्तार से सम्बंधित है। इसमें मूलतः भय और विस्मय का भाव सन्निहित है। इस प्रकार महत् रूप से भयकरता तथा उर्दीड़न सम्बंधित अवश्य है, परन्तु सौन्दर्य्य के स्तर पर महत् में इनका योग न मानकर इन्हे उसके मूल में स्वीकार किया जा सकता है। इस सौन्दर्य्यानुभूति में व्यापक प्रभाव है जो वस्तु की आकाश स्थिति, शक्ति-संचलन तथा अन्य गुणों से सम्बंधित है। महानता की सौन्दर्य्य-भावना विशालता के कल्पनात्मक परप्रत्यक्ष से प्रभावित होती है। इसमें सहानुभूति की चेतन अनुभूति भी

३०. प्रकृति-चित्रण के अन्तर्गत इस सचयन का अध्ययन करना सरल है।

मिल जाती है। इसी कल्पनात्मक महानुभूति से हम वस्तु की विशालता सम्बन्धी मानसिक महानता की तदाकारता स्थापित करते हैं।

ख—प्रकृति सौन्दर्य के अन्य रूप को हम सम्वेदनात्मक मान सकते हैं। इस सम्वेदनात्मक मानसिक स्थिति में प्रगाढ की भावना है। इसके

सम्वेदक मूल में इन्द्रिय-वेदना की सुखात्मक अनुभूति अवश्य है और प्रकृति के माध्यमिक गुण इसके आधार में

हैं। प्रकृति का यह दृश्यात्मक सौन्दर्य इन्द्रियों को मादकता के समान प्रभावित करता है। वस्तुतः इन सब रूपों को अलग-अलग विभाजित नहीं किया जा सकता है। इस भाव-रूप में महत् का रूप सन्निहित हो सकता है, और साहचर्य-भाव का योग भी होता है।

ग—प्रकृति सौन्दर्य में सबसे अधिक व्यापक सचेतन सौन्दर्य है। इसमें हमारी चेतना का सम है, साथ ही साहचर्य-भावना की विकासो-

न्मुखी प्रवृत्तियों का योग है। आदि का प्रकृति पर नचेतन मानवीय आकार तथा चेतना का आरोप सौन्दर्य रूप

तो नहीं था, पर इसके लिए उसने आधार प्रस्तुत किया है। विकास के साथ आत्म-तदाकारता की भावना, सामाजिक स्तर पर साहचर्य सम्बन्धी विभिन्न भावनाओं से मिलती गई, प्रकृति पर उनका आरोप उसी प्रकार विषम मनःस्थिति में हुआ है। इस स्तर पर प्रकृति-सौन्दर्य का कोई भी रूप इस भावना से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका है।^{३९}

काव्य में प्रकृति सौन्दर्य

§ १६—पिछले अनुच्छेदों में प्रकृति सौन्दर्य की व्याख्या की गई है। साथ ही इस बात का भी संकेत किया गया है कि इसमें हमारे अपने काव्य सौन्दर्य है मनःस्थिति की प्रधानता है। काव्य का सम्बंध मानव मन से एकात रूप से है। इस कारण अब यह विचार

३९ प्रकृति और हिन्दी-काव्य, प्र० भाग, चतु० प्रकरण में इसका विस्तार है।

करना है कि प्रकृति सौन्दर्य की मनःस्थिति को कवि अपने काव्य की मानसिक स्थिति में किस प्रकार ग्रहण करता है। काव्य को व्याख्या सौन्दर्य के रूप में ही पूर्ण है, और काव्यगत सौन्दर्य अनुभूति, अभिव्यक्ति तथा रसानुभूति के तीन स्तरों से सम्बन्धित है। कवि या कलाकार जिस प्रकार अपनी कल्पना से प्रकृति सौन्दर्य को विशेष रूप से ग्रहण करता है, उसी प्रकार वह उसको अपनी काव्यानुभूति के रूप में परिवर्तित कर सकता है और अभिव्यक्ति द्वारा रसानुभूति का विषय बना सकता है। पहले हम सौन्दर्य की विवेचना भावों के विकास तथा प्रकृति के सम्बन्ध में कर चुके हैं। यही सौन्दर्य कौशल की निर्भर साधना में कला को जन्म देता है और कला जब सौन्दर्य के उपकरणों से सम उपस्थित कर लेती है वह काव्य सौन्दर्य हो जाता है। साधारण कलाओं में सौन्दर्य की व्यंजना में प्रकृति के उपकरणों का सहयोग रहता है। उपकरणों के प्राकृतिक गुण स्वयं भावाभिव्यक्ति में सहायक होते हैं। परन्तु काव्य में व्यंजना का सबसे अधिक महत्त्व है। अन्य कलाओं में रूपात्मक सौन्दर्य का आदर्श रहता है; संगीत में भाव और उपकरणों का सम सौन्दर्य है। परन्तु काव्य में अभिव्यक्ति मात्र को ध्वनि के व्यंग्य का आश्रय लेना पड़ता है। यह ध्वनि जब सौन्दर्य की व्यंजना करती है तभी काव्य है।^{३२}

क—पाश्चात्य काव्य-शास्त्रियों ने अनुभूति को काव्य सौन्दर्य में अधिक महत्त्व दिया है। काव्य के सम्बन्ध में कवि के मानसिक पक्ष के दो प्रमुख रूप हमारे सामने आते हैं। विषय रूप काव्यानुभूति वस्तु-जगत् (प्रकृति) जिससे कवि प्रभाव ग्रहण करता है और दूसरा उसी का मानसिक पक्ष जो स्वतः प्रभाव-स्थिति है। किसी मनःस्थिति के लिए आलम्बन रूप वस्तु-विषय (प्रकृति) आवश्यक है।

३२. पंडितराज जगन्नाथ, रसगगाधर, पृ० ४—'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' और भासह, काव्यालंकार—'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' में यह भाव है।

परन्तु यह विषय केवल भौतिक प्रत्यक्ष-बोध तक सीमित नहीं है, इसका विस्तार कल्पनात्मक स्थितियों मे भी रहता है। इस विषय के दो रूप हैं। एक तो भौतिक स्वरूप में वस्तु या व्यक्ति, दूसरे मानसिक स्थिति में वस्तु का गुण या व्यक्ति का चरित्र। इन मानसिक स्थितियों को वस्तु या व्यक्ति से सम्बन्धित उच्च-मूल्याकन समझना चाहिए जो उनके रूप के साथ सम्मिलित कर लिए गए हैं। आचरण और गुणों का यह मूल्याकन भाव-स्थितियों से विकसित होकर भी ज्ञान के समीप है और सौन्दर्य की रूपमयता मे कवि की अनुभूति का विषय बनता है। इस प्रकार प्रकृति का राशि-राशि सौन्दर्य विभिन्न रूपों मे कवि की काव्यानुभूति में योग देता है—रूपात्मक सौन्दर्य के आलम्बन और पार्श्वभूमि के रूप मे और भावात्मक सौन्दर्य के समानान्तर और कभी उद्दीपन के रूप मे।

ख—वस्तुतः काव्य में अधिक व्यक्त स्थिति अभिव्यक्ति की है जो अनुभूति और रसात्मक सम्वेदना को समन्वय की स्थिति मे प्रस्तुत करती

है। कवि अपनी सौन्दर्यानुभूति को आन्तरिक प्रेरणा से व्यक्त करता है। काव्य की अभिव्यक्ति मे शब्द

भाव के रूपात्मक प्रतीक हैं। शब्द मे अर्थ सन्निहित है जो भाव-बिम्ब ग्रहण करने के पहले परप्रत्यक्ष के स्तर पर ध्वनि-बिम्ब ग्रहण करता है। काव्य मे शब्द के माध्यम से प्रकृति के रूप और भाव का समन्वय सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ग्रहण करता है। इस प्रकार ध्वनि-काव्य में प्रकृति व्यजनात्मक सौन्दर्य मे आती है, साथ ही आलंकारिक उपमान योजना मे प्रकृति-उपमानों का व्यापक विस्तार है।

ग—अभिव्यक्ति का प्रभाव काव्यानन्द है। अभिव्यक्ति का सौन्दर्य व्यजना की चमत्कार स्थिति में आनन्द है। इसी से अनुभूत सौन्दर्य का

तादात्म्य है। इस स्थिति मे प्रकृति सौन्दर्य क अनुभूति और अभिव्यक्ति काव्यानन्द का विषय बन

जाती है। भावज्ञ के मन की रसानुभूति अपने मन के स्थित भाव-संयोगो के आधार पर साधारणीकरण व्यापार द्वारा प्रकृति सौन्दर्य को

आलम्बन रूप में ग्रहण करती है और उद्दीपन रूप में भी। कभी कभी वह केवल आत्मतादात्म्य का रस प्राप्त करता है, परन्तु संस्कृत काव्य में व्यक्तिगत गीतियों के अभाव में इस प्रकार की रसान्मकता को स्थान नहीं मिल सका है। काव्य के क्षेत्र में आनन्द का आदर्श समान रूप से लागू नहीं है। इसके विभिन्न स्तर हैं, इस कारण सौन्दर्य का आधार भी बदलता रहता है।^{३३}

§ २०—प्रकृति में विशाल व्यापक सौन्दर्य है और काव्य सौन्दर्य का क्षेत्र है। काव्य प्रकृति के सौन्दर्य को ग्रहण भी करता है। इस

प्रकार हम देख चुके हैं कि प्रकृति और काव्य का सम्बंध प्रकृति का आलम्बन रूप सौन्दर्य के धरातल पर है। प्रकृति सौन्दर्य की अनुभूति के लिए कवि और कलाकार की दृष्टि चाहिए, ऐसा कहा गया है। यही सौन्दर्य कवि की अनुभूति के साथ अभिव्यक्ति का रूप ग्रहण करता है। अपने पूर्व अस्कारों में कवि प्रकृति के सामने अनुभूति-शील हो उठता है और अपनी कल्पना से इस सौन्दर्य को व्यञ्जित करता है। इस काव्य में प्रकृति आलम्बन होती है और कवि भावों का आश्रय। यह आलम्बन रूप विभिन्न प्रकार से उपस्थित होता है।

क—प्रकृति अनेक रंगों में बिखरी है, उसमें अनेक आकार-प्रकार के स्तर हैं, उसमें असंख्य ध्वनियों का आरोह-अवरोह है और अनन्त गति तथा चेतना का विस्तार है। इनको इन्द्रियाँ अनुभूति स्वरूप में ग्रहण कर इन्द्रिय-वेदना सम्बंधी सुखानुभूति प्राप्त करती हैं। परन्तु कल्पना की गम्भीरता उसे सौन्दर्य का ऊँचा धरातल प्रदान करता है और इससे प्राप्त आह्लाद सुख-सम्बेदना का ही प्रगाढ और व्यापक रूप है। इस आह्लाद की स्थिति में कवि प्रकृति की कल्पना के साथ प्रगाढ सुख की अनुभूति सम्मिलित कर देता है। यह

३३. विस्तार के लिए 'प्रकृति और हिन्दी काव्य' ; प्र० भा० , पचस प्रकार से को देखिए।

भावना जब एक सीमा तक प्रकृति के रूपात्मक आधार को छोड़ देती है, तब वह इन्द्रिय सुखानुभूति से अलग सौन्दर्य की आनन्दानुभूति मात्र में व्यक्त होती है। इसमें प्रकृति का आलम्बन परोक्ष और अनुभूति प्रत्यक्ष रहती है। प्रकृति के इस सौन्दर्य-साहचर्य में कवि अपनी सजगता और चेतना से उल्लासित हो उठता है। कभी-कभी कवि प्रकृति सौन्दर्य को अपने मानस में प्रतिघटित कर आत्मतल्लीन हो जाता है। इस स्थिति में कवि प्रकृति सौन्दर्य की चेतना को भुला देता है और उसके मन में निर्भर आनन्द अभिव्यक्ति की प्रेरणा ग्रहण करता है। आनन्द की यह आत्मतल्लीन स्थिति प्रकृति के सर्वचेतनशील आधार पर सम्भव है और साहचर्य-भाव सम्बंधी अनुभूति से सम्बाधित है।

ख—प्रकृति की अनुभूति के साथ कवि अपने मानवीय जीवन का प्रतिबिम्ब भी समान्वित करता है। इस अभिव्यक्ति में प्रकृति मानवीय जीवन के समानान्तर लगती है। इसमें प्रकृति मानसिक प्रतिबिम्ब के रूप में भावों का आलम्बन है। आश्रय की भाव-स्थिति का आरोप इसपर होता है; परन्तु इस स्थिति में भावों का भिन्न कोई आलम्बन नहीं होता है। जब आलम्बन दूसरा व्यक्ति होगा, उस समय प्रकृति इस रूप में आश्रय के भावों को उद्दीप्त करेगी। इस सीमा पर आलम्बन और उद्दीपन रूपों का यही भेद है। प्रकृति की गति और प्रवाह मानव चेतना के समानान्तर है। इन समानान्तर स्थितियों में कवि अपनी जीवन शक्ति का आरोप करता है। कवि अपनी अभिव्यक्ति में प्रकृति के गतिशील और प्रवाहित रूपों को सजीव और सप्राण कर देता है। काव्य में प्रकृति अपने आप में लीन और क्रियाशील चित्रित होती है, परन्तु यह मानवीय चेतना का प्रतिबिम्ब ही है। कवि प्रकृति के विभिन्न रूपों और व्यापारों में व्यापक चेतना के स्थान पर व्यक्तिगत जीवन का आरोप करता है। प्रकृति के क्रिया-कलापों में मानवीय जीवन-व्यापार की झलक व्यक्त होती है। इस आरोप में पशु-पत्नी के साथ वनस्पति जगत् भी आ जाता है। प्रकृति मानवीय क्रिया-

व्यापारों के साथ उसके भावों का प्रतिबिम्ब ग्रहण करती है। कवि अपनी कल्पना में विभिन्न भावों को प्रकृति पर प्रतिबिम्बित करता है और यह उसी के भावों का प्रसरण मात्र है। इसलिए भावमग्न प्रकृति आश्रय (कवि) के भावों को प्रतिबिम्बित करती हुई स्वयं आलम्बन है। प्रकृति सौन्दर्य के आलम्बन पर व्यापक सहानुभूति से जो भाव कवि के मन में उत्पन्न होते हैं, उन्हीं को वह प्रकृति पर प्रसरित कर देता है; और इस प्रकार साहचर्य-भावना से प्रकृति हमारे विभिन्न भावों का आलम्बन हो सकती है। परन्तु यही रूप पिछली मनःस्थिति के समानान्तर या वर्तमान किसी भिन्न भावस्थिति का आधार ग्रहण कर उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत आ जाता है।^{३४}

§ २१—काव्य का विस्तार मानवीय भावों में है जो मानवीय सम्बन्धों में स्थित हैं। पिछले प्रकृति-रूपों में कवि का व्यक्तित्व प्रधान था। परन्तु जब किसी स्थायी भाव का कोई अन्य प्रत्यक्ष प्रकृति का उद्दीपन-रूप आलम्बन होता है, उस समय प्रकृति उद्दीपन के अन्तर्गत विभिन्न रूपों में उपस्थित होती है। प्रकृति की उद्दीपन शक्ति उसके सौन्दर्य और साहचर्य के साथ परिस्थिति के संयोग पर भी निर्भर है। प्रबन्ध काव्यों में प्रकृति कथानक की परिस्थिति और घटना-स्थिति आदि के रूप में चित्रित होकर मनःस्थिति के उपयुक्त वातावरण उपस्थिति करती है।

क—हम देख चुके हैं किसी मनःस्थिति में मानव प्रकृति से सम स्थापित कर सकता है, साथ ही उससे भावात्मक प्रेरणा प्राप्त कर सकता है। अगर आश्रय में भाव की स्थिति अन्य प्रकृति को पाशवं-भूमि आलम्बन को लेकर होगी तो वह उस भाव को ग्रहण करती विदित होगी और इस सीमा पर वह विभिन्न

३४. इस प्रकार के प्रकृति-रूपों में आलम्बन और उद्दीपन का भेद भावों के आलम्बन की स्थिति पर निर्भर है। यदि कवि के मनोभावों का प्रसरण है तो आलम्बन और यदि कोई परोक्ष में दूसरा आलम्बन है तो उद्दीपन रूप माना जा सकता है।

रूपो में उद्दीपन का कार्य करती है। जब आश्रय के मन में भावों की स्थिति अदृश्य आलम्बन को लेकर होती है, उस समय प्रकृति उन भावों के समानान्तर लगती है। इस रूप में केवल भावों की रुकी हुई उमस का वर्णन होता है। इस रूप में प्रतिबिम्बित प्रकृति-रूप की चेतना सन्निहित है। इनमें भेद केवल इतना है कि उमस में सम्पूर्ण जीवन की व्यापक अभिव्यक्ति प्रकृति पर छायी रहती है और इस रूप में मनःस्थिति की भावना का संकेत भर मिलता है। यह उद्दीपन की प्रेरणा कभी अव्यक्त-भाव को ऊपर लाकर अधिक स्पष्ट रूप प्रदान करती है और कभी व्यक्त-भाव को अधिक तीव्र करती है। भाव-स्थिति का यह व्यापार साम्य तथा विरोध के आधार पर चलता है। इसके साथ भावों की अभिव्यक्ति से साम्य उपस्थित कर प्रकृति उद्दीपन के अन्तर्गत आती है। कभी भाव अप्रत्यक्ष आलम्बन के स्थान पर प्रत्यक्ष आधार लेकर व्यक्त होता है और कभी-कभी भावों की व्यंजना प्रकृति के आरोप के सहारे अधिक तीव्र होती है। इसी के अन्तर्गत प्रकृति से आलम्बन विषयक साहचर्य सम्बंध की स्थापना है।

ख—कथानक की साधारण परिस्थितियों तथा घटना-स्थितियों को चित्रित करने में कवि प्रकृति के उद्दीपन रूप का आश्रय लेता है। इस चित्रण में भाव-ग्रहण कराने की प्रेरणा सन्निहित भावों की पार्श्वभूमि रहती है। साधारण वस्तु-स्थिति का चित्रण वर्णन का सरल रूप है और आलम्बन-रूप ही माना जायगा। परन्तु जब इन वर्णनों में आगे होनेवाली घटना या भाव के संकेत सन्निहित हो जाते हैं, उस समय प्रकृति भावों को ग्रहण करनेवाले की मनःस्थिति को प्रभावित करती है। कभी प्रकृति-वर्णना में व्यंजना से कवि भावों की अभिव्यक्ति प्रकृति में करता है। यह भावात्मक वातावरण उन भावों के अस्पष्ट संकेत छिपाए रहता है जो सामाजिकों के हृदय में उदय होंगे। भावों की पार्श्व-भूमि में प्रकृति मानव-सहचरी के रूप में अपनी

सहानुभूति से भावो को प्रभावित करती है। और कभी प्रकृति विरोध उपस्थित कर भावों को उत्तेजित करती है।

§ २२—प्रकृति के आलम्बन-रूप में आनन्दानुभूति तथा आत्म-तल्लीनता का उल्लेख किया गया है। यह हमारी सर्वचेतन भावना का परिणाम है, जो साधारण रूप से प्रकृति में व्यापक रहस्य भावना है। इसमें अभिव्यक्ति की भाव-गम्भीरता के साथ रहस्यानुभूति का रूप जान पड़ता है। प्रकृतिवादी रहस्यवादी और प्रेमवादी रहस्यवादी प्रकृति को भिन्न दृष्टिबिन्दुओं से देखते हैं। प्रेमी साधक अपने प्रेम को व्यापक आधार देने के लिए प्रकृति की प्रसरित चेतना में और सौन्दर्य में अपने प्रेम के प्रतीक ढूँढता है, परन्तु आलम्बन मानकर अधिक दूर नहीं चलता। प्रकृतिवादी रहस्यवादी प्रकृति के सौन्दर्य से प्रेम के सत्य तक पहुँचता है। वह प्रकृति के सौन्दर्य में चरम-सौन्दर्य की अनुभूति प्राप्त करता है। जिस प्रकार हमारी चेतना प्रकृति में प्रसारित होकर सौन्दर्य तथा आनन्दमय हो जाती है, उसी प्रकार रहस्यवादी कवि उसके सौन्दर्य में अपने प्रेम के प्रसार की अभिव्यक्ति द्वारा आनन्द प्राप्त करता है।

§ २३—वर्णनात्मक व्यंजना का एक रूप अलंकार भी है। साम्य और विरोध के संयोग उपस्थित कर अधिकांश उपमा मूलक अलंकार एक प्रकार से रूप या भाव की व्यंजना करते हैं। उपमान-योजना और अलंकारों में रूप तथा भाव की व्यंजना के रूप में प्रकृति-उपमानों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति के नाना रूपों को उपमान रूप में ग्रहण कर कवि जिस प्रकार रूपाकार उपस्थित करता है उसी प्रकार विभिन्न स्थितियों की चित्रमयी योजना भी करता है। प्रकृति के प्रत्येक रूप और स्थिति में हमारे अन्तःकरण के सम पर एक भाव स्थिर हो गया है। इस कारण उपमानों की योजना से भावों की व्यंजना

होती है। इस प्रकार की व्यंजना दो प्रकार से हो सकती है। पहले रूप में प्रकृति उपमानों से भावों की व्यंजना और दूसरे रूप में भावों से प्रकृति रूपों की योजना की जाती है। इन दोनों के मूल में आधार एक ही है।^{३५}



३५. विशेष व्याख्या के लिए 'प्रकृति और हिन्दी-काव्य'; प्र० भा०, पंचम प्रकरण के अनु० १४-१७ तक देखिए।

द्वितीय प्रकरण

काव्यशास्त्र और प्रकृति

§ १—पिछले प्रकरण में निश्चित किया गया है कि मानवीय कल्पना के विकास में प्रकृति का सहयोग रहा है। और यह भी उल्लेख किया गया है कि कला और काव्य का आधार कल्पना काव्य-शास्त्र है, इस कारण प्रकृति से इनका सहज सम्बन्ध सम्भव है। प्रकृति के व्यापक विस्तार से जो सौन्दर्य मानव अपनी कल्पना में ग्रहण करता है, वह उसके काव्य में अपनी अभिव्यक्ति ढूँढता है। काव्य सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है जो अनुभूति का रूप ग्रहण करती है और सम्वेदना का प्रभाव छोड़ती है, और काव्य शास्त्र उस सौन्दर्य की व्याख्या है जो रूप और भाव का सन्तुलन ढूँढती है और आदर्शों की स्थापना करती है। काव्य-सौन्दर्य के अनुभूति पक्ष से प्रकृति का सीधा सम्बन्ध है; अभिव्यक्ति और सम्वेदन के सौन्दर्य-पक्षों में प्रकृति मानसिक आधार ग्रहण कर लेती है। इस सीमा पर प्रकृति का भाव-रूप सौन्दर्य-बोध का अंग बन जाता है। इसी कारण अनुभूति पक्ष पर बल देनेवाली काव्य-शास्त्र की विवेचनाओं में प्रकृति को महत्त्वपूर्ण स्थान मिल सका है। अन्य काव्य-शास्त्र की विवेचनाओं में प्रकृति-सम्बंधी दृष्टिबिन्दु गौण रूप

से हमारे सामने आता है। जैसा हम आगे देखेंगे भारतीय काव्य-शास्त्र की विवेचनाओं में कवि का अनुभूति-पक्ष स्पष्ट रूप में नहीं स्वीकार किया गया और इस कारण इनमें प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण का संकेत भर मिलता है। परंतु इन संकेतों का महत्त्व कम नहीं है, क्योंकि इनमें काव्य में प्रचलित प्रकृति-सम्बन्धी प्रवृत्तियों का रूप छिपा हुआ है। और फिर इन शास्त्रीय मान्यताओं से आगे का साहित्य पूरी तरह प्रभावित होता रहा है। इस कारण संस्कृत काव्य के विस्तार में प्रकृति के विभिन्न रूपों पर विचार करने के पूर्व, संस्कृत काव्य-शास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या में प्रकृति सम्बन्धी दृष्टि-बिन्दु पर विचार कर लेना आवश्यक है।

अनुभूति का पक्ष

§ २—काव्य-शास्त्र के आदर्शों के विषय में प्राच्य और पाश्चात्य का अग्रना-अग्रना दृष्टिकोण है। इन आदर्शों की भिन्नता के कारण उनके काव्य में प्रकृत-सम्बन्धी दृष्टि-बिन्दु भी भिन्न हैं। पहली भिन्न दृष्टिकोण बात जिसकी ओर ध्यान आकर्षित किया गया है, सादृश्य और अनुकरण वह है कि पश्चिम में काव्य की व्याख्या में अनुभूति पर भी काफी बल दिया गया है। और इस कारण काव्य-सौन्दर्य की व्याख्या में प्रकृति-सौन्दर्य का सीधा उल्लेख हुआ है। पर पूर्व में, भारत में जैसा हम आगे देखेंगे इस पक्ष की उपेक्षा हुई है, इस कारण काव्य सौन्दर्य का व्याख्याओं में प्रकृति को महत्त्व नहीं मिल सका। साथ ही भारतीय काव्य-शास्त्र ने सादृश्य का आदर्श स्थापित किया, जब कि योरप में अनुकरण का सिद्धान्त अधिक मान्य रहा है। भारतीय सादृश्य में प्रकृति का सौन्दर्य आत्मगत कल्पना के माध्यम से काव्य का विषय बन सका, जब कि योरप के काव्य में प्रकृति अपने यथार्थ रूप में अनुकरण का विषय रही है। प्लेटो ने अपनी काव्य-विवेचना में अनुकरणात्मक काव्य को स्वीकार किया है, पर उसे

हेय मानकर सापेक्ष्य काव्य के आदर्श की स्थापना करने का प्रयास किया है। परन्तु अरिस्टाटिल ने फिर काव्य और कला की व्याख्या 'अनुकरण' के रूप में स्वीकार की है। यह 'अनुकरण' साधारण अर्थ में प्रकृति के रूप-सादृश्य से सम्बंधित है, परन्तु काव्य और कला के क्षेत्र में इसका वास्तविक अर्थ 'मानसिक अनुकरण' है। आगे चलकर यही 'मानसिक अनुकरण' कवि की स्वानुभूति की अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। योरप के कला-सम्बंधी इस दृष्टि बिन्दु में, कवि और कलाकार की मनःस्थिति पर विशेष ध्यान दिया गया है, और काव्य के वस्तु-परक आधार पर कम। यद्यपि 'अनुकरण' के रूप में अरिस्टाटिल ने आत्मानुभूति को महत्त्व दिया था, परन्तु क्रोशे ने अपने अभिव्यंजनावाद में इसे अधिक विस्तार दिया है। योरप और इंगलैंड के स्वच्छन्दवादी-युग के आधार में काव्य के इसी सिद्धान्त की प्रमुख रूप से स्वीकृति रही है।^१ पाश्चात्य काव्य-सम्बंधी प्रमुख विचार-धाराओं पर इस सिद्धान्त का प्रभाव है, और इस कारण काव्य-शास्त्र की विवेचनाओं का आधार मनस्-परक रहा है। और साथ ही योरपीय काव्य का उन्मुक्त प्रकृतिवाद इसके अनुरूप है।

§ ३—परन्तु भारतीय आचार्यों ने काव्य को प्रारम्भ से 'शब्दार्थों काव्य' के रूप में माना है। संस्कृत के आदि आचार्यों की इन काव्य-व्यापक उपेक्षा संबंधी व्यापक सीमाओं को परवर्ती सभी आचार्यों ने माना है। आचार्य भामह का 'शब्द' और 'अर्थ' के समन्वय को काव्य मानने में महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। 'शब्द' के द्वारा भाषा के रूपात्मक (मानसिक) अनुकरण की ओर संकेत है, और साथ ही 'अर्थ' की व्यापक सीमाओं में अभिव्यक्ति का भाव सन्निहित है। लेकिन इस अभिव्यक्ति को वस्तु-रूप मानकर प्रथम आचार्यों ने 'शब्द

१ इंगलैंड में क्रोशे के सिद्धान्त का प्रणिपादन ई० एफ० केरट और आर० जी० कालिनसड ने किया है।

और अर्थ' दोनों को 'काव्य-शरीर' ही माना है।^२ इस प्रकार वे अपने दृष्टि-बिन्दु में स्पष्ट अवश्य हैं, क्योंकि उन्होंने 'काव्य-आत्मा' को स्वीकार किया है। परंतु संस्कृत साहित्य के आचार्यों का ध्यान अधिक से अधिक वस्तु-रूप काव्य-विषय की ओर रहा है। इसका एक बहुत ही स्पष्ट कारण है, भारतीय आचार्य काव्य को विश्लेषण का विषय बनाना चाहते थे। बाद में ध्वनिवादियों और रस-सिद्धान्तवादियों ने काव्य की अभिव्यक्ति में 'आत्मा' को भी स्थान देने का प्रयास किया है।^३ परंतु इनमें काव्य की उस सम्बेदक प्रभावशीलता की स्थापना है जो भावज्ञ पाठक के मन के सौन्दर्य-बोध का कारण है। इन सिद्धान्तों में कवि की मनःस्थिति अथवा काव्य के अनुभूति-पक्ष का स्पष्टतः समन्वय नहीं हुआ है। वैसे काव्य की किसी भी व्याख्या में उसके अन्य स्तरो का अन्तर्भाव रहता है।^४ काव्य कवि की किस प्रकार की मानसिक प्रेरणा की अभिव्यक्ति है, इस ओर आचार्यों ने ध्यान नहीं दिया है। इस विषय में डा० सुशीलकुमार डे का कथन महत्वपूर्ण है—“भारतीय सिद्धान्तवादियों ने अपने कार्य के एक महत्वपूर्ण अंग की अवहेलना की है। यह काव्य-विषय की प्रकृति को कवि की मनःस्थिति के रूप में समझ कर काव्य की व्याख्या करना है, जो पाश्चात्य सौन्दर्य-शास्त्र का प्रमुख विषय रहा है। 'स्वभावोक्ति' और 'भाविक' की स्वीकृति इस ओर संकेत अवश्य करती है कि भारतीय आचार्यों में इस बात की चेतना थी। परंतु उन्होंने पूर्ण-रूप से इस ओर ध्यान न देकर आशिक

२. भामह (१, २३) . दंडी (१, १०)

तैः शरीरञ्च काव्यानामलङ्काराश्च दर्शिताः ।

शरीर तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना षदावली ॥

३. आनन्दवर्धनाचार्य के ध्वन्यालोक (प्र०) 'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति' ।

४ लेखक की पुस्तक 'प्रकृति और हिन्दी काव्य' प्रथम भाग, पंचम अकरण को इस विषय में देखना चाहिये ।

रूप से विचार किया है।”^५

४—इस उपेक्षा का कारण भारतीय काव्य-शास्त्र का सूक्ष्म और शुष्क विवेचनात्मक दृष्टि-बिन्दु तो है ही, साथ ही भारतीय काव्य-कला की चिरन्तन आदर्श भावना भी है। डा० डे ने स्थापित आदर्श भारतीय ‘काव्यादर्श’ की इस ‘सादृश्य-भावना’ पर विचार नहीं किया है। काव्य-विषयक विवेचना दर्तनी सूक्ष्म हो जाती है कि उस पर दार्शनिक छायातप पड़ना निश्चित सा है। यही कारण है कि पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव जिस प्रकार वहाँ की साहित्यिक विवेचनाओं में ढूँढा जा सकता है, उसी प्रकार भारतीय दर्शन यहाँ के काव्य शास्त्र की भूमिका के समान है। हमारा पार्थिव जीवन अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति में सर्जनात्मक रूप को स्थिति से विनाश की ओर गतिशील है। जीवन का स्वाभाविक विकास मृत्यु में है और पाश्चात्य साहित्य ने अनुकरण के आधार पर स्वानुभूत-अभिव्यक्ति की शैली में इसी सहज सत्य की उपासना की है। परंतु भारतीय दर्शन में आत्मा अमर है, मृत्यु परिवर्तन की स्थिति-मात्र है। इसलिए भारतीय साहित्य में मृत्यु का उपहास और जीवन का उल्लास है। फलस्वरूप भारतीय साहित्य का आदर्श ‘सादृश्य’ की भावना है, जो स्वर्गीय सौन्दर्य-आकृति को तदाकारता पर आश्रित है। और यह ‘सादृश्य’ कवि के बाह्य-अनुभव का फल न होकर आंतरिक समाधि पर निर्भर है जिसके लिए आत्म-संस्कार और आत्म योग की आवश्यकता है। कवि और कलाकार इसी आत्म-संस्कार और आत्म-योग से अपनी अनुभूतियों के निम्नस्तर को छोड़कर अपने हृदयाकाश में स्वर्गीय कल्पना करता है, और कला तथा काव्य के रंग-रूपों को वही से ग्रहण करता है। आकृतियों की यही तदाकारता सादृश्य है, और यह ‘सादृश्य’ कला का रूप या माडल न होकर कलाकार की भावना और प्रज्ञा का समन्वय है। पाश्चात्य कला के विवेचकों ने इस

और ध्यान न देकर काव्यानुभूति को व्यक्ति की साधारण अनुभूति के रूप में स्वीकार किया है। यद्यपि इस मनोवैज्ञानिक भूल की ओर कुछ विद्वानों ने ध्यान आरंभित किया है।^६ इन आलोचकों ने स्वानुभूति की गीतात्मकता में प्रज्ञा की प्रत्यक्ष भावों की स्थिति को विरोधी माना है, परंतु पाश्चात्य साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति भिन्न भिन्न सिद्धान्तों के आधार में यही रही है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उनका साहित्य साधारण अनुभूति के धरातल पर रहा है। यह तो सिद्धान्त का रूप है जिसका प्रभाव साहित्य पर एक सीमा तक माना जा सकता है। इन रोमान्टिक कवियों की काव्य-कल्पना में सौन्दर्य तथा सम्बन्धना का अपूर्व सम्मिश्रण है। परंतु साथ ही उनके काव्य में पार्थिव टीन और कसक की अभिव्यक्ति भी अधिक हुई है, जो मानवता की स्वस्थ अभिरुचि नहीं कही जा सकती। पर भारतीय आदर्श भावना में रूप को कुछ ऐसा महत्त्व मिला कि हमारी समस्त स्वर्गीय कल्पना निर्जोव विचित्र रूपों को सजाने में व्यस्त रही, और हमारा भावमय देवत्व पार्थिव को छोड़ने की स्पृहा में स्पन्दनशील पाषाण रह गया। परिणाम-स्वरूप संस्कृत के आचार्यों का ध्यान काव्य का स्वरूप उपस्थित करने में कभी प्रकृति की चेतन सीमाओं की ओर नहीं गया, और संस्कृत साहित्य के पिछले कवियों ने न तो प्रकृति को अपनी अनुभूति का आधार बनाया है और न प्रकृति में अपनी सहानुभूति का प्रसार ही देखा है।

§ ५—परंतु काव्य विषय की विवेचना करते समय संस्कृत के आचार्य कवि के मानसिक भाव-पक्ष से अनभिज्ञ थे, ऐसा कहना नितान्त भ्रामक है। डा० डे भी इस बात का स्वीकार करते हैं कि इस बात की चेतना उनमें थी। 'स्वभावोक्ति' और 'भाविक' अलंकारों में जो अलंकारत्व है, वह वस्तु और काल की

दृष्ट मनेन

६ इस विषय में अर्ल अब् लिस्टोवेल की पुस्तक 'दि क्रिटिकल हिस्ट्री अफ् माडर्न एस्थेटिक्स' में जर्मन आलोचक देसूर और फॉकेल्ट का उल्लेख है।

स्थितियों को कवि की मनःस्थिति पर स्थिर स्वीकार करता है। यद्यपि भामह^७ और कुन्तल इनको वक्रोक्ति से हीन काव्य के अंतर्गत नहीं स्वीकार करते, परंतु दण्डी ने इस सत्य की उपेक्षा नहीं की है।^७ इन दोनों अलंकारों में कवि की वस्तु और काल विषयक सहानुभूति स्वयं अलंकृत हो उठती है। इसके अतिरिक्त काव्य-शास्त्र में कुछ और भी संकेत हैं जिनमें कवि के भावात्मक (मनस्-परक) अनुभूति-पक्ष का समन्वय पाया जाता है। कदाचित् डा० डे ने इन और ध्यान दिया नहीं। भामह ने 'वक्रोक्ति' अथवा 'अतिशयोक्ति' को अलंकार का प्रयोजन माना था, कुन्तल ने इसी आधार पर वक्रोक्ति के सिद्धान्त को अधिक विकसित रूप दिया है। 'अतिशय' और 'वक्रत्व' में जो वैचित्र्य और विच्छिन्नता (सौन्दर्य) का रूप है, उसमें बहुत कुछ कवि की मनःस्थिति, उसके अनुभूति-पक्ष का संयोग है।^८ अभिव्यक्ति के सौन्दर्य या वैचित्र्य के स्रोत की ओर ध्यान देने से उनके सामने कवि का अनुभूति-पक्ष अवश्य प्रत्यक्ष हो जाता। यह लोकोत्तर चमत्कार का वैचित्र्य जो रस-सिद्धान्त में काव्य-रसिकों के सम्बेदक प्रभाव के रूप में स्वीकृत

७ यद्यपि डा० डे के अनुसार भामह 'न्वामावोक्ति' को नहीं मानते, परन्तु डा० राववन,

स्वभावोक्तिरलङ्कार इति केचित्प्रचक्षते ।

अर्थस्य तदवस्थत्व स्वभावोऽभिहितो यथा ॥ (२, ९३)

के 'केचित्प्रचक्षते' से यह नहीं स्वीकार करते कि भामह इसे अलंकार ही नहीं मानते। अन्य काव्यशास्त्रियों ने वार्ता और जानी का उल्लेख इसी के समान किया है। भामह 'भाविक' को भी 'प्रबन्धगुण' मानकर अलंकार कहते हैं,—

भाविकत्वमिति प्राहुः प्रबन्धविषय गुणम् ।

प्रत्यक्षा इव दृश्यन्ते यत्रार्था भूयभाविनः । (३, ५२)

८ वक्रोक्तिजोवित, प्र०, ३—

लोकोत्तरचमत्कारकारिवैचित्र्यसिद्धये ।

काव्यस्यायमलङ्कारः कोऽप्यपूर्वो विधीयते ॥

हुआ है, इस प्रकार कुतल द्वारा विचारकर भी छोड़ दिया गया है। और फिर वह 'वैदग्ध्यभङ्गोभणितिः' मात्र रह गया।^९ इसी आधार पर कदाचित् आगे चलकर समस्त आलंकारिक दूर की सूक्त का विकास हुआ। परन्तु इन काव्य-शास्त्रियों का वैचित्र्य और विच्छेदित सम्बंधी उल्लेख स्वयं इस बात का साक्ष्य है कि उन्होंने कवि और कलाकार की अनुभूतिशाल मनःस्थिति की एकात उपेक्षा नहीं की है।

क—इसके साथ कवि की व्यक्तिगत प्रतिभा का उल्लेख किया जा सकता है। लगभग सभी आचार्यों ने काव्य-सर्जन के लिए कवि-प्रतिभा को आवश्यक माना है। भामह और काव्य-प्रतिभा दण्डी इसे 'नैसर्गिक' कहते हैं और सहज मानते हैं। मम्मट इसी के लिए अधिक व्यापक 'शक्ति' शब्द का प्रयोग करते हैं। अभिनव इसको 'नवनिर्माणशालिनि प्रज्ञा' कहते हैं जो भाव-चित्र और सौन्दर्य-सर्जन में कुशल होती है। आचार्य भरत ने इसको कवि की आंतरिक भावुकता 'अन्तर्गत भाव' के रूप में स्वीकार किया है।^{१०} इस प्रतिभा के अन्तर्गत कवि की मनःस्थिति आ जाती है। कवि प्रतिभा के माध्यम से अनुभूतियों के आधार पर सादृश्य-भावना की काल्पनिक अभिव्यक्ति करता है। परन्तु आचार्यों ने 'प्रतिभा' को अनुभूति से अधिक 'प्रज्ञा' के निकट समझा है। इस प्रकार अभिव्यक्ति के विषय को निर्माण के रूप में स्वीकार किया गया है, प्रज्ञा शब्द इसका साक्ष्य है। भरत का 'अन्तर्गत भाव' 'कवि प्रतिभा' के मानसिक पक्ष की अनुभूति से निकटतम है। इस प्रकार संस्कृत आचार्यों को काव्य के अनुभूति-पक्ष

९ वक्रोक्तिजीविन, कुतल (प्र०, ११) —

उभावेतावलङ्कार्यौ तयोः पुनरलङ्कृतिः ।

वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गोभणितिरुच्यते ॥

१०. भामह, काव्यालंकार (१, ५) : दण्डी, काव्यादर्श (१, १०३-४) : वामन, काव्यालंकारसूत्रवृत्ति (१३, १६) : अभिनव, लोचन, (प्र० २९) : भरत ; नाट्यशास्त्र (५, ११२)

का भान अवश्य था, परन्तु अपनी आदर्श-भावना तथा विश्लेषण की प्रवृत्ति के कारण उन्होंने उसकी उपेक्षा की है। फलस्वरूप संस्कृत साहित्य में न तो भावात्मक (मनस्परक) गीतियों का विकास हो सका और न प्रकृतिवाद की उन्मुक्त-भावना को स्थान मिल सका। शास्त्रीय ग्रन्थों के प्रभाव के पूर्व के काव्यों में ये प्रवृत्तियाँ किसी सीमा तक मिल जाती हैं, परन्तु बाद के काव्यों में इनका नितांत अभाव है।

शब्द और अर्थ

§ ६—संस्कृत आचार्यों की काव्य-सम्बन्धी समस्त परिभाषाएँ अपने-अपने दृष्टिबिन्दु में प्रमुखतः चार भागों में विभाजित की जा सकती हैं। शब्द और अर्थयुक्त विशिष्टार्थ पदावली का अभिव्यक्ति-पक्ष अलङ्कृत प्रयोग काव्य माना गया है। काव्य की आत्मा के रूप में गीति आदि गुण को स्वीकार किया गया है। ध्वनि को ही उत्तम काव्य कहा गया है, और अतः रस को काव्य का चरम लक्ष्य स्वीकार किया गया है। इनमें प्रथम दो का दृष्टिबिन्दु अभिव्यक्ति की शैली पर केन्द्रित है और अन्य दो का अभिव्यक्ति के प्रभाव पर। वस्तुतः इनमें ऊपर से भेद दृष्टिगत होता है, नहीं तो एक दूसरे का अन्तर्भाव सभी में मिलता है। जैसा पहले ही कहा गया है कि कवि की अनुभूति-पक्ष का इनमें समन्वय नहीं हो सका है। वास्तव में काव्य में अभिव्यक्ति अधिक व्यक्त तथा प्रत्यक्ष रहती है, और इसी के माध्यम से कवि की अनुभूति और पाठक की प्रभावात्मक समवेदना का समन्वय होता है। कदाचित् इसीलिए काव्य-शास्त्रियों का ध्यान विशेष रूप से अभिव्यक्ति पर केन्द्रित रहा है। भारतीय काव्य-शास्त्रियों ने अलंकार में सौन्दर्य को काव्याभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया है; ध्वनि के विस्तार में काव्य का समस्त रूप अभिव्यक्ति में आ जाता है। रस सिद्धान्त के अन्तर्गत 'शब्द' तथा 'वाक्य' की स्वीकृति में काव्य के अभिव्यक्ति-पक्ष को स्वीकार किया

गया है। और रीति काव्य की अभिव्यक्तिका स्वरूप है।^{११} परन्तु 'शब्द और अर्थ' के जिस व्यापक धरातल पर ये परिभाषाएँ प्रस्तुत की गई हैं, वे रूप और भाव के प्रतीक हैं। रूप से भाव पूर्व सिद्धि है और अभिव्यक्ति का परिणाम भी। मंत्र में जल पूर्व रूप है और परिणाम रूप भी। भाषा के प्रत्येक शब्द ने बहिर्जगत की एक वस्तुस्थिति और परिस्थिति का प्रतीक चित्र सन्निहित है। मनस के चित्र शब्दमय हैं जो अभिव्यक्ति के उपकरणों से दूसरों के मन पर प्रतिबिम्बित होते हैं। यही अर्थ की व्यंजना भावशीलता का शरीर है, शरीर के बिना प्राणों का अस्तित्व नहीं रह सकता। इसी दृष्टि से पहले आचार्यों ने भाव पर अधिक ध्यान नहीं दिया, बाद में ध्वनि और रसवादियों ने भाव को महत्त्व दिया, क्योंकि शरीर की बात ही सोचने से स्थूलवादी हो जाने का भय था।

§ ७—काव्य के जिस मनस्-परक अनुभूति-पक्ष का उल्लेख पिछले अनुच्छेदों में किया गया है, उसका समन्वय 'शब्द और अर्थ' के व्यापक विस्तार में हो जाता है। और कवि की शब्द का भावरूप अनुभूति के आधार (आलम्बन) के रूप में बाह्य-प्रकृति का सारा सौन्दर्य 'शब्द' के ध्वन्यात्मक प्रतीकों में सन्निहित होकर अर्थ में अभिव्यक्त हो जाता है। विश्वनाथ के अनुसार 'वाक्य' ही रसात्मक (सौन्दर्य-व्यजक) है और पंडितराज जगन्नाथ भी 'रमणीयार्थ' के प्रतिपादक 'शब्द' को मानते हैं। आचार्यों ने अलंकारों के सौन्दर्य-

११. वामन, अलंकारसूत्र (प्र० १, ३) 'काव्यं खलु ग्राह्यमलङ्कारात्' और 'सौन्दर्यमलङ्कारः' आनन्दवर्धनाचार्य, ध्वन्यालोक (प्र०) 'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति': विश्वनाथ, साहित्यदर्पण (प्र०, ३) 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्': पंडितराज जगन्नाथ, रसगोधर (प्र०) रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्द. काव्यम् ।': वामन, काव्यालंकारसूत्र (प्र०, ६) 'रीतिरात्मा काव्यस्य'।

धर्म को 'शब्दार्थयोरस्थिरा' माना है।^{१२} काव्य की अभिव्यक्ति में 'शब्द' भाव के रूपात्मक प्रतीक हैं। ये शब्द ध्वनि के आधार पर भाव-रूप धारण करते हैं। शब्द में अर्थ (भाव रूप) का संयोग एक प्रकार की अभिव्यक्ति है। संस्कृत के आचार्यों ने 'शब्दार्थ' को काव्य का रूप स्वीकार करके इसी बात का संकेत दिया है। शब्द में सन्निहित भावबिम्ब एक द्वार परप्रत्यक्ष का रूप ग्रहण करता है, जिसमें वस्तु (प्रकृति) के रूप का आलम्बन भी सम्मिलित रहता है। परन्तु ये परप्रत्यक्ष रूप अभिव्यक्ति के माध्यम में ध्वनि (शब्द) बिम्ब ग्रहण करते हैं। आज यह कहना तो कठिन है कि विकास के पथ पर भाषा अपने भावात्मक रूप में कब कल्पना-रूपों से हिल-मिल गई। भाषा के शब्दों में परप्रत्यक्ष उसकी भावमयी कल्पना में अपना आधार ढूँढते हुए वस्तु और परिस्थिति (प्रकृति) के साथ उपस्थित होते हैं। इसी प्रकार भाषा के वस्तु-रूपों (शब्दों) में भावात्मक अनुभूति का संयोग भी प्रारम्भ से हुआ है। भाषा के रूप (शब्द) के साथ वस्तु के रूप (प्रकृति) की स्थिति सरल और सुरक्षित है—पुष्प कहने के साथ उसके रूप का बोध हो जाता है। भाषा में भावक-शक्ति के स्थान पर विचार-शक्ति विकसित होती गई है। प्रारम्भ में प्रत्यक्ष-बोध का जो प्रभाव 'पुष्प' या 'वृद्धा' शब्द के साथ सम्मिलित था, वह रूप से अलग होता गया। अब हमें प्रकृति के स्वानुभूत चित्रों को अभिव्यक्त करने के लिए व्यंजना के माध्यम से अन्य संयोगों का आश्रय लेना पड़ता है। फिर आज भी समस्त काव्याभिव्यक्ति का आधार 'शब्द' का 'अर्थ' है, केवल उनके प्रतीकात्मक चयन, प्रभावात्मक प्रयोग की सर्तकता कवि के लिए अनिवार्य है।

§ ८—'शब्द' में मानसिक भाव-बिम्ब के अतिरिक्त ध्वनि-बिम्ब भी होता

१२. विश्वनाथ : साहित्य-दर्पण ()

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभाऽतिशायिनः ।

रमादीनुपकुर्वन्त्यलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत् ॥

है, और इस ध्वनि-विन्म्व का अभिव्यक्ति में महत्वपूर्ण स्थान है। कार-
लाइल के अनुसार काव्य वस्तुओं की अन्तःप्रवृत्ति
शब्द का ध्वनि-विन्म्व (प्रकृति) की अनुभूति पाने वाले मानस के समीता-
त्मक विचार की अभिव्यक्ति है। शब्द लिखित रूप में प्रत्यक्ष-बोध के
आधार पर रूप तथा ध्वनि दोनों प्रकार से हमारे सामने आता है।
और शब्द के इस ध्वनि से सम्बंधित अर्थ में वस्तु रूप के साथ भाव विन्म्व
सन्निहित रहता है। इसी कारण ध्वनि का प्रयोग लगभग व्यंजना के
अर्थ में होता है और शब्द के अर्थ का आधार होने के कारण, ध्वनि
का काव्य से सम्बंधित गुण और रीति के सिद्धान्तों में प्रमुख स्थान रहा
है। शब्द के ध्वन्यात्मक प्रयोग के लिए आवश्यक है, वह ध्वनि-विन्म्व
वस्तु के आधार (प्रकृति के विन्मार) पर परप्रत्यक्ष के साथ भावज्ञता का
सयोग स्थापित कर सके। छद् के मूल में ध्वनि की गति और लय
का मानसिक तादात्म्य सन्निहित है। इस प्रकार भावरूप तथा ध्वनि-विन्म्व
का शब्दार्थ में सामञ्जस्य रहता है। परंतु काव्य में शब्द के माध्यम से
रूप और अर्थ की अभिव्यक्ति का समन्वय अधिक महत्वपूर्ण होता है।
सामञ्जस्य की कलान्मक व्यंजना ही काव्य का सौन्दर्य है।

§ ६—समस्त ध्वनि-काव्य में इस सौन्दर्य की व्यंजना गृह्णी है, पर
आलंकारिक शैली में भी इस प्रकार की सौन्दर्य कल्पना है।^{१३} प्रथम
अलंकार
आचार्यों ने काव्य में अलंकारों को महत्वपूर्ण स्थान
दिया है। उन्होंने 'शब्दार्थ' में अभिव्यक्त सौन्दर्य के
रूप में अलंकार को समझा था। काव्य-रूप की सम्पूर्ण व्याख्या में
अलंकार का स्थान गौण हो सकता है, परंतु सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के
रूप में इसकी महत्त्वपूर्ण विवेचना हुई है। अलंकारों की व्याख्या अधि-
काश आचार्यों ने 'काव्यशोभाकरान् धर्मान्' के रूप में स्वीकार की
है। साहित्य-दर्पणकार ने इसको और भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है,

और इनको शरीर पर धारण किए जाने वाले आभूषणों के समान कहा है। काव्य में ध्वनि और व्यंजना, रस और भाव अभिव्यक्ति से अलग नहीं किए जा सकते; फिर आचार्यों ने अलंकार को काव्य का शरीर भी स्वीकार न कर 'आभूषण' मात्र क्यों कहा है? यद्यपि यह भी माना गया है कि अलंकार के प्रयोग पर बहुत कुछ निर्भर है। आनन्दवर्धनाचार्य के ध्वनि-सिद्धान्त के अनुसार अलंकार संलक्ष्यक्रम और गुणीभूत व्यंग्य के अन्तर्गत प्रधान हो जाते हैं; उस समय वे ध्वनि के अंग-रूप माने जाते हैं।^{१४} ज्ञेमेन्द्र ने 'श्रौचित्य' के अंतर्गत अलंकारों के प्रयोग पर विचार किया है और उनको अर्थ सौन्दर्य के बढ़ाने वाले स्वीकार किया है। ध्वनि और रस का व्यंजित भाव संयोगो में अधिक सम्बंध है, जब कि अलंकार वस्तु के (प्रकृति) रूप-गुण के साम्य का आधार ढूँढ कर अधिक चलता है।

क—'अलंकार' को अभिव्यक्ति का सौन्दर्य-साधन स्वीकार करने पर विदित होता है कि इसकी समस्त सौन्दर्य कल्पना प्रकृति के उपमानों की योजना पर निर्भर है। प्रकृति के फैले हुए सौन्दर्य से काव्य विरोध या संयोग द्वारा नाना उपमान-रूपों को ग्रहण कर अपने काव्य को मजाता है और वर्णित भावों को रस के स्तर तक पहुँचाता है। इस प्रकार पहले आचार्यों ने प्रकृति के उपमानों को अलंकारों द्वारा सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति का साधन माना था। परंतु क्रमशः आचार्यों की दृष्टि से अलंकारों का सौन्दर्य भाव हटता गया, और वे शरीर के आभूषण मात्र समझे जाने लगे। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप अलंकारों में उक्ति-वैचित्र्य ने ऊहात्मकता का आश्रय लेना आरम्भ किया, और अलंकारों का प्रयोग प्रकृति के सुन्दर उपमानों

१४. आनन्दवर्धनाचार्य : ध्वन्यालोक (२, २८)

शरीरीकरण येषा वाच्यत्वे न व्यवस्थितम् ।

तेऽलङ्काराः परा छाया यान्ति ध्वन्यङ्गता गतः ।

से हट कर जादूगरी का चकित करनेवाला खेल रह गया। जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है, अलंकारों के उग्रमानों का सौन्दर्य-बोध शब्दों के भाव रूप और ध्वनि-विम्ब के माध्यम से अर्थ में व्यंजित होता है।

रस-सिद्धान्त

§१०—आगे चल कर ध्वनि के अन्तर्गत रस सिद्धान्त ने अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। भरत के 'नाट्य-शास्त्र' में रस-सिद्धान्त का उल्लेख हो चुका था, परन्तु काव्य के क्षेत्र में रस की स्थापना इसको स्वीकृति बाद में मिल सकी। भामह और दण्डी ने 'रस' को अलंकार के रूप में स्वीकार किया है और वामन ने इसे 'कातगुण' के अंतर्गत रखा है। उद्भट ने सबसे पहले 'रस' को विभाव, अनुभाव और संचारी में पूर्ण विकसित किया और भरत के आठ रसों में नवों शात-रस सम्मिलित किया है। परन्तु यह सारी विवेचना अलंकारों के अन्तर्गत हुई। रुद्रट ने चार अध्यायों में रस का सौगोप्यो वर्णन किया है, परन्तु स्पष्ट रूप से यह नहीं बताया है कि उनके सिद्धान्तों में रस का क्या स्थान है। बाद में ध्वनिवादियों ने रस को ध्वनि के अन्तर्गत असंलक्ष्यक्रम व्यंग में स्थान दिया और इसके पश्चात् रस-सिद्धान्त का स्वतंत्र विकास हुआ है।

क—काव्य में आनन्द की भावना सन्निहित है, पर वह सुख का रूप नहीं माना जा सकता। सुख-संवेदनावादी सौन्दर्य-शास्त्रियों ने सौन्दर्य-बोध को जिस प्रकार इन्द्रिय-संवेदनाओं से सम्बंधित रसानुभूति किया है, उसी प्रकार की गलती कुछ विद्वानों ने काव्य की व्याख्या करने में की है। अभिव्यक्ति में जो आनन्द प्राप्त होता है, वह केवल भावों के आधार पर उत्पन्न नहीं माना जा सकता। यह आनन्द-स्थिति अनुभूति की व्यंजना की चमत्कृत भावना से सम्बंधित है। परन्तु काव्य और कला के क्षेत्र में 'आनन्द' का आदर्श समान रूप से लागू नहीं है, क्योंकि इसमें विभिन्न स्तरों पर विभिन्न रूप हो सकते हैं।

विकास की मनःस्थितियों के साथ सौन्दर्य-भाव विभिन्न आधार पर स्थिर है, और यही परिस्थिति काव्य के विषय में समझी जा सकती है।^{१५} भारतीय काव्य-शास्त्र के अन्तर्गत रस-सिद्धान्त में काव्य के इस आनन्द को भावों के आधार पर समझा गया है। यह काव्य के सवेनात्मक प्रभाव-पक्ष की व्याख्या कहा जा सकता है, पर इसके आधार पर काव्य की पूर्ण व्याख्या नहीं की जा सकती। इसी कारण ध्वनिवादियों ने इसको असलक्ष्यक्रम व्यंग के रूप में स्वीकार किया है। काव्य केवल साधारण मानवीय मनोभावों के आधार पर नहीं समझा जा सकता।

ख—वास्तव में 'वाक्यं रसात्मक काव्यम्' को माननेवाले रसवादियों की दृष्टि विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों से व्यक्त स्थायी भाव रूप रस में सीमित नहीं है।^{१६} इस परिभाषा का पूर्ण विकास रस-निष्पत्ति की आनन्दमयो सम-स्थिति में समझा जा सकता है। इस स्थिति में रस कवि और रसिक दोनों की मानसिक असाधारण स्थिति से सम्बन्धित है। रस-सिद्धान्त की व्याख्या करनेवाले आचार्यों ने प्रारम्भ में काव्यानुभूति तथा भावों को एक ही धरातल पर समझने की भूल की है। बाद में रस को अलौकिक कहकर उसे साधारण भावों से अलग स्वीकार किया गया है। परन्तु रसों का स्थायी भावों के आधार पर किया गया वर्गीकरण दोषपूर्ण है, उसमें अलौकिकता की बात भूला दी गई है। इस वर्गीकरण में वासना के साधारणीकृत रूप को रस समझा गया है। सामाजिकों के हृदय में स्थायी भावों की स्थिति ठीक है; विभाव, अनुभाव तथा संचारियों के

१५. लेखक की पुस्तक 'प्रकृति और हिन्दी काव्य', प्रथम भाग; चतुर्थ प्रकरण द्रष्टव्य है।

१६. मम्मट; काव्यप्रकाश; च०, २८; — व्यक्तः स तैर्विभावैः स्थायी-भावो रसः स्मृत

द्वारा उसकी एक साधारणीकृत स्थिति का बोध भी होता है। एक स्तर पर मानसिक भाव-संयोग के द्वारा सुखानुभूति सम्भव है, परन्तु काव्यानन्द के स्तर पर सौन्दर्याभिव्यक्ति ही आनन्द का विषय हो सकती है। इस भाव-स्थिति में स्थायी-भाव का आधार केवल साहचर्य-भावना का सूक्ष्म रूप माना जा सकता है। रस के व्याख्या-क्रम में ये सभी स्थितियाँ मिल जाती हैं। प्रारम्भिक स्थिति में 'रस' का सिद्धान्त आरोपवाद और अनुमानवाद में सुखानुभूति की आत्म-तुष्टि के रूप में समझा गया है। बाद में भोगवाद और व्यक्तिवाद में आत्म-तुष्टि अधिक स्पष्ट है, पर इसके साथ ही साधारणीकरण की स्वीकृति में साहचर्य-भाव का रूप आ जाता है।^{१७} इसी आधार पर व्यक्तिवाद की अभिव्यक्ति में सौन्दर्य व्यजना की स्थापना हुई है।

§११—भरत ने रस-निष्पत्ति के लिए स्थायी-भाव के साथ विभाव, अनुभाव और संचारियों का संयोग माना है, पर रस-निष्पत्ति की स्थिति में आनन्द इन सबसे सम्बन्धित नहीं रहता, वह तो अपनी समस्त विभिन्नता में एक है, अलौकिक है। इसके अतिरिक्त स्थायी भावों की संख्या इतनी निश्चित नहीं कही जा सकती। आवश्यक नहीं है कि संचारियों की अभिव्यक्ति अपनी पूर्णता में रसाभास मात्र रहे, और काव्यानन्द के स्तर को न पा सके। शांत और सौन्दर्य भाव मानव के हृदय में इस प्रकार स्थिर हो चुके हैं कि इनको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि

१७. भट्ट लोल्लद के आरोपवाद में पात्र के साथ सामाजिक अपना आरोप कर लेता है, जिस प्रकार नट पात्र में। श्री ङ्ङुक के अनुमानवाद में भ्रम को अस्वीकार करके अनुमान की स्थापना हुई। भट्टनायक प्रत्यक्ष-ज्ञान से रसास्वादन मानते हैं और शब्द में भोग-व्यापार और साधारणीकरण का प्रतिपादित करते हैं। अभिनवगुप्त ने शब्द की व्यजना-शक्ति से ही रस-निष्पत्ति का साधारणीकरण व्यापार स्वीकार किया है।

तात्त्विक दृष्टि से विचार किया जाय तो ये रति और शम-निर्वेद के अन्तर्गत नहीं आते। सौन्दर्य-भाव और शांत-भाव मन की वह निर्वेद स्थिति है जो स्वयं में पूर्ण आनन्द है। वस्तुतः अन्य भाव भी रस-निष्पत्ति की स्थिति में इसी धरातल पर आजाते हैं, आ सकते हैं। इस धरातल पर मनःस्थिति की निर्वेदता आनन्द का विषय हो जाती है। यह एक प्रकार के भाव सौन्दर्य पर सम्भव है, और इन भावों के आलंबन-रूप में प्रकृति का विखरा हुआ राशि-राशि सौन्दर्य है। इस आलंबन का आश्रय कवि का मन स्वयं है और जो काव्य-रसिक में अन्तर्हित हो जाता है। इस प्रकार शांत और सौन्दर्य के आलंबन में प्रकृति का व्यापक विस्तार है। संस्कृत आचार्यों ने इन भावों को स्थायी-भाव स्वीकार नहीं किया, परिणाम स्वरूप वे प्रकृति को आलंबन रूप भी नहीं दे सके।

क—परंतु प्रकृति को उद्दीपन-मात्र मानने के सिद्धान्त में आधार रूप से सत्य का अंश है। भारतीय दर्शन की एक परम्परा में प्रकृति को

आलंबन-रूप की
उपेक्षा

पुरुष के प्रतिबिम्ब के साथ गतिशील होना पड़ता है, उसी प्रकार मानव अपने दृष्टिकोण से प्रकृति को सदा मानसिक चेतना से प्रभावित स्वीकार करता है।

मानव की रूप चेतना सामाजिक चेतना के साथ सम्बंधित है, वह उसका एक अंग है। इसी कारण उसके जीवन में प्रकृति भावों के उद्दीपन के रूप में लगती है। अधिकतर हम किसी भाव-शून्य स्थिति में प्रकृति के सम्पर्क में नहीं आते। इस विचार शैली के अनुसार, जब हम प्रकृति को आलंबन-रूप में ग्रहण करते हैं, उस समय भी हमारी मनःस्थिति सूक्ष्मरूप से किसी न किसी भाव से सम्बंधित रहती है। यह भाव-स्थिति हमारे अंतःकरण में सौन्दर्य और शांत के स्थायी-भाव के रूप में स्थिर हो सकती है। पर इधर आचार्यों ने सौन्दर्य को रति के साथ इतना अधिक सम्बंधित कर दिया है कि शृंगार रसरज बन गया। परिणाम-स्वरूप त्रिप्रकृति की समस्त सौन्दर्य भावना रति-भाव के उद्दीपन-विभाव में समा

गई । सामाजिक विकास की स्थिति में हमारा वातावरण मानवीय सम्पर्क से इतना सघन हो उठा है कि इसमें भावों के आलंबन के लिए मानवीय सम्बंध ही अधिक प्रबल हो उठता है । आलंबन रूप में प्रकृति की उपेक्षा का एक कारण यह भी है ।

§१२—रस-निष्पत्ति में स्थायी-भाव के साथ विभाव, अनुभाव और संचारियों की स्वीकृति सभी परवर्ती आचार्यों ने दी है । निष्पत्ति के उद्दीपन-विभाव विषय में कतिपय सिद्धान्त होते हुए भी इस विषय में वे एक मत हैं । विभाव के अन्तर्गत उद्दीपन-विभाव का रूप आता है,—

विभाव' कथ्येत तत्र रसोत्पादनकारणम् ।

आलम्बनोद्दीपनात्मा स द्विधा परिकीर्त्यते ॥^{१८}

[वहाँ रसोत्पादन का कारण विभाव कहा जाता है, और वह आलंबन तथा उद्दीपन के रूप में दो प्रकार से उल्लिखित होता है ।] कुछ आचार्यों ने चार प्रकार के उद्दीपनों में प्रकृति-रूपों को तटस्थ के अन्तर्गत रखा है,—

उद्दीपनं चतुर्धा स्यादालम्बनसमाश्रयम् ।

गुणचेष्टालङ्कृतयस्तटस्थाश्चेति भेदतः ॥^{१९}

[आलंबन को भली भाँति आश्रय देनेवाला, भेद से गुण, चेष्टा, अलंकरण तथा तटस्थ चार प्रकार का, उद्दीपन होता है] और फिर तटस्थ के अन्तर्गत प्रकृति के कुछ उपकरणों को गिनाया गया है ।^{२०} इस

१८. श्री विद्यानाथ, प्रतापरुद्रयशोभूषण, रसप्रकरण, पृ० २१२ ।

१९. श्री शिङ्गभूपाल : रसार्णवमार, प्र० १६० ।

२०. वही, वही ; प्र० १८८—८९,—

तटस्थाश्चन्द्रिकाधारागृहचन्द्रोदयावपि ।

कोकिलालापमाकन्दमन्दमास्तषट्पदाः ॥

लतामण्डपभूगेहदीर्घिकाजलदारवाः ।

प्रासादगर्भसूत्रीनक्रीडाद्रिस्फिरिदादयः ॥

प्रकार प्रकृति के विषय में इन आचार्यों का बहुत संकुचित दृष्टिकोण रहा है। आगे हम देखेंगे कि शिन्दा-ग्रन्थों में इन वर्णनों के सम्बन्ध में निर्देश किया गया है कि किसी विशेष प्रकृति-रूप के वर्णन में किन-किन वस्तुओं का उल्लेख आवश्यक है। इस प्रकार प्रकृति-वर्णन उद्दीपन के साथ रूढ़ि का विषय भी बनता गया।

§ १३—आचार्यों ने रस के प्रसंग में प्रकृति पर मानवीय भावनाओं तथा क्रियाकलापों के आरोप के विषय में विचार किया है। प्रकृति के जड़ या चेतन स्वरूपों पर इस प्रकार के आरोपों को वे शुद्ध रस के अन्तर्गत नहीं स्वीकार करते। इन स्थितियों को वे रसाभास और भावाभास मानते हैं। आरोप के दृष्टिबिन्दु के कारण वे ऐसा मानते हैं। प्रकृति के जड़-चेतन जगत् में स्वानुभव का संकेत नहीं मिलता और प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोप हमारे अन्तःकरण में स्थित स्थायी-भावों से सम्बंधित है। यदि प्रकृति में इन भावों को ग्रहण करने के लिए समानान्तरता न होती, तो यह बात ठीक थी। ऐसी स्थिति में अभिव्यक्ति का पूरा आनन्द मिलना कठिन था। परंतु जब प्रकृति का आरोप वर्णना को अधिक चमत्कृत स्थिति तक पहुँचा देता है, उस समय रसास्वादन के सम्बंध में 'आभास' का प्रश्न नहीं उठता। हम कह आये हैं कि रस-निष्पत्ति के धरातल पर काव्यानुभूति भाव न रहकर रस हो जाती है। कदाचित् इस प्रकार का स्तर-भेद विश्लेषण की प्रवृत्ति का परिणाम है।

क—हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन में इन आरोपों पर विस्तार से विचार किया है। उनके अनुसार—“निरिन्द्रियेषु तिर्यगादिषु चारोपाद्रसभावाभासौ।” [इन्द्रियहीन जड़ तथा पशु-पक्षियों पर आरोप (मानवीय भावों के) करने से रसाभास और भावाभास होता है।] स्वीकृत है। इसके बाद इन्होंने निरिन्द्रियों तथा तिर्यकों में सम्भोग और विप्रलम्भ का आरोप मानकर विस्तार से विभाजन किया है। निरिन्द्रियों पर सम्भोग

रसाभास और
भावाभास

के आरोपण से सम्भोगाभास (रसाभास) का उदाहरण वे इस प्रकार देते हैं—

पर्वासपुष्पस्तबकस्तनीभ्यः स्फुरत्प्रवालोलुष्टमनोहराभ्यः ।

लता वधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुविनम्रशाखाभुजबन्धनानि ॥

[तरु भी अपनी झुकी हुई शाखाओं के भुजबन्धनों से, पर्याप्त पुष्पों के गुच्छों के रूप में स्तनवाली तथा चंचल पल्लवों के रूप में सुन्दर ओष्ठ-वाली लता वधू (जिसके स्तन लटक रहे हैं और ओठ चंचल हैं) से आलिंगन करने लगे ।] इसी प्रकार तिर्यको के संभोगाभास (रसाभास) का उदाहरण है—

मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुर्वतमान ।

शृङ्गेण संस्पर्शनिमीलिताक्षी मृगीमकण्डूयत कृष्यसारः ॥

[भ्रमर अपनी प्रिया (भ्रमरी) का अनुसरण करता हुआ कुसुम के एक ही पात्र में मकरन्द पान (आसव पान) करने लगा । कृष्यसार स्पर्श-सुख से बन्द नेत्रोवाली हरणी को अपने सींग से खुजाने लगा ।] विप्रलम्भ के आरोप से फिर निरिन्द्रिय और तिर्यक सम्बंधी विप्रलम्भाभास होता है । सरिता पर वियोगिनी का आरोप इस प्रकार कवि करता है—

वेणीभूतप्रतनुसलिला ताम्यती तस्य सिन्धुः

पाण्डुच्छायातटरुहतरुश्रं शिभिः शीर्षपणैः ।

सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती

काश्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥

[पतला प्रवाह जिसकी वेणी हो गया है, तट पर स्थित वृक्षों से गिरे हुए पुराने पत्तों से पाण्डु हुई, बीते हुए सौभाग्य को अपनी विरहावस्था से व्यञ्जित करनेवाली बहू सरिता जिस विधि से अपनी दुर्बलता त्यागे, हे सुन्दर मेघ वही तुम करना ।] पशु-पक्षी सम्बंधी विप्रलम्भ शृंगार का आभास इस प्रकार आरोप में व्यञ्जित होता है—

आपृष्टासि व्यथयति मनो दुर्बला वासरश्री

रेह्यालिङ्ग क्षपय रजनीमेकिका चक्रवाकि ।

नान्यासक्तो न खलु कुपितो नानुरागच्युतो वा.

दैवासक्तस्तदिह भवतीमस्वतन्त्रस्त्यजामि ॥

इसी प्रकार भावाभास का वर्गीकरण किया गया है। निरिन्द्रिय में आरोपित भावाभास का उदाहरण—

गुरुगर्भभरङ्गान्ता. स्तनन्त्यो मेघपङ्क्तयः ।

अचक्षाधित्यकोत्सङ्गमिमाः समधिशेरते ॥

[गुरु गर्भ के भार से क्लान्त गर्जन करती हुई ये मेघ पंक्तियाँ पर्वत की गोद में विश्राम करती हैं ।] पशु पर आरोपित भावाभास का उदाहरण हेमचन्द्र इस प्रकार देते हैं—

त्वत्कटाक्षावलीलीलां विलोक्य सहसा प्रिये ।

वन प्रयात्यसौ व्रीडाजडदृष्टिर्गुणजनः ॥

[हे प्रिये, तुम्हारे चंचल कटाक्षों को सहसा देखकर लज्जा से स्तम्भित दृष्टिवाली मृगियों का समूह वन का चला गया ।]^{२५} इस प्रकार का वर्गीकरण श्रीशिङ्ग भूपाल ने 'रसार्णव' में किया है। संस्कृत के सभी काव्याचार्यों का मत इस विषय में लगभग समान है।

कवि-शिक्षा

१४—प्रकृति के विषय में आचार्यों के विशिष्ट दृष्टिबिन्दु और रूढ़ि-वादिता के फलस्वरूप शास्त्रीय ग्रन्थों के सूक्ष्म विवेचन के साथ कवि-शिक्षा ग्रन्थों का भी निर्माण हुआ। इस प्रकार के आचार्यों में क्षेमेन्द्र, राजशेखर, हेमचन्द्र और वाग्भट्ट प्रमुख हैं। इनके शिक्षा-ग्रन्थों में काव्य-विषयक शिक्षाएँ हैं और विभिन्न पूर्ववर्ती काव्यों के आधार पर लिखे गए हैं। इनमें अन्यान्य अनेक शिक्षाओं

२१. हेमचन्द्र, काव्यानुशासन; अध्या० २, में इसका वर्गीकरण दिया गया है।

के साथ प्रकृति-चित्रण के सम्बन्ध में भी काव्य-परम्पराओं का उल्लेख किया गया है। कवि के लिए इन वर्गीकरणों और परम्पराओं से परिचित होना आवश्यक समझा गया है; और इनको 'कवि समय' कहा गया है। 'कवि-समय' में प्रकृति वर्णन की परम्पराओं का उल्लेख है; पर इनके अतिरिक्त इन ग्रंथों में देश-काल की शिक्षा दी गई है। इनमें किस देश में किन-किन प्रकृति उपकरणों का वर्णन आवश्यक है यह बताया गया है, और काल विशेष में किन-किन वस्तुओं का उल्लेख आवश्यक है यह गिनाया गया है।^{२२} इनमें प्रकृति के रूपों का नहीं बल्कि उसके वर्णन की परम्पराओं का विभाजन है। इनसे काव्य और प्रकृति के सीधे सम्पर्क पर किसी प्रकार प्रकाश नहीं पड़ता। परन्तु इस प्रकार के विभाजन से प्रकृति के आदर्श की रूप-रेखा सम्मुख अवश्य आती है; और यह भी विदित हो जाता है कि जो प्रकृति का प्रसार कल्पना का उन्मुक्त विषय था वह शिक्षा द्वारा रूढ़ि मात्र का पालन रह गया था।

१५—राजशेखर की काव्यमीमांसा में 'कवि समय' का सत्रसे अधिक स्पष्ट और विशद वर्णन है। इन्होंने अपने ग्रंथ के चतुर्दश

कवि-समय

अध्याय में इन समयों को (१) जाति (२) द्रव्य (३)

क्रिया और (४) गुण के विभागों में बाँटा है। फिर

स्थिति के अनुसार उनका विभाजन (१) भौम (२) स्वर्ग्य (३) पातालीय में किया गया है। और ये कवि-समय रूप परम्पराएँ तीन भागों में विभाजित हैं—(१) असतोनिबन्धन अर्थात् असत्य होने पर भी जिसका निबन्धन हो, (२) सतोऽप्यनिबन्धन, सत्य होने पर भी जिसका वर्णन करना मना है; (३) नियमतः, जिसके विषय में कुछ निश्चित नियम कर दिया गया है। सामान्य जाति के विषय में असतो निबन्धन (१) नदी में कमल की उत्पत्ति (पद्म और नील कमल); (२) सलिल (जलाशय) मात्र में हंस; पर्वत

२२. राजशेखर ; काव्यमीमांसा , सप्तदश और अष्टदश अध्यायों में देश-काल की विशद विवेचना है।

को एक माना जाना ।^{२३}

इस प्रकरण की समस्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि सङ्कृत के काव्य-शस्त्रियों का प्रकृति के सम्बन्ध में क्या दृष्टिकोण रहा है। इस व्याख्या में उसके कारणों की ओर भी संकेत किया गया है। इससे आगे के अभ्ययन में हमें भारतीय साहित्य में प्रकृति के रूपों को समझने में सहायता मिलेगी। और प्रकृति के उन्मुक्त आलंबन-रूप के अभाव, उसके उद्दीपन-रूप के महत्त्व की स्वीकृति तथा रूढिवादी परम्परा के कारणों पर इस विवेचना से बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकेगा।



^{२३}. राजशेखर, काव्यमीमांसा, चतुर्दश अध्याय से लेकर षोडश अध्याय तक कवि-समय का वर्णन है।

तृतीय प्रकरण

प्रकृति चित्रांकन की शैलियाँ

§१—प्रकृति मानव की जीवन-लीला का सबसे बड़ा आधार प्रस्तुत करती है। वह उसके अभिनय के बाह्य-जगत् और भाव-लोक दोनों का रगमच है। पिछली विवेचनाओं में कहा गया है कि प्रकृति का विस्तार मानव का विकास प्रकृति के मध्य में उसके सम्पर्क से हुआ है, और इस दृष्टि से भी वह प्रकृति का अश है। वह अपनी प्रधानता मानता है, पर इस प्रकार वह प्रकृति का आधार नहीं छोड़ सकता। यदि इन्द्र-धनुष की सतरंगी कल्पना सूर्य-रश्मियों का संयोग नहीं छोड़ सकती, तो नीलाकाश का आधार भी नहीं छोड़ सकेगी। प्रकृति की पार्श्वभूमि पर मनुष्य अपना रूपाकार ग्रहण किये हुए है और उसके जीवन के विभिन्न व्यापारों को प्रकृति वातावरण प्रदान करती है। जीवन अपनी घटना-क्रम की शृंखला में फैला है, पर इन घटनाओं को स्थिति प्रकृति से मिलती है। प्रकृति में घटनाओं की यह स्थिति अनेक स्थितियों से सम्बंधित होकर वातावरण का रूप ग्रहण कर लेती है। यह घटनात्मक स्थिति प्रकृति में मानव के रूपाकार के आश्रय मात्र से होती है और क्रिया-व्यापारों की योजना से भी। यह पहले

कहा गया है कि प्रकृति का रूप और भाव (गति) मानव जीवन के समानान्तर है। इस समानान्तरता के कारण मानव के रूपाकार से सम्बंधित प्रकृति की आश्रय-स्थितियों में और क्रिया व्यापार से सम्बंधित प्रकृति की आश्रय-परिस्थितियों में अनेक संयोग स्थापित होते गए हैं। इस प्रकार प्रकृति अपने विस्तार में हमारे जीवन की व्यापक पार्श्व-भूमि है और साथ ही चिरन्तन सहचरी भी है। इन सम्बंधों के आधार पर प्रकृति और काव्य की सारी योजना रक्षित है। मानव जीवन और भावनाओं से काव्य में प्रकृति किस प्रकार सम्बंधित है और इस सम्बंध में वह किस प्रकार उपस्थित होती है, यह तो हमारा प्रमुख विषय है। मानव के रूपाकार तथा उसके जीवन की स्थिति परिस्थितियों को सौन्दर्यरूप में व्यक्त करने के लिए प्रकृति का जो सहारा लिया जाता है, वह प्रकृति-उपमाओं के अध्ययन के क्षेत्र से सम्बंधित है। इस प्रकरण में काव्य में प्रकृति का चित्रांकन किस प्रकार होता है और उसमें मानव और प्रकृति के इन सम्बंधों की क्या स्थिति है, इस पर विचार करना है।

§२—यह प्रश्न है कि प्रकृति मानव जीवन की पार्श्व-भूमि में, उसके समानान्तर अथवा उसके भावों के संयोग में किस प्रकार उपस्थित होती है। इन संयोग-सम्बंधों की व्याख्या अगले प्रकरणों में प्रकृति का चित्रांकन की जायगी, परन्तु इनमें प्रकृति का वर्णन किस प्रकार किया जाता है इस पर इस प्रकरण में विचार करना है। इसका अर्थ है कि काव्य में प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों का चित्रांकन किस प्रकार होता है। काव्य का माध्यम शब्द है; शब्द अपनी विभिन्न शक्तियों से काव्य में वर्णित रूप और भाव दोनों की व्यंजना करता है। काव्य में प्रकृति की रूपाकार सम्बंधी रेखाओं को उभारने के लिए तथा रंगों को व्यक्त कर छायातप प्रदान करने के लिए शब्दों का प्रयोग किया जाता है। शब्दों में जो ध्वनि के साथ प्रत्यक्ष-बोध का मानसिक चित्र सन्निहित रहता है, उसी के आधार पर यह योजना सम्भव हो सकती है। प्रकृति में रूपाकार के साथ गति-क्रिया भी सन्निहित है, और उसको काव्य में परिवर्तित रूपों

से अथवा व्यापारो की योजना से व्यक्त करते हैं। मानवीय जीवन और भावनाओं के अर्धन्तरण से प्रकृति काव्य में जीवनमयी अथवा भावमग्न भी चित्रित की जाती है।

क—कवि-चित्रकार शब्दों की रेखाओं से प्रकृति-चित्र मानस-गोचर करता है। उसके शब्दों की रेखाओं में सीमाओं का सशक्त निर्देश ही
 रूपात्मक नहीं वरन् रंगों का विषम संयोग भी उपस्थित होता है। प्रकृति का सारा आकार-प्रकार उसकी वस्तु-स्थिति, परिस्थिति, क्रिया-स्थिति में प्रकट होता है। और इन सबका योग वातावरण बन जाता है। हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों से विभिन्न स्थिति-परिस्थिति में कैली हुई प्रकृति को उसकी तुलनात्मक सापेक्षता में ग्रहण करते हैं। प्रत्येक प्रकृति-चित्रण की स्थिति भौतिक जगत् की असीमता में दृष्टिकोण विशेष से रूपाकार की सीमाएँ ग्रहण करती है। सरोवर के किनारे खड़ा हुआ आम का पेड़ जब हमारे दृष्टिपथ का विषय बनता है, उस समय सरोवर का तरंगित जल, आकाश का नीला प्रसार तथा अन्य वृक्षों का विस्तार अपनी समस्त सीमाओं में उसको हमारे सामने साकार करता है। प्रत्येक वस्तु इस प्रकार अनेक वस्तुओं की समाओं के द्वारा अपनी स्थिति की सीमा खोज पाती है। जब सरोवर के किनारे के आम-वृक्ष को हम सरोवर, आकाश, अन्य वृक्षों के साथ रखकर देखते हैं, उस समय उसकी परिस्थिति हमारे सामने होती है। यह परिस्थिति वास्तव में अन्य वस्तुओं की स्थितिओं के सापेक्ष ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। फिर हवा में पत्तियाँ हिलती हैं, हवा के संचरण से तरंगे उठती हैं, दिन-रात के क्रम से प्रकाश और अंधकार लुका-छिपी करता रहता है तथा ऋतु-परिवर्तन के साथ वृक्षों का कायाकल्प होता है। व्यापक अर्थों में गति का यह संकेत है जो परिवर्तन के रूप में प्रकट होता है; और इसको हम क्रिया-स्थिति स्वीकार करते हैं। वस्तु-स्थिति, परिस्थिति और क्रिया-स्थिति जब एक साथ प्रकृति-दृश्य का अंग बन जाती हैं उसको हम एक घटना-स्थिति के रूप में मान सकते हैं। अभी तक वस्तुओं के

प्राथमिक गुणों के दृष्टि-बिन्दु से कहा गया है। परन्तु दृश्य का अर्थ देखने से सम्बंधित है, इस कारण प्रकृति-दृश्य में माध्यमिक गुणों का प्रत्यक्ष अर्थक होता है और उनमें सबसे अधिक दृष्टि से सम्बंधित रूप-रंग की प्रधानता है। गंध, स्पर्श, श्रवण और स्वाद आदि के गुण अप्रधान रूप से प्रकृति-चित्रण से सम्बंधित हैं। परन्तु दृश्य की घटना-स्थिति को अधिक गोचर करने के लिए इनका योग आवश्यक है।

ख—प्रकृति का रूपाकार हमारे सामने आता है, पर उसमें हम भावों को व्यंजित होते पाते हैं। और भावों की यह व्यंजना काव्य में चित्रण का विषय होती है। आगे की विवचना में हम भावात्मक देखेंगे कि काव्य में प्रकृति और मानव का सम्बंध किम प्रकार उपस्थित हुआ है। पर इस प्रकरण में केवल चित्रण-शैली पर विचार करना है। प्रकृति के रूप-रंग सम्बंधी सौन्दर्य में मानव के रूप-रंग का सौन्दर्य लक्षित होता है। हम प्रकृति को अपने दृष्टि-बिन्दु से देखते हैं, इस कारण प्रकृति की घटना-स्थिति में मानव-जीवन की घटना-स्थितियों की अनेक प्रकार से समानान्तरता है। इस सादृश्य और समानान्तरता के आधार पर प्रकृति में माननीय भावों की व्यंजना की जाती है। शैली की दृष्टि से यह व्यंजना अनेक प्रकार से हो सकती है, आर आलंकारों के प्रयोग से भी सिद्ध होती है। परन्तु जैसा हम देखेंगे कलात्मक शैली में इसका रूप अधिक स्पष्ट और सुन्दर रहता है। ऊहात्मकता के साथ भावात्मक चित्रण का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है।

§३—यहाँ प्रकृति के चित्राकन की शैलियों से हमारा तात्पर्य काव्य में प्रकृति के रूप और भाव को गोचर और भावगम्य करने की विभिन्न रीतियों से है। इन रीतियों में शब्दा की विभिन्न शक्तियों, शैली का अर्थ भाषा की अभिव्यंजना शक्ति और आलंकारिक प्रयोगों के द्वारा काव्य के प्रकृति-विषयक वर्णनों को पाठक के मानस में रूप और भाव ग्रहण के लिए प्रस्तुत किया जाता है। संस्कृत साहित्य में प्रकृति का व्यापक स्थान आरम्भ से रहा है। आर कवियों ने अनेक

प्रकार से अपने काव्यों में प्रकृति को स्थान दिया है। इनको हम प्रकृति के चित्रांकन की भिन्न-भिन्न शैलियों के रूप में देखेंगे। पर इन शैलियों का प्रयोग सारी संस्कृत काव्यों की परम्परा में इस प्रकार हुआ है कि एक विकास का क्रम उपस्थित हो जाता है। प्रारम्भिक प्रबन्ध-काव्यों में प्रकृति-चित्रण की शैली में सहज स्वाभाविकता है और मध्यकाल के महाकाव्यों में कलात्मक सौन्दर्यमयी चित्रण की शैली का उपयोग हुआ है। बाद के महाकाव्यों में क्रमशः शैली आलाकारिक तथा उहात्मक अधिक होती गई है। जिस प्रकार महाकाव्यों की परम्परा में रुढ़िवादिता बढ़ती गई, काव्य में प्रकृति का स्थान भी अधिक रुढ़िग्रस्त हो गया है। और साथ ही शैली वैचित्र्य की रुढ़ि में फँस कर अधिक कृत्रिम हो गई है।

वर्णनात्मक शैली

§४—प्रकृति के यथातथ्य का अंकन वर्णना के द्वारा किया जा सकता है। कहा गया है कि काव्य में प्रयुक्त शब्द अपनी ध्वनि के साथ रूप और भाव चित्रों की व्यंजना करता है। भाषा के वर्णना का रूप शब्दों में ध्वनि के साथ एक भाव-चित्र होता है जो हमको निश्चित वस्तु-स्थिति या क्रिया-स्थिति का इन्द्रिय-प्रत्यक्ष कराता है। साधारण जीवन व्यापार में हम अपने विचारों में शब्द के प्रासंगिक अर्थ से काम चलाते हैं, परन्तु काव्य में प्रकृति का वर्णन प्रत्यक्षीकरण का विषय है। कवि इसके लिये शब्दों की योजना में वस्तु और क्रिया के रूप और भाव-चित्रों को उभारता चलता है। और यह कार्य वह प्रकृति के विभिन्न रूपों की वर्णनात्मक योजना से करता है। प्रकृति के यथातथ्य जगत् से स्थितियों को चुनने में यथार्थवादी और आदर्शवादी दोनों का क्षेत्र एक है, केवल उनके दृष्टिकोणों में अन्तर है। इन दोनों के चयन में इस कारण भारी अन्तर आ जाता है। आदर्शवादी सौन्दर्य के अनुरूप प्रकृति के प्रत्यक्ष से स्थितियाँ चुनता है और उपकरणों का

आश्रय लेता है, पर यथार्थवादी प्रकृति को उसकी समग्र स्थितियों में ग्रहण करने का प्रयास करता है। सन्स्कृत काव्य की समस्त परम्परा में आज के यथार्थवाद का रूप नहीं मिलेगा। यह काव्य अपनी प्रकृति में पूर्ण आदर्शवादी (मौन्दर्व्यवादी) है। वर्णना के अन्तर्गत प्रथम शैली वह है जिसमें दृश्य-चित्र अपनी प्रमुख वस्तु और क्रिया की स्थितियों की रेखाओं में सोमा ग्रहण करता है। ऐसे चित्रों में दृश्यात्मक पूर्णता नहीं वरन् गोचर आभास (काव्य में) मिलता है। प्रकृति के जिस दृश्य या ऋतु के जिस रूप को कवि प्रत्यक्ष करता है, उसको विशिष्ट देश-काल में या तो बौधता ही नहीं और या केवल सामान्य विशेषता की रेखाएँ दे पाता है। इन रेखा-चित्रों की शैली से मिलती-जुलती वर्णना की दूसरी शैली संश्लिष्ट योजना की है। दृश्य की स्थितियों की योजना का विस्तार दोनों में होता है, केवल प्रस्तुत करने के ढंग में अन्तर है। एक में व्यापक चयन के आधार पर चित्र की रेखाओं को उभारा भर जाता है, और दूसरी शैली में स्थितियों की सूक्ष्म संश्लिष्ट योजना से चित्र अपनी पूर्णता और विशिष्टता के साथ गोचर हो उठता है। वर्णना शैली के इन दो रूपों के आधार पर अन्य शैलियाँ भी प्रयुक्त होती हैं। क्योंकि चाहे शैली की दृष्टि से आलम्बिक चित्रमयता हो या रूढिवादिता, चाहे भावात्मक आरोप हो या व्युत्पत्ति, वर्णन के इन दो सामान्य और विशेष रूपों का आधार मदा रहता है।

§ ५—कथानक के प्रवाह में जब प्रसंग के अनुसार कवि देश-काल की पार्श्व-भूमि उपस्थित करना चाहता है, और साथ ही अपनी वर्णना में समता नहीं, उस समय वह प्रकृति का चित्रण केवल रेखा-चित्र रेखा-चित्रों में करता है। वन-पर्वत, सरिता-सरोवर, विभिन्न ऋतुओं आदि का उल्लेख वह व्यापक विशेषताओं के चयन से करता है। इन वर्णनों से पाठकों के मन पर किसी देश की निश्चित रूपमयता का चित्र नहीं उभरता, केवल रूप भल्लक भर जाता है; काल-परिवर्तन का निश्चित क्रम नहीं अंकित होता, वरन् गति का आभास भर आता

है। महाप्रबन्ध काव्यो के कथा-विस्तार में इस प्रकार के रेखा-चित्रो को अधिक अवसर मिला है। आगे के महाकाव्यो में कथा का ऐसा विस्तार नहीं है और उनमें कथा-वस्तु के विकास का न इतना आग्रह है। उनमें सौन्दर्य के दृष्टिबिन्दु से वर्णन-विस्तार का पर्याप्त अवसर मिला है, और कलात्मक प्रवृत्ति के फलस्वरूप वर्णनो को चित्रमय बनाने का प्रयास किया गया है। जैसा हम आगे के प्रकरणो में देखेंगे बाद के महाकाव्यो में प्रकृति-वर्णन की निश्चित रूढ़ि हो गई। फिर भी महाकाव्यो में यत्र-तत्र सक्षिप्त देश-काल के निर्देश मिलते हैं, परन्तु वे अपनी प्रवृत्ति के अनुसार अलकृत हैं। प्रकृति वर्णन की सरल रूप-रेखा महाभारत को विशेषता है। इस महाप्रबन्ध काव्य में कथा की शृंखलाएँ अपने विस्तार में इस प्रकार फैलती जाती हैं कि उनको वस्तु-स्थिति तथा परिस्थिति का आधार ग्रहण करने का अवसर ही नहीं मिल पाता। वर्णन का पूर्ण विस्तार न होने पर वातावरण का आभास भर देना कथाकार का उद्देश्य रह जाता है। ऐसी स्थिति में कथाकार प्रकृति-दृश्य के चुने हुए उपकरणों की रेखाओं से चित्र का संकेत देकर आगे बढ़ जाता है। इस रेखा-चित्र में रूप की व्यापक व्यञ्जना होती है, किसी देश-काल की निश्चित सीमाओं का निर्देश नहीं मिलता। कभी इस वर्णन-शैली में जिन चुनी हुई वस्तु-व्यापार-स्थितियों का संयोग होता है उनसे केवल व्यापक अर्थों में वन, सरिता या पर्वत का रूप सामने आता है। अर्जुन पाशुपतास्त्र के लिये हिमवान् के निकट जाते हैं। और उसकी जिस शोभा पर वह मुग्ध होते हैं कथाकार उसका चित्र व्यापक रेखाओं में उभारता है—

तत्रापश्यद् द्रुमान्फुल्लान्विहगैर्वल्गु नादितान् ।

नदीश्च बहुलावर्ता नीलवैदूर्यसन्निभाः ॥

हंसकारण्डवोद्गीताः सारसाभिरुतास्तथा ।

पुंस्कोकिलस्ताश्चैव क्रौञ्चबहिर्गनादिताः ॥

मनोहरवनोपेतास्तस्मिन्नतिरथाऽर्जुनः ।

पुण्यशीतामलजलाः पश्यन्प्रीतमनाभवत् ॥^१

१

[वहाँ अर्जुन ने देखा — वृक्ष फूल-पत्तों से आच्छादित हो रहे हैं और अनेक प्रकार के पक्षी डालियों पर बैठे मधुर स्वर कर रहे हैं । वैदूर्य-मणि के समान नीलाभ जलवाली नदियाँ हैं जिनमें अनेक भँवर हैं । इस मनोहर वन के निकट पवित्र आर शातल जलाशय हैं जिनमें हस, कारणडव, सारस, कोकिल, क्रीच तथा मयूर आदि अनेक पक्षी क्रीडा करते हैं और निनाद कर रहे हैं । इस शोभा को देखकर वीर अर्जुन मुग्ध हो गये ।] इस वर्णन से दृश्य की कोई निश्चित कल्पना मन में नहीं उठती, जैसे कोई दृश्य शीघ्र ही सामने से निकल गया हो । इस शैली का प्रयोग प्रसंग में आये हुए किसी स्थल का आभास देने के लिए अथवा किसी विस्तृत प्राकृतिक दृश्य का संक्षिप्त वातावरण प्रस्तुत करने के लिए हुआ है । काव्य में इसका उपयोग प्रयोजन के अनुरूप सदा होता आया है, पर महाभारत जैसी रेखाओं की सरलता और उद्देश्य-प्रभाव का निश्चय अन्यत्र नहीं है ।

रामायण में भी इस शैली का प्रयोग ऐसे अवसरो पर किया गया है जहाँ कवि का उद्देश्य प्राकृतिक प्रदेश का परिचय मात्र देना है । कथा-नायक राम अनेक वनों में विचरण करते हैं और कवि उनका वातावरण प्रस्तुत करता चलना है —

तौ पश्यमानौ विविधाञ्छैलप्रस्थान्वनानि च ।

नदीश्च विविधा रम्या जग्मतु सह सीतया ॥

सारसांश्चक्रवाकांश्च नदीपुल्लिनचारिणः ।

सरांसि च सपद्मानि युतानि जलजै खगैः ॥

यूथबन्धांश्च पृषता मदान्मत्तान्विषाणिन ।

महिषांश्च वराहांश्च राजांश्च द्रुमवैरिण ॥^२

१. महा० , आर० पर्व , अध्या० ३९ , १७—१९ ।

२. रामा० , अर० का० , सर्ग ११ , २—४ ।

[मार्ग में ये लोग नाना प्रकार के पर्वतश्रृङ्गों, वनों तथा सुख्य नदियों को देखते जाते थे । सरिताओं के पुलिन पर सारस और चक्रवाक क्रीड़ा कर रहे थे । सरोवरो को भी उन्होंने देखा जिसमें कमल खिले हुए थे और जलचर पक्षी विचर रहे थे । वे भुण्ड के भुण्ड मृगा, मनवाले गैडों, भैसों, वराहों और वृक्षां के शत्रु हाथियों को देखते जा रहे थे ।] इस वर्णन में प्रमुख वस्तुओं के उल्लेख द्वारा वातावरण का निर्माण किया है । आदि कवि ने विस्तृत सश्लिष्ट प्रकृति-वर्णन अधिकता से किये हैं, परन्तु मार्ग आदि के सक्षिप्त और सकेतात्मक वर्णनों में इस शैली का उपयोग भी किया है । महाकाव्यों की परम्परा में यत्र-तत्र वर्णना को सक्षिप्त और सकेतात्मक प्रस्तुत करने की आवश्यकता हुई है । परन्तु ऐसे अवसरों पर कवियों ने कलात्मक प्रयोग किये हैं । इस प्रकार की सरल रेखाओं की योजना उनमें नहीं मिलती । कालिदास, दिलीप के नन्दिनी को चरा कर लोटते समय का सन्ध्या-चित्र सक्षिप्त रेखाओं में इस प्रकार उपस्थित करते हैं—

स पत्त्वत्तोतीर्णवराहयूथान्यावासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि ।

ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन् ॥^३

[छिछले जलाशयों से वराहों के समूह बाहर निकल रहे थे; मयूर अपने निवास करने के वृक्षां पर जा रहे थे और हरे घास के मैदान मृगों से पूर्ण हो रहे थे । दिलीप ऐसे अधकार से श्याम-वर्ण होते हुए वन को देखता हुआ लाटा ।] इस चित्र में वातावरण के निर्माण के लिये संक्षिप्त रेखाओं का प्रयोग किया गया है, पर कालिदास के चयन ने इसे पूरे रंगों के साथ व्यञ्जित कर दिया है । रेखा-चित्रों में चयन और योजना की विशेषताओं से कलात्मक सौन्दर्य उत्पन्न किया जा सकता है, यह इसका उदाहरण है । इसी प्रकार की कलात्मक योजना किरातार्जुनीय के इस दृश्य में है—

रञ्जिता नु विविधास्तरुशैला नामितं नु गगनं स्थगितं नु ।

पूरिता नु विषमेषु धरित्री संहता नु कुकुभस्तिमिरेण ॥ ८

[अधकार से समस्त वृक्ष और पर्वत रञ्जित हो गये हैं, पृथ्वी से आकाश तक आच्छादित हो गये हैं, धरती की विषमता अदृश्य हो गई है और दिशाएँ लुप्त हो गई हैं ।] इमम अन्धकार का व्यापक रेखाओं में वर्णन किया गया है, पर इन रेखाओं में चित्र की गहरी व्यञ्जना छिपी हुई है । परन्तु इन कवियों में चित्र की सद्गिन रूप-रेखा को भी अलंकारों से कलात्मक बनाने की प्रवृत्ति अधिक है

५६—प्रथम शैली और सश्लिष्ट योजना में अधिक अन्तर नहीं है । वस्तु क्रिया की विभिन्न स्थितियों की याजना का दृष्टि-बिन्दु समान है, केवल दोनों में विस्तार और चयन का अन्तर है । सश्लिष्ट योजना रेखा-चित्र की शैली में दृश्य के प्रमुख उपकरणों के चयन द्वारा व्यापक आभास दिया जाता है या वातावरण प्रस्तुत किया जाता है, पर सश्लिष्ट योजना में चित्र को पूर्ण और प्रत्यक्ष बनाने की ओर अधिक ध्यान रहता है । महाभारत में इस प्रकार के दृश्यों की उद्भावना बहुत कम हुई है । अगले प्रकरण में हम देखेंगे कि इसका कारण उसमें कथा सम्बन्धी आग्रह है । परन्तु इसमें ऐसे स्थल भी हैं जिनका चित्रण सघन वातावरण में किया गया है । दर्धच के आश्रम का वर्णन इस प्रकार चयन है—‘सरस्वती के दूसरे तट पर नाना द्रुम-जताओं से आच्छादित दर्धच के आश्रम, देवता नारायण को आगे करके गये वह आश्रम भ्रमर की गुञ्जार से, कौकिल के स्वर से तथा अनेक पक्षियों के मिश्रित स्वर से सामगान की भौंति निनादित हो रहा था । वहाँ ~~कौकिल~~ प्रकार के भैंसा, वराह, सूमर तथा मृग आदि पशु शार्दूल में निर्भय इधर उधर

विचरण करते हैं। मद से सिक्त मस्तकवाले हाथी अपनी सूँड़ों से जल में क्रीडा करते हुए चारों ओर से नाद करते हैं। वह आश्रम एक ओर सिंह और व्याघ्र के नाद से गुञ्जायमान होता है और दूसरी ओर उसमें गुफा और कन्दराओं में बसनेवाले हैं। इस प्रकार अनेक स्थितियों में मनोरम यह आश्रम है।]^५ इस वर्णन में अपेक्षाकृत सश्लिष्टता है। रामायण में इस प्रकार के वर्णनों की अधिकता है। आदि कवि ने प्रकृति को देश-काल की निश्चित तथा विशिष्ट सीमाओं में अधिक उपस्थित किया है। ये प्रकृति-चित्र अपनी स्वाभाविकता में पूर्ण सश्लिष्ट हैं अर्थात् इनमें वस्तु-क्रिया की विभिन्न स्थितियों का सूक्ष्म विवरण उपस्थित किया गया है। जिस प्रकार कवि की सहृदयता इन दृश्यों के साथ जागरूक है, उसी प्रकार की विम्बग्राही इनकी वर्णना भी हो सकी है। राम सीता से मन्दाकिनी का वर्णन कर रहे हैं—

विचित्रपुलिना रम्यां हंससारससेविताम् ।

कुसुमैरूपसंपन्नां पश्य मन्दाकिनी नदीम् ॥

मारुतोद्धृतशिखरैः प्रनृत्त इव पर्वतः ।

पादपैः पुष्पपत्राणि सृजद्भिरभितो नदीम् ॥

निर्धूतान्वायुना पश्य विततान्पुष्पसंचयान् ।

पोप्लूयमानानपरान्पश्य त्वं तनुमध्यमे ॥^६

[हे सीता, इस रमणीय तटवाली विचित्र मन्दाकिनी को देखो जिसके तटों पर हंस और सारस कल्लोल करते हैं और जो पुष्पित वृक्षों से घिरे हैं। पवन से प्रताडित शिखरों से जो नृत्य सा करता है, ऐसा पर्वत वृक्षों से नदी पर चारों ओर पुष्प और पत्र विकीर्ण करता है। हे भद्रे, पवन के झोके से नदी के तट पर विखरे हुए पुष्पों के ढेर को देखो और इन दूसरे पुष्पों को देखो जो उड़कर जल में जा गिरे हैं,

५. महा०, आर० प०; अ० ९६, १३—१७।

६. रामा०, अयो० का०, स० ९५; ३, ८, १०।

वे पानी में कैसे तैर रहे हैं।] इस वर्णन में प्रकृति की प्रत्येक स्थिति और उसके प्रत्येक व्यापार को सामने उपस्थित करके चित्र को पूर्ण करने की प्रवृत्ति है।

क—महाकाव्यों की परम्परा के साथ कलात्मकता और आलंकारिकता का विकास हुआ है। इस कारण सहज संश्लिष्ट योजना की प्रवृत्ति इनमें क्रमशः कम होती गई है। रामायण में यह महाकाव्य की परम्परा कलात्मक प्रवृत्ति पाई अवश्य जाती है, पर इसमें स्वाभाविक सौन्दर्य अधिक है। भरत वशिष्ठ को चित्रकूट दिखाते हैं—
 “देखिए पर्वत के श्रृंगों पर ये वृक्ष पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं जैसे नील जलद वर्षा-काल में जल-वृष्टि करते हैं। देखिए, ये भगाये हुए हिरण किस वेग से भाग रहे हैं जैसे शरत्काल में पवन के वेग से मेघ इधर उधर दौड़ते हैं।”^{१०} प्रकृति के एक चित्र को दूसरे अप्रस्तुत चित्र से उद्भासित करने की कला महाकाव्यों में विकसित होती गई है और आगे हम देखेंगे कि यही रूढ़िवादी होकर उक्ति वैचित्र्य हो गई है। परन्तु कालिदास में सहज संश्लिष्ट योजना यत्र-तत्र मिल जाती है। अश्वघोष के प्रकृति-वर्णन अपनी सरलता में सर्वत्र कलात्मक हैं। वास्तव में महाकाव्यों में अलङ्कारों से मुक्त संश्लिष्ट चित्रों का पाना कठिन है, क्योंकि ये काव्य आदर्श कल्पनाओं से भरे हैं। इनमें स्वभावोक्ति को स्थान बहुत कम मिल सका। कालिदास प्रकृति को सूक्ष्म विश्लेषण की दृष्टि से देख सके हैं पर उनकी व्यापक प्रवृत्ति कलात्मक सौन्दर्य-सर्जन की है। यद्यपि इनके ऋतुसंहार के वर्णन उद्दीपन की भावना से प्रभावित हैं, इनमें बहुत से स्थला पर संश्लिष्ट चित्रमयता भी पाई जाती है। ग्रीष्म के इन दृश्यों में किनारी मजीबता है—

समद्रमुस्तं परिशुष्ककर्मं सरः खनन्नायतपोत्तमखड्गैः ।

रवेर्मयूखैरभितापितो भृशं वराहयूथो विशतीव भूतलम् ॥

सफेनलालावृतवक्त्रसम्पुटं विनिःसृतालोहितजिह्वमुन्मुखम् ।

नृषाकुलं निःसृतमद्रिगह्वराद् गवेषमाणं महिषीकुलं जलम् ॥^८

[क्रमशः सूर्य-किरणों से सतत होकर जंगली शूकरों का समूह जान पड़ता है पृथ्वीतल में प्रवेश कर रहा है। क्योंकि अपनी तीव्र दाढ़ों से पंकिल भद्रमस्ता घास से युक्त तालों को खोदते समय कीचड़ उन पर सूख गया है। प्यास से व्याकुल होकर जिनके मुख फेन और भाग से भर गये हैं और जिनकी लाल जीभ मुख से निकल पड़ी है, ऐसी भैसों का झुण्ड अपनी गरदन उठाये पानी की खोज में पर्वत की कन्दराओं से निकल पड़ा है।] अन्यत्र अपने महाकाव्यों में कालिदास ने किसी-किसी स्थल पर ऐसे वर्णन प्रस्तुत किये हैं। परन्तु ये चित्र आलंकारिक सौन्दर्य-व्यजना के साथ इस प्रकार मिल-जुल गये हैं कि इनको अलग नहीं किया जा सकता। रघुवंश में दिलीप के मार्ग का वर्णन इसी प्रकार का है—

सेव्यमानौ सुखस्पशैः शालनिर्यासगन्धिभिः ।

पुष्परेणुस्किरैर्वातैराधूतवनराजिभिः ॥

परस्परास्त्रिसादृश्यमदूरोज्जितवर्त्मसु ।

मृगद्वन्द्वेषु पश्यन्तौ स्थन्दनाबद्धदृष्टिषु ॥^९

[स्पर्श से सुख देनेवाले, शालेवृक्ष के गोंद की गन्धवाले, पुष्पों के पराग को विकीर्ण करनेवाले तथा वनराजि को किञ्चित कपानेवाले पवनों से ये दोनों सेवित हुए। निकटवर्ती मार्ग को छोड़ते हुए, जिनकी दृष्टियाँ रथ में बँध रही हैं ऐसे मृग के जोड़े के साथ परस्पर अपनी आँखों की समानता उन्होंने देखी।] इन वर्णनों में काव्यात्मक सौन्दर्य विशेष है। वास्तव में महाप्रबन्ध काव्यों जैसी प्रकृति की सरिलिष्ट वर्णना का इनमें अवसर नहीं मिला है। प्रकृति में एक अदृश्य चेतना वे

८. ऋत्तु०, स० १, १७, २१।

९. रघु०, स० १, ३८, ४०।

आरंभ के द्वारा कवि एक विशेष सौन्दर्य की व्यंजना भी करता है। प्रवरसेन शरत्कालीन वर्णन इस प्रकार करते हैं—

पर्याप्तसज्जिलधौते दूरालोक्यमाननिर्मले गगनतले ।
अत्यासन्नमिव स्थितं विभक्तपरभागप्रकटं शशिविम्बम् ॥
चिरकालप्रतिनिवृत्तं दिक्षु घूर्णमानकुमुदरज्जोविलिप्तम् ।
अमन्यलब्धास्वादं कमलाकरदर्शनोत्सुकं हंसकुलम् ॥^{१०}

[वर्षाकाल के पर्याप्त जल से बुले हुए अत्यन्त स्वच्छ और प्रकाशित आकाश मण्डल में मेघादि में विमुक्त होकर चन्द्रविम्ब अत्यन्त निकट स्थित जान पड़ता है। तथा चिरकाल के बाद वापस लौटा हुआ, मन्द पवन से प्रेरित कुमुद की रज से धूम्रित इस समूह स्वाद की आशा-आशाक्षा से कमल-सरोवरों के दर्शन की उत्सुकता से घूमता है।] इस वर्णन में भी कलात्मक संश्लिष्टता है। इसमें एक तो प्रकृति की आदर्श स्थितियों को चुना गया है और दूसरे व्यापारों की योजना से चित्र में चेतन व्यंजना छिपी हुई है। इनमें और महाप्रबन्ध काव्यों के संश्लिष्ट वर्णनों में स्थिति-योजना सम्बन्धी साम्य भर है। इसी प्रकार भारवि ने सन्ध्या-वर्णन के अन्तर्गत एक दृश्य उपन्यस्त किया है—

गन्धमुद्धतरजः कणवाही चित्तिपन्विकसतां कुमुदानाम् ।
आदुधाव परिक्लीनविहङ्गा यामिनीमरुद्गं वनराजीः ॥^{११}

[जलकणों को वहन करता हुआ, विकसित कुमुदों की रज को प्रसरित करके गन्ध विकीर्ण करनेवाला रात्रि-पवन जिनकी कोटरो में पक्षी शयन कर रहे हैं ऐसी वनराजि को कम्पायमान करता है।] इसमें जैसा स्पष्ट है प्रकृति के व्यापारों की योजना है, पर यह चित्राकन की शैली भारवि को अपनी शैली नहीं है।

१० सेतु०, आ० १, २५, २६।

११ किरा०, म० ९, ३१।

ख—कहा गया है कि संश्लिष्ट योजना महाकाव्यों की अलंकृत और कलात्मक प्रवृत्ति के अनुरूप नहीं है। वर्णन सम्बंधी इनकी संश्लिष्टता में चित्रमयता का आग्रह अधिक है। परन्तु नाटको नाटको की परम्परा में इस शैली को स्वतंत्र रूप से स्थान मिल सका है। इसके लिये कारण भी है। नाटकों की प्रकृति-वर्णना अधिकतर देश-काल की सीमाओं को उभारने के लिये तथा परिस्थिति को स्पष्ट करने के लिए होती है। प्रेक्षक या पाठक के मन में नाटककार अपनी कथा के अनुरूप वातावरण उपास्थित करना चाहता है और साथ ही घटना को स्थिति का आधार प्रदान करना चाहता है। और यह कार्य स्थिति की संश्लिष्ट योजना से सिद्ध हो सकता है। इस स्थिति में स्वभावोक्ति के यथार्थ-चित्रण के लिये पूरा अवसर है। मालविकाग्निमित्र में मध्याह्न की सूचना कितनी पूर्ण है—“दोपहर हो गई। बावलियों के कमल की पखडियों की छाया में आँख मूँद कर हंस विश्राम कर रहे हैं। धूप से भवन ऐसा तप गया है कि छज्जे पर कबूतर तक नहीं बैठ रहे हैं। चलते हुए रहट में उछलते हुए पानी की बूंद पीने के लिए मोर चारों ओर चक्कर लगा रहे हैं। समस्त राजसी गुणों को दीप्त करता हुआ सूर्य अपनी पूर्ण किरणों में चमक रहा है।”^{१२} ग्रीष्म की दोपहर का इतना सहज चित्र अन्यत्र मिलना कठिन है। इसी प्रकार कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में तपोवन का वर्णन किया है—

नीवारा शुक्रार्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरुणामधः

प्रस्निग्धाः कच्चिद्विज्जुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपत्ताः ।

विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-

स्तोयाधारपथाश्च वलकलशिखानिष्यन्दरेखाङ्किताः ॥^{१३}

[तपोवन में—वृद्धों के नीचे तोतो के कोटर के मुख से गिर-गिर

^{१२} माल०, अ० २, १२।

^{१३} अभि०, अ० १; १३।

कर नीवार नामक धान बिखरा हुआ है। हिगोट के फल को कूटने की चिकनी सिले जहाँ तहाँ रखी हुई हैं। विश्वास प्राप्त हो जाने से मृग हिल गये हैं और इस कारण रथ के शब्द से चौकते नहीं हैं। गीले वल्कलों के अग्रभाग से चूने से जलाशयों का पथ चिह्नित हो गया है।] जैसा कहा गया है इन चित्रों से कवि नाटकीय वस्तु-स्थिति को प्रत्यक्ष कर देता है। और चुने हुए उल्लेखों ने स्थिति को पूर्ण कर देने में कालिदास प्रमुख हैं। भवभूति ने उत्तर रामचरित में दण्डकारण्य का वर्णन संश्लिष्ट शैली में किया है। वस्तु आंर व्यापारों की सम्मिलित योजना से चित्र को गोचर के माथ मुखर करने में वे अप्रतिम कलाकार हैं। जनस्थान की निर्भरिणियों इस प्रकार प्रवाहित हैं—

इह समदशकुन्ताक्रान्तवानारवीस्त्-

प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति ।

फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज-

स्खलन्मुखरभूरिस्त्रोतसो निर्भरिण्य ॥ १४

[यहाँ उल्लामित पत्तियों में कूजिन वानीर लताओं के फूलों की सुरभि से शीतल और स्वच्छ नीरवाली निर्भरियों पके हुए फलों से श्यामायमान जामुन के कुञ्जों से टकरा कर घनेक धानाओं ने मुखरित होकर प्रवाहित होती हैं।]

ग—गद्य-काव्यों में इस शैली को विशेष अवसर मिल सकता था। परन्तु वाण भट्ट की शैली में सरल संश्लिष्टता के लिये स्थान नहीं है।

उनके चित्रों में व्यापक विन्तार है और स्थितियों की योजना भी सघन है, पर अलङ्कृत सौन्दर्य और वैचिध्य की प्रवृत्ति उनमें विशेष है। इन वर्णनों के बीच में स्वाभाविक वर्णना का विस्तार दिखना मिल जाता है। अगस्त के आश्रम के निकट इस प्रकार का पम्पा सरोवर है—

उत्फुल्लकुमुदकुवलयकह्लारम्, उच्चिद्रारविन्दमधुबिन्दुनिष्यन्दबद्ध-
चन्द्रकम्, अलिकुलपटलान्धकारितसौगन्धिकम्, सारसितसमदसारसम्,
अम्बुरुहमधुपानमत्तकलहसकामिनीकृतकोलाहलम्, अनेकजलचरपतङ्ग-
शतसंचलनचलितवाचालवीचिमालम्, अनिलोत्लासितकल्लोलशिखर-
सीकरारब्धदुर्दिनम् ।^{१५}

[उसके अन्दर कुमुद, कुवलय और कह्लार के पुष्प फूले हुए हैं, प्रफुल्लित कमलों में से टपकती हुई मधु की बूंदों से उसके जल पर चन्द्राकार बन रहे हैं, भौरों के झुण्डों के बैठने से उसके श्वेत कमला पर अंधकार व्याप्त हो गया है, मदोन्मत्त सारस मधुरकूजन कर रहे हैं; कमल का मधु पीने से मत्त कल-हंस-कामिनी कोलाहल कर रही हैं; अनेक प्रकार के चलचर पक्षियों के चार-चार संचरण करने से चंचल तरंग मालाएँ शब्द कर रही हैं, पवन से नाचती तरंगों के ऊपर बूंदों के उड़ने से वर्षा झट्टु सी आरम्भ हो गई है।] महाकाव्यों की परम्परा के अनु रूप इन गद्य-काव्यों में प्रकृति सम्बन्धो दृष्टिविन्दु आदर्शिकरण का है। और यह प्रवृत्ति सभी प्रकार की शैलियाँ और वर्णनों में समान रूप से पाई जाती है।

चित्रात्मक शैली

१७—अभी तक शैली के जिन रूपों की बात कही गई है उनमें प्रस्तुत विषय की विषम स्थितियों की योजना द्वारा चित्राकन किया गया है। महा-
प्रस्तुत और अप्रस्तुत काव्यों के ऐसे कुछ वर्णनों में प्रस्तुत से अप्रस्तुत वस्तु या भाव अथवा अलंकार की व्यंजना भी की गई है। परन्तु जैसा कहा गया है महाकाव्यों में स्वभावोक्ति को क्रमशः कम स्थान मिला है। और अलंकारों के प्रयोग के साथ इनके वर्णनों में अप्रस्तुत विधान अधिक प्रधान हो गया है। अप्रस्तुत-विधान का मौलिक

आधार काव्यात्मक सौन्दर्य की उद्भावना है, ऊहात्मक वैचित्र्य की सीमा तो इसकी विकृति है। प्रकृति-दृश्य की वर्णना को अधिक चित्रमय बनाने के लिये प्रस्तुत को अप्रस्तुत के द्वारा अधिक ग्राही और व्यञ्जक करते हैं। प्रस्तुत वर्य-विषय पाठक की कल्पना का आधार उपस्थित करता है और इस कल्पना को पूर्ण विकसित तथा उद्भासित करने के लिये अप्रस्तुत उपमानों की योजना कवि करता है। उपमानों की विभिन्न रूप-स्थितियों पाठक की कल्पना में भाव-संयोग द्वारा उपमेय-वर्य को अधिक बोधगम्य और प्रत्यक्ष बनाती हैं। इस चित्रात्मक शैली में अप्रस्तुत उसी सीमा तक आ सकते हैं जब तक वे वर्य दृश्य के समानान्तर चित्रों को उपमान रूप में उपस्थित करें। कवि उपमानों को जगत् से ग्रहण करता है, पर अपनी कल्पना से भी उनकी योजना करने के लिये स्वतंत्र है। जहाँ तक कवि की प्रादोक्ति वर्य विषय को सुन्दर बनाने में सहायक होती है, यह इसा शैली के अन्तर्गत आती है। वस्तुओं के वर्णन के साथ अलंकारों से भावात्मक व्यञ्जना भी सन्निहित की गई है। इस प्रकार इस शैली के अन्तर्गत स्वतःसम्भावी और प्रादोक्ति सम्भव कल्पना के साथ भावात्मक व्यञ्जना आ जाती है।

५—वर्यना के क्षेत्र में काव्य-सौन्दर्य के लिए अप्रस्तुत योजना स्वतःसम्भावी कल्पना के आधार पर सर्वश्रेष्ठ होती है। वर्णना में स्वाभाविक चित्रमयता शैली के इसी रूप से आती है। कवि की प्रतिभा का क्षेत्र एक प्रकृति चित्र को दूसरे समान प्रकृति-चित्र से प्रत्यक्ष करने में अधिक मुक्त होता है। इसी से प्रकट होता है कि कवि की प्रकृति में कितनी अन्त-दृष्टि है। सौन्दर्य-बोध की यह प्रवृत्ति वाल्मीकि से ही पाई जाती है। आदि कवि ने अपने विस्तृत संश्लिष्ट वर्णनों में स्थान-स्थान पर चित्र को अधिक रगमय तथा मुखर बनाने के लिए ऐसे प्रयोग किये हैं, इसका उल्लेख ऊपर किया गया है। अश्वघोष के लिये यह कठिन है कि वे चित्रा अप्रस्तुत विधान के किसी दृश्य का वर्णन कर सकें। इनके वर्णनों में

स्वतःसम्भावी
कल्पना

उपदेशात्मक व्यंजना अवरुध है, फिर भी सुन्दर चित्रात्मक शैली का प्रयोग इन्होंने किया है। सौन्दरनन्द में कपिल के आश्रम का वर्णन इस प्रकार है—

चारुवीरुत्तरुवनः प्रत्निग्धमृदुशाद्वलः ।

हविर्धूमवितानेन यस्सदाश्र इवावभौ ।

मृदुभि सैकतैः स्निग्धै केसरास्तरपाण्डुभिः ॥

भूमिभागैरसक्रीणैः साङ्गराग इवाभवत् ॥^{१६}

[उस तपोवन में सुन्दर लता और वृक्षों से युक्त वन तथा चिकनी मृदुल हरी घास के मैदान थे। वह यज्ञ के धूम्र से आच्छादित सदा बादलों से छाया हुआ जान पड़ता था। केसर के विक्रीर्ण होने से पीले स्निग्ध तथा चिकने बालू के विस्तृत भूमिभाग से वह तपोवन अङ्गराग से युक्त जान पड़ता था।] धूम्र से आच्छादित तपोवन की कल्पना बादल के छाये रहने से कैसी प्रत्यक्ष हो जाती है। कालिदास जिस प्रकार प्रकृति के स्वाभाविक रूप रंगों से सब से अधिक परिचित हैं, उसी प्रकार उन वर्णनों के चित्रित करने में उनकी कल्पना सशक्त और सहज है। राम सीता को पंचाप्सर नामक सरोवर दिखाते हैं—

एतन्मुनेर्मानिनि ! शातकर्णं पञ्चाप्सरो नाम विहारवारि ।

आभाति पर्यन्तवनं विदूरान्मेघान्तरालच्यमिवेन्दुबिम्बम् ॥

[हे मानिनि, शातकर्ण मुनि का यह पंचाप्सर नामक चतुर्दिक् वन से घिरा हुआ जल-विहार करने का सरोवर है, जो बादलों के बीच में दिखाई देते हुए चन्द्रबिम्ब के समान प्रकाशित होता है।] इसी प्रसंग में आगे चलकर संगम का वर्णन इसी शैली में किया गया है। जो अप्रस्तुत प्रकृति से न लिये जाकर अन्य क्षेत्रों से लिये गये हैं उनमें भी चित्र को प्रत्यक्ष करने का उतना ही सौन्दर्य है। कालिदास की कल्पना सौन्दर्य सर्जन ही करती है, चाहे वह आकाश में उड़ती हुई

सारसो की रेखा को वन्दनवार की उपमा दे अथवा निकटवती लताओं को पुष्प-वर्षा को पुर-कन्याओं द्वारा लावा की वर्षा कहे। इन्हीं प्रकार-का सौन्दर्य इस वर्णन में भी है—

संहारविच्छेपलघुक्रियेण हस्तेन तोराभिमुखः सशब्दम् ।

बभौ स भिन्दन्वृहनस्तरंगान्वार्यर्गलाभङ्ग इव प्रवृत्तः ॥^{१७}

[तीर की ओर आता हुआ वह हाथी मंकोचन तथा प्रसागण की क्षिप्र क्रिया में सलग्न सूँड़ से बड़ी-बड़ी तरंगों को शब्द महित भग्न करता हुआ बन्धन की अर्गला को तोड़ने में उद्यत हुआ सा शोभित हुआ ।] मानवीकरण में भी कालिदास इस शैली का प्रयोग करते हैं। सहज उपमानों की योजना में आगे के कवियों की क्लिष्ट कल्पना नहीं आती है। एक प्रकार से प्रकृति के रूप को अधिक सजीव बनाने के लिये कवि ने यह प्रयोग किया है—

पर्याप्तपुष्पस्तबकस्तनाभ्य स्फुरत्प्रवालौष्ठमनोहराभ्यः ।

लताबधू-भस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि ॥^{१८}

[वृक्षों ने भी अपनी झुकी हुई शाखा रूपी भुज-बन्धनों से बड़े-बड़े पुष्पगुच्छों के रूप में स्तनवाली तथा हिलते हुए नवपल्लवों से सुन्दर ओठवाली लताओं का आलिंगन किया ।] इस वर्णन में अप्रस्तुत योजना इतनी अप्रधान रखी गई है कि सामने वृक्षों की डालियों पर हिलती हुई लताओं के पुष्प-गुच्छ और किशलय ही अधिक उभर आते हैं; और उपमा प्रकृति में मानवी-स्पर्श उत्पन्न कर देती है। बुद्धघोष कालिदास के परवर्ती हैं साथ ही उनके काव्य से प्रभावित भी हैं। उनमें आलंकारिक सौन्दर्य का मोह अधिक है, पर इनके वर्णनों में सीधी बात कहने की प्रवृत्ति अश्वघोष और कालिदास से ग्रहण की गई है। पावस

१७. रघु०, स० १३; ३८ : स० १, ४१ : स० २, १० : स० ५, ४२।

१८. कुमा०; स० ३, ३९ : स० ८, ३७ में सन्ध्या के अवकार-प्रकाश की आधे सूखे सरोवर से उपमा।

के उमड़ते ब्रदलो की कल्पना को वे इस प्रकार प्रत्यक्ष करते हैं—

पयोदकालेन चिरप्रवासिना

समागतेनाभिनवं प्रिये दिशाम् ।

विमुच्यमाना इव केशवेण्यो

विनान्ति कामं नवमेघपङ्क्तयः ॥

[हे प्रिये, चिरप्रवासिन पयोद काल द्वारा नवीन समागम के लिये नव मेघों की पंक्ति के रूप में दिशा की मुक्त केशराशि (वेणी) अत्यन्त शोभित हो रही है।] प्रकृति के इस मानवीकरण में सरल भावात्मक व्यञ्जना सन्निहित है जो अप्रस्तुत से ध्वनित होता है। फिर भी इसमें प्रकृति प्रत्यक्ष है। कभी कवि लम्बी योजना करता है—

आकाशसिन्धोरपराहृणकरणं-

धाराधिपः संहतरश्मिजालः ।

प्रक्षेपणीभिः स्फटिकात्मिकाभि-

दिगन्ततीर तरणिं निनाय ॥१६

[आकाश रूपी सिन्धु के सायकाल रूपी नाविकपति ने अपने सूर्य-किरण के जाल को खींच लिया है और वह सूर्यकान्तमणि के नौकादण्ड से सूर्य रूपी तरणी को दिगन्त के तीर पर ले गया।] इस चित्र में रूप और क्रिया को मिला कर जो उपमानों की योजना हुई है उससे कलात्मक सौन्दर्य उत्पन्न हो गया है। ऐसे प्रयोगों में बुद्धघोष कान्दिदास के निकट पहुँचते हैं।

क—बुद्धघोष के समान कुमारदास कलात्मक सौन्दर्य के प्रयोगों में कालिदास के समीप हैं। उनकी उपमाओं में प्रकृति को अन्य चित्रों से उद्भासित करने की भावना अधिक है। ये अप्रस्तुत सरल और चित्रमय हैं। लता-गुल्मों में छिपे हुए अलि के समान श्याम अन्धकार को नष्ट करने के लिये वृद्धों की सघन डालियों

के छिद्र से चन्द्रमा अपनी किरणों फेक रहा है, अथवा—

क्षीरवारिनिधिना विवर्धिना ग्लाण्यमानवदसौ निशाकरः ।

उत्पतत्युदयत शनैः शनैर्हारशुभ्रनिजरश्मिसंचयः ॥

[हार के समान अपनी उज्वल रश्मियों को घनीभूत करके बढते हुए स्वच्छ नीरनिधि में तैरता हुआ सा चन्द्रमा उदयाचल से उदित हो रहा है ।] इस वर्णन में स्वाभाविक कल्पना है । इसमें कवि अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देता है । आकाश में बढते हुए सागर की कल्पना कुमारदास को कालिदास के समकक्ष पहुँचा देती है । प्रकृति से भिन्न, अन्य क्षेत्रों से उपमानों को प्रस्तुत करने में भा कुमारदास इसी प्रतिभा का परिचय देते हैं—

वृक्षा मनोज्ञद्युति चम्काख्या रूप वितेनुर्नवकुडमलाख्या ।

न्यस्ता वसन्तस्य वनस्थलीभिः सहास्रदीपा इव दीपवृक्षः ॥ ८०

[नव विकसित कलियां से आच्छादित वृक्षां ने चम्पक के नाम से सौन्दर्य प्राप्त कर मनभावनी शोभा धारण की; जान पड़ता है वसन्त की वनस्थलियों ने सहस्र दीपांवाला दीपाधार स्थापित किया है ।] यह दीपाधार की उपमा प्रकृति-सौन्दर्य के कितने निकट है । कल्पना-सौन्दर्य के क्षेत्र में सेतुबन्ध के रचयिता प्रवरसेन का स्थान ऊँचा है, वे कालिदास के निकट माने जा सकते हैं । केवल इनकी कल्पना में यथार्थ जगत् का स्पर्श बहुत कम है, और कालिदास इस क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ हैं । प्रवरसेन प्रकृति से परिचित हैं पर वे उसके आदर्श रूप-रंग को अधिक चित्रित करते हैं । जहाँ तक प्रकृति के चित्राकन का प्रश्न है ये सुन्दर सहज अप्रस्तुत की योजना उसी सफलता से करते हैं —

व्यतिक्रामन्ति च पश्यन्त प्रतिमासंक्रान्तधवलघनसवातान् ।

स्फुटस्फटिकशिलासंकुलस्खलितोपरिप्रस्थितानिव नदीप्रवाहान् ॥

[सफेद बादलों के समूह को प्रतिछाया के रूप में ग्रहण कर लिया

है ऐसे नदी के प्रवाह को देखते हुए वे लॉथ गये; ऐसा जान पड़ता था जैसे स्वच्छ स्फटिक शिलाओं के समूह से टकरा कर उसके ऊपर से नदी प्रवाहित हो रही हो।] इस चित्र में कितना सहज विधान है। परन्तु प्रवरसेन में जटिल कल्पनाओं का मोह है। जिस प्रकार उनकी वर्णना का विषय अदर्श कल्पनाओं से चुना गया है, उसी प्रकार उनके अप्रस्तुत चयन का क्षेत्र भी। परन्तु प्रकृति के इन दोनों आदर्श रूपों के सन्तुलन में सौन्दर्य की रक्षा करना इन्हीं का काम है—

शोभते विशुद्धकिरणो गगनसमुद्रे रजनिवेलाखण्डः ।

तारामुक्ताप्रकरः स्फुटविघटितमेघशुक्तिसंपुटमुक्तः ॥

[आकाश रूपी समुद्र के रजनी तट पर बिखरे हुए शुभ्र किरणवाले तारा रूपी मोतियों का समूह मेघ-सीपी के सपुट के खुलने से बिखरा हुआ सुशोभित है।] इस चित्र में प्रस्तुत और अप्रस्तुत इस प्रकार मिल जुल कर सामने उभर आते हैं कि सौन्दर्य-बोध में उनका अलग अस्तित्व ही नहीं जान पड़ता। कवि ने सहज प्रकृति के लिए स्वतः सम्भावी आदर्श से उपमान ग्रहण किया है। यहाँ स्वतःसम्भावी का अर्थ परम्परा से भिन्न हो सकता है। सीप में मोती पाया जाता है और सीप सागर में होता है, इस कारण समुद्र तट पर मोती बिखरे न रहने पर भी उसकी कल्पना स्वाभाविक मानी गई है। परन्तु कवि कभी अपनी वर्ण्य आदर्श-प्रकृति को गोचर प्रत्यक्ष करने के लिये सहज प्रकृति से उपमान चुनता है—

दरस्फुटितशुक्तिसंपुटप्रलुठितशङ्खमुखभृतमुक्तानिकरम् ।

मारुतदूरोच्छ्वाखितजलभृतार्धपथप्रतिनिवृत्तजलधरम् ॥

[किंचित स्फुटित सीप के संपुट से लुठक कर शंख के मुख को पूर्ण कर दिया है ऐसा मोतियों का समूह पवन से व्याप्त होकर उछालने से जलपूर्ण होकर आधे मार्ग से लौटते बादलों के समान शोभित हुआ।] इन वर्णनों के अतिरिक्त प्रवरसेन की शैली में क्लिष्ट कल्पना और उक्ति-वैचित्र्य का स्थान भी है जिनका विकास आगे के कवियों में हुआ

है। एक स्थान पर उन्होंने सागर को 'वृद्ध उखाड़ लिये गए हैं ऐसे शैल, हिम से नष्ट की गई है लक्ष्मी (सौन्दर्य) ऐसे कमलाकर, पी लिया गया है आसव ऐसे प्याले, सुन्दर चन्द्र से हीन अंधेरी रात्रि' के समान कहा है। ये उपमान उक्ति प्रसून तो नहीं हैं, पर इनकी योजना में इसी प्रवृत्ति का सकेत मिलता है। लेकिन प्रवरसेन में कल्पना का वैचित्र्य अधिक है उक्ति का आग्रह कम है।^{२१} वर्णन-शैली की दृष्टि से भारवि की स्थिति सौन्दर्य कल्पनावादी कवियों के साथ है। इनमें कल्पना का सौन्दर्य कुमारदास और प्रवरसेन के समान है, पर साथ ही माघ और श्रीहर्ष की वैचित्र्य की प्रवृत्ति का पूर्ण रूप भी मिलने लगता है। किन्तु अपनी व्यापक सीमाओं में वे इसी वर्ग के कवि माने जा सकते हैं। 'हिमालय की धूप से स्वर्ण राजिवाली श्वेत शृंगला आकाश के नीले विस्तार में फैली है और उसके लिये कवि वज्रलो से युक्त गगन में फैले हुए शरद-कालीन बादलों की' कल्पना करता है। इसी प्रकार चन्द्रोदय का दृश्य वे इस प्रकार उपस्थित करते हैं—

नीलनीरजनिभे हिमगौरं शैलरुद्धवपुषः सितरश्मेः ।

खं रराज निपतत्करजाल वारिधे. पर्यासि गाङ्गामिवाग्भ. ॥

[उदयाचल पर चढ़ते हुए इन्द्रु का उज्वल किरण समूह नीले आकाश में, निर्मल सागर में प्रवेश करते हुए गंगाजल के समान फैलता शोभित हुआ ।] कवि ने प्रकाश के फैलने के भाव को उपमानों की योजना से अधिक प्रत्यक्ष कर दिया है। सागर में गंगा-प्रवेश से अधिक उसकी कल्पना में सौन्दर्य है और यह कल्पना सहज है। अगले प्रकरण में हम देखेंगे कि सस्कृत-काव्य में प्रकृति क्रमशः यथार्थ से आदर्श और कृत्रिमता की ओर बढ़ती गई है। और इस आदर्श प्रकृति के लिये भारवि प्रवरसेन के समान कभी सहज उपमानों का आश्रय भी लेते हैं—

२१ सेतु०, आ० १, ५७, २० : आ० २ ; २१, ११ : आ० ७ ; २७ (कल्पना-वैचित्र्य) ।

सक्ति जवादपनयत्यनिले लतानां

वैरोचनैर्द्विगुणिताः सहसा मयूखैः ।

रोधोभुवां मुहुरमुत्र हिरण्यमयीनां

भासस्तडिद्विलसितानि विडम्बयन्ति ॥

[वहाँ पवन के वेग से सहसा लताओं के मिलित पुजों के हटाये जाने पर, सूर्य की किरणों से द्विगुणित स्वर्णमय तटों का भूमि की आभा बार-बार बिजली के कौंधने की शोभा का अनुकरण करता है ।] यहाँ बार बार बिजली के चमकने की उपमा स्वर्ण-नट की आदर्श कल्पना को साकार कर देती है । जैसा कहा गया है भारवि म चमत्कार की प्रवृत्ति पिछले कविता से अधिक है और इसका निर्देश इनकी कलात्मक शैली में मिलता है । 'शिरीष के फूल के समान कोमल तोंतों की मूँगों के समान लाल चाचों में पाले धान की बालियाँ की शोभा इन्द्रधनुष के समान, कहना, रंगों के संयोग की सुन्दर कल्पना है पर इसमें वैचित्र्य का भावना भी है । अन्यत्र रंगों की कल्पना इसी प्रकार की गई है—

मृणालिनीनामनुरञ्जितं त्विषा विभिन्नमम्भोजपलाशशोभया ।

पयः स्फुरच्छातिशिखापिशङ्कितं द्रुतं धनुस्खण्डमिवाहिविद्विषः ॥ २२

[मृणालिनी की आभा से हरित, कमल की पखुरियों से भिन्न रंग (लाल) किया हुआ तथा चंचल शालि के अग्रभागों (छाया) से पीला किया हुआ कंपित जल इन्द्रधनुष के समान है ।] परन्तु इन विचित्र कल्पनाओं का आधार सौन्दर्य है क्योंकि उपमानों की स्थिति और योजना प्रस्तुत के अनुरूप चलती है ।

ख—यह वैचित्र्य की भावना मात्र में अधिक विकसित हो गई है

और उनमें उक्तियों का आग्रह भी बढ़ गया है। उक्तियों की ऊहात्मकता का चरम विकास हमझे श्रोहर्ष में मिलता है। और वैचित्र्य की प्रवृत्ति यह प्रवृत्ति इनकी न्वतःसम्भावी कल्पनाओं में ही लक्षित हो जाती है। वास्तव में इन कवियों के नामने प्रवृत्ति का सहज रूप नहीं है और उसके चित्राकन के लिये स्वाभाविक सौन्दर्यमयो कल्पनाएँ इन्होंने यत्र-तत्र ही की है। उनमें भी वैचित्र्य का सकेत है। पर माघ में ऐसे स्थल श्रोहर्ष से अधिक हैं और वे परम्परा के साथ प्रकृति के अधिक निकट हैं। इनके कुछ चित्रों में स्वाभाविक सौन्दर्य है—

दत्तसमीरचलैः क्षणलक्षितव्यवहिता विटपैरिव मञ्जरी ।

नवतमालनिभस्य नभस्तरोरचिररोचिर-रञ्चत वारिदैः ॥

[आकाश-वृक्ष की गतिशील पवन से संचलित बाटलो रूपी शाखाओं में बिजली नवान तमाल (की शाखाओं) में मञ्जरी के समान क्षण भर के लिए लक्षित होकर छिप-छिप जाती है।] इसमें संचलन और रंगों का स्वाभाविक सम्मिश्रण है और प्रस्तुत-अप्रस्तुत का आधार सौन्दर्य कल्पना है। जहाँ इन्होंने आदर्श प्रकृति को सहज प्रकृति के चित्र से प्रत्यक्ष करने का प्रयास किया है, वहाँ वैचित्र्य की प्रधानता है। प्रवरसेन के समान माघ सौन्दर्य-बोध नहीं करा पाते हैं। 'रैवतक पर्वत की नदियों के स्फटिक तथा मरकत के तटों से उनका जल अपने प्रवाह में गंगा-यमुना का संगम जान पड़ता है' माघ की इस कल्पना में उक्ति का आग्रह है पर रंग का सम्मिश्रण सुन्दर बन पड़ा है। रंगों की कल्पना में माघ प्रवरसेन के समकक्ष हैं और कालिदास तथा भारवि इनके बाद आते हैं। अन्तर यह है कि कालिदास के रंगों का समन्वय रूप के साथ चलता है और यथार्थ को स्पर्श करता है, प्रवरसेन में आदर्श सौन्दर्य की भावना इस क्षेत्र में काम करती है और माघ में वैचित्र्य अधिक है। माघ जब अप्रस्तुत के लिए प्रकृति क्षेत्र से बाहर जाते हैं, उस समय उनका ध्यान चित्र को प्रत्यक्ष करने से अधिक उपमान को प्रस्तुत करने पर रहता है—

आच्छाद्य पुष्पपटमेष महान्तमन्त-

रावर्तिभिर्गृहकपोतशिरोधराभैः ।

स्वाङ्गानि धूमरूचिमागुरवीं दधानै-

धूपायतीव पटलैर्नवनैरदानाम् ॥

[जिसके विस्तृत पुष्पमय वस्त्र पालतू कबूतर के गले के समान नीले और अग्र के धुँसे सुन्दर नवीन मेघों से आच्छादित हैं, ऐसा यह रैवतक पर्वत धूप से अपने अंगों को सुवासित सा कर रहा है ।] इस कल्पना का प्रयोग स्वाभाविक के साथ कलापूर्ण है, पर जैसे कवि का ध्यान 'अंगों को धूप से वासित करनेवाले अप्रस्तुत' की ओर अधिक है। यही बात माघ के प्रकृति मानवीकरण के वर्णनों से स्पष्ट होती है। कालिदास जब प्रकृति पर मानवीय आकार-प्रकार का आरोप करते हैं, उस समय प्रकृति अपने रंग-रूप में मानवीय जीवन से स्पन्दित जान पड़ती है, पर माघ के आरोप केवल विशृंखल कल्पना के आधार पर चलते हैं जिनमें कवि की उक्ति का आग्रह अधिक प्रकट होता है—

अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा

बहुलमधुपमालाकज्जलेन्दीवराक्षी ।

अनुपतति विरावैः पत्रियां व्याहरन्ती

रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव ॥ २३

[अरुण कमल की श्रेणी ही जिसके सुन्दर हस्त-पद-तल हैं, और भ्रमर श्रेणी जिसके नीलकमल नेत्रों में कज्जल है ऐसी प्रातःसन्ध्या पक्षियों के कलरव में आलाप करती हुई बालिका की भाँति रात्रि का अनुसरण कर रही थी ।] इस आरोप में व्यापक रूप से जो कल्पना रक्षित है उसमें व्यञ्जना-सौन्दर्य है, पर माघ की यह प्रमुख प्रवृत्ति नहीं है। श्रीहर्ष में वैचित्र्य और उक्ति की प्रवृत्ति सब से अधिक है। साथ ही प्रकृति के प्रति उनका एकमात्र रूढिवादी दृष्टिविन्दु है। प्रकृति के

विस्तृत सौन्दर्य का आकर्षण उनमें नहीं है और वे उसके व्यापक क्षेत्र से सौन्दर्य मूलक अप्रस्तुत-योजना करने में असफल रहे हैं। उनसे कलात्मक प्रकृति चित्रांकन की आशा करना व्यर्थ है। सहज स्वाभाविक चित्रमयता उनसे संभव नहीं है। सूर्यास्त के समय की उनकी कल्पना इस प्रकार आकार ग्रहण करती है—

आदाय दण्ड सकलासु दिङ्ग

योऽयं परिभ्राम्यति भानुभिक्षुः ।

अब्धौ निमज्जन्निव तापसोऽयं

सन्ध्याभ्रकाषायमधत्त सायम् ॥२४

[सूर्य भिक्षु के समान दण्ड लेकर सारी दिशाओं में घुमाता रहा। तापस के समान सन्ध्य-काल के (गेरुआ) बादलों के वल्ल धारण किये हुए वह अब सागर का अबगाहन सा कर रहा है।] इस वर्णना में वैचित्र्य अधिक है, इससे प्रकृति का रूप किंचित भी प्रत्यक्ष नहीं होता।

§ ६—पिछले अनुच्छेद के चित्रणों में जिस आलंकारिक योजना का आश्रय लिया गया है उनमें अप्रस्तुत की स्थितियाँ स्वाभाविक हैं।

परन्तु कवि अपनी कल्पना में वास्तविक स्थितियों के नवीन संयोग उपस्थित करने के जिये स्वतंत्र होता है। और यह व्यक्तिगत प्रतिभा की बात है कि कवि

इन प्रयोगों से चित्रांकन को किस सीमा तक सुन्दर बना सका है। प्रौढोक्ति सम्भव कल्पना के क्षेत्र में कवियों में पिछला क्रम ठीक उतरता है। प्रथम कवियों ने ऐसे संयोग उपस्थित किये गये हैं जिनमें वर्णन को सुन्दर और चित्रमय बनाने की शक्ति है। साथ ही इन संयोगों में सहज स्वाभाविकता पाई जाती है। बाद के कवियों में क्रमशः संयोग अधिक ऊहात्मक और विचित्र हो गये हैं और उनमें चित्र को प्रत्यक्ष करने की

भावना कम होती गई है। वास्तव में शैली के इसी रूप से अगली वैचित्र्य की शैली का विकास हुआ है। दोनों में भेद इतना है कि इसमें सौन्दर्य की प्रवृत्ति रक्षित है और उसमें केवल उक्ति का चमत्कार बढ़ता जाता है। अश्वघोष 'वसन्त मे मस्त होकर कूजते हुए कोकिलो के विषय में कल्पना करते हैं कि वे एक-दूसरे की प्रतिध्वनियाँ ही हो जैसे।' यह प्रौढोक्ति होकर स्वाभाविक उक्ति है। एक दूसरा चित्र इस प्रकार है—

पश्य भर्तृश्चित्तं चृतं कुसुमैर्मधुगन्धिभिः ।

हेमपञ्जररुद्धो वा कोकिलो यत्र कूजति ॥^{२५}

[हे स्वाभिन्, मधुगंधमयी मंजरियो से युक्त आम्र के वृक्ष को देखिये, जिस पर सोने के पिंजड़े में बन्द सा कोकिल कूज रहा है।] इस वर्णन में आम्र-मंजरियो जैसे अधिक प्रत्यक्ष हो उठती है और कोकिल का स्वर अधिक स्पष्ट सुनाई देता है। चित्राकन शैली के इस रूप के सबसे सिद्धहस्त कलाकार कालिदास हैं। प्रकृति के रूप को देखकर उसके सौन्दर्य के अनुरूप कालिदास की उत्प्रेक्षा की कल्पना सबसे अधिक चित्रमय हो उठती है। इस उपमानों की योजना में चित्र का कलात्मक सौन्दर्य रक्षित रहता है। प्रौढोक्ति सम्बंधी कल्पनाओं में वस्तु-स्थिति के सम्बंध में अथवा कारणों के सम्बंध में उत्प्रेक्षा का अधिक प्रयोग होता है। प्रचलित चित्र से प्रस्तुत वर्ण को प्रत्यक्ष करने से नवीन संयोगों की कल्पनाएँ अधिक कलात्मक होती हैं। परन्तु इनमें सौन्दर्य से वैचित्र्य की ओर बढ़ने का भय भी है। आगे के कवियों में ऐसा देखा जाता है। कालिदास वस्तु स्थिति की उपमा अपनी कल्पना से इस प्रकार सजाते हैं—

तामितां तिमिरवृद्धिपीडितां शैलराजतनयेऽधुना स्थिताम् ।

एकतस्तटतमालमालिनीं पश्य धातुरसनिभ्रगामिव ॥

[हे शैलराज पुत्री देखो ! एक ओर से बढ़ते हुए अन्धकार से घिरी हुई सन्ध्या, जिसके तट पर तमाल का समूह छाया हुआ है ऐसी गैरिक की सरिता के समान जान पड़ती है।] यद्यपि कवि ने 'गैरिक सरिता के तट पर छाए हुए तमाल समूह' की कल्पना मयोग के आधा पर की है पर उससे चित्र सौन्दर्य-रूप हो उठता है। 'कालिदास की उत्प्रेक्षाओं में यही चमत्कृत सौन्दर्य उत्पन्न करने की शक्ति है। 'सरोवर के जल में पच्छिम में डूबते हुए सूर्य' की छाया फैल गई है और कवि कल्पना करता है 'मानों सुनहला पुल बनाया गया है।' यह वस्तु-स्थिति को प्रत्यक्ष करने के लिए प्रयुक्त उत्प्रेक्षा है। आगे कवि उत्प्रेक्षा की योजना में ऐसा ही दृश्य उपस्थित करता है—

एष वृक्षशिखरे कृतास्पदो जातरूपरसगौरमण्डलम् ।

हीयमानमहरत्ययात्तपं पीवरोरु ! पिबतीव बहिष्णः ॥

[हे पविरोरु, वृक्ष पर बैठे हुए मोग की गोल-गोल सोने के पानी के समान सुनहली चन्द्रिकाओं से युक्त पल्ल से जान पड़ता है मानो वह सोंभ की धूप पी रहा है और इसी में दिन ढल रहा है।] हम सन्ध्या के चित्र में कारण सम्बंधी कल्पना से जैसे दृश्य में क्रमशः परिवर्तन की भावना आ गई है। इसमें सन्ध्या की उगामी की व्यंजना है। कालिदास ने प्रकृति के लिए अमूर्त उपमान भी प्रस्तुत किये हैं, और ऐसे प्रयोगों में उन्होंने वर्णना के सौन्दर्य का निर्वाह किया है—

हंसश्रेणीषु तारासु कुमुद्रसु च वारिषु ।

विभूतयस्तदीयानां पर्यस्ता यशसामिव ॥^{२३}

[हंस समूहों की पंक्ति में, आकाश के तारों में, कुमुद से मुशोभित सरोवरों में रघु के यश के समान उसकी विभूति बिखर गई।] इसमें प्रकृति के माध्यम से अमूर्त सौन्दर्य को व्यक्त किया गया है।

क—प्रौढोक्तियों के क्षेत्र में कालिदास के साथ किसी अन्य कवि को नहीं रखा जा सकता। किसी की कल्पना में सौन्दर्य का इतना निखार नहीं है। बुद्धघोष 'अशोक के पुष्पगुच्छ के कलात्मक प्रयोग समान लाल अस्ताचल जाते हुए सूर्य के लिये समुद्र-मंथन के समय लगी हुई प्रवाल की लता के मण्डल की उपमा देते हैं।' इसमें वस्तुस्थिति का सौन्दर्य है पर चित्र में सहज प्रभावित करने की बात नहीं है। कहीं-कहीं इस प्रकार की वर्णना में स्वाभाविक सौन्दर्य आ गया है—

पुरन्दराक्रान्तिभयेन ये पुरा पयोनिधिं प्राप्पुरलूनपक्षकाः ।

समुत्पतन्तीव त एव भूधरास्ततः समुद्यन्नववारिदच्छलात् ॥ २७

[पहले इन्द्र के भय से आतंकित होकर जो पक्षधारी पर्वत समुद्र में छिप गए थे, वे ही मानो उमड़ते हुए नवीन मेघों के रूप में फैलते जा रहे हैं।] यद्यपि इस योजना में पौराणिक उल्लेख का आश्रय लिया गया है, पर यह चित्र को सजीवता प्रदान करने में अपने संयोगों के आधार पर सफल हुई है। इसी प्रकार कुमारदास 'कुमुदों से निकलते हुए भौरो को चन्द्रमा द्वारा नष्ट किये हुए आकाश के अन्धकार के रूप में' कहते हैं। यह कल्पना प्रस्तुत चित्र से बहुत निकट की नहीं है, पर चन्द्र द्वारा प्रकाशित दिशाओं और खिले कुमुदों का रूप प्रकट करने में सहायक है। एक स्थल पर कवि 'सन्ध्या समय पशुओं के भागने और सूर्य के अस्त होने के दृश्यों को सम्मुख रख कर सूर्य की मृगया की उत्प्रेक्षा करता है।' इसमें गति का भाव स्पष्ट है, पर वैचित्र्य की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। परन्तु जानकीदास ने अधिकतर कलात्मक प्रयोग किये हैं। चन्द्रमा के फैलते हुए प्रकाश को वे इस प्रकार उपस्थित करते हैं—

क्षिप्यमाणघनतामसोत्करं दुरमुत्सरति मण्डलं दिशाम् ।
शीतरश्मिकिरणस्य सर्वतो दातुमन्तरमिव प्रसर्पत ॥^{२८}

[दूर हो रहा है घने अन्धकार का समूह जिसमें ऐमा दिशा-मण्डल चन्द्रमा की किरणों को चारों ओर से अवकाश देने के लिये दूर हटता जाता है ।] अन्धकार के हटने के कारण में जो कल्पना की गई है उससे प्रकाश के दिशाओं में फैलने का भाव चित्रमय हो गया है । इस क्षेत्र में प्रवरसेन की प्रौढोक्तियों में पौराणिक संकेत, अलौकिकता तथा वैचित्र्य अधिक है । इनसे जानकीदास और भारवि दोनों नवीन काल्पनिक योजना करने में अधिक सफल हुए हैं । इसका कारण उनकी प्रकृति के क्षेत्र का आदर्श और अलौकिक होना है । जैसा पिछले अनुच्छेद में कहा गया है वे आदर्श-प्रकृति को स्वतःसम्भावी अप्रस्तुतों के आधार पर उपस्थित करते हैं । परन्तु जब ऐसी प्रकृति की वर्णना के लिये कवि प्रौढोक्ति करेगा तब वैचित्र्य का रूप आ जाना स्वभाविक है । कवि 'ताम्रमणि की शिला पर चन्द्रमृग की छाया के लिये सूर्य के घोड़ों की टाप की कल्पना' करता है । इसमें वैचित्र्य ही अधिक है । दूसरे स्थल पर 'ज्योत्स्ना से प्रकाशित रात्रि सुन्दर शरद की मुक्तावली की शोभा को धारण कर मानो सूर्य की शोभा को छीन रही है ।' इसमें कलात्मक चित्रमयता का स्वरूप आया है । कभी प्रवरसेन अमूर्त उपमान को उपस्थित कर दृश्य को चित्रमय बनाते हैं—

मुखरघनविप्रकीर्णं जलनिवहं भृतसकब्जभोमहीविवरम् ।

नदीमुखपर्यस्यन्तमात्मनो विनिर्गतं यश इव पिबन्तम् ॥^{२९}

[गरजते हुए मेघ समूहों से फैलाया हुआ और समस्त आकाश तथा पृथ्वी को व्याप्त कर लिया है जिसने ऐसे जलसमूह को सागर नदी के

२८. जान० , स० ८ , ८२ : म० १ ; ६९ : स० ८ . ७३ ।

२९ सेतु० , आ० ९ ; ५४ : आ० १ , २७ : आ० २ , ५

गिरने के स्थान पर अपने ही पैले हुए यश के समान पीता है।] इसमारी कल्पना से सागर मे नदी-प्रवाह के मिलने का दृश्य प्रत्यक्ष होता है और यश की अमूर्त भावना सौन्दर्य मे स्फुरण उत्पन्न कर देती है। भारवि अप्रस्तुत की नवीन कल्पनाओं मे अधिक चित्रमय हैं। परन्तु कालदास जैसी स्वाभाविकता लाने की शक्ति इनमे नहीं है। आदर्श प्रकृति के रूप को प्रौढोक्ति से प्रवरसेन के समान ये सुन्दर से अधिक विचित्र कर देते हैं। 'स्फटिक तथा चाँदी की दीवालो पर सूर्य-किरणों के पडने से दोपहर मे ही चाँदनी रात का भ्रम होता है।' इस वर्णन में रंगों के संयोग का चित्र उभरता है, क्योंकि 'स्फटिक दीवालो के पीछे इन्द्रनील की प्रभा' पर स्फटिक शिला को भेद कर सूर्य किरणों के पडने से ज्योत्सना के प्रकाश की कल्पना उचित है। पर रंगों का यह संयोग सहज-ग्राह्य नहीं है। अन्यत्र वस्तु-स्थिति से सम्बंध रखनेवालो उत्प्रेक्षा से दृश्य का रूप उभरता है—

अवरितोऽङ्गुतवारिचिपाण्डुभिर्विरहितैरचिरद्यतितेचसा ।

उदितरश्मिवारतनिःस्वनैः पृथुनितम्बविलम्बिभिरम्बुदै ॥

[निरन्तर वृष्टि के कारण पाण्डु आभावाले, जिनमे त्रिजली अब नहीं चमकती और जो अब गर्जन भी नहीं करते ऐसे शिखर भाग पर छाये हुए मेघों से, मानो वह पर्वत पखवाला कर दिया गया है।] यहाँ पंखों की कल्पना मे पवत-शिखर पर छाये हुए बादलो का चित्र अधिक साकार हो गया है। कारण सम्बंधी उत्प्रेक्षाओं से भारवि चित्र को अधिक व्यजित कर सके हैं। 'अन्धकार मे सब एकाकार हो गया है और ऊँचे-नीचे का भेद नहीं जान पड़ता है, मानो अस्त होते सूर्य ने संसार को विशेषताओं को अपने मे निहित कर लिया है।' सूर्य के प्रकाश के साथ संसार का दृश्य-जगत् विलीन होता हुआ सामने अंकित हो जाता है। और कभी कारण की कल्पना से कवि ने स्थिति के स्तरों को मूर्तिमान कर दिया है—

अथ जायय नु मेरुमहीभृतो रभसया नु दिगन्तदिदृक्षया ।

अभिययौ स हिमाचलमाच्छ्रुत समुदितं न विलङ्घयितुं नभः ॥ ३०

[इसके अनन्तर अर्जुन, हेमाद्रि को विजित करने के लिये, फैले हुए दिगन्त को देखने का इच्छा से उल्लास के साथ आकाश को लोंघकर उठते हुए हिमालय के निकट गया ।] इसमें प्रत्येक कारण की कल्पना पर्वत के विस्तृत फैले हुए आकार को क्रमशः प्रत्यक्ष सम्मुख करती जाती है ।

ख—क्रमशः माघ और श्रीहर्ष में प्रौढोक्तियों के क्षेत्र में वैचित्र्य की कल्पना प्रधान होती जाती है । आगे हम देख सकेंगे कि किस प्रकार

इन कवियों में कल्पना का स्थान उक्ति-वैचित्र्य तथा वैचित्र्य कल्पना

उहात्मकता ने ले लिया है । परन्तु यहाँ हम देख

सकते हैं कि सौन्दर्य-बोध के अन्तर्गत आनेवाली इनकी अप्रस्तुत-योजना में भी वैचित्र्य की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है । माघ के उपमानों का क्षेत्र आदर्श प्रकृति से विचित्र प्रकृति की ओर हट गया है और वे कवि-प्रासद्वियों, पौराणिक-सिद्धियों तथा चमत्कृत उक्तियों से प्रकृति का चित्राकन करते हैं । ऐसा पिछले कवियों में है, पर उनका दृष्टि में प्रस्तुत वर्ण-विषय से सादृश्य की भावना रही है । माघ 'उदय-पर्वत पर किंचित उठे हुए मूर्त्य के लिये पर्वत पर खिले हुए टोपहरिया के फूलों की' उत्प्रेक्षा देते हैं । यह सौन्दर्य चित्र अवश्य है, पर 'केवल नादयाद्रिः' से वे अपनी उक्ति पर बल देते हैं जिससे चित्र की सुन्दरता में कमी आ जाती है । अन्यत्र वे 'हाथीदाँत के समान शुभ्र-वर्ण केतकी के फूलों को भ्रमरो से शोभित देखकर मेघो के आघात से आकाश से गिरी हुई क्षीण-ज्योति चन्द्रिका के खण्डों से उत्प्रेक्षा देते हैं ।' इस कल्पना में चित्रमयता के सौन्दर्य के स्थान पर वैचित्र्य का सौन्दर्य अधिक है । पर यहाँ चन्द्रिका के सूक्ष्म-खण्ड का उपमान के रूप में सुन्दर रीति से

ग्रहण किया गया है जिससे केतकी के चतुर्दिक फैले हुए फूलों का रूप प्रस्तुत हो जाता है। कभी कवि क्रिया के विषय में ऐसा ही प्रयोग करता है—

गुर्वोरञ्जं दृषदः समन्तादुपर्युपर्यम्बुमुचां वितानैः ।

विन्ध्यायमान दिवसस्य भर्तुर्मागं पुना रोद्ध्युमिवोन्नमद्भिः ॥^{३१}

[बड़ी विशाल चट्टानों के ऊपर चारों ओर से निरन्तर छाये हुए मेघों से जान पड़ता है मानो सूर्य के मार्ग को रोकने के लिये फिर से रैवतक विन्ध्याचल का आचरण कर रहा है।] विन्ध्य को आकाश की ओर उठने की पौराणिक कल्पना से माघ ने पर्वत की चट्टानों पर घिरते हुए मेघों को जैसे प्रत्यक्ष कर दिया हो। इस वर्णन में भारवि के चित्र जैसी सुन्दरता है। श्रीहर्ष प्रमुखतः मानवीय जीवन के कवि हैं; प्रकृति की वर्णना, उनके लिये बहुत कुछ परम्परा का पालन है। वैचित्र्य की प्रवृत्ति उनको प्रौढोक्तियों का मुख्य आधार है, और वह इनमें कहीं तक बढ़ गई है यह आगे देखेंगे। परन्तु श्रीहर्ष प्रकृति के चित्र में मानवीय जीवन की व्यंजना से चित्रमयता भी ले आते हैं। 'प्रातःकाल क्रमशः प्रकाश होने से छोटे तारे विलीन हो गये हैं और चन्द्रमा अपने मलीन होते प्रकाश से जैसे रात्रि के अन्धकार से निरन्तर युद्ध करती हुई अपनी थकी किरणों की कहानी कहता है।' इस कल्पना में, प्रकाश में मलीन होते चन्द्रबिम्ब का थका-थका रूप रात्रि की छिटकी हुई चन्द्रिका के विरोध में सजीव हो उठा है। परन्तु जब श्रीहर्ष उत्प्रेक्षा प्रकृति से ग्रहण करते हैं, उसमें वैचित्र्य प्रधान रहता है—

सिताम्बुजानां निवहस्य यच्छलाद्भवलिश्यामलितोदरश्रियाम् ।

तमःसमच्छायकलङ्कसंकुलं कुलं सुधांशोर्बहलं वहन्बुहु ॥^{३२}

[जिनके मध्यभाग भ्रमरों से श्यामायमान हैं ऐसे श्वेत कमलों के

३१. शिशु० ; स० ११ ; ४६ : स० ६ ; ३४ : स० ४ , २ ।

३२. नैष० , स० १९ ; ४ : स० १ , ११० ।

समूह से सरोवर शोभित हैं मानो मृग-चिन्हों से युक्त बहुत से चन्द्रमाओं का समूह एकत्र हो गया है।] यहाँ उपमान वस्तु-स्थिति से सादृश्य बहुत कम रखता है, इसलिये कल्पना में वैचित्र्य का सौन्दर्य अधिक है।

§ १०—प्रथम प्रकरण में कहा गया है कि प्रकृति मानव जीवन के समानान्तर सचेतन और सप्राण है। मनुष्य प्रकृति को अपने इस दृष्टिकोण से भिन्न नहीं कर पाता है। यही कारण है कि प्रकृति भावात्मक व्यञ्जना के चित्राकन में कवि अनेक प्रकार से भावों की व्यञ्जना सन्निहित कर देता है। प्रकृति के रूप और मानवीय जीवन से विभिन्न सम्बंधों की व्याख्या अगले प्रकरणों का विषय है। यहाँ प्रकृति के चित्राकन की भावात्मक शैली पर विचार कर लेना है। वास्तव में प्रकृति पर किसी न किसी रूप में मानव-जीवन के आरोप की यह शैली है। मानवीकरण का स्थूल रूपाकार शैली के पिछले रूपों के अन्तर्गत आ जाता है, परन्तु जीवन, क्रिया व्यापार तथा भावशीलता सम्बंधी व्यञ्जनाएँ इस रूप के अन्तर्गत आती हैं। अन्य रूपों की भाँति भाव-व्यञ्जना की शैली में भी कवियों की प्रवृत्ति क्रमशः अधिकाधिक स्थूलता और हाव-भावों को व्यक्त करने की होती गई है। जैसा हम देखेंगे, उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत प्रकृति के वर्णन की परम्परा ने इस प्रवृत्ति के विकास में योग दिया है।

क—कालिदास में प्रकृति के प्रति व्यापक सहानुभूति है। वे प्रकृति से जैसे परिचित हैं, वैसी ही निकटता का अनुभव भी करते हैं। इस कारण वे प्रकृति के चित्रों में भावों की व्यञ्जना करने में सबसे अधिक सफल हुए हैं। वे स्वतंत्र रूप से प्रकृति में भावशीलता का आरोप व्यञ्जित करते हैं—

रुद्धनिर्गमनमा दिनक्षयात् पूर्वदृष्टतनु चन्द्रिकास्मितम् ।

पुतदुद्गिरति चन्द्रमण्डलं दिग्ग्रहस्यमिव रात्रिनोदितम् ॥

[जो दिन भर दिखाई नहीं दिया था वह चन्द्रमा, दिन के अन्त होने पर चन्द्रिका के रूप में मुस्कराता हुआ पूर्व दिशा में दिखाई दिया मानों

दिया है।] इस प्रकृति में मुस्कान का भाव अपने सौन्दर्य के साथ प्रति-
घटित हो उठता है और उसका आकर्षण चित्र में स्वयं फैल जाता है।
इस क्षेत्र में बुद्धघोष ने बहुत कम प्रयोग किये हैं, पर अपनी सरलता में
वे कालिदास के निकट हैं—

शिखण्डिनामद्भतताण्डवश्रियामरग्यरङ्गे मधुरप्रणादिनाम् ।

विलोक्य विद्युन्नयनेन विभ्रमान् प्रशंसतीव स्तनितेन तोयदः ॥^{३४}

[वन के रगमच पर, मधुर स्वर के साथ मयूगों के नृत्य की
अद्भुत शोभा को, बादल विद्युत के चकित नेत्रों से देखकर गरज कर
प्रशंसा सी करता है।] चित्र वर्ण-सौन्दर्य के साथ यहाँ प्रकृति में
भाव-आत्मक व्यापार की कल्पना प्रत्यक्ष है। प्रकृति में मानवीय भावनाओं
के आरोप की शैली में कुमारदास कालिदास के समान हैं। कालिदास
जैसा विस्तृत क्षेत्र इनका नहीं है, पर कल्पना की स्वाभाविकता में वे
कम नहीं हैं। सूर्यास्त के इस चित्र में कौसी सहज भावशीलता है—

सन्निगृह्य करसन्ततिं क्वचित्प्रस्थितांसपि रविरेष रागवान् ।

अस्तमस्तकमधिभ्रितं क्षणं पश्यतीव भुवनं समुत्सुकः ॥

[अपने किरण-समूह को समेट कर कहीं प्रस्थान के लिये प्रस्तुत
लाल-लाल यह सूर्य अस्ताचल के शिखर पर स्थित, उत्सुक होकर
क्षण भर के लिए संसार को देखता सा है।] डूबते हुए सूर्य के लिये
कवि की यह कल्पना अत्यन्त सुन्दर और भाव-व्यंजक है। जहाँ कवि
आरोप के लिये प्रस्तुत में स्थूल आधार ग्रहण करता है, वहाँ भी भाव
और दृश्य के सौन्दर्य का सन्तुलन बना रहता है। 'मृणाल के कंगन
धारण किये हुए (कमल-सरोवर) सरोजनी, जिसके नेत्र निद्रा के
आलस्य से बन्द हो रहे हैं, मूर्च्छा से निश्चेष्ट होती स्त्री के समान
शोभित हुई।' इसमें अनुभावों को योजना से भाव का व्यञ्जना की गई है,
पर क्रिया-व्यापार प्रमुख होकर वैचित्र्य की सृष्टि नहीं करते हैं। आगे

उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत प्रकृति में आरोप की यह प्रवृत्ति वैचित्र्य तथा रूढि की सीमा तक बढ़ गई है। जानकीदास प्रकृति में आत्मीय संवेदना को इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

वासन्तिकस्यांशुचयेन भानोर्हेमन्तमाखोक्य हतप्रभावम् ।

सरोरूहामुद्धृतकण्टकेन प्रीत्येव रम्यं जहसे वनेन ॥^{३५}

[वसन्तकालीन सूर्य के किरण-समूह से हेमन्त को प्रभावहीन होता देखकर, जिसका शत्रु नष्ट हो गया है ऐसा कमल का वन खुल कर स्नेह से हँसा ।] इस प्रकृति के सौन्दर्य में जैसे स्नेह का उल्लास बिखर गया है।

ख—बाद के कवियों में व्यजना का यह सौन्दर्य नहीं मिलता है। आरोप की स्थूलता और वैचित्र्य की प्रवृत्ति भाव की सहज अभिव्यक्ति में बाधक हुई है। प्रवरसेन प्रकृति के क्रिया-व्यापारो

कलात्मक

में मानवीय अनुभावों का आरोप समुद्र में प्रवेश करती हुई सरिता पर करते हैं। 'सागर से मिल कर फिर पीछे लौटती हुई, मिलन-प्रत्यावर्तन की इच्छा से कम्पित चंचल तरगोवाली नदी वास होकर फिर तरंगहीन हो सागर में मिल रही है।' सरिता की इन क्रियाओं से नवयुवती के समागम काल की कलापूर्ण व्यंजना की गई है। इसमें आरोप अप्रत्यक्ष है, इसलिये चित्र में कलात्मकता है। अन्यत्र कवि ने उक्ति से प्रकृति का भाव-चित्र उपस्थित किया है—

मन्मथधनुर्निर्घोषः कमलवनस्खञ्जितलक्ष्मीनूपुरशब्दः ।

श्रूयते कलहंसरवो मधुकरीव्याहृतनखिनीप्रतिसंज्ञापः ॥^{३६}

[कामदेव के धनुष की ध्वनि के समान, कमलवन पर चलने से लक्ष्मी के नूपुर की ध्वनि के समान और भ्रमरी तथा नलिनी के आपस के वार्तालाप के रूप में कलहंस का स्वर सुनाई देता है ।] कलापूर्ण इस वर्णना में कवि ने चाँदनी रात में कमल वन में कूँजते राजहंस का चित्र

३५. जान० ; स० ८ ; ५६ : स० ३ ; ६० , ९ ।

३६. सेतु० ; आ० २ ; १७ : आ० १ ; २९ ।

उपस्थित क्रिया है साथ ही लक्ष्मी की नूपर-ध्वनि तथा भ्रमरी-नलिनी के सनाप से दृश्य को भाव-व्यंजक बना दिया है। स्पष्ट ही इन वर्णानों में स्वाभाविकता से कला अधिक है। भारवि 'मन्द पवन से चंचल कमलों के लिये उत्प्रेक्षा देते हैं मानों किंचित विलासिनी की कुटिल भ्रू-विलास के समान तरगोवाले जल से वे विलाममय नृत्य करते हैं।' इसमें भाव से अधिक चेष्टाओं का रूप सामने आता है। पर अगली कल्पना में मानवीय वातावरण के साथ मनोभाव भी व्यक्त हुआ है—

असावनास्थापरयावधीरितः सरोरुहिण्या शिरसा नमन्नपि ।

उपैति शुष्यन्कज्जमः सहाम्भसा मनोभुवा तस इवाभिपाण्डुताम् ॥ ३७

। सिर झुकाकर आदर करने पर भी, कमलिनी के अनादर-पूर्वक अवज्ञा करने से कलम (धान का पौधा) प्रेमार्त होकर पीला पड़ गया है।] पर भारवि में भावों से मधु-क्रीड़ाओं के आरोप की प्रवृत्ति अधिक गई जाती है। जैसा उल्लेख किया गया है इस क्षेत्र में स्थूलता और शृंगार की यह रुचि अधिक बढ़ती गई है।

ग—स्थूल आरोपों की यह प्रवृत्ति माघ में अधिक है। और इन आरोपों में उक्ति तथा वैचित्र्य का आग्रह ही अधिक है। वे 'शरद माघ और श्रावण ऋतु' की आनन्दमग्न स्त्री के रूप में इस प्रकार कल्पना करते हैं—'सरोवर के जल में नयन-रूपी कमल खिल गये हैं, श्वेत पंखवाले पक्षियों से आकाश हँस रहा है और दिशा-रूपी मुखों में काँस के फूल दाँत की शोभा ग्रहण कर रहे हैं।' यहाँ आरोप की वैचित्र्य-जन्य प्रधानता के कारण उल्लास के भाव तथा प्रकृति के चित्र में तादात्म्य स्थापित नहीं हो सका है। इसी प्रकार यह वर्णन है—

विशदप्रभापरिगतं विबभावुदयाचलव्यवहितेन्दुचपु' ।

मुखमप्रकाशदशनं शनकैः सविलासहासमिव शक्रदिश ॥^{३८}

[उदयाचल पर उठा हुआ प्राची का इन्दु-मुख, स्वच्छ प्रकाश से व्यात होकर मानो अपनी अलक्षित किरण रूपी दन्त-पक्तियों से शोभित होकर विलासमय हँसो हँस रहा है ।] हममे-मादृश्य के उचित निर्वाह के कारण भावात्मक सौन्दर्य अधिक है । श्रीहर्ष मानवीय मनोभावों के कवि हैं, प्रकृति के सौन्दर्य के प्रति उनका आकर्षण नहीं है । पर जहाँ उन्होंने मानवीय मनोभावों को प्रकृति में प्रतिघटित किया है, उन स्थलों में उनकी काव्य-प्रतिभा को सौन्दर्य-सर्जन का पूर्ण अवसर मिला है । 'नल' अपने दुःखी मन से प्रकृति को उसी भाव में मग्न देखते हैं । स्थलपद्मिनी की अवज्ञा के कारण करुण वृद्धों से युक्त वन कोकिल और भ्रमरों से प्रिय-वियोग की कहानी सुन रहा है ।' इस चित्र में 'कहानी' की कल्पना भावपूर्ण है, पर वन में करुण-वृद्धा कह कर वियोग की स्थिति का निर्देश, उक्ति की प्रवृत्ति का परिचय देता है । आगे का दृश्य अधिक सवेदक है—

ससभ्रमोत्पातिपत्कुलाकुलं

सरः प्रपद्योत्कतयानुकम्प्रताम् ।

तमूर्मिलोलैः पतगग्रहान्नुप

न्यवारयद्वारिरुहैः करैरिव ॥^{३९}

[पद्मि-समूह के सभ्रम से हिले हुए जलवाला सरोवर दयावश चिन्तित होकर लहरों से चंचल कमल रूमी हाथों से मानो राजा को मना कर रहा है ।] कवि ने प्रकृति के दृश्य में जो भावारोप किया है वह घटना-स्थिति से ग्रहण किया गया है ।

३८. शिशु० ; स० ६ ; ५४ : स० ९ , २६ ।

३९. नैष० ; स० १ ; ८८ , १२६ ।

वैचित्र्य की शैली

§११—संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों की परम्परा के साथ काव्य और कला का आदर्श स्थापित हो चुका था। भारतीय सौन्दर्य-बोध सादृश्य की आदर्श कल्पना पर आधारित है; सिद्धांत कला का आदर्श को ममके बिना इस काव्य-परम्परा के काव्य-सौन्दर्य की परख करने से सत्य की अवहेलना होगी। यथार्थ का सौन्दर्य अपनी क्षणिकता में अनिश्चित और विशुद्ध है। वास्तव में चयन के आदर्शीकरण के बिना ब्रह्म जगत् में सौन्दर्य की कल्पना नहीं की जा सकती। नहीं तो प्रकृति के बिखरे हुए सौन्दर्य को देखने के लिये संस्कृत मन और कलात्मक रुचि की आवश्यकता नहीं होती और न उस सौन्दर्य को अंकित करने के लिये काव्य तथा कला की माँग होती। इसलिये भारतीय सिद्धान्त अनुकरण मात्र को सौन्दर्य-सर्जन नहीं मानता। उसके लिये वह आदर्श कल्पना से सादृश्य की माँग करता है, और कवि-कलाकार में आत्म-समाधि अर्थात् तन्मयता के गुण का निर्देश करता है। यही कारण है कि संस्कृत के कवि प्रकृति की आदर्श स्थितियों का चयन करते हैं, और उसको कल्पना के आदर्श रंग-रूपों में चित्रित भी करते हैं। प्रारम्भिक कवियों के सामने इस आदर्श का रूप स्पष्ट था और उन्होंने अपनी कल्पना के सादृश्य-रूप आधार को नहीं छोड़ा है। उस समय वैचित्र्य का अर्थ आदर्श-कल्पना था जो सादृश्य के सौन्दर्य के पंखों पर ही उड़ती थी। पर क्रमशः कवियों ने सादृश्य का आधार छोड़ दिया और उससे सौन्दर्य-बोध के पंख भी टूट गये। और वैचित्र्य का अर्थ ऊहात्मक कल्पना, उक्ति के चमत्कार से लिया जाने लगा। महाप्रबन्ध काव्यों में कलात्मक आदर्श की शैली विकसित नहीं हुई थी। पिछले अनुच्छेदों की विवेचना से यह स्पष्ट हो चुका है कि इस आदर्श का चरम कालिदास में मिलता है और फिर बाद के कवियों में क्रमशः इसका रूप विकृत होता गया है।

§१२—वैचित्र्य के कलात्मक अर्थ में प्रारम्भ से इस शैली का प्रयोग किया गया है। अपनी धार्मिक प्रवृत्ति तथा महाप्रबन्ध काव्यों के निकट होने के कारण अश्वघोष में इस शैली का रूप सहज वैचित्र्य बहुत कम मिलता है। वैसे तो रामायण से भी उदाहरण जुटा लेना कठिन नहीं है। बीज रूप से यह प्रवृत्ति आदिकाव्य से मिलती है। पर वैचित्र्य शैली का व्यापक प्रयोग कालिदास में मिलता है। कालिदास में वैचित्र्य का सहज तथा सौन्दर्य रूप अधिक है। वे जिस प्रकार चित्रात्मक शैली के सधे हुए कवि हैं उसी प्रकार वैचित्र्य की सहज कल्पनाओं के मजग कलाकार हैं। चित्रकूट के शिखर का यह चित्र इसी प्रकार का है—

धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृङ्गाग्रलम्बाञ्जुजवप्रपङ्क ।

बध्नाति मे बन्धुरगात्रि ! चक्षुर्दृप्तः ककुब्जानिवं चित्रकूटः ॥

[हे उन्नत अर्गवाली, निर्भरो की ध्वनि से गुंजित गुफा रूपी मुखवाला तथा शिखर की चोटी पर लगे मेघ रूपी कीचवाला यह चित्रकूट वृषभ के समान मेरी दृष्टि को आकर्षित करता है।] पर्वत की बैल के समान कल्पना करना वैचित्र्य है, पर सादृश्य का सौन्दर्य इस चित्र में रक्षित है। वृषभ के रूप के साथ एक उद्दण्ड प्रकृति का भाव भी शिखर के पक्ष में व्यजित होता है। वैचित्र्य सर्जन के लिये कालिदास पौराणिक सुन्दर कल्पनाओं को सहज ढंग ले लेते हैं—‘पवन बाँसों के छिद्रों में स्वर निकाल कर मानो किन्नरियों के गीत में ताल दे रहा है।’ और जब कालिदास चित्र में कवि-सिद्धियों का समन्वय करते हैं तब भी दृश्य की कल्पना में भाव और रूप का सन्तुलन बना रहता है—

सद्यः प्रवालोद्गमचारुपत्रे नीते समाप्ति नवचूतबाण्ये ।

निवेशयामास मधुद्विरेफास्त्रामाक्षराण्यीव मनोभवस्य ॥

[वसंत ने नवकिसलयों के पंख लगा कर आम्र-मंजरियों के बाण तैयार कर लिखे और उनपर उसने जो अभी भौंरे बैठाये हैं, मानों बाणों पर कामदेव के नाम के अक्षर लिख दिये हों।] और यह सन्तुलन

सौन्दर्य की सृष्टि करता है। कालिदास की उक्तियों में भी मूर्त अथवा अमूर्त सौन्दर्य-बोध रहता है। वे 'चन्द्रमा की निकलती हुई किरणों को नये कोमल जौ के अंखुओं के समान कोमल कहते हैं, और उनको तोड़कर कनफूल बनाने की कल्पना करते हैं।' इस वर्णना में किरणों का कैसा अमूर्त भावात्मक सौन्दर्य अंकित हो गया है। जिन वर्णनों में वस्तु-स्थिति में वैचित्र्य की कल्पना की गई है उनमें सादृश्य का आधार है—

सिंहकेसरसटासु भ्रूमृतां पल्लवप्रसविषु द्रुमेषु च ।

पश्य धातुशिखरेषु भानुना संविभक्तमिव सान्ध्यमातपम् ॥ ४०

[देखो, हिमालय के सिंहों की किंजलक के समान सटाओं में, नये किमलयों से आच्छादित वृक्षों पर तथा धातु-रंजित पर्वत के शिखरों पर सूर्य ने अपने सांध्यकालीन आतप को बॉट दिया है।] इस प्रकार उक्ति-वैचित्र्य में सौन्दर्य का निर्देश कर देना कालिदास की प्रतिभा का क्षेत्र है। बुद्धघोष अपनी शैली की सरलता में कालिदास के निकट हैं और इस कारण अपने सीमित क्षेत्र में वे अधिकतर वैचित्र्य को सहज भाव से अंकित करते हैं। पौराणिक कल्पना के सहारे वे नदी में क्रीडा-शैल की परछाहीं का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

यत्रापगाः स्वच्छजलान्तराखसंक्रान्ततीरस्थितकेलिशैलाः ।

मदोष्मन्मा मप्रसुरद्विपाया महेन्द्रसिन्धोः श्रियमाश्रयन्ते ॥ ४१

[निकटवर्ती क्रीडा-शैल जिसके निर्मल जल में प्रतिबिम्बित है ऐसी सरिता मदमत्त ऐरावत से आडोलित गंगा की शोभा को ग्रहण करती है।] कल्पना के विस्तार में और उसकी विभिन्नता में कालिदास के समकक्ष इस प्रकार के प्रयोगों में कोई नहीं है।

४०. रघु, स० १३, ४७। कुमा०, स० १, ८ : स० ३ ; २७ : स० ८ ; ६२, ४६।

४१. पद्य० ; स० १ ; १७।

ख—अपने लम्बे संश्लिष्ट वर्णनों में बाण ने अवश्य व्यापक रूप से शैली के इसी रूप को अपनाया है। बाण की प्रकृति-वर्णना में प्रकृति-चित्राकन की विभिन्न शैलियाँ एक साथ मिल-जुल गई हैं। ऐसा अन्य कवियों ने भी किया है। पर गद्य-काव्य में वर्णना का प्रवाह ऐसा अविच्छिन्न रहता है

बाण को संश्लिष्ट
वैचित्र्य शैली

कि उसमें विभिन्न शैलियों के चित्र अलग-अलग नहीं सामने आते, जैसा कि पद्य-काव्य में होता है। और यही कारण है कि महाकाव्यों के विस्तृत प्रकृति-वर्णन अलग अलग संक्षिप्त चित्रों में सामने आते हैं। बाण की प्रकृति हमारे सामने संश्लिष्ट-योजना के विस्तार में उपस्थित होती है। और उनके चित्रों में प्रकृति का रूप वैचित्र्य की सौन्दर्य कल्पनाओं के साथ प्रत्यक्ष हो उठता है। परन्तु साथ ही वर्णन की व्यापक संश्लिष्टता जिसमें यथार्थ प्रकृति छिपी रहती है दृश्य चित्रों को आदर्श रंग-रूपों में सजीव और संप्राण कर देती है। उस समय यह कहना कठिन हो जाता है कि प्रत्यक्ष का सौन्दर्य सामने नहीं है। अलंकारवादी होने के कारण बाण में उक्ति-वैचित्र्य का आग्रह है, पर उनके अधिकांश प्रकृति के चित्रों में यह प्रवृत्ति सामने आकर भी सौन्दर्य-बोध के साथ मिलकर एक रूप हो जाती है। यह प्रश्न दूसरा है कि इस प्रवृत्ति के न होने पर इनके प्रकृति के रूपों में चित्रात्मकता बढ़ जाती। बाण प्रभात का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

एकदा तु प्रभातसंध्यारागलोहिते गगनतले, कमलिनीमधुररूपचपुटे
वृद्धहंस इव मन्दाकिनीपुलिनादपरजलनिधितटमवतरति चन्द्रमसि,
परिखतरङ्गुरोमपाण्डुनि व्रजति विशालतामाशाचक्रवाले, गजरुधिररक्त-
हरिसटालोमलोहिनीभिः प्रतसत्त्वाधिकतन्तुपाटलाभिरायामिनीभिरशिशिर-
किरणदीधितिभिः पद्मरागशलाकासंमार्जनीभिरिव समुत्सार्यमाणे
गगनकुट्टिमकुसुमप्रकरे तारागणे । ४२

[एक दिन, प्रभात-संध्या के रंग से लाल हुआ चंद्रमा, आकाश-

रूपी कमलिनी के रस से लाल पंखोंवाले वृद्ध हंस के समान मन्दा-
किनी के किनारे से पश्चिमीय समुद्र के तट पर उतरा। वृद्ध रंकु मृग
के रोम के समान श्वेत दिशाओं का मडल विशाल होता जा रहा था।
हाथियों के रुधिर से लाल हुए सिंह की अयाल के समान लाल और
लाख के तार के समान गुलाबी सूर्य की लम्बी किरण आकाश से तारों
को दूर कर रही थी माना पद्मराग-मणि की सीकोवानी बुहारियों फर्श
पर बिखरे हुए फूलों को बुझार कर फर रही हैं।] इसी प्रकार चित्र
चलता जाता है और कवि स्थितियों, क्रियाओं के रगमय वैचित्र्य का
सुन्दर वातावरण निर्माण करता है।

ग—बाद के कवियों में वैचित्र्य की अलंकारप्रियता बढ़ती गई है।
पर कुछ वर्णन इस प्रकार सभी कवियों में मिल जाते हैं। जिनमें स्थिति
या भाव का सौन्दर्य वैचित्र्य के आधार में भी
स्थिति और भाव का वैचित्र्य रक्षित है। केवल भेद इतना है कि कुमारदास और
का वैचित्र्य भारवि में ऐसे अधिक चित्र हैं, माघ तथा श्रीहर्ष में
चमत्कार की प्रवृत्ति बढ़ गई है। 'पवन के समर्ग से नाचती आम्र-
मंजरियों से स्वाभाविक प्रेम करनेवाला अमर पुष्पो से आच्छादित
अशोक के वन पर पैर नहीं रखता माना वह प्रज्वलित हो।' कुमारदास
के इस वर्णन में उक्ति-वैचित्र्य होने पर भी कल्पना का सौन्दर्य है।
अगले चित्र में इसी प्रकार कवि-प्रसिद्धि के आश्रय से भाव-व्यंजना
वस्तु-चित्रण के साथ की गई है—

विनिद्रपुष्पाभरण पलाशः समुत्पलसकुन्दलतावनद्धः ।

उद्धतभस्मा मधुनेव रेजे राशीकृतो मन्मथदाहवह्निः ॥^{४३}

[पूर्ण-विकसित पुष्पों से अलंकृत कुन्दलता से अवनद्ध पलाश
वसत में कामदेव के दाह की अग्नि के पूँज के समान शोभित हुआ।]
वस्तु-चित्र में कल्पना वैचित्र्य से भाव-सौन्दर्य अंतर्निहित हो गया है।

पौराणिक उल्लेख का आश्रय लेकर भारवि इसी प्रकार वस्तुस्थिति में सौन्दर्य की व्यंजना करते हैं—

प्रेरितः शशधरेण करौघः संहतान्यपि नुनोद तमांसि ।

क्षीरसिन्धुरिव मन्दरभिन्नः काननान्यविरलोच्चतरुणि ॥ ४४

[चंद्रमा प्रेरित किरण-समूह से अंधकार इस प्रकार दूर हो गया मानों मन्दराचल से मथित क्षीर-समुद्र ने (आडोलित भाग से) अपने चारों ओर के घने ऊँचे वृक्षवाले वन को छिपा लिया हो ।] माघ के अनेक वर्णन-चित्र अपने स्थिति-विन्यास में वैचित्र्य के आधार पर सुंदर बन पड़े हैं । रैवतक-पर्वत के वर्णन में वे 'स्वर्णिम स्थलों पर छाये हुए भ्रमराच्छादित वृक्षों के लिये धुएँ से ढकी हुई अग्नि' की उपमा देते हैं । अन्यत्र उन्होंने, वस्तु और व्यापार का चित्र इस शैली में खींचा है—

नवपयःकणकोमलमालतीकुसुमसंततिसंततसङ्गिभिः ।

प्रचलितोडुनिभैः परिपाण्डिमा शुभरजोभरजोऽङ्गिभिराददे ॥ ४५

[नवीन जल की बूंदों के समान, कोमल मालती-पुष्पो के निरंतर सम्पर्क से उनके पराग से सफेद भौरे उड़ते थे मानो नक्षत्र चल रहे हों ।] इस उत्प्रेक्षा में उक्ति के साथ दृश्य की स्फुरणशील व्यंजना छिपी हुई है । श्रीहर्ष की चमत्कृत कल्पनाओं में कभी-कभी रंग रूपों के सादृश्य के वैचित्र्य की सहज सृष्टि हो जाती है—

उच्चैस्तरादम्बरशैलमौलेश्च्युतो रविगौरिकगण्डशैलः ।

तस्यैव पातेन विचूर्णितस्थ' सन्ध्यारजोराजिरिहोऽजिजहीते ॥ ४६

[आकाश के ऊँचे शिखर से सूर्य में गिरी हुई चट्टान की विचूर्णित धूल ही मानों संध्या को आभासित कर रही है ।]

घ—मानवीकरण के स्थूल आरोप के आधार पर वैचित्र्य सृष्टि की

४४. किरा, स० ९; २८ ।

४५. शिशु०, स० ४; ३० : स० ६, ३६ ।

४६. नैष०; स० २२; ४ ।

परम्परा भी रही है। पिछले अनुच्छेदों में हम मानवीकरण का उल्लेख चित्रात्मक शैली के अन्तर्गत कर चुके हैं। उस प्रसंग में आरोप की प्रवृत्ति मानवीकरण सौन्दर्य-बोध तथा भाव-व्यंजना के अतर्गत आता है। वैचित्र्य की सीमा में मानवीकरण स्थूल आरोप मात्र रह जाता है जिसमें शरीर के अंगों, मधु-क्रीड़ाओं की प्रधानता रहती है। लेकिन इस आरोप का अधिक विकृत रूप चमत्कृत योजनाओं तथा ऊहात्मक प्रयोगों में मिलता है। वैचित्र्य के इस रूप में सादृश्य की भावना बनी रहती है और इस कारण कल्पना में सौन्दर्य रहता है। कुमारदास मुँदते हुए कमलों से भ्रमरों के उड़ने पर इस प्रकार आरोप करते हैं—

सा पद्मिनी पद्मविलोचनेभ्यो याते पतङ्गे विससर्ज भृङ्गान् ।

समुच्छ्वसत्कामुदगन्धलुब्धान् स्थूलानिवोढाञ्जनबाष्पबिन्दून् ॥ ४७

[उस कमल-सरोवर ने अपने कमल-नेत्रों से, विकसित कमलों की मधुर गंध से आकर्षित भ्रमरों को, नववधू के प्रवाहित अंजन से काले अश्रुबिन्दुओं के समान त्याग दिया ।] इस चित्र में आरोप के आधार पर कोई रूप की कल्पना सामने नहीं आती और न भाव की प्रत्यक्ष व्यंजना। परंतु व्यापक रेखाओं में मन पर वैचित्र्य का सौन्दर्य भासित हो उठता है। प्रवरसेन मधु-क्रीड़ाओं की वैचित्र्य-योजना करते हैं—

ध्रुतवनराजिकरतलां मलयमहेन्द्रस्तनोरधार्द्राङ्गणसुखिताम् ।

वेलाजिङ्गनमुक्तां स्पृष्टापसृतकैर्वेपयन्तमिव महीम् ॥ ४८

[समुद्र के वेलालिगन से छोड़ी हुई, स्पर्श के अनन्तर सकुचित होकर कौपती हुई, कम्प से हिल रहा है वन-समूह रूप हाथ जिसका ऐसी पृथ्वी मलय-पवत रूगी स्तनों के शीतल हो जाने से सुखी थी ।] मधु-क्रीड़ाओं की विचित्र और चमत्कृत योजनाओं की प्रवृत्ति कवियों में

बढती गई है। भारवि प्रकृति पर विलास-क्रीड़ा का ऐसा ही आरोप करते हैं—

विपायद्बु संन्यानमिवानिलोद्धतं निरुन्धतीः सप्तपलाशज रजः ।

अनाविलोन्मोलितबाणचक्षुषः सपुष्पहासा वनराजियोषितः ॥ ४९

[युवतियों के रूप में वनराजियों पुष्पो मे मुस्कराती हुईं और प्रस्फुटित स्वच्छ नीलसरो से देखती हुईं अपने पवन से चंचल सप्तपलाश के रज-रूपी वल्लों को व्यवस्थित करती हैं।] माघ के मानवी आरंभो मे चमत्कार की प्रवृत्ति बढ गई है, पर कुछ चित्रो में रज-रंग का व्यापक सादृश्य रक्षित है—

विलम्बिनीलोत्पलकर्णपूराः कपोलभित्तीरिव लोभ्रगौरीः ।

नवोल्लपालंकृतसैकताभाः शुचीरपः शैवल्लिनीर्दधानम् ॥ ५०

[लोभ्र के फूलों के पराग से गौरवर्ण युवती का कपोल-प्रदेश जिस पर नील-कमलों के कर्णफूल हिल रहे हैं, ऐसा निर्मल और पवित्र सिवार से युक्त जल कोमल तृणों से अलंकृत सरिता-पुलिन के समान शोभित हो रहा था।]

§ १३—वैचित्र्य जब सौन्दर्य के स्तर से हट जाता है, तब उसमे चमत्कार मात्र रह जाता है। और जब वैचित्र्य प्रत्यक्ष आधार को

छोड़कर केवल कथन की शैली पर आधारित रहता है, तब उसमें ऊहात्मक उक्ति वैचित्र्य आ जाता है।

चमत्कृत और ऊहात्मक शैली के रूपों मे यही भेद है। चमत्कृत योजना में दृश्य का कुछ इन्द्रिय-प्रत्यक्ष आधार अवश्य रहता है, कल्पना कितनी ही क्लिष्ट अथवा कृत्रिम हो। पर ऊहात्मक शैली मे कल्पना का क्षेत्र मस्तिष्क की उक्ति रह जाती है। चमत्कारिक प्रयोग काव्य मे प्रारम्भ से मिल जायेंगे, लेकिन वे केवल उदाहरण मात्र हैं। इस

प्रवृत्ति का क्रमशः बाढ़ के कवियों में अधिकाधिक विकास होता गया है। कालिदास के इस प्रकार के प्रयोगों से पौराणिक सकेत हैं, कवि-प्रसिद्धियों का निर्वाह है अथवा उद्दीपन का प्रभाव लक्षित होता है। 'मनोहर गंधवाले वन के फूलों की पंक्तियाँ में कोकिल का प्रथम स्फुरण मुग्धा-नायिका के कलाप के समान' कहने में वर्णन चमत्कार ही है। कार्य कारण के विषय में कालिदास कभी-कभी ऐसी कल्पना करते हैं— 'कुमुदों पर भ्रमर गुँजते हैं मानों चाँदनी पीकर पचा न सकने से पेट फट गया है और वे कराह रहे हैं।' इन चित्रों में भी कालिदास की अपनी विशेषता मिल जायगी। मुग्धा-नायिका और कोकिल के प्रथम अलाप में सादृश्य का आधार है, उसी प्रकार कुमुद के विकास के पीछे दूसरे चित्र की व्यंजना छिपी है। वे स्थिति-मात्र में भी चमत्कारपूर्ण कल्पना करते हैं—

उन्नतावन्तभाववत्तया चन्द्रिका सतिमिरा गिरेरियम् ।

भक्तिभिर्बहुविधाभिरपिता भाति भूतिरिव मत्तर्हास्तन ॥^{५१}

[पर्वत के ऊँचे-नीचे होने से कहीं चाँदनी पड़ रही है और कहीं अँधेरा है, मानो अनेक प्रकार की चित्रकारी से अंकित मत्त हाथी हो ।] बुद्ध बोध ने स्थिति की विचित्र कल्पनाओं में चमत्कृत सौन्दर्य उत्पन्न किया है 'ऊँचे भवनों के स्फटिक-खंडों पर सूर्य की नितकता के कारण प्रभा कं किरणें उसके अश्वों के लिये क्षण भर को चामर का काम करती हैं। इस चित्र में वैचित्र्य रूप-रंगों की योजना पर आधारित होने के कारण चमत्कार उत्पन्न करता है। इस प्रकार का चमत्कृत सौन्दर्य इस वर्ण में भी है—

यत्रेन्द्रनीलोपलकुट्टिमेषु प्रविष्टबिम्बां प्रथमेन्दुब्लेखाम् ।

सृणालखण्डस्पृहया मरालाश्चञ्चूपुटैश्चर्वितुमुत्सहन्ते ॥^{५२}

५१. रघु० ; स० ९ ; ३४। कुमा० , स० ८ ; ७० , ६९

५२. पद्य० १ , स० १ , २० , २५।

[जहाँ नीलमणि के फ़र्श पर प्रथम चन्द्र की किरण के प्रतिबिम्बित होने से हंस मृगाल-तन्तु की चाहना से उसे अपनी चोच से खाने के लिये तत्पर होते हैं ।] इन वर्णानो मे वर्ण्य की कल्पना आदर्शात्मक वैचित्र्य की है । आदर्श प्रकृति की कल्पना संस्कृत काव्य मे विस्तार से है । परन्तु आदर्श प्रकृति के चित्रण मे उसकी योजना के अनुसार चमत्कार की भावना कभी निहित रहती है और कभी केवल उक्ति ही । पिछले अनुच्छेदों मे आदर्श-प्रकृति की कलात्मक वर्णना का निर्देश हुआ है । प्रवरसेन ने अपने वर्णानो मे अधिकतर प्रकृति का आदर्शीकरण किया है । उनके चित्रों मे कलात्मक सौन्दर्य है, पर चमत्कार का प्रवृत्ति कम नहीं है । इस चमत्कृत योजना मे यत्र-तत्र पौराणिक कल्पनाओं की अधिकता है—

कृष्णमणिच्छायारसरज्यमानोपरिप्लवमानफेनम् ।

हरिनाभिपङ्कजस्खलितशेषनिःश्वासजनितविकटावर्तम् ।

[इन्द्रनील मणि की प्रभा से नीलिमाको प्राप्त भाग सागर मे परिप्लावित होता जान पड़ता है । शेष की निःश्वास से विष्णु की नाभि का कमल उद्वेलित हो गया है और उसीका यह भयंकर भँवर है ।] इस वर्णन मे कल्पना का चमत्कृत सौन्दर्य है । अत्यन्त आदर्श वस्तु-स्थिति के अलंकृत वर्णन में यही प्रभाव उत्पन्न हो जाता है—

निजकविषानलप्रतापितमुक्तानिकरपरिघूर्णमानविषधरम् ।

मीनगतिमार्गप्रकटशेवाह्लावमखिनमणिशिलासंघातम् ॥^{५३}

[मङ्गलियों के संचरण से सेवार गिर जाने के कारण मलिन हुए मणि के शिला समूह (में) मुक्ता-समूहों के बीच अपने विष के ताप से व्याकुल सर्प घूम रहा है ।]

क—भारतीय काव्य में पौराणिक कल्पनाओं और उल्लेखों को

अनेक रूपों में स्थान मिला है। वास्तव में कवि-प्रसिद्धियों के समान आदर्श कल्पनाओं के रूप में इनकी स्वीकृति रही है। पौराणिक कल्पना और आरोप कालिदास, बुद्धघोष, जानकीदास में तथा एक सीमा तक प्रवरसेन में, इन काल्पनिक योजनाओं में सौन्दर्य-बोध का स्तर अधिक रहा है। बाद के कवियों में चमत्कार तथा उक्ति की प्रधानता इन प्रयोगों में होती गई है। आरोप के क्षेत्र में यही स्थिति है, पीछे इसका उल्लेख किया जा चुका है। कुमारदास—‘चन्द्र-किरणों से दूर होते अंधकार को जंघा के प्रतारण से पश्चिम को जाता (नायिका के रूप में) हुआ’^{५४} चित्रित करते हैं। भारवि का चमत्कृत आरोप इस प्रकार चलता है—

विपाण्डुभिर्भ्रान्तया पयोधरैश्च्युताचिराभागुणहेमदाभिः ।

इयं कदम्बानिलभर्तुरत्यये न दिग्बधूनां कृशता न राजते ॥^{५५}

[वर्षा रूपी पति के वियोग में, दुर्बलता (विरलता) से सफेद (स्वच्छ) और विद्युत् की चमक रूपी स्वर्ण-हार से वियुक्त मेघ-स्तनों वाली दिशा रूपी बधू शोभित न हो ऐसा नहीं है।] भारवि की वर्णना में भाव से अधिक रूप का आधार है, यद्यपि सादृश्य में संतुलन न होने से चित्र में चमत्कार ही है। और माघ—‘समुद्र की फेनिल तरंगों के आवर्तन को मृगी के रोगी’^{५६} से उत्प्रेक्षा देते हैं, जिसमें क्रिया-स्थिति का चमत्कार मात्र है। माघ में अन्य रूपों में आरोप की प्रवृत्ति है, जिसका यथास्थान उल्लेख किया गया है। भारवि ने ‘आदिवराह के स्वर्णभ दाढ़ पर भ्रमण्डल धारण करने’ की कल्पना से चंद्र का अपनी विद्रुम आभा से अंधकार दूर करने की बात कही है।^{५७} और माघ ‘सहस्रों शृंगों में

५४. जान० ; स० ८ ; ७२

५५. किरा० , स० ४ ; २४

५६. शिशु० ; स० ३ ; ७२

५७. किरा० ; स० ९ ; २२

फैले हुए और पार्श्व-भाग में छोटी छोटी पहाड़ियों वाले रैवतक की कल्पना विराट पुरुष के रूप में करते हैं।^{५८} श्रीहर्ष को तारको से युक्त रात को देखकर शंकर के नृत्य की याद आ जाती है—

भूषास्थिदाङ्गस्त्रदितस्य नाट्यात्पश्योडुकोटीकपटं वहङ्गि ।

दिग्मण्डल मण्डयतीह खण्डैः सार्यनटस्तारकराट्किरीट ॥^{५९}

[देखो, सध्या के नटराज चद्रशेखर शंकर ने नृत्य के समय टूटे हुए अपने हार के बिखरे हुए अस्थि-खंडों से, फैले हुए तागों के रूप में, आकाश को शोभित कर दिया है।] इन सभी चित्रों में पौराणिक कल्पनाओं से दृश्य की चमत्कृत वर्णना उपस्थित की गई है।

ख—जब कवि साधारण वस्तु स्थिति के आधार पर कल्पनाएँ करता है, तब वर्णना में ऊहात्मकता की संभावना बढ़ जाती है। लेकिन वस्तु-स्थिति मात्र यदि अप्रस्तुत वस्तु-स्थिति में वर्ण्य दृश्य से कुछ साम्य रक्षित है तो एक चमत्कार का प्रभाव उसमें आ जाता है। भारव अस्त होते सूर्य का चित्र इस प्रकार उपस्थित करते हैं—‘उदयाचल पर स्थित कुछ-कुछ बादलों में व्यक्त होता सूर्य अपनी रनिम चमकती हुई किरणों की आभा से अत्यंत तपे हुए लोहे के गोले के समान था।’ और वस्तु-स्थिति की एक दूसरी योजना इस प्रकार है—

विभाति भृङ्गीसरणी सरन्ती गन्धाहता चम्पककुड्मलाग्रे ।

अन्तं प्रदीपस्य निषेवमाणा धूमावली कज्जलरेखिणीव ॥^{६०}

[गंध से आकर्षित हुई चम्पक-कलियों के अग्र-भाग पर संचरण करती हुई भ्रमरावली, दीप-शिखा पर स्थित काजल की रेखा से युक्त धूम्र समूह के समान शोभित है।] श्रीहर्ष की एक चमत्कारपूर्ण वस्तु स्थिति की

५८. शिशु० ; स० ४ , ४ ।

५९. नैष० ; स० २२ ; ८ ।

६०. ज्ञान० ; स० १ ; ६५ : स० ३ ; २७ ।

कल्पना इसके समान है—

ऊर्ध्वापिंतन्युब्जकटाहकरूपे यद्वयस्त्रि दीपेन दिनाधिपेन ।

न्यधायि तद्भूमिलदगुरुव भूमौ तम. कज्जलमस्खलत्किम् ॥ ६१

[उलटकर स्थित मुखवाले पात्र रूमी आकाश में दीपक रूपा सूर्य ने जा वाजत छोड़ा था वही अंधकार के रूप में बढ़ते हुए बोझ के कारण गिर गया है ।] परन्तु इनके काव्य में चमत्कार से भी अधिक उक्ति है । माघ के काव्य में चमत्कृत कल्पनाएँ और उक्तियाँ बहुत हैं । कहीं वे 'वेदूर्यमणि की दावाला पर पड़ी हुई चंद्र-किरणा को त्रिहोली की आँखे जैसा स्त्रियों को भयभात करनेवाली' कहते हैं और कहीं 'जल से घिरी हुई द्वारिका नगरी को पृथ्वा के विशाल प्रतिबिम्ब के रूप में' उपस्थित करते हैं । ६०

§१४—ऊहात्मक उक्तियों के साथ काव्य-सौन्दर्य के स्थान पर कहने का ढंग प्रधान हो जाता है । ऐसे सौन्दर्य-हीन काव्य को यदि

ऊहात्मक शैली

काव्य कहा ही जाय तो इसमें दूर को सूक्त का आश्चर्य भर रहता है । और प्रकृति के चित्रण में ऐसी आश्चर्यजनक उक्तियों के समावेश की प्रवृत्ति महाकवि कालिदास में भी यत्र तत्र मिल जायगी । उद्दीपन-विभाव के प्रभाव में वे प्रकृति पर ऐसे प्रयोग कभी कभी करते हैं—'रजकणयुक्त अर्जुन वृक्ष की मजरियाँ माना शिवजी से तोड़ी काम की प्रत्यचा के समान हैं ।' उद्दीपन के अन्तर्गत भाव-व्यंजना के कारण ऐसे प्रयोग दूर की सूक्त नहीं लगते । पर केवल वस्तु-स्थिति के रूप में भी कालिदास में ऐसी कल्पनाएँ हैं—

सांध्यमस्तमितशेषमातपं रक्तलेखमपरा बिभर्ति दिक् ।

सां रायवसुधासशोणितं मण्डलाग्रमिव तिर्यगुत्फितम् ॥ ६३

६१. नैप०, स० २२, ३२ ।

६२. शिशु०, स ३, ४५; ३४ ।

६३. रघु०, स० १६, ५१ । कुमा०, स० ८, ५४ ।

[दूसरी ओर पश्चिम में अस्त होने से शेष संध्या के प्रकाश की लाल रेखा युद्ध-भूमि में टेढ़ी चलाई हुई रक्त से भरी करवाल के समान शोभित थी ।] परन्तु ऐसे प्रयोगों में कालिदास की प्रतिभा प्रकृति सम्बंधी अंतर्दृष्टि से प्रकट हो जाती है । उद्दीपन के अन्तर्गत वैचित्र्य का यह प्रयोग प्रकृति में आरोपित मानवीय मधुक्रीडाओं के ऊहात्मक वर्णनों में मिलता है । और यह परम्परा बाद के कवियों में बढ़ती गई है । 'उद्यान भूमि में परिपक्व पत्तों रूपी कंचुकी को खोल कर, मुकुल समूह रूपी रोमावली को हर्षित कर तथा भ्रमर रूपी केश-समूह को चंचल करता हुआ वसंतकाल लताओं के साथ विहार कर रहा है ।' बुद्धघोष ने इस आरोप की उक्ति से प्रकृति को उद्दीपक बनाया है । लेकिन इनकी वस्तु-स्थिति सम्बंधी उक्तियों में सरलता है—

सुवर्णकारेण तपात्यथात्मना पयोदपालीनिकषोपलान्तरे ।

निघृण्यमाणा इव हेमराज्यस्तटिल्लता भान्ति चकोरलोचने ॥ ६४

[हे चकोर के समान नेत्रोवाली, वर्षा ऋतु रूपी स्वर्णकार से मेघपंक्ति रूपी कसौटी के पत्थर पर बिजली की स्वर्ण-रेखा खिंची हुई शोभित हो रही है ।] प्रवरसेन के उद्दीपन सम्बंधी आरोप में उक्ति का निर्वाह अधिक है —

पीनपयोधरलग्नं दिशां प्रवसज्जलदसमयवितीर्णम् ।

सौभाग्यप्रथमचिह्नं प्रम्लायति सरसनखपदमिन्द्रधनुः ॥ ६५

[प्रवासी वर्षा काल द्वारा दिशा के मेघ-रूपी पीनपयोधरों में लगा हुआ इन्द्र-धनुष रूपी प्रथम सौभाग्य के चिह्न स्वरूप नख-छत बहुत अधिक मलीन हो गया है ।] भारवि भी चन्द्र-धौत रजनी में नववधू की कल्पना करते हैं—'चंद्र का उदय हो गया है और अंधकार नहीं रह गया है, ऐसी रजनी को संसार धूँधट हट जाने से प्रत्यक्ष मुखवाली तथा

६४. पद्य० ; स० ६ ; ५ : स० ५ ; १४।

६५. सेत० ; स० ८ ; २४।

लज्जा से सकुचित देवता है ।^{१६६} इन उक्तियों में उद्दीपन सम्बंधी व्यंजना प्रकृति में छिपी है, इस कारण इनका वैचित्र्य इतना अस्वाभाविक नहीं लगता, जितना माघ के इस प्रकार के आरोपों में—

नवकुङ्कुमारुणपयोधरया स्वकरावसक्तहचिराम्बरया ।

अतिसक्तिमेत्य वरुणस्य दिशा भृशमन्वरज्यदतुपारकरः ॥^{६७}

[सूर्य, नवीन कुंकुम की तरह लाल साव्य मेघों (पयोधरों) से अपने किरण रूमी स्वच्छ अम्बर (नख) से अत्यंत प्रेमासक्त हो पश्चिम दिशा (नायिका) में अधिक अनुसक्त (आसक्त) हो गया ।] यहाँ स्पष्ट ही उक्ति का आग्रह विशेष है ।

क—जिन वर्णनों में केवल उक्तियों का निर्वाह है, वे अधिकांश वस्तु-स्थिति या उनके कारण की कल्पनाओं से सम्बन्धित हैं । कुमारदास

कारण की कल्पना में इस प्रकार उक्ति देते हैं—
उक्ति-वैचित्र्य मात्र

‘वसन की तेज धूप से मुरभाई हुई विद्रुम आभावाली वृद्धों की पवन से हिलती हुई कोपलं अनिश्रम के कारण निकली हुई जिहा के समान चमकती हैं ।^{१६८} इसी प्रकार ‘किरण-समूह रूमी जल से युक्त तथा मृग-चिह्न के रूप में कमल है जिसमें ऐसे इन्दु-रूप रजत-कलश को रजनी युवती ने कामदेव का अभिषेक करने के लिए उठाया है ।^{१६९} इस वर्णन में भारवि ने वस्तु-स्थिति के वैचित्र्य की सृष्टि की है । रजनी को युवती के रूप में प्रस्तुत करने से भाव व्यंजना भी सन्निहित हो गई है । उक्ति-वैचित्र्य का व्यापक विस्तार माघ और श्रीहर्ष में मिलता है । इनके चित्रों में रूप-रंग, स्थिति-व्यापार सम्बन्धी उक्तियाँ हैं जिनमें ऊहात्मकता विशेष है । माघ दिशाओं को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

६६. किरा० , स० १ , २४ ।

६७. शिशु० , स० ९ , ७ ।

६८. जान० , स० ३ ; १२ ।

६९. किरा० स० ९ ; ३२ ।

विगतवारिधरावरणा. क्वचिद्दृशुस्त्वसितासिजतासिताः ।

क्वचिद्विनेन्द्राजाजिनकञ्चुकाः शरदि नीरदिनीर्यद्वो दिशः ॥

[शरत्काल मे यदुवंशियों ने देखा—मेघ के आवरण से मुक्त कोई दिशा म्यान से निकली हुई तलवार के समान श्याम (नीली) थी और कोई दिशा मेघों से युक्त ऐगवत के चर्म से आच्छादित सी थी ।] फिर यह प्रवृत्ति श्लेषात्मक शब्दों के चमत्कार मे चरम पर पहुँचती है— 'चद्रोदय के बाद शुभलक्षण (चिह्न) के साथ नक्षत्रों से परिवारित (भल्लूक आदि से शोभित) चंद्र रूपी राम ने समुद्र बौधकर अंधकार रूपी राक्षस-समूह का नाश कर डाला ।'^{७०} श्रद्धर्ष इस दिशा मे माघ से आगे ही जाते है—'आकाश, अपने मे विचरण करनेवाले सूर्य का आतिथ्य तारों के तण्डुलों से, अंधकार के दुर्वादलों तथा आकाश की श्वेत आभा के रूप मे जों के आटे से कर रहा है ।' यह कल्पना उक्ति के आधार पर सुन्दर कही जा सकती है । इस वर्णन मे ऐसा ही उक्ति का वैचित्र्य है—

रजनिवमथुप्रालेयाग्भःकणक्रमसंभृतैः

कुशकिसलयस्याच्छैरग्नेशयैरुद्विन्दुभिः ।

सुधिरकुशलेनायःसूचीशिखाङ्कुरसंकरं

किमपि गतितान्यन्तर्मुक्ताफलान्यवमेनिरे ॥ ^{७१}

[रात्रि-हस्ती को भूँड से छिड़के हुए ऋटा के समान, कुश के नवाकुरों के अग्रभाग पर पड़े हुए ओस के एकत्र जल-कणों ने जौहरी द्वारा सुइयों को नोकों पर विजडित मुक्ताग्रों के सौन्दर्य को अपमानित किया ।]

×

×

×

प्रकृति-वर्णन की विभिन्न शैलियों पर विचार करने से हमारे सामने एक प्रकार से संस्कृत काव्य की आदर्श मग्बधी परम्पराओं का इतिहास

७०. शिशु० ; स० ६ , ५१ : स० ९ , ३० ।

७१. नैष० ; स० १९ : १४ , ६ ।

सामने आ जाता है । और यह आदर्श कवियों के प्रकृति सम्बन्धी दृष्टि-
 कोण से उतना ही सम्बन्ध रखता है जितना उसके अंकित करने की
 शैली से । शैली के अध्ययन से कवियों के प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिविन्दु
 का संकेत भी मिल गया है । और काव्य की परम्परा किस प्रकार
 स्वाभाविकता से आदर्श की ओर और फिर आदर्श से रूढ़ि की ओर
 बढ़ती रही इसका क्रमिक अध्ययन यहाँ शैली के माध्यम से
 हो गया है ।

चतुर्थ प्रकरणा

विभिन्न काव्य-रूपों में प्रकृति

(आलम्बन-रूप)

§ १—अभिव्यक्ति के व्यापक भेद से काव्य के अनेक रूप हो जाते हैं। इन रूपों में कवि भिन्न रीतियों से काव्य-सौन्दर्य के साथ जीवन का काव्य के भिन्न रूप सतुलन स्थापित करता है। जीवन को प्रस्तुत करने का ठग काव्य रूपों के विभेद में प्रमुख है, पर उसके साथ वर्णना का क्षेत्र कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। पिछले प्रकरण में प्रकृति के चित्राकन की शैलियों के माध्यम से एक प्रकार से वर्णन की विभिन्न शैलियों पर विचार किया गया है। और इस दृष्टि से काव्य-परम्पराओं की वर्णना की शैलियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पर इन शैलियों का जितना सम्बन्ध काव्य की व्यापक परम्परा के विकास से है, उतना उसके भिन्न रूपों से नहीं है। काव्य-रूपों की विभिन्न परम्पराओं में वर्णना शैली का भेद बहुत कम है; पर वर्णना के क्षेत्र में इनमें अधिक विषमता है। कवि जिस प्रकार जीवन को उपस्थित करना चाहता है या अपने काव्य सर्जन में जिस दृष्टि से जीवन को देखता है, उसी के

अनुरूप वर्णना का क्षेत्र चुन लेता है। वर्णना में प्रकृति जीवन का आधार उपस्थित करती है। और प्रकृति का यह आधार काव्य-रूपों के साथ बदलता है। काव्य में प्रकृति के परिवर्तित होते आधार के साथ जीवन में उसका सम्बन्ध अनेक रूप ग्रहण करता है। यहाँ काव्य में प्रकृति को जीवन का आधार मानने का अर्थ यह नहीं है कि प्रकृति काव्य का प्रमुख विषय नहीं होती। षष्ठ प्रकरण में हम इस विषय पर विचार करेंगे। यहाँ संस्कृत साहित्य के विभिन्न काव्य रूपों के निर्देश के साथ प्रकृति का स्थान निश्चित करना है। संस्कृत साहित्य के संस्कारवादी युग में भावात्मक गीतियों का अभाव है। इस विषय में भारतीय आदर्श की बात दूसरे प्रकरण में कही गई है और 'गीति-काव्य' के अन्तर्गत इस प्रकरण में विचार किया जायगा। कवि की मनस्-परक अभिव्यक्ति जिन गीतियों में रहती है उनका रूप संस्कृत की काव्य-परम्परा में नहीं मिलता है, पर अर्धन्तरित रूप में इनकी भावना कुछ अन्य काव्य रूपों में मिलती है। उन्मुक्त वातावरण और संक्षिप्त भाव-व्यंजना की दृष्टि से गीति-काव्य और मुक्तक-काव्य में समानता है। पर गेयता तथा छंदमयता के भेद के साथ इनमें विषयि और विषय पदों का भेद रहित है। संस्कृत साहित्य में मुक्तकों की परम्परा अधिक स्पष्ट है। और यह उसके आदर्श तथा प्रवृत्ति दोनों के अधिक अनुरूप है। महाकाव्यों की लम्बी परम्परा के पूर्व महाप्रबन्ध काव्यों का उल्लेख आवश्यक है। इनमें संस्कृत काव्य की स्वतंत्र धारा रहित है और महाकाव्यों का स्रोत भी है। संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा बराबर चलती रही है, पर हमने अपने अध्ययन के लिये प्रमुख प्रतिनिधि कवियों को लिया है। यदि भास को हम ई० पू० का मानें तो नाटकों की परम्परा महाकाव्यों से प्राचीन है। संस्कृत साहित्य में नाटकों में काव्य का पूरा विस्तार है तथा दृश्य-काव्य के नाते उनमें चरित्र और घटनाओं के साथ स्थिति तथा वातावरण को गोचर बनाने का सफल प्रयास किया गया है। अपने अध्ययन में हम प्रकृति-वर्णन प्रधान नाटकों को प्रमुखतः लेंगे।

संस्कृत की कथा और आख्यायिका नामक गद्य रचनाएँ काव्य के अन्तर्गत आती हैं। इनमें काव्यात्मक सभी गुण विद्यमान हैं और कथा की वर्णना के लिये अधिक विस्तृत क्षेत्र है। महाकाव्यों के वर्णिक छन्दों में वर्णना मुक्त रूप से अलग-अलग चित्रों में उपस्थित होती है, कभी इन चित्रों में शृंखला-क्रम रहता है और कभी नहीं भी रहता है। परन्तु गद्य-काव्य की समास की शृंखला में चित्रों की लम्बी दृश्यात्मक योजना रहती है। इस प्रकार इन विभिन्न काव्य रूपों में प्रकृति को किस सीमा तक स्थान मिल सका है और वह किन सम्बंधों में उपस्थित हुई है, इस प्रकरण में विचार करना है।

§२—हम कह चुके हैं कि विभिन्न काव्य-रूपों में जीवन और प्रकृति का सम्बंध बदलता है। परन्तु प्रथम प्रकरण में हम देख चुके हैं कि जीवन के सम्बंध की दृष्टि से काव्य में प्रकृति आलम्बन तथा उद्दीपन के रूपों में उपस्थित होती है। शास्त्रीय दृष्टि से काव्य में प्रकृति का स्थान उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत अथवा अद्भुत तथा भयानक रसों के साथ, रसाभास आदि के आलम्बन के रूप में स्वीकार किया गया है। इस शास्त्रीय मत में मानवीय दृष्टिविन्दु की प्रमुखता है, इस अर्थ में यह ठीक है। काव्य में प्रकृति का प्रत्येक रूप मानवीय जीवन तथा भावों से प्रभावित रहता है। इस कारण काव्य में प्रकृति का आधार जीवन की स्थायी स्थितियों के माध्यम से ग्रहण किया जा सकता है। इस व्याख्या के अनुसार प्रकृति की चेतना, भाव-शीलता तथा संवेदना मानव से ग्रहण की हुई है, इस कारण उसे आलम्बन नहीं माना जा सकता है। लेकिन इस प्रकार आलम्बन और उद्दीपन का भेद नहीं किया गया है। आलम्बन आश्रय की स्थायी भाव-स्थिति पर क्रियाशील होता है, इस कारण प्रधानता आश्रय की भाव-स्थिति की है। आश्रय अपनी मनःस्थिति के अनुरूप आलम्बन को ग्रहण करता है। प्रकृति का सौन्दर्य इस प्रकार स्वतंत्र आलम्बन होता है, और इस स्थिति में मानवीय मनःस्थिति प्रकृति से प्रभाव ग्रहण करती

हे। एक प्रकार से इस मोन्दर्व्य में भी मानवीय जीवन का सहयोग है, इस पर प्रथम प्रकरण में विचार किया गया है। इसके साथ जब प्रकृति मानवीय जीवन तथा भावों के समानान्तर अथवा सहचरण के आधार पर प्रस्तुत की जाती है, उसमें विशुद्ध उद्दीपन की भावना नहीं रहती। जब आलम्बन प्रत्यक्ष रूप से दूसरे व्यक्ति रहता है, प्रकृति उद्दीपन के रूप में आती है। इसमें आश्रय का आलम्बन परोक्ष में है और वह प्रकृति के माध्यम से अपनी भाव-व्यंजना करता है। इस सीमा पर प्रकृति पर आश्रय की भाव-स्थिति का आरोप है। अन्य आलम्बन की सम्भावना को लेकर भी यह प्रकृति आश्रय की अभिव्यक्ति के माध्यम रूप आलम्बन के समान है। इस कारण इन दोनों रूपों को उद्दीपन के विशुद्ध-रूप से अलग माना गया है। और इनका विवेचन विभिन्न काव्य-रूपों में प्रकृति के स्थान-निर्देश के साथ उपस्थित किया जायगा। उद्दीपन रूप के अध्ययन के लिये अन्य प्रकरण है।

गीति-काव्य की परम्परा

५३—हमारा समस्त संगीत स्वर-लय तथा संचलन के आधार पर विकसित हुआ है, जो विकास के आरम्भ से मानव के सुख दुःख की अभिव्यक्ति से सम्बन्धित रहा है। यह संगीत सजन के गीति का रूप अनेक नक्षत्र और ग्रहमंडलों तथा प्रकृति के नाना रूप परिवर्तन का सम-ताल है, और हमारी रचना के अनुरूप भी है। हमारा पद-संचलन, हृदय-स्पर्शन, श्वासोच्छ्वास, शारीरिक प्रक्रिया तथा स्नायु-तन्तुओं की संवेदनशीलता इसी स्वर-लय के अन्तर्गत है। यही संगीत जप शब्दों का भावरूप आधार दृढ़ता चलता है, गीति काव्य के रूप में अभिव्यंजित होता है। गीतियों की स्वाभाविक रागात्मकता में जन-समाज की भावाभिव्यक्ति वर्षाकालीन नील आकाश में मतरंगी इन्द्रधनुष की कल्पना के समान गहरी और स्पष्ट रहती है। अपने प्रेम-वियोग, आनन्द-समारोह, करुणा तथा सहचर्य को मानव युग युग

से स्वच्छन्द सगीत के स्वरों में मापता आया है। इन जन-गीतियों का अज्ञात इतिहास न जाने कितना प्राचीन है। जब जन-गायक स्वर-लय के सहारे भावों को प्रकाशित करने में अपनी अनुभूति को सम-ताल प्रदान करता है, उस समय शब्दों की आधार-भूमि का अधिक आश्रय वह नहीं लेता। भावों के पंखों पर उड़ती हुई जन-गीति का आकाश से उस आधार-भूमि को देखते रहना भर पर्याप्त है। इस कारण जन-गीतियों में एक एक शब्द अपने संयोग में अपार भावों का प्रगुम्फन छिपाये रहता है; शब्द अपनी साधारण स्थिति में इन सब भावों को व्यक्त करने में असमर्थ है। इन गीतों में सक्षिप्त शब्दों और स्वाभाविक गिनी हुई परिस्थितियों के सहारे नाना भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति सरल ढंग से होती है, जैसे प्रिज्म अपनी स्फटिक सरलता में प्रकाश किरणों से विभिन्न रंगों को विकिरित करता है। परन्तु कवि जब गीति को अपने भावों की अभिव्यक्ति का साधन बनाता है, उस समय वह शब्द और राग का ऐसा संतुलन स्थापित करता है जिससे व्यंजना अधिक गम्भीर हो जाती है और चित्र अधिक स्पष्ट हो जाता है। कवि अपनी समस्त रागात्मक अभिव्यक्ति में शब्दों की रूपात्मक चित्रमयता को नहीं छोड़ सकता। उसकी स्वानुभूति काव्य की कल्पना के रूप में सहृदय के मन में रस का संचार करने के लिये शब्दों की चित्रमय योजना का आश्रय लेती है। काव्य-गीति आनन्द या भाव-शीलता की तन्मय स्थिति नहीं है, वरन् इस तन्मयता की सचेष्ट अभिव्यक्ति है।

§ ४—मानवीय स्वानुभूति की जो अभिव्यक्ति गीतियों के स्वर-लय तरंगित प्राणों में होती है, उसको काव्य-रूप में पूर्ण रूप से स्वीकृति भारतीय साहित्य में कभी नहीं मिल सकी। भारतीय काव्य-सम्बंधी प्राचीन आदर्श में व्यक्तिगत अनुभूतियों की स्वच्छन्द-अभिव्यक्ति को काव्य-रूप नहीं स्वीकार किया गया है। उसके अनुसार काव्य में केवल व्यापक भावों और

काव्यादर्श और
गीति-काव्य

अनुभूतियों का स्थान माना गया है। इस दृष्टि से व्यक्तिगत अनुभूतियाँ, सुख-दुःख की भावनाएँ समाज के व्यापक आधार पर काव्य का विषय हो सकती हैं। पर्वत के पार्श्व में झर-झर करता हुआ एकान्त निर्भर समतल पर आकर पावन मन्दाकिनी के नान से पुकाग जाता है। और आकाश के नीले विस्तार में श्वेत मेघखण्ड कितने ही सुन्दर चित्र बनाकर मिट जाते हैं, परन्तु झुकझुक कर आकाशमण्डल को घेरनेवाली घटाएँ मानवीय 'जीवन' को सप्राणता से अभिनन्दित हैं। भारतीय आदर्श में काव्य व्यक्त की व्यष्टि-भावना से अधिक समष्टिवादी होकर रहा है। और काव्य 'भाव' तथा 'विचार' के समन्वय से जीवन की सम्पूर्ण सीमाओं को स्पर्श करने की स्पृहा भी करता रहा है। परन्तु प्रत्येक 'भाव' को रूप और आकार प्रदान करने की साधना में हमारा साहित्य अधिकाधिक रूपात्मक (formal) और रूढिवादी होता गया है। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य में गीति काव्य का रूप स्वाभाविक अर्थों में नहीं मिलता है। इसमें जनगीतियों की प्रेरणा से काव्य-गीति की परम्परा का विकास नहीं हो सका है। वस्तुतः संस्कृत का संगीत भाषा की विशेषता के अनुसार वर्णिक छन्दों में व्यापक है, उसमें ध्वनि के आधार पर छन्दोमय काव्यरूप अधिक प्रचलित रहे हैं। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में व्यक्तिगत तथा मनस्-परक गीति-काव्य का रूप नहीं है, परन्तु विभिन्न काव्य-रूपों में उनका स्वाभाविक प्रेरणाओं का अध्यन्तरित स्वरूप अवश्य मिलता है। यद्यपि व्यक्तिगत होना गीतियों की प्रत्यक्ष शर्त है और काव्य-गीतियाँ अधिकतर मनस्-परक होती हैं, पर उनकी प्रवृत्ति में उन्मुक्त वातावरण, स्वच्छन्द भावधारा तथा सहज अभिव्यक्ति आदि विशेषताएँ होती हैं। इन प्रवृत्तियों को हम अन्य काव्य-रूपों में पा सकते हैं, और इनसे प्रकृति का सम्बंध हम अगले अनुच्छेदों में देख सकेंगे।

§ ५—काव्य-रूपों में बिखरे हुए गीति-तत्त्वों के अतिरिक्त हम वैदिक परम्परा से विकसित प्राकृत भाषाओं में गीतियों का अनुमान अवश्य कर

सकते हैं, जिनका अधिकांश स्वरूप साहित्यिक न माने जाने के कारण
 वैदिक गीतियों समय के प्रवाह में लीन हो चुका है। साथ ही
 पर एक दृष्टि भारतीय गीति काव्य का प्रारम्भिक रूप वैदिक साहित्य
 के काव्यात्मक अंशों में रक्षित है। प्रस्तुत अध्ययन की
 सीमा में वैदिक गीतियाँ नहीं हैं, परन्तु अगली परम्परा के मूल स्रोत के
 रूप में इन पर सक्षेप में विचार कर लेना अप्रासंगिक नहीं माना
 जायगा। वैदिक गीतात्मक काव्य में प्रकृति का उन्मुक्त वातावरण है
 और उसके साथ सहज सम्बन्ध भी स्थापित किया गया है। वैदिक कवि
 ने प्रकृति के रूप को तन्मय होकर देखा है, उसके सामने सिन्धु का मुक्त
 प्रवाह है—

दिवि स्वनो यतते भूम्योपर्यनन्तं शुष्ममुदियति भानुना ।

अभ्रादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः सिन्धुर्यंदेति वृषभो न रोहवत् ॥

[सिन्धु नदी का निर्घोष पृथ्वी और आकाश में व्याप्त है, सूर्य से अत्यन्त
 चमकता है। जब वह बैल की तरह गर्जन करता वेग से प्रवाहित होता
 है तो ऐसा लगता है मेघ-गर्जन के साथ वर्षा हो रही है।] इन दृश्यात्मक
 रूपों के साथ गायक प्रकृति की गति और क्षण-क्षण बदलनेवाले रूपों
 में किसी व्यापक और विशृंखल शक्ति का आवाहन करता हुआ उल्लसित
 होता है। अग्नि के तेजमय रूप के साथ उसके मन का उल्लास
 प्रतिबिम्बित है—

वि वातशूनो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृष्ट्या तुषिष्वणिः ।

तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥

[वायु से प्रेरित भयकर शब्द करता हुआ अग्नि अपनी छुरी सी तीक्ष्ण
 जिह्वा से अनायास ही लकड़ियों में फैल जाता है। हे तेजमय, ज्वाला-
 वाले अजर अग्नि ! जब तू प्यासा होकर शक्तिशाली बैल की तरह वन
 के वृक्षों पर झपटता है, तब अन्धकार तेरा मार्ग हो जाता है।] वैदिक
 कवि प्रकृति के बिखरे हुए सौन्दर्य और चैतन्य में अपने जीवन की
 अनुरूपता पाता है और उनमें आह्लाद के साथ प्राण-प्रतिष्ठा करता है।

पर्जन्यदेव वर्षाकाल के मेघों की गर्जना के साथ मानवीय चेतना से अनुप्राणित हो जाते हैं—

रथीव कथयाश्वो अभिच्छिपन्नाविदृतान् कृणुते वर्ष्या अह ।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्य कृणुते वर्ष्यं नभः ॥

[विद्युत् रूमी कशावान से बादल रूमी अश्वों को चलाते हुए, ग्रीधीर्ग वीर के समान वर्षा-देव आ गए हैं । जब पर्जन्य आकाश को वर्षानय बनाता है, उस समय सिंहनाद सा होता है ।] और इस चेतना का प्रत्यक्ष मानवोत्कर्षण कर्ता हुआ गायक ऊषा के सौन्दर्य में मानवीय हाव-भाव का आरोप करता है—

कन्धेव तन्वाः शशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविद्वंसांसि कृणुषे विभाती ॥

[हे ऊषे, तू अपना सौन्दर्य दिखाती हुई अपने प्रेमी देवता के पास जा रही है । यौवन की आभा से चमकती हुई तू मुस्करा कर अपने शरीर को प्रकाशित करती है ।] मानव प्राण-चेतना से अनुप्राणित प्रकृति से वैदिक कवि आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करता है और प्रकृति के प्रति यह साहचर्य की भावना गीतिया की व्याक विशेषता है । वह चन्द्रिका-चर्चित रात्रि को निकट सम्पर्क में पाकर आत्मीयता से सम्बोधित करता है—

श्रोर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युःश्रुतः । ज्योतिषा बाधते तमः ।
सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नाविचमहि । वृद्धे न वसति वयः ॥

[अमर देवी ने समस्त प्रदेशों को उन्नत और गहरे स्थलों को व्याप्त कर लिया है और प्रकाश द्वारा अन्धकार दूर कर दिया है । तेरे आने पर हम अपने घरों में आ गए हैं, जैसे पक्षी वृद्धों पर बने हुए अपने नाडों में ।] इस प्रकृति के सम्बंध में अपने विश्राम का भाव भी सन्निहित है, जिसमें भाव-तादात्म्य का रूप रक्षित है । निर्जन प्रदेश में वह प्रकृति की वनदेवी से अपना साहचर्य स्थापित करता है—

अरण्यान्यरण्यान्यसौ य प्रेव नश्यसि ।

कथा ग्राम न पृच्छसि न त्वा भारिव विन्दतीः ॥^१

[हे वनदेवी ! मुझे ऐसा लगता है कि तू रास्ता भूल गई है । तू अपना मार्ग पूछती क्यों नहीं, तुझे क्या डर नहीं लगता !] इस सम्बोधन में एकान्त के कारण अपने मन की भय की भावना छिपी हुई है । वैदिक साहित्य में प्रकृति का उन्मुक्त तथा सहज वातावरण आ सका है और गायक ने अपने स्वरो में उसके प्रति आत्मीय साहचर्य का परिचय दिया है । यही साहचर्य की भावना गीतात्मक प्रवृत्ति में प्रकृति के रूपों की आधार-भूमि मानी जा सकती है । वास्तव में गीतियों की कोमल कल्पना का सारा प्रसार सहानुभूति के वातावरण में सम्भव है । उनके रागात्मक प्रवाह में जीवन की शुष्क उपादेयता तथा दर्शन की कठोर सत्यदर्शिता सहानुभूति से द्रवित होकर ही मिल पाती हैं । फिर प्रकृति का सौन्दर्य तथा सप्राणता तो उसके भावशील वातावरण में सहज ही मिल जुल जाता है ।

१६—संस्कृत साहित्य के समान, उसके पूर्व अथवा समवर्ती प्राकृत-भाषाओं के साहित्य में काव्य गीतियों का प्रायः अभाव है । इनमें

पाली गाथाएँ धार्मिक साहित्य है या काव्यात्मक रूप है । पाली

साहित्य में गीतियों के कुछ रूप मिलते हैं, परन्तु धार्मिक प्रभाव के कारण इनमें कवित्व के स्थान पर आदेश की प्रवृत्ति अधिक है । बौद्ध-धार्मिक गाथाओं में व्यापक करुणा और विराग के साथ प्रकृति आनन्द तथा उल्लास का विषय है—

सुनीलगीवा सुसिखा सुपेखुणा सचित्तपत्तच्छदना विहङ्गमा ।

सुमञ्जुघोसस्थ निताभिगज्जिनो ते तं रमिस्सन्ति वनग्धि म्हायिनं ॥

[ध्यानस्थ बैठे हुए तुम्हें, वन में गहरी नीली ग्रीवावाले सुन्दर शिखावाले शोभन चित्रित पंखों से युक्त विहंगम अपने सुमधुर कलरव से घोष भरे

१. ऋग्वेद ; १० , ७५ ; ३ : १ ; ५८ , ४ : ५ ; ८३ ; ३ : १ ; १२३ ; १० : १० ; १२८ ; २ , ४ : १० ; १४६ ; १ ।

मेघ का अभिनन्दन कर आनन्द देगे।] प्रकृति सौन्दर्य के प्रति स्वाभाविक आनन्दोल्हास के अतिरिक्त कहीं किसी स्थल पर भाव-तादात्म्य भी मिलता है। प्रकृति के वासन्ती नव शृंगार के साथ थेर अपनी आशा का स्वरूप देखता है, यद्यपि यह भाव साधना और करुणा द्वारा शान्त और एकान्त चित्त की प्रेरणा से सम्बंधित है—

अङ्गारिनो दानि दुमा भदन्ते फलेसिनो छदं विप्पहाय ।

ते अच्चिमन्तो व पभासयन्ति समयो महावीर भगीरसानं ॥

दुमानि फुल्लानि मनोरमानि समन्ततो सब्बदिसा पवन्ति ।

पत्तं पहाय फलमाससाना कालो इतो पक्कमनाय वीर ॥^२

[नवीन कोपल से अग्नि के समान शोभित वृक्षों ने फल की इच्छा से जीर्णशीर्ण पल्लवों का परिधान त्याग दिया है। अब वे लौ से उद्भासित हो रहे हैं। हे श्रेष्ठवीर तथागत, यह समय नूतन प्राण से स्पन्दित है। प्रत्येक वृक्ष मनोरम फूलों से नेत्रों को आकर्षित करता है और प्रत्येक दिशा सुगन्धित हो रही है। फल की आशा करते हुए वृक्ष पत्रों को छोड़ रहे हैं। हे वीर! मुक्त होने का यही समय है।] थेरियों के वैराग्य गीतों में उनकी कठोर साधना तथा संसार के प्रति उपेक्षा ऐसी व्याप्त है कि प्रकृति का समस्त सौन्दर्य उस ग्राही उपेक्षा से बच नहीं सका है। प्रकृति का 'धौवन' और 'सौन्दर्य' उनके लिये काम का आवाहन है जिसको वे ठुकरा देती हैं। काम के इस आमन्त्रण में प्रकृति का उल्हास अन्तर्निहित है—

दहरा च अपापिका चसि किं ते पब्बज्जा करिस्सति ।

निक्खिप कासायचीवरं एहि रमाससे पुष्पिक्कते वने ॥

[तुम युवती हो और अनुपम हो, इस पवित्र जीवन का क्या करोगी। इन काषाय वस्त्रों को त्याग कर आओ पुष्पित वन में विचरण करें।] एक प्रकार से यह प्रकृति का उद्दीपन रूप है जिसमें थेरियाँ अपनी अज्ञात

भावना का प्रतिबिम्ब देख रही हैं। इसमें यह संकेत भी स्पष्ट है कि प्रकृति में शृंगार के सम्राट् मनोज के आवाहन मात्र के समान सम्मोहन की शक्ति है। इसके अतिरिक्त जिन गाथाओं में वे अपने सौन्दर्य की क्षणिकता की व्यञ्जना प्रकृति के सहारे करती हैं, उनमें साहचर्य भाव और रूपात्मक व्यञ्जना का समन्वित रूप है—

काननस्मि वनखण्डचारिणी कोकिला व मधुरं निःकृतम् ।

तं जराय खलित तहि तहि सच्चवादिवचन अनञ्जथा ॥^३

[वनस्थली में विचरण करती हुई कोकिला की कुहुक के समान मेरे स्वर का राग आज जरा के कारण नष्ट होकर स्वरहीन हो गया है, ध्वस का क्रम इसी प्रकार चल रहा है। सत्यवादी का कथन सत्य है।]
जन-गीतियों के समान काव्य-गीतियों में साहचर्य तथा भाव साम्य की भावना प्रकृति का उद्दीपन रूप प्रदान करती है और सयोग-वियोग की सहज स्थितियों के साथ प्रकृति परिवर्तित रूपों में उपस्थित होती है। पर यह विषय छोटे प्रकरण का है।

१७ — गीति-काव्य की परम्परा में संस्कृत साहित्य में जयदेव के गीतगोविन्द का नाम लिया जा सकता है। यह काव्य जिस लुप्त परम्परा का प्रतिनिधि है उसमें गीति की समस्त प्रवृत्तियों गीतगोविन्द मिलती होंगी और उस पर जन गीतियों का पूरा प्रभाव होगा। यह बात गीतगोविन्द की भाव-धारा से प्रकट होता है, साथ ही इसके समान जो काव्य-रूप आधुनिक भारतीय भाषाओं के प्रारम्भिक युग में पाये जाते हैं उनसे भी यही सिद्ध होता है। विद्यापति तथा चण्डीदास के गीति-पदा में उन्मुक्त तथा स्वच्छन्द वातावरण मिलता है और उनको जन-गीतियों से निश्चय ही प्रेरणा मिली है। पर इनका आदर्श गीतगोविन्द है। यह अपनी गेयता के साथ काव्य-सौन्दर्य से भी पूर्ण है। साथ ही इसमें गायक अपने भावों का अन्धन्तर गोपी-कृष्ण के

प्रेम-विलास के साथ कर लेता है। इस कारण भावों की व्यजना मुक्त होकर भी व्यक्तिगत तथा सहज नहीं है, जैसी जनगीति में होती है। और व्यक्तिगत न होने के कारण इसमें पाश्चात्य अथवा आधुनिक भारतीय भाषाओं की प्रगीतियाँ (Lyric) जैसी विषयि-पद की प्रधानता नहीं है। इस काव्य में यौवन और शृंगार की प्रधानता है, इस कारण प्रकृति का रूप अधिकतर उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत आता है। गीतों की शैली में भावों की उन्मुक्त धारा के साथ प्रकृति की वर्णना को स्थान नहीं मिल पाता है। भावों के आश्रय के लिए प्रकृति या तो उद्दीपन-रूप में उपस्थित होती है या साहचर्य के आत्मीय सम्बंध में। भाव-तादात्म्य व्यक्तिगत गीतियों में अधिक सम्भव है। गीतगोविन्द में भाव-प्रवणता से स्थूल मांसलता अधिक है और सूक्ष्म भाव-व्यजना से हाव तथा अनुभावों का विस्तार अधिक है। इस कारण प्रकृति संयोग और वियोग दोनों पक्षों में उद्दीपन के अन्तर्गत अधिक प्रयुक्त हुई है। प्रकृति का वातावरण मानवीय भावों से व्याप्त हो रहा है। ऐसे स्थल भी कम हैं जिनमें प्रकृति अपने उल्लास में केवल मानवीय उल्लास को व्यंजित करती है—

ललितलवङ्गलतापरिशोबनकोमलमलयसमीरे ।

मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे ॥

[सुन्दर लवंगलता की सुगन्ध से युक्त कोमल मलय समीर चलता है। अलि के झुण्ड तथा कोकिल के शब्द से कुज कुटीर कूजित हैं।] यह प्रकृति का समस्त उल्लास मानवीय भावों की पृष्ठ-भूमि मात्र है—

विहरति हरिरिह सरस वसन्ते नृन्यति ।

युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते ॥ ४

[विरहणियों को कष्ट देनेवाले इस वसन्त में युवतियाँ प्रेमियों के साथ नृत्य करती हैं, और कृष्ण विहार करते हैं।] इस प्रकार प्रकृति और मानव

दोनो एक दूसरे से प्रतिबिम्बित होकर एक दूसरे के उल्लास में तदाकार हो रहे हैं ।

§८—दूत-काव्य खण्ड-काव्य के रूप में हैं । परन्तु गति और प्रवृत्ति दोनो दृष्टियों से ये काव्य-गीतियों के अधिक निकट हैं । प्रकृति-साहचर्य की गेय भावना व्यापक सहानुभूति के रूप में संस्कृत साहित्य के दूत-काव्यों की प्रेरणा रही है । जन-गीतियों में गायक की भावना से प्रकृति सीधा और सरल साहचर्य स्थापित करती है, पर काव्य-गीतियों में यह सम्बंध अधिक स्पष्ट रेखाओं में व्यक्त होता है । इन काव्यों की स्थिति कुछ भिन्न है । इनमें कवि व्यक्तिगत अभिव्यक्ति के स्थान पर कल्पित चरित्र के साथ प्रकृति का कोमल सम्बंध व्यक्त करता है । इस अर्धन्तरित स्वरूप में चरित्र की परिस्थिति इस भाव-साम्य को आधार-भूमि हो जाती है, जब कि गीतियों की रागात्मकता स्वयं इसमें सहायक होती है । आकाश में उड़ते बादलों की स्थिति उनकी गति है, परन्तु निर्भर को बहने के लिये पर्वत का पार्श्व चाहिए । इस काव्य-रूप को गीति-काव्य के अन्तर्गत लेने का एक कारण यह भी है कि प्रकृति सम्बन्धी सन्देश-काव्य का मूल जन-गीति में है । जन-गीतियों की प्रकृति-सहचरण सम्बन्धी अभिव्यक्ति नीलाकाश जैसी उन्मुक्त और एक रस है । इन गीतों की विरहिणी बिना किसी उपचार के अपने 'पिय' का सन्देश कोयल, कागा अथवा चील्ह को देती है, और उसके पास अधिक से अधिक 'सोने से चोच मढ़ाने' तथा 'सोने को कटोरी' में खीर खिलाने का प्रलोभन है । उनमें प्रकृति का रूप कम, भावों की तीव्रता अधिक रहती है । पर इन दूत-काव्यों में कथानक का सूक्ष्म आश्रय सतरंगी इन्द्रधनुष की गहरी कल्पना में हलके बादलों के समान रहता है । यह हलके छायातप की रेखा उसे रंगीन सौन्दर्य प्रदान करती है । कवि ने तटस्थ होकर अपने भावों को अपने चरित्र को दे दिया है । इस कारण उसे आमूख-रूप से विरह की मनःस्थिति का अनुभूत प्रधान होने की व्याख्या देनी पड़ती है । कालिदास

के विरही यक्ष ने यदि उमड़ते हुए बादलों के रूप में प्रकृति को संवेदनशील पाया तो यह उसकी मनःस्थिति के लिये स्वाभाविक है। अन्य कवियों की व्याख्या में कालिदास की अनुभूति नहीं है। धोयी कवि में प्रकृति के उद्दीपन स्वरूप से विरहिणी का पुष्पधन्वा कामदेव के प्रति संवेदनशील होना स्वीकार करते हैं। हंससन्देश के कवि ने भाव-संयोग के द्वारा इस स्थिति को व्यक्त करने का प्रयास किया है, परन्तु इसमें अनुभूति का रूप न होकर स्थूल रूपात्मक संयोग का आधार है। क्रमशः अलकृत शैली के कारण पवन-दूत और हंस-दूत में वैचित्र्य की प्रवृत्ति अधिक है।

क—काव्यात्मक रूप के कारण कथा-सूत्र के साथ इनमें सामाजिक शालीनता का प्रदर्शन है। कुछ अर्धन्तरित भाव-स्थिति के फलस्वरूप और कुछ कथा-वस्तु के आधार के कारण इनमें शिष्ट वातावरण ऐसा योजनाओं के लिये स्थान रहा है। परन्तु कालिदास के मेघदूत में कवित्व के साथ सृज संवेदनशीलता है। अलका का यक्ष संस्कारों में अधिक शिष्ट है और उसकी सरल अभिव्यक्ति सौन्दर्य की कोमल कल्पना से युक्त है। रामगिरि शिखर पर उमड़ते हुए बादलों की 'वप्रक्रीडा' देखते हुए यक्ष के मन में जो आवेग उठता है, वह उसकी शालीनता के कारण अत्यन्त कोमल और मधुर रूप में हमारे सामने व्यक्त हुआ है। यक्ष का अर्घ्य-दान सामाजिक शिष्टता का प्रदर्शन है, पर अपनी सरलता में सजीव तथा साहचर्य-भावना में सहज है—

स प्रत्यग्रैः कुटजकुसमैः कल्पितार्घय तस्मै ।

प्रीतः प्रीतिप्रसुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥^५

[उसने कल्पित अर्घ्य के लिये कुटज के नवीन पुष्पों को हाथ में लेकर उससे (मेघ से) अपने आप कहना आरम्भ किया ।] प्रकृति के प्रति

आत्मीय सम्बोधन का यह काव्यात्मक रूप है। बाद के कवियों ने इस सरल शिष्टता की कोमल भावना को सूखा उपचार मात्र बना दिया है। हंस-सन्देश में राम हंस को सीता के समान सुन्दर पाकर, दूत बनाने के लिये उसे कमल-दल की पूजा प्रदान करते हैं—

चक्रं तस्मै सरसिजद्वलैस्सोपचारां सपर्यां ।

कान्ताश्लेषादधिकसुभगाः कामिनां दूतत्तामः ॥ ६

इस पूजा में स्वाभाविक सरल आत्मीयता के स्थान पर स्थूलता अधिक है।

§ ६—साहचर्य की समीपता में हृदय का विश्वास आवश्यक है।

मित्रता का स्नेह-सम्बंध विश्वास के दृढ़ आधार पर स्थिर है। विश्वास

प्राप्त करना और विश्वास उत्पन्न करना इस स्नेह का साहचर्य-भावना :

विश्वास

आदान-प्रदान है। प्रकृति के चिरन्तन रूप और

व्यापक गति में हमारा अपार विश्वास इस साहचर्य

का आधार बन जाता है। और इस निकटता में प्रकृति से आत्मीयता

स्थापित करने के लिये उसका विश्वास प्राप्त करना स्वाभाविक हो जाता

है। यत्न मेघ की शक्ति की अव्यक्त भावना से प्रेरित होकर प्रशसा द्वारा

विश्वास प्राप्त कर मित्रता स्थापित करता है—

जात वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां ।

जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ॥ ७

[लोक-प्रसिद्ध पुष्करावर्त के वंश में उत्पन्न, तुमको मैं मेघ जानता हूँ। तुम प्रकृति-पुरुष के समान इच्छा-रूप धारण करनेवाले और इन्द्र के सखा हो।] यह यत्न 'जिनसे प्राप्ति न भी हो ऐसे गुणी' से याचना करने का अपना आग्रह प्रस्तुत कर अपनी वियोग की करुण-स्थिति के प्रति संवेदनशील होने के लिये मेघ को जैसे बाध्य कर देता है। कवि घोषी ने पवन की अबाध गति का उल्लेख कर इसी प्रकार उसे कार्य के

६. हंस०, ४।

७. मेघ०; पूर्व०; ६।

लिये उत्साहित किया है। इस वर्णन में व्यंगार्थ की गम्भीरता से विश्वास का आदान-प्रदान हुआ है। नायिका पवन को मारुति का उदाहरण दे रही है—

वीच्यावस्थां विरहविधुरां रामचन्द्रस्य हेतो
 र्यातः पारं पवन ! सरितां पत्युरप्याञ्जनेयः ।
 तत्तातस्याप्रतिहतगतेर्यास्यतस्ते मदर्थं
 गौडी क्षौणी कति नु मलयक्षमाधराद् योजनानि ॥^८

[रामचन्द्र की विरह-वेदना को देखकर उनके लिये पवनसुत समुद्र पार गये। हे पवन ! जिसकी गति बेरोक है ऐसे पुत्र के पिता के लिये मलय जिसका आधा रास्ता है ऐसी गौड़ी नगरी क्या है ?] पवन की प्रशंसा करके उसे बाध्य करने की इस विधि में चतुरता अधिक है, पर मेघदूत जैसी सरलता इसमें नहीं है। हंस-दूत के कवि ने इस परम्परा का अनुसरण किया है—

व्यक्तोत्कर्षो महति भुवने व्योमगानां पतिस्त्वम् ।

विश्वस्रष्टा विधिरपि यतस्सारथिखेन तस्थौ ॥^९

पर इसमें साधारण प्रशंसा मात्र है, जिसमें साहचर्य की व्यंजना के स्थान पर रूढिपालन की भावना है।

क—इस विश्वास के साथ जिस आत्मीय-भाव की स्थापना प्रकृति के साथ होती है, कवि ने उसका निर्वाह किया है। कालिदास के मेघदूत में आत्मीय सहानुभूति का वातावरण आदि से अन्त तक बना रहता है। यत्न ने अपनी आत्मीयता के साथ मेघ के प्रकृति के अन्य रूपों से सहज सम्बंध की कल्पना की है। इन सम्बंधों में प्रकृति में आत्मीय स्नेह का वातावरण बन गया है। यत्न मेघ से प्रकृति के सहज क्षेत्र में विचरण करने के लिये स्नेहपूर्ण

८. पवन, ५।

९. हम् ० ; ६।

गत्वा सद्य कलभतनुतां शीघ्रसंपातहेतोः

क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः ।

अहंस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पाल्पभासं

खद्योतास्त्रीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥ १ १

[घर में शीघ्र प्रवेश करने के लिये, तुम सत्वर हाथी के छोटे बच्चे के समान बन कर पूर्वकथित रमणीय क्रीडाशैल की चौटी पर जा बैठना; और फिर अपनी बिजली की आँखें जुगनुओं के समान थोड़ी-थोड़ी चमका कर मेरे घर के अन्दर भौंकना ।] कालिदास की कल्पना यज्ञ की घनी सहानुभूति में परिणत होकर मेघ को सजीव कर देती है। अन्य दूत-काव्यों में कालिदास का अनुकरण है, पर जैसा कहा गया है उनमें वैचित्र्य की प्रवृत्ति अधिक है।

ख—गीति-भावना के सहचरण में प्रकृति से भाव-तादात्म्य के लिये मुक्त अवसर मिलता है। इन काव्य-गीतियों में वर्णना अधिक है,

भावशीलना

इस कारण यह तादात्म्य भावारोप के द्वारा व्यक्त किया गया है। व्यक्तिगत गीति में प्रकृति पर गायक

अपनी मनःस्थिति का आरोप साम्य-विरोध के आधार पर सीधे ही कर देता है। पर इस अर्धन्तरित गीति में प्रकृति पर रूपात्मक आरोप के द्वारा भाव-तादात्म्य स्थापित किया गया है। प्रकृति में उल्लास है—‘हे मेघ, कुटज पुष्पो से लदे उन सुगन्धित पर्वतों पर तुम ठहरते जाना, वहाँ मोर नेत्रों में आँसू भरकर अपनी केका से तुम्हारा स्वागत कर रहे होंगे। लेकिन तुम वहाँ रुकना मत।’ यज्ञ अपनी व्यथा में प्रकृति के उल्लास को संभाल रहा है, क्योंकि मेघ के साथ वह प्रकृति की भावशीलता की उपेक्षा नहीं कर पाता। प्रकृति में वियोग की स्थिति व्यंजित करने के लिये अधिक अलंकृत प्रयोग किये गये हैं। पर कालिदास ने सम्बंधों के माध्यम को नहीं छोड़ा है—‘हे मेघ, पतली

जल की धारा जिसकी वेणी है, तट के वृक्षों से गिरे हुए पुराने पत्तों की पीली आभा से, निर्विन्ध्या नदी अपनी विरहावस्था को प्रकट करती है। जिससे उसकी दुर्बलता मिटे, मेघ, तुम वही उपाय करना।^१ यहाँ सरिता के वियोग में भावारोप है और मेघ से प्रार्थना आत्मीय सहानुभूति का छायातप। अन्यत्र प्रकृति में प्रेम व्यापार की योजना है—

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्माऽपि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ।
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यहंसि त्व न धैर्या-
न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि ॥^{१२}

[तुम्हारे सुन्दर शरीर की परछाहीं के प्रवेश को प्राप्त कर छायावाली गम्भीरा सरिता का जल चित्त के समान प्रसन्न है। इससे उसकी कुमुदों से उज्ज्वल तथा चंचल मछलियों के रूप में चल चितवनों का तुम जल्दी में अनादर मत करमा।] इस भावशीलता के साथ प्रकृति यक्ष के मन की अन्तर्निहित भावना से एकरूपता स्थापित करती है। इस विरोध में, मेघ के प्रति अपनी आत्मीयता से यक्ष प्रकृति को सहचरी पाता है। आगे इस भावना में आरोप की अलंकृत प्रवृत्ति कालिदास में भी पाई जाती है।

§१०—कहा गया है कि ये दूत-काव्य खण्ड-काव्य हैं। इस कारण इनमें कथा-सूत्र के साथ वर्णना का विस्तार है। इन वर्णनों में कवि वर्णना का विस्तार दूत-रूप प्रकृति के उपकरणों से भावात्मक सम्बन्ध स्थापित करता चलता है, जिसका निर्देश पिछले अनुच्छेद में किया गया है। पर मार्ग-स्थिति प्रकृति-स्थलों का साधारण

१२. मेघ० ; पूर्व , २४ , ३१ , ४४। पवन-दूत ; ३२ में कलात्मक ढग से यमुना से न डरने को कहा गया है। पवन का भावशील सम्बन्ध क्रीडा कारती स्त्रियों से स्थापित किया गया है, २२।

वर्णन भी मिलता है। और ये वर्णन विभिन्न शैलियों में हुए हैं। कालिदास तथा अन्य कवियों में भेद वैचित्र्य तथा अलंकृत शैली का है। बाद के कवियों में देश-गत वर्णना को चित्रमय करने में अलंकृत करने की प्रवृत्ति अधिक है। तथा इन्होंने कालिदास का अनुकरण अधिक किया है, इस कारण इनका महत्व भी कम है। कालिदास के मेघदूत में स्वाभाविक चित्र योजना को अवसर मिला है—

त्वन्नियन्क्ष्वोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः

स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः ।

नीवैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते

शीतो वायुः परिणमयिता काननोद्गुम्बराणाम् ॥

[जन्न तुम देवगिरि की ओर जाओगे, तुम्हारी वर्षा से आनन्दोल्लसित धरती की गन्ध से मधुर पवन तुम्हारी सेवा करेगा; जिसे चिग्घाड़ते हुए हाथी अपनी सूँड़ों से पी रहे होंगे और जिसके चलने से वन के गूलर-फल पकने लगे होंगे।] पर कालिदास ने इस सगल वर्णना में प्रकृति का अपना आत्मोप (मेघ के सम्पर्क से) उल्लास भी व्यक्त किया है। यह उनकी विशेषता है कि चित्रमय या अलंकृत किसी प्रकार की वर्णन-शैली में वे मेघ और प्रकृति का सम्बन्ध उपस्थित कर सके हैं। 'गंगाजी के स्फटिक स्वच्छ जल में मेघ की चलती हुई छाया' के लिये कवि 'प्रयाग के गंगा-यमुना के सुन्दर सगम की कल्पना करता है।' इस चित्रमय कल्पना में गंगा और मेघ के मिलन का भाव रक्षित है। कैलास की आर्दश-प्रकृति के साथ भी मेघ के क्रीडा-कौतुक का उल्लेख है—

हेमाभोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः

कुर्वन्कामं च्छसुखपटप्रोत्तिमैरावतस्य ।

धुन्वकल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानोव वातै-

नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥^{१३}

१३. मेघ०, पूर्व; ४६, ५५, ६६। पत्रनदूत; १५ में कावेरी का कलात्मक वर्णन।

[हे मेघ, तुम वहाँ स्वर्ण कमलों से आच्छादित मानसरोवर का जल पीना, ऐरावत के मुख पर थोड़ी देर के लिये कपड़े सा झाकर उसका मन प्रसन्न करना और फिर पवन से कल्पद्रुम के कोमल नए पत्तों को बारीक कपड़े की भाँति हिला देना । इस प्रकार मेघ, तुम अनेक प्रकार के मनोरम खेल करते हुए कैलास शिखर पर विचरना ।] कालिदास ने इस सन्देश-गीति को रूपात्मक आधार देकर भी सहज उन्मुक्त वातावरण में प्रस्तुत किया है । अन्य कवियों के अनुकरण में यह रूपात्मक आधार अधिक प्रत्यक्ष होता गया है ।

मुक्तक तथा ऋतु-काव्य

§ ११—वस्तु-स्थिति तथा भाव-व्यंजना को प्रस्तुत करने की शैली की दृष्टि से मुक्तकों का विकास जन-गीतियों से माना जा सकता है । स्थिति का उतना संकेतात्मक रूप तथा व्यंजना का परम्परा का विकास वैसा उन्मुक्त वातावरण इनमें नहीं है । पर इनमें गीति के समान स्थितियों का सद्भिन्न उल्लेख और भाव-धारा का स्वच्छन्द प्रवाह मिलता है । संस्कृत साहित्य का मुक्तक काव्य सूक्तियों के रूप में है, उनमें भावों के प्रसार और वर्णना के विस्तार के लिये अधिक अवसर नहीं मिलता है । जीवन व्यापार की एक क्रिया या भाव-स्थिति तथा प्रकृति के विस्तार का एक दृश्य इनमें सान्ध्यकालीन नीलाकाश में मेघखण्ड की भाँति अपनी अभिव्यक्ति में स्वयं सुन्दर हो उठता है । और इनकी तीव्र संयत गति में जीवन तथा प्रकृति एक दूसरे के प्रतिबिम्ब से उद्भासित होते भी देखे जाते हैं । यह सम्बंध गीतियों की मुक्त संवेदनशील भावना के निकट का है । वास्तव में इन मुक्तकों का विकास लोक-गीतियों के उस रूप से हुआ है जिसमें लोक-गायक सूक्तियों में अपनी भाव-धारा को विभाजित कर व्यक्त करता है । इससे सांकेतिक गोपनीयता के साथ भावों में तीव्रता आ जाती है । लोक-गायिका को अपने मन की बात आत्मीय व्यक्ति से कहनी है, फिर वह

सूक्तियों के माध्यम से अपने गीत को आगे बढ़ाती है। इसी शैली का काव्यात्मक रूप मुक्तक है। हाल की गाथाओं में गीति-भावना अधिक सुरक्षित है, इसी कारण हम इस प्राकृत-काव्य को अपने अध्ययन के अन्तर्गत ले रहे हैं। अमरुशतक तथा आर्यासप्तशती आदि अन्य मुक्तक-काव्यों में काव्यात्मक वैचित्र्य तथा रूढ़ि बढ़ती गई है। ऋतु-काव्य की परम्परा मन्कृत साहित्य में अधिक प्रमुख नहीं हो सकी, पर महाकाव्यों में ऋतु-वर्णनों का निश्चित विधान था। ऋतु-काव्य तथा महाकाव्यों के इन ऋतु-वर्णनों में मुक्तक की भावना तथा शैली रक्षित है। कालिदास के ऋतु-वंशार में तथा अन्य कवियों के ऋतु-वर्णनों में सभी चित्र मुक्त हैं और उनको अलग-अलग समझना चाहिए। ऋतु-वर्णन के साथ अपने सुख-दुःख को व्यक्त करने की जन-प्रवृत्ति से इस काव्य रूप का विकास स्पष्ट है। पर अन्य मुक्तकों के समान इन वर्णनों में काव्य रूप के साथ अलंकार और वैचित्र्य की रुचि अधिक हो गई है।

§ १२—इन मुक्तकों में यत्र-तत्र प्रकृति के चित्र बिखरे हुए हैं। कवि हाल के कुछ वर्णनों में सहज जीवन से सम्बंधित स्थितियाँ हैं। कवि की दृष्टि 'भैंसे के कन्धों पर बैठे हुए मच्छरों पर भी वर्णनात्मक सुक्तियाँ जाती है, जो सींग से प्रताड़ित होकर आहत वीणा के भङ्कृत शब्द के समान भनभना कर उड़ रहे हैं।' तथा 'वर्षा की जलधारा की ओर मुख करके पंखों को लम्बा किये हुए तथा गरदन को टेढ़ी कर चक्कर लगाते हुए कौओं का' सूक्ष्म निरीक्षण कवि ने किया है। निश्चय ही इस कवि ने प्रकृति के मौन व्यापारों को सहानुभूति के साथ देखा है—

भरणमिअणीलसाहग्गखल्लिअचल्लणद्धविहुअवक्खउड्डा ।

तरुलिहरेसु विहंगा क्ह क्ह वि लहन्ति संठाणम् ॥^{१४}

[भार के कारण कोमल टहनियों के झुक जाने से पत्तियों के पैर किंचित लड़खड़ा जाते हैं और फिर वे अपने पंखों को फड़फड़ाते हुए किसी किसी प्रकार से वृक्ष को शाखाओं पर अपने नीड़ पा लेते हैं ।] सन्ध्या समय के इस दृश्य को कवि कोमल सहानुभूति के आधार पर देख सका है । जब कवि किसी दृश्य को उपस्थित करने के लिये कल्पना का सहारा लेता है, वह उसे प्रत्यक्ष कर देता है—‘चारों ओर सभी दिशाओं में फैलते हुए, एक दूसरे पास-पास के शिखरों पर घिरते हुए बादलों के रूप में मानों विन्ध्य अपनी छाया को त्याग रहा है ।’ इन वर्णनों में अप्रत्यक्ष उल्लास की व्यंजना भी है—‘वर्षा-काल में मयूर घास के अप्रभाग में लगे हुए जल-विन्दुओं को मरकत की सुई से पिरोए हुए मोतियों के समान पी रहा है ।’ कवि ‘शरद बादलों की उपमा श्वेत रुई की राशि तथा सैन्धव के पर्वत से देकर’ काव्यात्मक रूप-सौन्दर्य उपस्थित करता है । हाल में प्रकृति-वर्णन सम्बंधी वैचित्र्य का आग्रह भी मिलता है—‘वृक्षों की कोटरों से निकलते हुए तोतों की पंक्ति लगती है मानो शरद काल में वृक्ष ज्वर से लोहू के साथ पित्त का वमन करते हैं ।’ परन्तु इस प्रकार की वैचित्र्य-कल्पना अधिक नहीं है, हाल में उक्ति-वैचित्र्य की प्रवृत्ति कम है—

रेहन्ति कुमुदक्षणित्तलद्विधा मत्तमधुअरणिहाया ।

ससिअरणीसेसपणासिअरस गण्ठ व्व तिमिरस्स ॥^{१५}

[कुमुद की पंखुड़ियों पर निश्चल होकर बैठा हुआ मत्त मधुकरों का समूह, ऐसा लगता है मानो शशि की किरणों से समाप्त किये हुए अन्धकार की शेष रह गई ग्रन्थि है ।] इस प्रकार के वर्णन में वैचित्र्य का सौन्दर्य रक्षित है । आर्या के कवि में गाथाकार की प्रकृति सम्बंधी सूक्ष्म अन्वीक्षण की प्रवृत्ति नहीं है । पर चित्र-योजना में उसकी कल्पना में सर्जन की शक्ति है—

पवनोरलासितपल्लवगर्भेषु प्रविशतीव तमः ।

अतिनिविडसजातीयान्तरेण कृतनादन पश्चात् ॥

[अनन्तर अन्धकार अत्यधिक आत्मीय स्नेह से आप्रह करता पवन द्वाग चञ्चल किये हुए पत्तों के गर्भ में प्रवेश सा कर रहा इसमें वृत्तों के पत्तों में सिमटते हुए अन्धकार का दृश्य भावशील साथ अंकित है। गोवर्धनाचार्य म उद्दीपन के साथ वैचित्र्य की प्रवृत्ति विशेष है, परन्तु यह ऊहात्मक सोमा पर नहीं पहुँचती है—

मेघचयताऽम्बरमिदं जलदेन हलायुधत्वमुदवाहि ।

तस्योद्रेकेण पुनर्यमुना प्रतिकूलगामिनी जाता ॥^{१६}

[मेघ विस्तार के कारण श्याम-वर्ण हुए आकाश ने बलराम की शोभा धारण की है। और उसके उद्रेक (आधिक्य) से मानों फिर यमुना की धारा उलटी प्रवाहित हो गई है।] इस उक्ति में रूप-सादृश्य से वैचित्र्य का सौन्दर्य है।

§ १३—अभी तक मुक्तकों में इधर-उधर बिखरे हुए प्रकृति-चित्रा का उल्लेख हुआ है। इनमें प्रसंग के अनुसार भावों की आधार भूमि ढूँढी जा सकती है, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से इनमें स्थिति सहज भावशीलता का चित्र मात्र है। मुक्तको पर यह काव्य-वर्णना का प्रभाव है। क्योंकि गीति की भावना के साथ प्रकृति भावशील होकर उपस्थित होती है। कहीं कहीं इन वर्णनों में उल्लास या विलास की भावना का सकेत छिपा हुआ है, पर वह प्रत्यक्ष नहीं है। अन्यत्र प्रकृति से कवि भाव सामजस्य स्थापित करता है। और इस प्रकार के तथा उद्दीपन-विभाव के वर्णन, इन मुक्तकों में गीति-भावना के प्रभाव के कारण अधिक हैं। कभी प्रकृति की क्रीड़ा के प्रति सहज उत्सुकता की भावना लेकर 'किरात लोग अपने धनुष की कोटियों को पर्वत की चट्टानों पर टेककर विन्ध्य-शिखर पर धिरते हुए हाथियों के समान बादलों को देखते

हैं। प्रकृति में मानवीय उल्लास की सहज भावना प्रतिघटित होती है—‘ग्रीष्म के मध्याह्न में कठिन सूर्य की किरणों के स्पर्श से सतत वृक्ष वनों में लगातार झिल्ली की झुंकार के रूप में रो रहे हैं।’ प्रकृति की संवेदना का अनुभव जैसे आत्मीयता के वातावरण में होता है। इसी प्रकार प्रकृति में मानव का सहज उल्लास भी व्यंजित होता है—‘सूर्य के किरण समूह के स्पर्श से कमला का वन विकसित हो रहा है और उसमें मधु के लोभी भ्रमर झुंकार कर रहे हैं।’ वर्णन में क्रिया-व्यापारों से उल्लास की भावना व्यंजित की गई है। परन्तु यह उल्लास प्रकृति में प्रत्यक्ष भी दिखाई पड़ता है—

अहिणवपाउसरसिपुसु सौहृद्द साभ्राइपुसु दिअहेसु ।

रहसपसारिअगीवार्ये णच्चिअं मोरवुन्दाणम् ॥^{१७}

[सुन्दर वर्षा-काल में बादलों से श्याम आभावाले तथा गरजन से पूर्ण दिनों में शीघ्रता से अपनी गरदन को ऊँचा करके नाचते हुए मोर शोभा बढ़ाते हैं।] अपने आप में आनन्दमग्न प्रकृति में कवि का अपना तादात्म्य है। आर्या के कवि ने अधिक चित्रमय ढंग से प्रकृति में उल्लास व्यंजित किया है—

जाम्बूनदवीरुदिव स्तम्भे लिखिता महेन्द्रनीलस्य ।

सौदामिनौ नवीने बलाहके वितनुते कुतुकम् ॥

[इन्द्रनील मणि के स्तम्भों पर लिखी हुई यथ की स्वर्ण-रेखा के समान बिजली नवीन बादलों में कौतुक फैला देती है।] दृश्य की रूपात्मक चित्रमयता में गति के साथ उल्लास की अव्यक्त भावना छिपी हुई है। यह भावाभिव्यक्ति कभी अधिक प्रत्यक्ष आश्रय ग्रहण करती है। आर्या का कवि वसन्त के साथ काम की कल्पना करके प्रकृति में आनन्दोल्लास प्रतिबिम्बित करता है—

ऋतुराजसखरथोऽयं मञ्जयमरुद्वर्ण्यते विश्वैः ।

तत्र मधुवतराजी विराजते वैजयन्तीव ॥ १८

[विद्वानो से यह ऋतुराज के सखा (काम) का मलय पवन-रूपी रथ कहा गया है। जिस पर भ्रमरों की पंक्ति पताका के समान है।] परन्तु काम के उल्लेख में रति की भावना अन्तर्हित है और इस कारण इसमें उद्दीपन का सकेत है।

क—गीति-भावना से सम्बंधित भावोल्हास के अतिरिक्त व्यापक मानवीकरण के रूप में इन मुक्तकों में भावारोप हुआ है। भाव-व्यंजना की

भावरोप यह प्रवृत्ति काव्यात्मक है। ऊपर के चित्रों में भाव-व्यंजना तादात्म्य के रूप में हुई है, उनमें कवि या पात्र

अपने भावों के साथ प्रकृति को एक रूप देखता है। और इस वर्णना में प्रकृति पर भावारोप किया गया है। प्रकृति मानव के भावों से अनुप्राणित है, पर कवि तटस्थ है। प्रकृति के विभिन्न रूपों में जैसे मानवीय आत्मीयता है—‘इन्द्रधनुष की कोटि से मेघ-रूपों जैसे का पेट विदीर्ण हुआ जान कर बिजली सवेदना में क्रन्दन करती जान पड़ती है।’ कवि प्रकृति की गतिशीलता और उसके रूप परिवर्तनों में जीवन का स्पन्दन पाता है—

खरपव्यारभ्रगलत्थिभ्रगिरिऊडावड्यभिर्यादहस्स ।

धुक्काधुक्कड् जीर्धं व विज्जुआ कालमेहस्स ॥

[प्रचण्ड पवन के झोंके के वेग रूपी गलहस्त द्वारा पर्वत की चोटी से गिराये जाने से छिन्न-भिन्न हुए श्याम मेघ के जीव के समान बिजली कम्पित है।] इस चित्र में पर्वत के शिखर से पवन द्वारा छिन्न-भिन्न किये बादलों में बिजली की चमक प्रत्यक्ष हो जाती है, साथ ही मानवीय भाव-सामंजस्य से दृश्य में सजीवता आ गई है। कभी भाव के स्थान पर स्थूल हाव तथा अनुभाव का आरोप प्रधान हो जाता है और ऐसी कल्पना में अलंकार की प्रवृत्ति अधिक रहती है—

रुन्दारविन्दमन्दिरमभ्ररन्दाणन्दिआखिरिञ्जोली ।

ऋणऋण्ड कसणमणिमेहल व्व महुमासलच्छीए ॥ १९

[विकसित कमलो के मन्दिर मे मकरन्द से आन्दोल्लासित गुजार करती हुई भ्रमरो की पंक्ति मधुमास की लक्ष्मी की कृष्णमणि की करधनी के समान भङ्कृत हो रही है ।] पान्तु इस आरोप मे उद्दीपन की भावना अन्तर्हित है । आर्याकार के चित्रों मे स्थूल आरोप की प्रवृत्ति भावव्यंजना से अविक है । 'प्रातःकाल किञ्चित पवन से स्फुरित पत्तियो के अन्दर भ्रमररूपी आँखों से कमल की कलियों पर घुँघट की कल्पना प्रत्यक्ष होती है ।' इस वर्णन में वैचित्र्य की प्रवृत्ति के साथ रूप का आरोप अधिक है । साथ ही आर्या मे उद्दीपन की भावना मानवीकरण मे अविक है । यह कहा गया है कि आरोप चाहे आकार का हो अथवा भाव का, बाद के काव्यों में उनमे उद्दीपन की प्रेरणा अधिक प्रबल होती गई है—

शास्त्रीनां परिपाकावस्थासम्प्रासरागवैजात्याम् ।

लब्धघनपाण्डुभावां शरदं नवशैवनां पश्य ॥ २०

[धान के पक जाने पर, अपरिचित राग प्रकट हुआ है ऐसी युवती के समान शरद की घनी पियराई से व्यक्त युवावस्था को देखो ।] इसमे आरोप इतना स्थूल है कि प्रकृति पार्श्वभूमि मे पड़ जाती है और वह मानवीय भावो को अधिक व्यक्त करती जान पड़ती है । यहाँ से उद्दीपन-विभाव की सीमा प्रारम्भ होती है ।

§ १४—ऋतु-काव्य की परम्परा जननीनियो की भावना से प्रभावित है । यद्यपि ऋतु-काव्य का स्वतंत्र अस्तित्व प्रमुख नहीं हो सका, पर

महाकाव्यों में इनका रूप रक्षित है । अन्य वर्णनों के साथ ऋतु-वर्णन की आवश्यकता का निर्देश शास्त्रीय

१९. गाथा० ; श० ६ ; ८४, ८३, ७४ ।

२०. आर्या० ; श० ५ ; ४६ : श० ८, २९ ।

ग्रन्थों में किया गया है और यह प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही महाकाव्यों में पाई जाती है। परन्तु कुछ स्थलों को छोड़कर इन ऋतु-वर्णनों का सम्बन्ध कथानक से नहीं के बराबर है। इसके अतिरिक्त इन वर्णनों में काव्यात्मक रस के अन्तर्गत लोक-गीतियों के ऋतु वर्णनों को मुक्त भावना के संकेत मिलते हैं। इनमें उद्दीपन की जो व्यापक प्रवृत्ति मिलती है, उस कारण भी इनके विकास का स्रोत गीति-भावना माना जा सकता है। समय की गति के साथ प्रकृति का स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। दिन के प्रकाश के बाद रात्रि का अन्धकार प्रकृति के आयोजित एक सौन्दर्य-दृश्य को छिपा लेता है। और इसके बाद एक दूसरे रहस्यमय दृश्य पट पर चन्द्रमा अपनी कलाओं के विक्रम और हास के साथ विभिन्न छायातप डालता रहता है। और इससे विस्तृत तथा व्यापक परिवर्तन प्रकृति-जगत् में ऋतुओं के साथ होता है। ऋतु के साथ वनस्पति-जगत् नवीन और भिन्न रूपों में हमारे सामने उपस्थित होता है। इन परिवर्तनों के साथ मनुष्य की कृषि का सम्बन्ध है। यह समस्त परिवर्तन युगों से मानव जीवन से सम्बन्धित रहा है, और कृषि के कारण लोक-जीवन से अधिक घनिष्ठ हो गया है। वस्तुतः यह उसके जीवन के प्रवाह का अंग बन गया है। इस कारण जन-गीतियों में प्रकृति से आत्मीयता का सम्बन्ध सहानुभूति और संवेदना के आधार पर व्यक्त होता है। साथ ही ऋतु के परिवर्तन लोक गायक की मुख दुःख की सहज भावना के साथ हिल-मिल गये हैं। इस भाव-मामंजस्य के आधार पर काव्य में ऋतु-वर्णन शृंगार के उद्दीपन के अन्तर्गत अधिक हुए हैं। इन वर्णनों को सयोग-वियोग के रंगों में चित्रित किया गया है, और इनके साथ मानवीय उद्दीप्त भाव-विलास का प्रसार काव्य में अधिक हो गया है।

क—ऋतु-काव्य तथा अधिकतर महाकाव्यों के अन्तर्गत ऋतु-वर्णन मुक्तक के रूप में हैं। इस कारण कथा-वस्तु सम्बन्धी वर्णनात्मक

वर्णना की स्थिति विस्तार इनमें नहीं है। और इनका विकास जन-गीतियों से माना गया है, इस कारण इनमें प्रकृति

मानवीय भावो के सम्पर्क मे अधिक है। काव्यात्मक प्रभाव से वर्णन अलकृत तथा चित्रमय हो गये है, पर इनमे किसी न किसी रूप मे मानवीय भाव-व्यजना को प्रवृत्ति है। परम्परा मे क्रमशः रूप का आरोप उद्दीपन की भावना तथा विलास का वर्णन आधिक प्रधान होता गया है। पर कालिदास के ऋतुसहार मे यह विलास का वर्णन और उद्दीपन की भावना विकसित रूप मे पाई जाती है, शिशिर और हेमन्त मे तो प्रकृति का आश्रय भर है। अन्य ऋतुओं के वर्णनो मे प्रकृति स्वाभाविक सश्लिष्टता तथा चित्रमयता के साथ उपस्थित हुई है। ग्रीष्म के वर्णन मे ताप से व्याकुल प्रकृति का वर्णन आदर्श-योजना के साथ स्वाभाविक है। 'अत्यधिक प्यास के कारण साहस और उत्साह ठंडा हो गया है, मुँह खोलकर बार-बार हॉफ रहा है और जीभ से ओठ चाटता जा रहा है, ऐसा सिद्ध जिसके कन्धे के अयाल हॉफने से हिल रहे है, हाथियो के पास होने पर भी उनपर आक्रमण नहीं करता।' इस चित्र मे कवि ने आदर्श का आश्रय लिया है। पर प्रकृति की इन आदर्श कल्पनाओं मे व्यापक रूप से सन्नस्त होने का भाव मिला हुआ है—

रविप्रभांज्जिशिरोमणिप्रभो विलोलजिह्वाद्वयलोढमारुतः ।

विषाग्निसूर्यातपतापित फणी न हन्ति मण्डूककुलं तृषाकुलः ॥

[जिसका मणि सूर्य की प्रभा से अधिक चमक उठा है और अपनी लपलपाती हुई दोनो जीभो से पवन पीता जा रहा है, ऐसा प्यासा साँप धूप की लपटों और अपने विष की झार से जलने के कारण मेढकों को नहीं मारता है।] ऋतुसहार मे सहज स्वाभाविक वर्णन भी हैं जिनका उल्लेख तृतीय प्रकरण मे किया गया है। पर गीति-भावना के मुक्तक रूप के कारण इनमे अक्सर भावोल्लास का छायातप रहता है—'शरद ऋतु मे शीतल पवन कमलो को स्पर्श करता हुआ बह रहा है; बादलों के अदृश्य हो जाने से सभी दिशाएँ सुहावनी लगती हैं, जलाशयो का नीर स्वच्छ हो गया है, पृथ्वी का कीचड सूख गया है और आकाश स्वच्छ किरणवाले चन्द्रमा तथा तारो से शोभित है।'

काव्य की कलात्मक शैली के प्रभाव से यत्र-तत्र इसमें चित्रमय योजना भी मिल जाती है—

स्फुटकुमुदचितानां राजहसाश्रितानां

मरुक्तमखिभासा वारिण्या भूषितानाम् ॥

श्रियमत्तिशयरूपां व्योम तोयाशयानां

वहति विगतमेघ चन्द्रतारावकीर्णम् ॥ २१

[चन्द्रमा से प्रकाशित तथा छिटके हुए तारों से भरा हुआ शरद का मेघहीन आकाश, विकसित कुमदों से पूर्ण नोलम के समान जलवाले उन सरोवरो की शोभा धारण किये हुए है जिनमें राजहंस संचरण कर रहा हो ।] महाकाव्य के ऋतु-वर्णनों के ऐसे चित्रों का उल्लेख शैली के अन्तर्गत किया गया है । उनमें अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार अपेक्षाकृत अलंकृत वर्णनों को अधिक अवसर मिला है, क्योंकि ऋतु-संहार मुक्तक-काव्य का रूप है ।

§ १५—कहा गया है कि ऋतु सम्बन्धी मुक्तकों में गीतियों का मुक्त वातावरण मिलता है; यद्यपि सन्धेय के कारण मुक्तकों में भावात्मक अभिव्यक्ति उक्ति के रूप में मन पर प्रभाव डालती है । अने भावों से प्रकृति को सवेदित कर देने की व्यापक प्रवृत्ति ऋतु सम्बन्धी वर्णनों में मिलती है । हम देख चुके हैं कि सहज वर्णनों में भी प्रकृति भावशील है । अन्य चित्रों में प्रत्यक्ष रूप से गायक अपना उल्लास प्रकृति के उल्लास में मिला देता है । उल्लास का यह भाव-सामंजस्य प्रकृति के सम्मुख मन की मुक्त स्थिति का रूप है—

मुदित इव कदम्बैर्जातपुष्पै समन्ता-

स्पवनचलितशाखैः शाखिभिर्नृत्यतीव ।

हसितमिव विधत्ते सूचिभिः केतकीनां

नवसलिलनिषेकाच्छ्रितापो वनान्तः ॥

[पवन से भूमती हुई शाखाओं से नृत्य करता हुआ, केतकी की श्वेत कलियों के रूप में हँसता हुआ वन-प्रदेश वर्षा के नए जल से सन्तापहीन होकर चारों ओर खिले हुए कदम्ब के फूलों में मगन है ।] यहाँ वन में कवि के मन का उल्लास प्रतिबिम्बित हो रहा है । पर अधिकतर प्रकृति और मानव का उल्लास तादात्म्य स्थापित करता है—‘जिनका जल कमलों के पराग से लाल हो गया है और जिन पर हंस कूजते हैं ऐसी नदियाँ, जिनकी लहरें जल-पक्षियों के चोंचों से टकरा रही हैं और जिनके तीर पर कादम्ब और सारस पक्षियों के झुण्ड घूम रहे हैं, लोगों के मन को आकर्षित करती हैं ।’ अथवा ‘जिनके तीर पर मस्त हंसों के जोड़े घूम रहे हैं, जिनमें निर्मल नील कमल खिले हुए शोभित हैं ऐसे ताल, जिनमें प्रातःकाल के मन्द पवन से लहरे उठ रही हैं अकस्मात् ही मन को चंचल कर देते हैं ।’ उल्लासमयी प्रकृति का यह रूप काव्यात्मक आदर्श का है । पर बीच-बीच में सहज प्रकृति में यही आनन्दोल्लास प्रतिध्वनित हो रहा है—

संपन्नशालिनिचयावृतभूतलानि

स्वस्थस्थितप्रचुरगोकुलशोभितानि ।

हंसैः ससारसकुलैः प्रतिनादितानि

सीमान्तराणि जनयन्ति नृणां प्रमोदम् ॥ २२

[जहाँ खेतों में भरपूर धान के पौधे लहलहा रहे हैं, घास के मैदानों में बहुत सी गाये चर रह रही हैं और अनेक हंस तथा सारस के जोड़े मधुर स्वर कर रहे हैं, ऐसे गाँवों के सिमान (सीमान्त) लोगों को

२२. ऋतु० : स० २ ; २३ : स० ३, ८, ११, १६ (स० ४ ; ८ इसी के समान है)

उल्लासित करते हैं ।] महाकाव्यों के ऋतु-वर्णनों में यह उल्लास का रूप बहुत कम आ सका है । उसका कारण प्रत्यक्ष ही इनका अधिक कलात्मक होना है । जानकीहरण में यह भाव-व्यंजना अधिक अलंकृत रीति से की गई है—

महीध्रमूर्ध्नि भ्रमरेन्द्रनीलौर्विभक्तशोभः शिखिकण्ठनीलैः ।

गृहीतभास्वन्मुकुटानुकारस्ततान कान्तिं नवकर्णिकारः ॥ ^{७३}

[जिसका सौन्दर्य नीलम के ममान भ्रमरों से चित्रित हो गया है और जिसने नीले कण्ठवाले मयूरो से चमकीले मुकुट का अनुकरण किया है ऐसा गिर-शिखर पर फूला हुआ नवकर्णिकार अपनी शोभा का विस्तार कर रहा है ।] इसमें भाव से चित्र का रूप अधिक प्रमुख हो गया है, इस कारण उल्लास का वैसा मुक्त तादात्म्य यहाँ प्रत्यक्ष नहीं हो सका है । भारवि की उल्लासमयी प्रकृति में स्वच्छन्द वातावरण से अधिक कवित्व का आग्रह और परम्परा का अनुसरण है—

व्यथितमपि भृशं मनो हरन्ती परिणतजम्बुफलोपभोगहृष्टा ।

परभृतयुवति स्वनं वितेने नवनवयोजितकण्ठरागरम्यम् ॥ ^४

[पूर्ण रूप से पके हुए जामुन के फल खाकर पुष्ट हुई कोकिला युवती नए-नए ढंग में आने कण्ठ के स्वर को निकालकर दुःखी मन को भी आकर्षित करती है ।] इस चित्र में प्रकृति के आकर्षण और उल्लास के साथ युवती का उल्लेख किया गया है, जिससे उद्दीपन का किंचित संकेत मिलता है ।

क—इन ऋतु-वर्णनों में काव्य-परम्परा का अनुसरण अत्यधिक है, इस कारण उन्मुक्त भावना के केवल संकेत इनमें देखे जा सकते हैं । इसी प्रवृत्ति के कारण भावारोप का अधिक

आरोप

विस्तार रूपात्मक है तथा उद्दीपन के अन्तर्गत आत

२३. जान० ; स० ३ , ८ । अन्य उदाहरण वर्णन-शैली के अन्तर्गत देखे जा सकते हैं ।

२४. किरा० , स० १० ; २२ ।

है। भावतादात्म्य को व्यक्त करनेवाले आरोप इनमें कम हैं। समस्त भाव-धारा शृंगार तथा उनके उद्दीपक-विधान से ऐसी ओत-प्रोत है कि व्यापक भाव-स्थिति का प्रतिबिम्ब ग्रहण करनेवाले आरोपों के लिये अवसर बहुत कम मिला है। जो एक आध उदाहरण मिल जाते हैं, वे आकार प्रधान हैं। और जैसे ऊपर वर्णित उल्लासित प्रकृति एक प्रकार से उद्दीपन की व्यापक भावना का अंश है, इनमें भी व्यजना उसी की छिपी है। वर्षा के इस रूप में नायिका की कल्पना है— 'बिखरे हुए वैदूर्यमणि के समान लगनेवाली घास के कोमल अकुओं से भरी हुई, कन्दली के ऊपर निकले हुए पत्तों से आच्छादित तथा बरबहूटियों से छाई हुई धरती मानो श्वेत रत्नों को छोड़कर और सभी रंग के रत्नों के आभूषण से सजी हुई है।' इस आरोप में व्यापक सौन्दर्य का आलम्बन प्रकृति में मानवीय रूप में प्रतिघटित हुआ है। परन्तु नायिका और शृंगार की कल्पना इतनी प्रधान हो उठती है कि प्रकृति पर आरोप प्रधान लगने लगता है जो अप्रत्यक्ष आलम्बन को साथ लिये हुए है। इसी प्रकार ऋतुसंहार के वसन्त-वर्णन में 'पलास के लाल वनों से ढकी हुई पृथ्वी को नव-वधू के रूप' में उग्रस्थित किया गया है। प्रकृति के व्यापारों में इसी प्रकार का आरोप है जिसमें व्यापक भाव-शीलता के साथ शृंगार का संकेत है—

सदा मनोज्ञं स्वनदुत्सवोत्सुकं विकीर्णविस्तीर्णकलापशोभितम् ।

ससंभ्रमाबिङ्गनचुम्बनाकुलं प्रवृत्तनृत्यं कुलमद्य बहिष्णाम् ॥ २५

[सदा मधुर बोलनेवाले, गरजते बादलों की शोभा पर रीझ उठनेवाले तथा अपने खुले पंखों से सुहावने लगनेवाले मोरों के झुण्ड तत्परता से अपनी प्यारी मोरनियों को गले लगाते तथा चूमते हुए आज नाच उठे हैं।] इस भावात्मक आरोप में आलिंगन आदि से उद्दीपन का संकेत

२५. ऋतु० ; स० २ ; ५ : स० ६ ; २१ : स० २ , ६ । (स० ३ ; १ में नव-वधू का आरोप है।)

आ गया है। आरोप के प्रयोग महाकाव्यों के अन्तर्गत ऋतु-वर्णनों में अधिक हैं। ये वर्णन अधिक अलंकृत शैली में हैं इस कारण इनमें मानवीकरण द्वारा भाव व्यंजना का अधिक आश्रय लिया गया है। लेकिन समान रूप से शृंगार के उद्दीपन की प्रवृत्ति इनमें पाई जाती है। व्यापक भाव-शीलता को प्रतिघटित करके आलम्बन रूप में प्रकृति का चित्रण यत्र तत्र ही हो सका है। पिछले प्रकरण में शैली के अन्तर्गत इन पर विचार किया गया है। रघुवंश में व्यापक भाव-व्यंजना का चित्र इस प्रकार है—

कुसुमजन्य ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम् ।

इति यथाक्रममाविरभून्मधुद्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ॥

[पहले फूल विकसित हुए, फिर नई कोपले फूटीं फिर भीरे गुंजागने लगे और कोयल की कूक भी सुनाई देने लगी। इस प्रकार क्रमशः वसन्त धीरे धीरे वनस्थली में प्रकट हो रहा है।] प्रकृति के इस रूप-क्रिया विस्तार में एक अदृश्य भाव-शीलता छिपी है। कवि लताओं को आकार देकर हाव-भावों में अनुप्रमाणित कर देता है—“खिले हुए कोमल पुष्पों के रूप में जिनकी मुस्कान में दाँतों का झलक है और भ्रमरो की मधुर गुजार के रूप में जो गा रही हैं ऐसी वन के निकट की लताएँ पवन से हिलते हुए नवीन कल्ले रूपी हाथों में अभिनय ना कर रही हैं।”^{२६} अन्य आरोपों में वैचित्र्य तथा उद्दीपन की प्रवृत्ति अधिक स्पष्ट हो गई है। भारवि के इस चित्रांकन में भावों की सहज व्यंजना आरोप के माध्यम से हुई है—

कुसुमनावनान्युपैतुकामा किसलयिनीमवलम्ब्य चूतयष्टिम् ।

क्वणद्विकुलनूपुरा निरासे नलिनवनेषु पदं वसन्तलक्ष्मीः ॥^{२७}

२६. रघु० ; स० ९ ; २६, ३५। व्यापक भावशीलता की दृष्टि दे० सेतु०,
आ० १ ; २९, तृ० प्र० में उद्धृत।

२७. किरा० ; स० १० ; ३१।

[पुष्पित वृक्षोवाले वनों पर छा जाने की इच्छा करती हुई वसन्त की श्री, आम की नव-किसलयों से आच्छादित शाखाओं का सहारा लेकर कमलों के वन पर अलि की गुंजार से नूपरों की झंकार करती हुई पद रख रही है ।] काव्यात्मक कल्पना के इस रूप में प्रकृति के सौन्दर्य में भावों का प्रतिबिम्ब स्पष्ट है, और कवि तथा पाठक की मनःस्थिति के लिये यह सौन्दर्य आलम्बन है । परन्तु ऐसा भावशील रूप सभी कवियों में कम मिलता है । माघ की आरोप सम्बन्धी प्रवृत्ति का उल्लेख पिछले प्रकरण में किया गया है । इनके आरोप स्थूल-रूप का आश्रय लेकर भाव को व्यक्त करते हैं जिनमें वैचित्र्य के साथ उद्दीपन के संकेत स्पष्ट हो जाते हैं । जब प्रकृति में शृंगार के आलम्बन का आरोप किया जाता है, पर भावी मानवीय आलम्बन का परोक्ष रूप अधिक उभरने नहीं पाता है, तो वह रूप व्यापक रति-भाव का स्वतः आलम्बन माना जा सकता है । इसी दृष्टि से ऊपर के प्रसंग में शृंगार सम्बन्धी आरोपों को लिया गया है । माघ वन-श्रेणी की कल्पना ऋतु के साथ वधू के रूप में करते हैं—

अनुवन वनराजिवधूमुखे बहलरागजवाधरचारुणि ।

विकचबाणदत्तावल्लयोऽधिकं रुचिरे रुचिरेक्षणविभ्रमाः ॥ २८

[प्रत्येक वन में, अत्यन्त लाल रंग के जवाकुसुम रूपी ओठों से सुन्दर तथा विकसित नील भ्रिण्डी के दल-समूह रूपी सुन्दर नेत्रों के भ्रूविलास से वनराजि वधू अत्यधिक शोभित हुईं ।] प्रकृति के आलम्बन-रूप के साथ इन आरोपों में जो भाव-रूप स्थापित किया जाता है वह शृंगार के आलम्बन-रूप के अति निकट है । इस कारण उसके किंचित संकेत मिलते ही यह रूप उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत आ जाता है । एक प्रकार से प्रकृति के आलम्बन तथा उद्दीपन रूपों की यह विभाजन सीमा है ।

§ १६—गीति-भावना से प्रभावित मुक्तक काव्य में और विशेष-कर ऋतु-काव्य में प्रकृति के प्रति आत्मीयता और निकटता की भावना स्वाभाविक है। इसी वातावरण में मानव प्रकृति से अपना सम्बंध स्थापित करता है। जिस निकटता ने प्रकृति मानव जीवन को स्पर्श करती है, उन्हीं के आधार पर मानव उसे अपनी सहानुभूति से अनुप्राणित करता है और उससे साहचर्य का सम्बंध स्थापित करता है। दूत-काव्य के अन्तर्गत इसका उल्लेख किया गया है। प्रकृति के प्रति आत्मीयता की घनी अनुभूति के कारण उपालम्भ-काव्य का विकास हुआ है। इस काव्य-रूप के लिये जितने मुक्त वातावरण की आवश्यकता हैं, वह संस्कृत के ऋतु-वर्णनों में नहीं मिलता है। इसका विकास लोक-भाषाओं के साहित्य में हुआ है। पर यत्र-तत्र इनमें सहानुभूति का वातावरण मिल जाता है। गाथाकार की साहचर्य-भावना व्याध के अश्रुओं के साथ एकरस हो गई है—

एककमपरिरक्खणपहारसँसुहे कुरुङ्गमिहुणम्मि ।

वाहेण मण्णुविअलन्तवाहधोअं धणुं सुक्कम् ॥

[कुरग के जोड़े में से जब प्रत्येक दूसरे को बाण से बचाने के लिये प्रहार के समान आने लगे तब कुरुणार्द्र व्याध ने अश्रुओं से धुला धनुष रख दिया ।] परन्तु आर्या का कवि अपनी सहानुभूति प्रकृति में अद्यन्तरित कर देता है—‘विरह से कातर पुतली को अपने प्रिय की ओर लगाए हुए किरात के बाण से विद्ध मृगी के प्राण मानो दृष्टि के मार्ग से निकल गये हैं ।’^{२९} ऋतु-वर्णनों की कलात्मक योजना में इस आत्मीयता और सहानुभूति के लिये बिलकुल अवसर नह है। यदि एक दो स्थल मिल जाते हैं, तो वे केवल इस भावना के अवशेष मात्र हैं। भारवि गोपियों के गीत से आकर्षित मृगियों का वर्णन करते हैं—

कृतावधानं जितबर्हिणध्वनौ सुरक्तगोपीजनगीतनिःस्वने ।

इदं जिघत्सामपहाय भूयसीं न सस्यमभ्येति मृगीकदम्बकम् ॥ ३०

[गोपियों के मयूर के केका स्वर से मधुर गीत में एकाग्र चित्त होने से मृगियों के समूह अपने खाने की अत्यधिक इच्छा को त्याग कर धान नहीं खा रहे हैं ।] इस प्रकार के उल्लेख इन वर्णनों के अन्तर्गत आकस्मिक माने जा सकते हैं, क्योंकि व्यापक प्रवृत्ति में इस भावना को स्थान नहीं मिल सका है । माघ के ऋतु-वर्णन में ऐसा ही चित्र आ गया है—

विगतसस्यजिघत्समघट्टयत्कलमगोपवधूर्नं मृगव्रजम् ।

श्रुततदीरितकोमलगीतकध्वनिमिषेऽनिमिषेऽन्यमप्रत ॥ ३१

[आश्विन मास में धान की रक्षा करनेवाली गोप वधुओं ने, धान्य खाने की इच्छा त्याग कर आगे खड़े हुए, निर्निमेष नयनों से मधुर-गीतालाप को सुन रहे हिरण्यो को नहीं मारा ।] भारवि के वर्णन को माघ ने कुछ अधिक विस्तार दिया है जिसमें आत्मीयता का वातावरण अधिक घना है । पर जैसा कहा गया है ये चित्र उदाहरण मात्र हैं ।

क—परन्तु आत्मीय सहानुभूति की यह भावना इन काव्यात्मक रूपों में प्रकृति के मानवीकरण से व्यक्त की गई है । यह भावात्मक अध्यन्तरण कलात्मक अभिरुचि के अनुरूप है । इस आरोप में आत्मीयता प्रकार प्रकृति में मानवीय सम्बंधों का आत्मीय वातावरण प्रतिघटित होता है । भावारोप में भी इस प्रकार की प्रवृत्ति का आभास मिलता है । पर उसमें व्यापक भावशीलता का उल्लेख हुआ है । प्रकृति के विभिन्न उपकरणों की योजना में भावात्मक व्यंजना के लिये जब सम्बंधों की कल्पना समन्वित की जाती है, तब यह एक प्रकार से मानव और प्रकृति की आत्मीयता का

३०. किरा० ; स० ४ ; ३३ ।

३१. शिशु० ; स० ६ , ४९ ।

प्रतिबिम्ब होता है। दूत-काव्य परम्परा के अन्तर्गत इस प्रवृत्ति का उल्लेख हुआ है। कालिदास ऋतुसंहार में बादल और विन्ध्य के आत्मीय व्यवहार का उल्लेख फिर करते हैं—‘जब हम पानी के बोझ से लदे आते हैं तो यही हमें सहारा देता है, यह समझ कर जल से भरे हुए झुक-झूमते बादल गरमी की आग की लपटों से झुलसे हुए विन्ध्याचल की तपन अपने ठंडे जल की फुहारों से बुझा रहे हैं।’ कभी प्रकृति के अधिक व्यापक उपकरणों में कवि इसी सम्बंध की कल्पना करता है,—

जिगमिषुर्धनदाध्युषितां दिशं रथयुजा परिवर्तितवाहनः ।

दिनमुखानि रविर्हिमनिप्रहैर्विमलयन्मलयं नगमस्त्यजत् ॥ ३०

[कुबेर की दिशा की ओर जाने की इच्छा है ऐसा जानकर सारथी अरुण ने घोड़ों की गम उसी ओर मोड़ दी है, और (वसन्त में) सूर्य ने प्रभात का पाला हटाकर उसे अधिक उद्भासित करते हुए मलय पर्वत से विदा ली।] पौराणिक प्रसिद्धियों के आधार पर कवि ने सौन्दर्य की उद्भावना में व्यापक आत्मीयता का संकेत छिपा दिया है। यह विश्व-प्रकृति के साथ मानवीय तादात्म्य की सुन्दर कल्पना है। महाकाव्यों के ऋतु-वर्णनों में अनेक अपनी प्रवृत्ति के अनुसार इस प्रकार के सम्बंधात्मक आरोप मिलते हैं। प्रवरमेन में सम्बंध का स्थूल रूप अधिक सामने आता है—

पर्याप्तकमलगन्धो मध्वार्द्रापसरश्चकुमुदरजाः ।

भ्रमद्भ्रमरोपजीव्यः सञ्चरति सदानशीकरो वनवातः ॥ ३३

[कमल गन्ध से अधिक सुगन्धित, नव कुमुदों की रज से युक्त तथा मधु से आर्द्र और मद के बिन्दुओंवाला वन का पवन गुंजार करते हुए भ्रमर सेवकों के साथ विचरण कर रहा है।] इस चित्र में शृंगार की

३२. ऋतु० : स० २, २८ : रघु०, स० ९; २५।

३३. सेतु०; आ० १; ३१।

जालान्न, पोखर और पर्वत की चोटियाँ चारो ओर धेरे हुए थीं । नदियाँ, बड़ी-बड़ी भीलें सभी मिलाकर वह वन अत्यधिक भयानक दिखाई देता था ।] इस वर्णन मे न कोई क्रम है और न कोई देश-काल का विचार ही । केवल प्रकृति के नाना उपकरणों को इस सघनता के साथ वर्णना मे प्रस्तुत किया गया है कि दृश्य मे भय की व्यजना व्याप्त हो गई है । इसके अतिरिक्त महाभारत मे मानवीय जीवन-व्यापार का ऐसा प्रसार है कि मानव तथा प्रकृति मे किसी प्रकार की आत्मीयता अथवा प्रतिबिम्बित भावशीलता के लिये कोई स्थान नहीं है । प्रकृति का मानवीय जीवन से केवल घटनात्मक सम्बंध है । पर यदि घटना के रूप में प्रकृति उपस्थित होती है तो उसके वर्णन में काव्यात्मक प्रतिभा का परिचय मिलता है । उदाहरण के लिये आरण्यक पर्व के अन्तर्गत एक आँधी का वर्णन अत्यधिक सजीव और सशक्त है—

ततो रेणुः समुद्भूतः सपन्नबहुलो महान् ।
 पृथ्वीं चान्तरिक्षं च द्यां चैव तमसावृणोत् ॥
 न स्म प्रज्ञायते किञ्चिदावृते व्योम्नि रेणुना ।
 न चापि शेकुस्ते कर्तुं मन्योन्यस्याभिभाषणम् ॥
 न चापश्यन्त तेऽन्योन्यं तमसा हतचक्षुषः ।
 आकृष्यमाणान् वातेन साश्मचूर्णान् भारत ॥^{३८}

[(जब वे गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे प्रचण्ड आँधी और वर्षा प्रारम्भ हुई) धूल और पत्तों से पूर्ण उस आँधी ने पृथ्वी, आकाश तथा क्षितिज को अन्धकार से ढँक दिया । आकाश में धूल इम प्रकार व्याप्त हो गई कि कुछ भी पहचाना नहीं जा सकता था और आपस में बातचीत करना भी असम्भव हो गया । आँखों में रजकण इस प्रकार भर गये कि एक-दूसरे को देख सकना भी सम्भव नहीं था ।] इस प्रकृति के रूप में स्वाभाविक प्रवेग है, साथ ही इसका वर्णन घटना-स्थिति के बिलकुल

अनुरूप है। आँधी के साथ पाण्डवों की व्याकुलता का सामंजस्य अत्यधिक सजीव हो गया है। इस प्रकार महाभारत में प्रकृति बिल्कुल निरपेक्ष है, वह मानवीय भावों के प्रति कोई संवेदनात्मक सम्बन्ध स्थापित नहीं करती। अपने सौन्दर्य में जैसी वह मुक्त है, वैसे ही अपने भयानक स्वरूप में निर्मम भी है। दमयन्ती वन में प्रकृति से संवेदना की, आत्मीयता की प्रार्थना करती घूमती है, पर प्रकृति मौन है वह अपने में व्यस्त है—

श्रुत्वारण्ये विलपितं ममैष मृगराट् स्वयम् ।

यात्येतां मृष्टसखिलामापगां सागरं गमाम् ॥ ३९

[मुझ विलाप करती हुई को सुन कर यह सिंह स्वच्छ नीरवाली सागर की ओर प्रवाहित इस सरिता की ओर जा रहा है।] इस प्रकार मानवीय तथा प्रकृति की संवेदना में तादात्म्य महाभारत में नहीं मिलता है।

§ १६—रामायण की कथा-वस्तु अपनी एक-सूत्रता में निश्चित है। इसमें आधिकारिक कथा-वस्तु के अन्तर्गत अन्य कथाओं का विस्तार नहीं

रामायण में कथा
का आचार

मिलता। जो प्रक्षेप आदि के कारण आ गई हैं वे या तो आदि तथा उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत हैं या बिल्कुल अलग जान पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त

रामायण की रचना चरित-काव्य के आदर्श पर हुई है और वह एक कवि की कृति है। इस कारण उसके कथा-विस्तार में घटना-स्थिति—परिस्थिति आदि के रूप में प्रकृति का देश-काल गत आधार सदा बना रहता है। कवि इस मानवीय चरित के आधार को सदा प्रस्तुत करता चलता है। महाभारत जैसा घटनाओं का आग्रह रामायण में नहीं है। उसमें कथा मन्थर गति से प्रवाहित है और आदि कवि की कल्पना उसके साथ चतुर्दिक फैली प्रकृति से वातावरण का निर्माण करती है।

राम-कथा का वन-वास के बाद का घटना-स्थल वन-पर्वत है। और कवि ने इस क्षेत्र में कथा के प्रवेश के साथ प्रकृति का संकेत देना प्रारम्भ कर दिया है। राम सीता लक्ष्मण के साथ सगम की ओर जाते हैं—

ते भूमिभागान्विविधान्देशाश्चापि मनोहरान् ।

अदृष्टपूर्वान्पश्यन्तस्तत्र तत्र यशस्विनः ॥

यथा चेमेण संपश्यन्पुष्पितान्विविधान्द्रुमान् ।

×

×

×

[वे यशस्वी उन अपरिचित नवीन अनेक प्रकार के सुन्दर प्राकृतिक प्रदेशों को देखते हुए जा रहे थे। मार्ग में वे आनन्दपूर्वक अनेक पुष्पित वृक्षों को देखते जाते थे।] ये पात्र अपने चारों ओर की प्रकृति के प्रति सचेष्ट भी हैं। यहाँ प्रकृति घटना की स्थिति मात्र नहीं है, वरन् कथा-वस्तु की परिस्थिति है। जिस वन-मार्ग में राम आदि जा रहे हैं उसके प्रति वे निरपेक्ष नहीं हैं। वे मुक्त भाव से प्रकृति के रूप-विस्तार को देखते जाते हैं, जैसे वे उसी को देखने के लिये विचर रहे हैं—

ते गत्वा दूरमध्वानं लम्बमाने दिवाकरे ।

दृश्युः सहिता रम्यं तटाकं योजनायतम् ।

पद्मपुष्करसम्बाधं गजयूथैरलंकृतम् ।

सारसैर्हंसकादम्बैः संकुलं जलजातिभिः ।

[उन्होंने मार्ग में अधिक दूर जाने के बाद सूर्य के ढल जाने पर एक योजन विस्तार का तालाब देखा। उसमें असंख्य कमल के पुष्प लगे हुए थे, हाथियों का समूह क्रीड़ा कर रहा था, तथा सारस, हंस कादम्ब आदि जलचरों के समूह विचर रहे थे।] इस प्रकार आदि कवि राम के वन-वास के जीवन में प्रकृति के भाग को प्रत्येक अवसर पर उपस्थित करते हैं। यही नहीं वरन् ये पात्र आपस में प्रकृति के रूप-विस्तार के प्रति बात-चीत करते चलते हैं। राम लक्ष्मण का ध्यान आकर्षित करते हुए कहते हैं—

नूनं प्राप्ताः स्म संभेदं गंगायमुनयोर्वयम् ।

यथा हि श्रूयते शब्दा वारिणोर्वारिषषजः ॥

दारूणि परिभिन्नानि वनजैरुपजीविभिः ।

द्विद्वाश्चाप्याश्रमे चैते दृश्यते विविधा द्रुमाः ॥ ४०

[अत्र निश्चय ही हम गंगा-यमुना के संगम के पास पहुँच गए हैं, क्योंकि जल-सघात का शब्द सुनाई दे रहा है। उपजीवी हाथियों के द्वारा अत्यन्त नष्ट-भ्रष्ट किये जाने पर भी आश्रम के नाना प्रकार के ये वृक्ष दिखाई दे रहे हैं।] यहाँ प्रकृति जीवन का अंग बन कर उपस्थित होती है इन वर्णानां तथा उल्लेखों में चित्रमयता नहीं है; पर कथा-प्रवाह में ये प्रसंग दृश्यों की पूरी रूप-रेखा में प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

§ २०—इन वर्णनात्मक उल्लेखों के अतिरिक्त विस्तृत चित्र-योजना के स्थल रामायण में अनेक हैं। वन-पर्वतों में विचरण करते राम-सीता लक्ष्मण का ध्यान उनकी ओर आकर्षित वर्णना की योजना होना स्वाभाविक है, और कवि के लिये कथा-विस्तार के रूप में इनका संकेत देते चलना आवश्यक है। परन्तु वन-प्रसंग में कुछ स्थल ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध राम के जीवन से रहा है। इन स्थलों पर इन्होंने अपना समय बिताया है, और इसलिये इनकी वर्णना का अवसर अधिक विस्तार से मिला है। परन्तु इन वर्णनों को कवि ने अपनी ओर से प्रस्तुत नहीं किया है। जिस प्रकार कथा के साथ इन स्थलों का अति निकट का सम्बन्ध है, उमी प्रकार इनका वर्णन पात्र ही करते हैं। इस प्रकार के वर्णनों में प्रकृति का रूप कथा का अंग बन गया है। इनमें कुछ वर्णन इस प्रकार के हैं जो किसी पात्र के द्वारा किसी परोक्ष स्थल के हैं। भरद्वाज राम को चित्रकूट पर बसने के लिये कहते हैं और बताते हैं कि यह चित्रकूट इस प्रकार का है—

४०. रामा० ; अयो० का० , म० ५४ : ३ , ४ : अर० का० : म० ११ ; ५,
६ : अयो० का० ; स० ५४ ; ६, ७ ।

मयूरनादाभिरतो गजराजनिषेवितः ।
 गम्यतां भवता शैलश्चित्रकूटः सुविश्रुतः ॥
 पुण्यश्च रमणीयश्च बहुमूलफलैर्युतः ।
 तत्र कुञ्जरयूथानि मृगयूथानि चैव हि ॥
 विचरन्ति वनान्तेषु तानि द्रक्ष्यसि राघव ।
 सरित्प्रस्रवणप्रस्थान्दरीकन्दरनिर्झरान् ॥

[आप मयूर के मधुर नाद से गुंजारित तथा हाथियों से सेवित प्रसिद्ध चित्रकूट पर्वत पर जावें । उस स्थान पर पवित्र और सुन्दर अनेक मूल-फल प्राप्त होते हैं और साथ ही हाथी और मृग के समूह फिरते हैं । हे राघव ! आप वहाँ विचरण करते हुए अनेक प्रवाहित नदियों तथा घाटियों की कन्दराओं से निकलते हुए झरनों को देखेंगे ।] परन्तु इस प्रकार के परोक्ष वर्णनों में व्यापक योजना भर रहती है जिनसे स्थान की कल्पना सामने आ जाती है । यह प्रयोग स्वाभाविक है । परन्तु जब उस स्थल पर पहुँच कर पात्र प्रकृति को देखता है तो वह उसके रूप-विस्तार का संश्लिष्ट वर्णन अपने साथ के लोगों से करता है । इस वर्णना में देश की सीमाएँ तथा रंग-रूप जैसे फैला हुआ हो और पात्र सामने पाकर उनकी ओर दूसरों का ध्यान आकर्षित करता है । चित्रकूट सामने है, और राम कभी सीता और कभी लक्ष्मण को सम्बोधित करके उसकी ओर उनका ध्यान आकर्षित करते हैं—‘हे सीता, देखो चारों ओर पुष्पित पलाश वृक्ष चमक उठे हैं । शिशिर के आगमन में किंशुक ने अपने फूलों की मालाएँ धारण कर लीं हैं । और देखो ये भिलावे और बेल के वृक्ष फल-फूलों से कैसे झुके हुए हैं । लक्ष्मण, देखो वृक्षों पर मधुमक्खियों से एकत्र किये हुए मधु के छत्रों द्रोण (एक बरतन) के समान लटक रहे हैं । यह जल कौआ कैसा बोल रहा है और यह मोर उसका बोल सुनकर कैसा केका-नाद कर रहा है । इस रमणीय वन-प्रदेश की भूमि फूलों से ढकी हुई है ।’ एक-एक दृश्य के रूप को सामने लाकर सारा चित्र जैसे फैलता जाता है । जैसे आगे बढ़ता हुआ कोई व्यक्ति

प्रत्येक दृश्य को ध्यानपूर्वक देखकर चल रहा हो। इसी चित्रकूट को वशिष्ठ भरत को दिखा रहे हैं —

अयं गिरिशिचित्रकूटस्तथा मन्दाकिनी नदी ।
 एतत्प्रकाशते दूरान्नीलमेघनिभं वनम् ॥
 गिरैः सानूनि रम्याणि चित्रकूटस्य संप्रति ।
 वारयौरब्रमृद्यते मामकैः पर्वतोपमैः ॥ ४१

[देखो, यही चित्रकूट पर्वत है और यही मन्दाकिनी नदी है। यह वन दूर से नील मेघ के समान जान पड़ता है। चित्रकूट पर्वत की रमणीय चोटियाँ हमारे हाथियों से मर्दित हो रही हैं।] स्थिति और कथा के अनुसार वाल्मीकि के चित्रण की योजनाएँ चलती हैं। इनके अधिकांश वर्णन इस प्रकार हैं कि कोई देख रहा है अथवा कोई पात्र उनका स्वयं वर्णन कर रहा है। स्वतंत्र रूप से अनेक संक्षिप्त देश-काल के संकेत मिलते हैं।

§ २१—इन पात्रों द्वारा वर्णित प्रकृति-स्थलों में सदा निरपेक्ष प्रकृति का रूप नहीं है। राम द्वारा ऋद्धे गये वर्णनों में साधारणतः एक सौन्दर्यानुभूति :
 सौन्दर्य के प्रति आकर्षण का भाव छिपा रहता है।
 आनन्दोल्लास वन-प्रदेशों के दृश्यों के प्रति उनके मन में एक आकर्षण है जो प्रकृति के सौन्दर्य-रूप के साथ व्यक्त होता है और उसी की ओर वे दूरियों को भी आकर्षित करते जान पड़ते हैं। लेकिन इन वर्णनों के अतिरिक्त अन्यत्र भी कवि ने सहज प्रकृति के क्रियाकलापों के साथ मानवीय जीवन का सामंजस्य स्थापित किया है। अनसूया कथा कहते-कहते सीता का ध्यान सन्ध्या की ओर ले जाती हैं—

दिवस परिकीर्णानामाहारार्थं पतत्रिण्याम् ।
 सन्ध्याकाले निनीनानां निद्रार्थं श्रूयते ध्वनिः ॥
 अग्निहोत्रे च ऋषिणा हुते च विधिपूर्वकम् ।
 कपोतांगारुणो धूमो दृश्यते पवनोद्धतः ॥
 अल्पपर्णा हि तरवो घनीभूताः समंततः ।
 विप्रकृष्टेन्द्रिये देशे न प्रकाशंति वै दिशः ॥^{४२}

[देखो सन्ध्या हो रही है—दिन भर भोजन की खोज में इधर-उधर उड़ते रहनेवाले पक्षी बसेरा लेने के लिये अपने-अपने घोंसलो को वापस आ रहे हैं, उन्हीं का यह शब्द सुनाई दे रहा है ।.....विधि-पूर्वक किये हुए होम का कपोत के रंग का धुआँ पवन से ऊपर फैल रहा है । दूर होने के कारण घने दिखाई देनेवाले ये अल्प-पत्तों वाले वृक्ष अन्वकार से और भी घने जान पड़ते हैं ।] इस चित्र में सन्ध्या विश्रान्ति का भाव लेकर उपस्थित होती है जो मानव जीवन के समानान्तर है । परन्तु इसमें यह भाव ध्वनित भर होता है । राम द्वारा वर्णित दृश्यों में आश्चर्य्य और उल्लास का भाव अधिक प्रत्यक्ष है । राम पंचवटी को देखकर कह उठते हैं—यह सुन्दर समतल देश है, यह पुष्पित वृक्षों से आच्छादित है । इसी सुन्दर स्थान पर आश्रम बनाना चाहिए । हे लक्ष्मण, देखो यह सूर्य के समान चमकती हुई पुष्करिणी है । यह निकट ही कमलों से भरी हुई कितनी सुन्दर दिखाई पड़ती है । जैसा अगस्त्य मुनि ने कहा था, यह मेरे मन को भा गई है । देखो, यह पुष्पित वृक्षों से घिरी हुई गोदावरी नदी है ।' इस दृश्य के उल्लेख के साथ राम के मन का उल्लास छिपा है । जैसे वे अपने वन-जीवन में सुन्दर प्रकृति का सहवास पाकर प्रसन्न हो उठे हैं । एकाएक प्रकृति का रूप उनके सामने अपने सौन्दर्य्य-विस्तार के साथ प्रकट हो गया है, इस कारण किंचित आश्चर्य्य का भाव भी इस उल्लास में मिल गया है ।

जब कभी इस प्रकार इन वन-वासियों के सामने प्रकृति का रूप आया है, इनके मन में प्रकृति-सौन्दर्य के प्रति सहज आश्चर्य का भाव रहा है। परन्तु जब प्रकृति से परिचय प्राप्त निश्चित भाव स्थिति में राम सीता और लक्ष्मण से प्रकृति का वर्णन करते हैं, उस समय सौन्दर्य-बोध के साथ आनन्द की अदृश्य भावना उल्लास के प्रत्यक्ष रूप में मिल जाती है। प्रकृति-सौन्दर्य के प्रति सहज आनन्दोल्लास की भावना संस्कृत साहित्य में अन्यत्र बहुत कम स्थलों पर पाई जाती है। और इस भाव-सामंजस्य के रूप में केवल वाल्मीकि प्रकृति-सौन्दर्य को उपस्थित कर सके हैं। राम जब निश्चित बैठकर चतुर्दिक फैले हुए चित्रकूट के सौन्दर्य का उल्लेख सीता से करते हैं, तब उसमें उनके मन का उल्लास व्यंजित होता है—

जलप्रपातैरुदभेदैर्निष्पन्दैश्च क्वचित्क्वचित् ।

स्रवद्भिर्भात्यथं शौकः स्रवनमद इव द्विपः ॥

गुहासमीरयो गन्धान्नानापुष्पभवान्बहून् ।

घ्राणतर्पणसम्भ्येत्य कं नरं न प्रहर्षयेत् ॥

[हे सीता, देखो स्थान-स्थान पर झरनों और स्रोतों के बहने से यह पर्वत मद बहानेवाले गजेन्द्र के समान शोभित है। पवन नाना गुफाओं को स्पर्श करता हुआ अनेक प्रकार के पुष्पों की गन्ध लेकर बह रहा है। यह सुन्दर प्रकृति किसके मन को हर्षित नहीं करती।] जब ऋतु-वर्षणों में आगे के कवियों में उद्दीपन और आरोप की प्रवृत्ति प्रधान हो गई है, रामायण के कथानायक राम हेमन्त के प्रकृति-रूपों के साथ अपना उल्लास व्यक्त करते हैं—'ये जी और गेहूँ के खेतों से युक्त वन ओस से भरे हुए हैं, और सूर्य के उदय होने पर कौंच-सारस की ध्वनि से निनादित आकर्षक लगते हैं। ये सुनहरे शालि के समूह खजूर के फूलों की तरह अपने बालों के बोझ से कुछ झुके हुए जैसे शोभित हैं। यह सूर्य कितना ऊँचा चढ़ आया है, पर पाला और ओस के मारे किरणें पूरी तरह फैल नहीं रही हैं; इस कारण वह चन्द्रमा के समान दिखाई दे

रहा है। जब प्रातःकालीन सूर्यातप हिमकणों से युक्त हरी घास के मैदान पर पड़ता है, तब वन की शोभा देखते ही बनती है।' इस प्रकार ऋतु के साथ वन की शोभा को देखकर राम सुग्ध-भाव से उसका वर्णन कर रहे हैं। और वर्णना से लगता है, सीता तथा लक्ष्मण उनके साथ प्रकृति-सौन्दर्य के प्रति भाव-मग्न होकर मौन हैं। कभी इसी स्थिति में जब प्रकृति में भाव प्रतिबिम्बित हो जाता है, तब भावात्मक तादात्म्य के द्वारा आनन्दोल्लास अधिक व्यंजित हो उठता है—

नानाविधैस्तीररुहैर्वृतां पुष्पफलदुमैः ।

राजंतीं राजराजस्य नखिनीमिव सर्वतः ॥

मृगयूथानि पीतानि कलुषाम्भांसि साम्प्रतम् ।

तीर्थानि रमणीयानि रतिं सञ्जनयन्ति मे ॥

पश्यैतद्बल्लुगवयसो रथांगाह्वयना द्विजाः ।

अधिरोहान्ति कल्याणि निष्कृजन्तः शुभा गिरः ॥ ४३

[अनेक प्रकार के फल-फूलवाले वृक्षों से जिसका तट घिरा हुआ है ऐसी इस कुबेर के पद्म-सरोवर के समान सुशोभित मन्दाकिनी को देखो। निकट ही जिसके रमणीय तट-स्थलों पर मृगों के समूह मटमैला पानी पी रहे हैं ऐसी इस नदी को देख कर मेरा मन आनन्दित हो रहा है। हे कल्याणी, देखो (वृक्षों से गिरे हुए) पुष्पों के ढेर पर चढ़े हुए सुन्दर चक्रवाक पक्षी मधुर नाद कर रहे हैं।] इस प्रकृति के क्रिया-कलाप में एक भाव-व्यंजना छिपी है जिसमें मानवीय मनःस्थिति का प्रतिबिम्ब है। पात्रों के मन का उल्लास मानों प्रकृति में प्रतिघटित हो उठा है।

§२२—आदि कवि की कल्पना मुक्त है। उसमें काव्यादर्श का आधार खोजा जा सकता है, पर परम्परा की रूढ़ियाँ नहीं हैं। प्रकृति-सौन्दर्य के सम्पर्क में पात्र आह्लादित होते हैं, पर ऐसा प्रतिकूल भाव-स्थिति भावों की अनुकूल स्थिति में होता हो ऐसा ही नहीं

४३. वही, अर० ; स० १५ : १०—१२ : अयो० , स० ९४ ; १३ , १४ : अर० ; १६ ; १६—२० अयो० ; स० ९५ ; ४ , ५ , ११ ।

है। उनके लिये प्रकृति की नाना-रूपात्मक रमणीयता स्वतः आनन्द का विषय है। राज्य का ऐश्वर्य-सुख छोड़कर आये हुए राजकुमारों तथा राजकुमारी के लिए उसका सम्पर्क और वातावरण जीवन का मुक्त उल्लास देता है। यह प्रकृति का सौन्दर्य्य दुःख की स्थिति में भी उन्हें शांति दे सकता है। सीता-वियोग के बाद राम द्वारा वणित पम्पास, वर्षा तथा शरद आदि के वर्णनों से यह स्पष्ट है। पम्पासर को देख कर राम स्वयं कहते हैं कि 'भरत के दुःख से तथा सीताहरण से मेरे मन में बड़ी वेदना है, फिर भी यह पम्पासर मुझे सुख दे रहा है'—

सौमित्रे शोभते पम्पा वैदूर्यविमल्लोदका ।

फुल्लपद्मोत्पल्लवती शोभिता विविधैर्द्रुमैः ॥

सौमित्रे पश्य पम्पायाः काननं शुभदर्शनम् ।

यत्र राजन्ति शैला वा द्रुमाः सशिखरा इव ॥

[हे सौमित्र, अनेक प्रकार के वृक्षों से घिरा हुआ, फूले हुए कमलों से युक्त इस नीलम के समान जलवाले पम्पा सरोवर को देखो। हे लक्ष्मण, यह पम्पा के प्रान्त-भाग का वन भी कितना सुन्दर है। यहाँ शिखर वाले पर्वतों के समान वृक्ष शोभित हैं।] वियोग की मनःस्थिति में समुत्सुक करनेवाला प्रकृति का यह रूप सौन्दर्य्य-भावना से ओत-प्रोत है। कभी मन का उद्वेग स्वाभाविक रूप में उच्छ्वसित हो उठता है, पर प्रकृति उसे शांत कर देती है। वर्षा और शरद के वर्णनों में उद्दीपन की भावना भी है, पर उसमें सौन्दर्य्य का व्यापक आकर्षण बना हुआ है—'वर्षाकाल में सर्ज और कदम्ब के पुष्पों से युक्त तथा मयूर के केका शब्द से निनादित, पर्वत से निकलने वाली नदी का गैरिक जल तेज प्रवाहित हो रहा है। भ्रमर जैसी काली रसीली जामुनों का आनन्द लिया जाता है। अनेक रंग के आम पवन के झुकझोरने से भूमि पर गिर रहे हैं। इन्द्रनील पर्वत के समान मेघ बलाकों की माला धारण कर और बिजली की पताका ले मत्त ऐरावत के समान गरज रहे हैं। इस संश्लिष्ट योजना में सौन्दर्य्य का रूप रक्षित है, परन्तु पिछले चित्रों

जैसा आह्लाद का भाव नहीं है। इसमें शात-भाव की व्यंजना है, क्योंकि प्रकृति यहाँ मानवीय भाव-स्थिति को संयत करती है। परन्तु कभी इन चित्रों में वेदना का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, जो प्रकृति में सहानुभूति सम्बन्धी भाव-तादात्म्य का रूप है—

एषा घर्मपरिक्रिष्टा नववारिपरिप्लुता ।
 सीतेव शोकसन्तप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति ॥
 कशाभिरिव हैमीभिर्विद्युद्भिरभिताडितम् ।
 अन्तस्तनितनिर्घोष सम्वेदनमिवाम्बरम् ॥
 नीलमेघाश्रिता विद्युत्स्फुरन्ती प्रतिभाति मे ।
 स्फुरन्ती रावणस्यांके वैदेहीव तपस्विनी ॥ ४४

[यह धूप से झ्रान्त नवीन घटाओं से सिंचित पृथ्वी सीता के समान शोक से व्याकुल होकर वाष्प (आँसू) छोड़ रही है। आकाश में मेघों की गर्जन से जो नाद हो रहा है, मानों बिजली के स्वर्ण-कोड़े की चोट से वह आन्तरिक वेदना से कराह रहा है। और नील मेघ में चमकती हुई बिजली मुझे ऐसी लगती है मानो रावण की गोद में साध्वी सीता विकल हो।] राम यहाँ प्रकृति में अपनी वेदना-जन्य मनःस्थिति का आरोप कर रहे हैं।

§ २३—हम देख चुके हैं कि वन-प्रसंग के विस्तृत कथानक में रामायण के पात्र प्रकृति की गोद में विचरण करते हैं और निवास करते हैं। उसके सौन्दर्य पर वे मुग्ध हैं, उसके बीच में वे आत्मीय सहानुभूति प्रसन्न हैं। एक प्रकार का सम्बंध भी प्रकृति से उनका हो गया है। परन्तु साहचर्य की आत्मीय भावना इन पात्रों में प्रकृति के प्रति नहीं मिलती है। प्रकृति का क्षेत्र उनके उल्लासमय जीवन से सम्बंधित है, पर इस लम्बे सम्पर्क में प्रकृति से वे आत्मीय सम्बंध स्थापित नहीं कर सके हैं। लेकिन दुःख की स्थिति में जैसे वह परोक्ष

आत्मीयता का भाव जागरित हो जाता है। रावण द्वारा अपहरण की जाती हुई सीता वन-सरिता से अपना मन्देश कहती हैं—

श्रामन्त्रये जनस्थान कर्णिकारांश्च पुष्पितान् ।
क्षिप्र रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः ॥
हंससारससंघुष्टां वन्दे गोदावरीं नदीम् ।
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावण ॥

[मैं जनस्थान के पुष्पित कर्णिकारों को पुकार कर कहती हूँ, तुम शीघ्र राम को सूचित करो कि रावण सीता का हरण कर रहा है। हे हंस तथा सारसों से युक्त गोदावरी, मैं प्रार्थना करती हूँ, तुम राम को शीघ्र सूचित करो कि रावण सीता का हरण कर रहा है।] आगे चलकर अपने आभूषणों को फेंकती हुई विलाप करती सीता को रावण द्वारा ले जाते देखकर प्रकृति सहानुभूति से सवेदित हो उठती है—‘पवन से चंचल और विविध पक्षियों से आकुल वृक्ष अपनी हिलती हुई शाखाप्र-भागों से मानों कह रहे हों—भय मत करो। जिसमें कमल नष्ट हो गये हैं तथा मीन आदि जलचर त्रस्त हो उठे हैं ऐसी भील मानों सीता के प्रति सखी भाव से निराशा से चिन्तित है। चारों ओर से सिंह, व्याघ्र तथा मृगादि वनचर एकत्र होकर सीता की छाया का अनुसरण करते हुए क्रोध से दौड़ रहे हैं। पर्वत अपने चोटियों रूपी बाहों को उठाकर तथा झरनों के नाद से सीता के हरण किये जाने पर मानों क्रोध प्रकट कर रहे हैं।’ लेकिन प्रकृति में यह सवेदना का आरोप है। रामायण में प्रकृति सजीव आत्मीय सम्बंध में उपस्थित नहीं हो सकी है। राम के विलाप के प्रति प्रकृति मोन है और उसी रूप में यत्र-तत्र सहानुभूति व्यक्त होती है। ‘मृगों का समूह सहसा उठकर दक्षिण दिशा की ओर जाकर सीता की खोज का सकेत देता है।’ इससे अधिक प्रकृति में सजीव आत्मीयता का परिचय नहीं मिलता है।^{४५}

^{४५}, वही ; अ० ; स० ५० , ३० , ३१ : स० ५२ ; ३४—३७: न० ६४ , १७ , १८ ।

§ २४—महाभारत के प्रसंग में कहा गया है कि उसमें किसी वन अथवा पर्वत आदि के वर्णन के लिये मुख्य-मुख्य उपकरणों का उल्लेख किया गया है। उनमें कुछ काल्पनिक आदर्श वस्तुओं का तथा कवि-प्रसिद्धियों का उल्लेख भी मिलता है। रामायण में सश्लिष्ट वर्णनों की स्वाभाविक योजना के साथ आदर्श रूपों को उपस्थित करने की प्रवृत्ति और प्रत्यक्ष हो गई है। इसका विस्तृत अध्ययन अगले भाग में प्रस्तुत किया जा सकेगा। वाल्मीकि ने कुछ स्थलों पर प्रकृति का आदर्श रूप प्रसंग के अनुरूप दिया है। गंगा अपने आकाश-मार्ग पर इस प्रकार प्रवाहित है,—‘आकाश में बिजली के समान चमकती हुई और जल में उठे हुए सफ़ेद-सफ़ेद फेन फैलाती हुई बह रही है। लगता है हंसों के झुण्ड से युक्त इधर उधर बिखरे हुए शरद के मेघ हों। आकाश में गंगा का जल सहस्रों सूर्य की आभा के समान फैल गया—और उसमें बीच-बीच में सूनों और मछलियों का झुंड उछल जाता है।’ इस वर्णन में स्वाभाविकता है, पर आकाश में जल-प्रवाह की कल्पना आदर्श है जो प्रसंग के अनुकूल है। लेकिन आदर्श प्रकृति का चित्रण कवि स्थल विशेष पर करता है, ‘स्वयंप्रभा की गुफा में स्वर्ण-वृक्षों के वन तथा स्वर्ण-कमलों के सरोवर आदि का उल्लेख है।’ हनुमान समुद्र-स्थित मैनाक पर्वत को इसी आदर्श-रूप में देखते हैं—

स सागरजलं भित्वा बभूवात्युच्छ्रितस्तदा ।

यथा जलधरं भित्वा दीप्तारश्मिर्दिवाकरः ॥

शातकुम्भमयैः शृंगैः सकिन्नरमहोरगैः ।

आदित्योदयसंकाशैरुल्लिखन्निरिवाम्बरम् ॥

तस्य जाम्बूनदैः शृंगैः पर्वतस्य समुत्थितैः ।

आकाशं शस्त्रसकाशमभवत्कान्चनप्रभवम् ॥४६

४६. वही ; बाल० ; स० ४३ : २१ , २२ , २३ : किष्कि० ; स० ५१ ; ४ से १० तक , सुन्द० : स० १ ; ९७—९९ ।

[वह मैनाक पर्वत सागर के जल के बीच में निकला हुआ ऐसा जान पड़ा मानों जलधर को भेदकर अपनी किरणों में उद्भासित सूर्य निकल आया हो । किन्नर और महासर्पों से युक्त स्वर्ण शृंगों में वह पर्वत ऐसा दिखाई दिया जैसे सूर्य के उदय होते उसके निकट बादल आ गये हों । उस पर्वत की सोने की श्रेणियाँ इस प्रकार उठी हुई थीं मानो आकाश स्वर्ण आभावाले शस्त्रों से उद्भासित हो उठा है ।] परन्तु आदि कवि की आदर्श प्रकृति का रूप कभी वैचित्र्य कल्पनाओं से निर्मित नहीं हुआ है । इस आदर्श रूप में केवल रूप रंगों का संयोग कल्पनात्मक है; पर ये प्रसंग के अनुकूल हैं ।

विभिन्न काव्य-रूपों में प्रकृति (क्रमशः)

महाकाव्यों की परम्परा

§१—एक स्थल पर रवीन्द्र ठाकुर ने लिखा है—‘वर्णना-तत्त्व की आलोचना और अवान्तर प्रसंगों से भारतीय कथा का प्रवाह पग-पग पर खण्डित होने पर भी प्रशान्त भारतवर्ष का वर्णना का आदर्श धैर्यव्युत् होते नहीं देख पड़ता ।’ भारतीय-साहित्य का आदर्श ऐसा ही रहा है । कथा के विस्तार की दृष्टि से भारत का यही आदर्श माना जा सकता है । कथा और वर्णना सम्बन्धी इस आदर्श के आधार में भारतीय संस्कृति का अपना दृष्टिकोण है । आधुनिक युग में कथात्मक जीवन का प्रवाह व्यक्तिगत चरित्र के आधार पर मापा जाता है, पर प्राचीन साहित्य में प्रतिनिधि चरित्र को लेकर कथा-वस्तु का निर्माण किया जाता था । उस युग में मानव अपनी आदर्श कल्पनाओं और व्यापक भावनाओं के साथ कथा का चरित्र-नायक बनता था । इन निश्चित चरित्रों और स्थापित आदर्शों को

लेकर रचे गये कथा-काव्यों में घटनात्मक उत्सुकता के लिये अवसर नहीं है। उनमें चरित्रों की व्यापकता तथा महानता का आकर्षण स्वयं पाठक के मन को घेरे रहता है। इस साहित्य को समाज के सामने पुण्य की विजय के आदर्श को उपस्थित करना था, और कथा की यह निश्चित नियताति व्यग्र उत्सुकता के लिये अवकाश नहीं देती। साथ ही संस्कृति साहित्य जन-साहित्य नहीं है, वह उच्च-स्तर के परिष्कृत रुचिवालों का साहित्य रहा है। यह बात काव्य के विषय में अधिक लागू होती है। कथानक के प्रवाह के प्रति चढाव-उतार के साथ उत्सुकता का भाव जन-मन में अधिक होता है। इतनी कौतूहल की भावना परिडट-वर्ग को नहीं हो सकती। उनके काव्यानन्द के लिये सौन्दर्य का आकर्षण और रसानुभूति पर्याप्त है। इसलिये कथा-वस्तु के घटना-क्रम के विषय में संस्कृत का कवि कभी व्यग्र नहीं होता। वह अपने वर्णनात्मक विस्तार में वस्तु-स्थिति तथा चरित्र-चित्रण का सौन्दर्य बोध का आदर्श लेकर चलता है। इस प्रकार काव्य में कथा-वस्तु तो केवल सूत्र रूप में रहती है जिसके सहारे कवि महाकाव्य का पुष्पहार सजाता है।

क—संस्कृत के काव्यों की प्रवृत्ति चरित्रों के घटनात्मक विकास की ओर नहीं है; उनमें घटना केवल चरित्र की व्याख्या करती है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इन काव्यों में जीवन का प्रकृति का स्थान रूप स्पष्ट नहीं है, या इन कवियों के सामने समाज का जीवन प्रत्यक्ष नहीं था। इन कवियों के सम्मुख जीवन अवश्य था, और इन काव्यों का संबन्ध जीवन से निश्चित है। केवल जीवन की घटना उत्सुकता इनकी काव्यात्मक प्रेरणा की व्यग्र-साधना नहीं थी, जिसमें दूसरी ओर ध्यान ले जाने का अवसर ही नहीं मिलता। इनमें प्रस्तुत जीवन सरिता का गतिशील प्रवाह न होकर सागर की उताल हिल्लोर है जिसमें गति से अधिक गम्भीरता और प्रवाह से अधिक व्यापकता है। अन्य देशों के प्राचीन महाप्रबन्ध काव्यों में यह भावना

हैं। इस प्रकार काव्य की कथा वस्तु में प्रकृति के आधार की, चरित्र की व्याख्या की दृष्टि से हो अथवा सौन्दर्य-चित्र को पूर्ण करने के उद्देश्य से हो आवश्यकता है। पिछले कवियों में देश-काल तथा स्थिति के रूप में प्रकृति का वर्णन घटनाओं से सन्नद्ध है, पर क्रमशः बाट के कवियों में घटनाओं से सामंजस्य स्थापित रखने की भावना कम हो गई है। बुद्धघोष में धार्मिक आग्रह अधिक है, इस कारण उनमें वर्णनों का आग्रह अधिक नहीं है। पर उन्होंने जहाँ प्रकृति को उपस्थित किया है वह कथा के अनुरूप है। सौन्दरनन्द के प्रथम सर्ग में उल्लिखित आश्रम का वर्णन कपिल मुनि की तपस्या की पृष्ठभूमि है—

शुचिभिस्तीर्थसंख्यातैः पावनैर्भावनैरपि ।

बन्धुमानिव यस्तस्थौ सरोभिः ससरोरुहैः ॥

[कमल के फूलों से भरे हुए तथा अनेक पैडियोंवाले सरोवरों से पवित्र भावना से पूर्ण हुआ वह आश्रम बन्धु के समान (तपश्चर्या आदि के लिये) स्थित था ।] इस प्रकार अश्वघोष में घटना स्थिति के अनुरूप प्रकृति को प्रस्तुत किया गया है, वर्णना का कथा से भिन्न अस्तित्व इनमें नहीं है। प्रकृति-वर्णना की दृष्टि से कालिदास का क्षेत्र बहुत व्यापक है, और देश-काल-स्थिति सन्नधी प्रकृति वर्णन भी उनमें बहुत अधिक हैं। परन्तु महाकवि ने प्रकृति और घटना के सामंजस्य को किसी स्थल पर भंग नहीं होने दिया है। साधारणतः कालिदास देशगत विशेषताओं के चित्रण के साथ वातावरण आदि की व्यंजना करते हैं। परन्तु जहाँ केवल देश की सीमागत विशेषता का वर्णन उन्होंने किया है, उन स्थलों का उपयोग कथा के आधार के रूप में है। रघु की दिग्विजय के प्रसंग में कवि यत्र-तत्र देशों के निर्देश से कथा को सौन्दर्य का अधिक व्यक्त आधार प्रदान करता है—

विश्वमुनंमेरूणां छायास्वध्यास्य सैनिकाः ।

दृषदो वासितोत्सङ्गा निषण्णमृगनाभिभिः ॥

[रघु के सैनिक वहाँ जिनमे से कस्तूरी मृगों के बैठने से सुगन्ध आ रही थी ऐसी सुरपुत्राग के वृद्धों के नीचे पड़ी हुई पथरीली पाटियों पर बैठ कर सुस्ताने लगे ।] इसी प्रकार विदर्भ जाते समय अज के मार्ग में नर्मदा के तट का उल्लेख किया गया है—'वहाँ से चल कर अज ने अपनी उस सेना का पड़ाव, जिसकी पताकाएँ मार्ग की धूल से मटमैली हो गई थीं, नर्मदा नदी के किनारे डाला जहाँ शीतल पवन के झोंकों से करंजक के पेड़ झूम रहे थे ।' देश का चित्र उसकी प्रमुख विशेषताओं में उभारने में कालिदास विशेष कौशल का परिचय देते हैं । और इसके साथ घटना की स्थिति मिल कर एक रूप हो जाती है । इन्दुमती के स्वयंवर मे सुनन्दा अनेक राजाओं का वर्णन उनके देश की पार्श्वभूमि के साथ कलापूर्ण ढंग से करती है—

अनेन सार्धं विहाराम्बुराशेस्तीरेषु तालीवनमर्मरेषु ।

द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैरपाकृतस्वेदलवा मरुद्भिः ॥ २

[चाहो तो—ताड़ों के जंगलों के मर्मर शब्द से गुंजित सागर के तटों पर तुम इस राजा के साथ विहार करो, जहाँ दूसरे निकट के द्वीपों से लौंग के फूलों के सुगन्ध से बसा हुआ शीतल पवन प्रवाहित होकर तुम्हारा पसीना सुखा देगा ।] ऐसे अनेक उल्लेखों के अतिरिक्त देश संबन्धी जो विस्तृत वर्णन हैं वे स्थिति, घटना अथवा वातावरण की योजनाओं के रूप हैं; उनका उपयोग यथा स्थान किया जायगा । बुद्धघोष को अपने महाकाव्य में अनेक देशों के उल्लेख का अवसर नहीं मिला है, पर सिद्धार्थ के मार्ग का वर्णन वे इसी प्रकार करते हैं । कुछ वर्णन पूर्ण-स्थितियों के चित्र हैं, पर पर्वत का वर्णन संक्षेपात्मक है—

निर्झरीपूरनिर्घौतकबधौतशिखातबम् ।

मेखल्लोपान्तविखसत्पुलिन्दपृतनापातिम् ॥^३

[तीव्र प्रवाहित नदियों से धुलकर चाँदी के समान निर्मल चट्टानोंवाले उस पर्वत (पर पहुँचे) जिसके प्रान्त भाग में शत्रुओं की सेना सुशोभित हो रही थी ।] कथा-विस्तार में घटनाओं के साथ आनेवाले स्थानों के वर्णन बाद के कवि इतने विस्तार से करते हैं कि वे अपने आप में मुक्त लगते हैं। घटना को आधार देनेवाले द्योतक वर्णनों का रूप कम मिलता है। ऐसे वर्णन कहीं-कहीं मिल जाते हैं। जानकी-हरण में राजा दशरथ के मृगया प्रसंग में वन का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

तस्य क्वणञ्जिर्झररेणुविद्धैर्वातैर्विधूतागरुपादपान्ते ।

अधिज्यधन्वा धनदप्रभावश्चचार मैनाकगुरोर्निकुञ्जे ॥^४

[वह राजा अपने धनुष की प्रत्यंचा को भँकारता हुआ मैनाक पर्वत के ढाल के निकुंजों में विचर रहा था, जिसके किनारे के अगुरुवृक्ष, पर्वतीय निर्झरों के जलकण से युक्त पवन से झकझोर उठते थे ।] सेतुबन्ध में विस्तृत स्थिति योजनाओं के बीच में यत्र-तत्र देश का निर्देश घटना के साथ आ गया है। राम वानर सेना के साथ विन्ध्य-पर्वत के पास पहुँचते हैं—

आलोकते च विन्ध्यं धनुःसंस्थानस्य सागरस्य भरसहम् ।

संहित्वनदीस्रोतःशरमुभयावकाशघटितमिव जीवाबन्धम् ॥^५

[सागर विस्तार को रोकनेवाले विन्ध्य को राम में प्रवाहित नदियों जिसमें शर के समान और दोनों प्रान्त-भागों पर जिसमें प्रत्यंबा आरोपित की गई है ऐसे धनुष के आकार में फैले देखा ।] इस वर्णन

३. पृष्ठ ० ; स० ९ ; ५० ।

४. बा० ; स० १ ; ५२ ।

५. सेतु ० ; आ० १ ; ५४ ।

मे देश के संकेत में अलंकृत शैली का प्रयोग किया गया है, इस कारण उसकी विशेषता अधिक प्रत्यक्ष नहीं हो सकी है। अन्य महाकाव्यों में स्थान के वर्णन स्थिति के चित्रण के रूप में हुए हैं।

§३—देश के समान काल की स्थिति भी है। महाकाव्यों में विभिन्न ऋतुओं के वर्णन तथा प्रातः-सायं सन्ध्या और रात्रि के वर्णन की परम्परा रही है। परन्तु कथावस्तु को आधार प्रदान करनेवाले काल का छायातप अथवा निर्देश इन वर्णनों में तत्र-तत्र ही मिलता है। जैसा कहा गया है प्रकृति और कथा-वस्तु के सामंजस्य में कालिदास सबसे कुशल कवि हैं। काल सम्बंधी ऋतु-वर्णनों को उन्होंने कथा में स्वाभाविक रीति से उपस्थित किया है। रघुवंश में दशरथ की विजय के बाद और उनकी मृगया के पूर्व कालिदास वसन्त के प्रकट होने का वर्णन करते हैं—

अथ समावृत्ते कुसुमैर्नवैस्तमिव सेवित्तुमेकनराधिपम् ।

यमकुबेरजलेश्वरवाज्रणां समधुरं मधुरञ्चितविक्रमम् ॥

[यम कुबेर, वरुण तथा इन्द्र के समान विक्रमशील उन एकद्वत्र राजा का अभिनन्दन करने के लिये वसन्त ऋतु भी नवीन पुष्पों की भेंट लेकर वहाँ आ पहुँची।] आगे चलकर कुश द्वारा अयोध्या को फिर से बसाये जाने के बाद उनकी जलक्रीड़ा के पहले कवि ग्रीष्म का निर्देश करता है—‘प्रतिदिन घर की बावलियाँ सेवार जमी हुई पैड़ियों को छोड़कर पीछे हटने लगीं और कमल-नाल जिसमें दिखाई देने लगे हैं ऐसा जल घट कर स्त्रियों की कमर तक रह गया है।’^६ कवि ने इस निर्देश में जल-विहार की भूमिका स्थापित कर ली है। काल रगत विस्तृत तथा भावशील योजनाओं का उपयोग अन्य अनेक रूपों में कवि ने किया है जिसका उल्लेख बाद में किया जायगा। इसी प्रकार कुमारसम्भव में

सायं-सन्ध्या का प्रवेश शंकर-गार्वती के प्रेममय उल्लास की भूमिका में सहज रूप से होता है—

इत्यभौममनुभूय शङ्करः पार्थिवं च दयितासखः सुखम् ।

बोहितायति कदाचिदातपे गन्धमादनवनं न्यगाहत ॥^७

[इस प्रकार अपनी प्रेयसि के साथ सांसारिक तथा स्वर्गीय सुख भोगते हुए शिव किसी दिन गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे । उस समय सन्ध्या हो चली थी जिससे सूर्य रक्ताभ दिखाई पड़ रहा था ।] बुद्धघोष ने देश के समान काल का वर्णन कथा-वस्तु के अनुरूप किया है । वातावरण आदि के अतिरिक्त घटना के आधार के रूप में काल का निर्देश कवि कुछ स्थलों पर करता है । बुद्धदेव के मार्ग में सूर्योदय का उल्लेख, कवि भविष्य की घटना के सामंजस्य में करता है—

अज्ञानमेव जगतामपसार्यं त्वयेत्यपि ।

अस्यादिशच्चिव रविरन्धकारमपाकरोत् ॥^८

[जिस प्रकार संसार का अज्ञान आपके द्वारा दूर होगा, उसी प्रकार दिशाओं का अधिकार सूर्य ने दूर कर दिया ।] यद्यपि इस उल्लेख में भविष्य का संकेत है, पर इसको वातावरण के रूप में नहीं लिया जा सकता । वातावरण-निर्माण के लिये विस्तृत अथवा संश्लिष्ट योजना अपेक्षित है । जैसा कहा गया है वर्णन-प्रियता के परिणाम-स्वरूप काल का निर्देश केवल कथा-वस्तु के आधार के रूप में बाद के कवियों में नहीं मिलता है । कुमारदास ने दशरथ के मृगया-प्रसंग में सूर्यास्त का उल्लेख घटना के साथ किया है, पर उसकी वैचित्र्य को प्रवृत्ति के साथ सामंजस्य की भावना दब गई है । इसी प्रकार राम और सीता के विलास-वर्णन के अवसर पर कवि ने सन्ध्या का वर्णन कलात्मक शैली में एक सीमा तक अवसर के अनुरूप किया है—

७. कुमा० ; स० ८ ; २८ ।

८. पद्म० ; स० ९ ; २५ ।

दिङ्मुखादपसरन्तमातपं नष्टतेजसमनुव्रजन्मुहुः ।

रश्मिभिः समवबध्य भानुना कृष्यमाणमिव लक्ष्यते तमः ॥^९

[दिशा के मुख से हटती हुई तेजहीन धूम का धीरे-धीरे पीछा करता हुआ अंधकार किरणों से भला भँति बँधे हुए सूर्य से खींचा गया जान पड़ता है ।] वास्तव में यह वर्णन राम द्वारा किया गया है, और इसमें भाव-तादात्म्य की स्थिति लक्षित है, पर भाव-स्थिति अधिक प्रत्यक्ष नहीं है, इस कारण काल का निर्देश ही मानना चाहिए । अन्य महाकाव्यों में काल सम्बंधी विस्तृत वर्णनों की प्रवृत्ति मिलती है जिनमें भावात्मक सामंजस्य आदि का समन्वय किया गया है । प्रवरसेन ने समय के निर्देश में भावात्मक संकेत सम्मिलित कर दिये हैं । राम की यात्रा के अनुकूल शरद को कवि 'सुग्रीव के यश के मार्ग के समान, राघव के जीवन के लिये प्रथम अवलम्ब के समान और सीता के अश्रुओं को दूर करनेवाले रावण के वध-दिवस के समान आया हुआ' कहता है । इस प्रकार कपि-दल के उत्पात के बाद सन्ध्या के उल्लेख में कवि ने रावण के चरित्र को समन्वित कर दिया है—

तावच्चासन्नस्थितकपिबलनिर्घोषकलुषितस्य भयंकरम् ।

दशवदनस्य समपसृतपरिजनं मुञ्चति दृष्टिपातं दिवसः ॥^{१०}

[निकटवर्ती कपिदल के हूहाकार से अत्यन्त क्रुद्ध दशमुख के भयंकर दृष्टिपात को, जिसके सामने सभी परिजन पलायन करते हैं, दिन भी छोड़ रहा है । अर्थात् क्रुपित रावण के सामने सन्ध्या का अंधकार छा रहा ।] भारवि अस्त होते सूर्य के उल्लेख से सन्ध्या का वर्णन प्रारम्भ करते हैं—

मध्यमोपलनिभे लसदंशावेकतश्च्युतिमुपेयुषुषि भानौ ।

घौस्वाह परिवृत्तिविलोलां हारयष्टिमिव वासरलक्ष्मीम् ॥^{११}

९. जान ; स० ८ ; ५७ ।

१०. सेतु० ; स० १ ; १६ ; स० १० ; ५ ।

११. किरा० ; स० ९ ; २ ।

[प्रसरित होती हुई रश्मियों के साथ एक ओर डूबते हुए सूर्य को मध्यनग के रूप में प्राप्त कर आकाश प्रत्यावर्तन से चंचल दिवस की श्री-रूपी मुक्तावली को धारण किये हुए है ।] इस काल के उल्लेख में घटना का आधार नहीं के बराबर है, पर इससे वर्णना का प्रारम्भ अवश्य होता है, जो अपने कलात्मक सौन्दर्य में कथा-वस्तु से अधिक सम्बंधित नहीं है ।

§४—देश अथवा काल के विस्तृत वर्णनों में प्रकृति के अनेक उपकरणों की भिन्न स्थितियों का आश्रय लिया जाता है । और प्रकृति की प्रत्येक रूपात्मक स्थिति देश की किसी सीमा तथा (iii) स्थिति काल के किसी निश्चित छाया प्रकाश से घिर कर व्यक्त होती है । इस कारण देश-काल-स्थिति को इस प्रकार अलग-अलग नहीं किया जा सकता है । आगे के प्रकृति-रूपों में ऐसा नहीं किया गया है । परन्तु केवल कथा-वस्तु के आधाररूप में प्रमुखता के दृष्टिबिन्दु से यह विभाजन स्वीकार किया गया है । कभी कवि का उद्देश्य देश-काल का निर्देश करना न होकर केवल प्रकृति-स्थिति को उपस्थित करना हो सकता है । अश्वघोष के सौन्दरनन्द में इस प्रकार की स्थितियों का वर्णन आदर्श तथा आलौकिक है । दूसरे अनुच्छेद में निर्दिष्ट तपोवन के वर्णन में देश के साथ स्थिति अधिक प्रत्यक्ष हुई है जो स्वाभाविक कही जा सकती है । शाक्य मुनि ने नन्द को जो प्रकृति का रूप पत्नी के रूप में दिखलाया है, वह पहले आदर्श है—
‘श्वेत शिखरों पर बहुत संख्या में मोर अपने पंखों को फैलाये सो रहे थे, जैसे बलवान स्वस्थ गोरी भुजा पर नीलमणि का केयूर बंधा हो ।’ बाद में क्रमशः प्रकृति का रूप आलौकिक होता जाता है ।

वैदूर्यनालानि च कान्धनानि पद्मानि वज्राङ्गुरकेशराशिः ।

स्पर्शमायुत्तमगन्धवन्ति रोहन्ति निष्कम्पतन्वा नखिन्यः ॥ १२

[सरोवर के कम्पनहीन जल पर नीलमणि के नालवाले वज्र की किरण-केशरवाले सोने के कमल उग रहे हैं, जिनमें बहुत उत्तम गन्ध आ रही है और जिनका स्पर्श नहीं किया जा सकता है ।] कालिदास ने अधिकतर स्थिति के चित्रणों को निरपेक्ष नहीं रखा है, उनसे वातावरण का निर्माण किया है अथवा उनमें भावात्मक संकेत अन्तर्हित कर दिये हैं । यत्र-तत्र स्वतंत्र स्थिति का रूप वस्तु के आधार में उपस्थित हुआ है । नन्दनी को चराकर लौटते समय दिलीप के मार्ग में सन्ध्या-समय का चित्र ऐसा ही है, जिसका उल्लेख किया जा चुका है । इसी प्रकार 'राजा दिलीप की परीक्षा लेने के लिये नन्दनी ने भूट हिमालय की उस गुफा में प्रवेश किया जिसमें गंगाजी की धारा गिर रही थी और जिसके तट को घनी घास आच्छादित किये हुए थी ।' इस वर्णन में स्थिति का निर्देश है । घटना के साथ स्थिति को चित्रित करने में कालिदास अद्वितीय हैं । दशरथ के मृगया प्रसंग में एक स्वाभाविक चित्र इस प्रकार है—

उत्तस्थुषः सपदि पल्वलपङ्कमध्या-

न्मुस्ताप्ररोहकवलावयवानुकीर्णम् ।

जग्राह स द्रुतवराहकुलस्य मार्गं

सुव्यक्तमार्द्रपदपङ्क्तिभिरायताभिः ॥ १३

[इसके अनन्तर राजा ने, शीघ्र ही सरोवर के किनारे से उठकर भागते हुए सुअरों के झुण्ड के, स्थान-स्थान पर आधे चबे हुए मोथ की घास के त्रिखरे हुए मुट्टों तथा पैर की गीली छापों की पाँत से निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण किया ।] जानकीहरण में दशरथ हिमालय पर मृगया के लिये जाते हैं । और वहाँ का वर्णन कवि आदर्श-रूप में करता है— 'गुफाओं से अपना आधा शरीर निकाल कर पशुओं को खींचते हुए नागों से जान पड़ता है पर्वत स्वयं जीभ फैला कर जीवों को निगल रहा है ।' कवि ने कालिदास के समान मृगया का एक स्थिति चित्र बहुत सहज प्रस्तुत किया है—

उत्कर्णमुत्पुच्छ्यमानमासे विद्वशिताभ्याहतकन्दुकोत्थम् ।

पारिप्लवाच्च मृगशावद्वृन्दमीषन्निपातेन शरेण राज्ञा ॥^{१४}

[राजा ने दिखाये गये मृग-शावक समूह को हलका बाण चलाकर भगा दिया, वह भ्रुण्ड बीच के हिरण के गेद लगने से विचलित हो गया था और चचल नेत्रों से कान-पूँछ उठा कर भाग रहा था ।] यहाँ घटना के साथ प्रकृति-स्थिति एक रूप हो जाती है । सेतुबन्ध में प्रकृति वर्णना का व्यापक विस्तार है जिसमें स्थितियों का आदर्श और अलौकिक रूप अधिक चित्रित किया गया है । कथा का सारा विस्तार सागर के चारों ओर फैला हुआ है, इसलिये कवि को पर्वत, नदी, तट, सागर आदि के वर्णन का विस्तृत अवसर मिला है । परन्तु जैसा कहा गया है प्रवरसेन की प्रमुख प्रवृत्ति आदर्श चित्रण की है । परन्तु इस प्रवृत्ति में कवि की अन्तर्दृष्टि तथा सूक्ष्म पर्यावेक्षण का पता चल जाता है । प्रवरसेन प्रकृति की स्वाभाविक स्थितियों से परिचित हैं । देशगत स्थितियों में आदर्श की भावना अधिक है पर काल सम्बंधी स्थितियों में सहज चित्र मिल जाते हैं । कवि चाँदनी में वृक्ष की छाया का वर्णन इस प्रकार करता है—

दरमिलितचन्द्रकिरणा दरधायमानतिमिरपरिपाण्डुराजोका ।

दरप्रकटतनुविटपा दरबद्धच्छायामण्डला भवन्ति द्र मा ॥

[किंचित चन्द्रकिरणों के व्याप्त होने से जिनके बीच का अन्धकार चन्द्रिका के प्रकाश से दूर हो गया है ऐसे वृक्ष मण्डलाकार छायाओं में आभासित हो उठे हैं ।] पर प्रकृति की सहज स्थिति से कहीं अधिक प्रवरसेन उसकी आदर्श स्थिति से आकर्षित होते हैं । विस्तृत वर्णनों में आदर्शिकरण की व्यापक प्रवृत्ति परिलक्षित होती है । कभी यह आदर्श-रूप कारण की कल्पना का परिणाम लगता है । कवि सुबल पर्वत के वर्णन प्रसंग में कहता है कि 'उन्होंने दूर-दूर तक दिशाओं में फैले हुए सुबल को देखा जिसका विकराल आकार सागर के जल में इस प्रकार

प्रतिबिम्बित था मानों उसकी चोटी पर वज्र प्रहार होने से उसका एक भाग समुद्र में गिर गया है।' पर यह अलंकृत शैली में स्वाभाविक प्रकृति का रूप है। आदर्श-रूप की वर्णना कवि, वस्तुओं के रूप-रंगों की योजना में करता है—

मरकतमणिप्रभाहतहरितायमानजरठप्रवालकिसलयम् ।

सुरगजगन्धोद्धावितकरिमकरासन्नदत्तमेघमुखपटम् ॥

[उस सागर में अधिक दिनों के प्रवाल के किसलय नीलमणि के प्रभा से युक्त होकर हरित हो रहे हैं। और ऐरावत आदि देवताओं के हाथियों के मद की गन्ध से आकर्षित होकर जब मगरमच्छ सागर से अपना मुख निकालते हैं तब मेघ उन पर वज्र की भौंति छा जाते हैं।] यह स्थिति की योजना प्रकृति का आदर्श रूप चित्रित करती है। कभी यह रूप-क्रिया तथा परिस्थितियों के माध्यम से प्रस्तुत की गई है—

शशबिम्बपार्श्वनिघर्षणकृष्णशिलाभित्तिप्रसृतामृतलेखम् ।

ज्योत्स्नाजलप्रप्लावितविषमोऽमायमाणज्ञातरविरथमार्गम् ॥ १५

[सुवेल पर्वत की काली शिलाओं के बगल से चन्द्रमा घर्षण करता हुआ निकलता है, जिससे अमृत की धारा प्रवाहित होती है। और उस पर जब चाँदनी के जल से प्लावित मार्ग से होकर विषम ऊष्णता के साथ सूर्य निकलता है तब उठी हुई भाप से उसके रथ का मार्ग जान पड़ता है।]

भारवि ने स्थिति का स्वतंत्र चित्र बहुत कम उपस्थित किया है। सन्ध्या समय चरकर लौटती हुई गायों का यह वर्णन स्वाभाविक है—

उपारताः पश्चिमरात्रिनोचराद्दुपारयन्तः पतितुं ज्वेन गाम् ।

तमुत्सुकाश्चक्रु रवेद्योत्सुकं गवां गणाः प्रस्तुतपीवरौघसः ॥ १६

[दिन डूबते समय गोचर-भूमि से लौटती हुई, उत्सुक होने पर भी अग्रन के भार से शीघ्र न चल सकनेवाली तथा जिनके स्तनों से दूध बह

१५. सेतु० ; आ० १० ; ३७ ; आ० ९ ; १३ ; आ० २ ; २२ ; आ० ९ ; १०।

१६. किरा० ; स० ४ ; १०।

रहा है ऐसी गायों के समूह ने उसको देखने के लिये उत्सुक कर दिया ।] सहज प्रकृति के चित्रण में भी मात्र का आग्रह आलंकारिक वैचित्र्य का रहता है—‘श्रीकृष्ण ने समुद्र-तट पर मेघ के समान नीलवर्ण तथा लता-बधुओं के साथ अनेक वृक्षों को अपने ही बहून से शरीरों की भाँति लक्ष्मीयुत देखा ।’ अनेक स्थलों पर ये वर्णन आदर्श-रूप में चित्रित किये गये हैं—‘दीपित मणियों की नूतन किरण-राशि रैवतक पर्वत की स्वर्णमयी चोटियों पर फैल कर व्याप्त हो रही थी । उसे श्याम रंग की शिलाएँ शोभित कर रही थीं और अमरों को आमंत्रित करती हुई लताएँ उसका आश्रय लिए हुए थीं ।’ इस आदर्श प्रकृति में स्थिति का चित्रात्मक सौन्दर्य है । पर जब इस रूप में कवि उक्ति-वैचित्र्य का निर्वाह करने लगता है, तब स्थिति अपने आप उसी में खो जाती है—

निश्वासधूमं सह रत्नभाभिर्मिच्वोत्थितं भूमिभिवोरगाणाम् ।

नीलोपलस्यूतविचित्रधातुमसौ गिरिं रैवतकं ददर्श ॥ १७

[मणियों के प्रकाश के साथ गेरू आदि अनेक धातुओं से विचित्र रंग-वाले उस रैवतक पर्वत को कृष्णजी ने देखा मानो सर्पों की निश्वास धूम-राशि ही नाना विध रत्नों की आभा के साथ भूतल को भेद कर निकल रही है ।] इसमें स्थिति का रूप सामने लाने से अधिक कवि का ध्यान वैचित्र्य कल्पना के निर्वाह की ओर है । श्रीहर्ष का प्रकृति की स्थितियों के प्रति अधिक आग्रह नहीं रहा है । इन्होंने प्रकृति-वर्णन को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया है । और इनके वर्णनों में स्वतंत्र-स्थिति का नितान्त अभाव है; पर सोते हुए हंस का यह चित्र स्वाभाविक बन पड़ा है—

अथावलम्ब्य चक्षमेकपादिकां तद्वा निदद्रावुपपल्लवं खगः ।

स तिर्यगावर्जितकन्धरः शिरः पिधाय पक्षेख रतिङ्गमाजसः ॥ १८

१७. शिशु०, स० ३; ७१ : स० ४, ३, १

१८. नैष०; स० १; १२१ ।

[इसके बाद वह पत्नी (हंस) रति-विलास से शिथिल होकर सरोवर के निकट, गरदन झुकाए हुए अपने शिर को पखों से छिपा कर क्षण भर के लिये एक पैर पर खड़ा-खड़ा सो गया ।] इस सहज-स्थिति में जो सौन्दर्य रक्षित है उससे स्पष्ट है कि श्रीहर्ष में पर्यावेक्षण की शक्ति है पर उन्होंने अपने काव्य में मानव जीवन को अधिक महत्व दिया है । साथ ही जैसा शैली के प्रसंग में कहा गया है उनमें पांडित्य अधिक है ।

§ ५—अभी तक जिन प्रकृति-स्थितियों का उल्लेख किया गया है वे किसी न किसी रूप में कथा-वस्तु का आधार प्रस्तुत करती हैं । परन्तु संस्कृत काव्य में प्रकृति स्वयं कथानक की घटना के रूप में प्राकृतिक घटनाओं की नियोजना उपस्थित होती है । इस स्थिति में प्रकृति की विभिन्न स्थितियों की नियोजना कथानक की दृष्टि से अपना महत्व रखती है । भारतीय कल्पना में प्रकृति सजीव और स्पन्दित ही नहीं वरन् मानव जीवन का अंग बन गई है । प्रकृति से मानवीय जीवन किस प्रकार आत्मीयता और साहचर्य स्थापित करता चलता है यह पिछले प्रकरण में बताया गया है और महाकाव्यों के विस्तार में अगले अनुच्छेदों में दिखाया जायगा । परन्तु जीवन के व्यापक अंग के रूप में प्रकृति इतिवृत्त की घटना बनकर अनेक अवसरों पर इन काव्यों में उपस्थित हुई है । इस घटना में प्रकृति के उपकरण कभी पात्रों के समान व्यवहार करते पाये जाते हैं और कभी कथावस्तु के पात्रों के कार्य के साथ घटना-स्थिति का रूप धारण कर लेते हैं ।

क—प्राकृतिक घटनाओं की नियोजनाएँ कभी स्वाभाविक होती हैं । इस स्थिति में सहज रूप से प्रकृति और मानव जीवन घटनात्मक सम्बंध में उपस्थित होते हैं । प्रकृति की स्वाभाविक घटना-स्थिति में आखेट सम्बंधी प्रकृति-वर्णन आ जाते हैं ।

(1) स्वाभाविक

कालिदास तथा कुमारदास के आखेट-वर्णन का पीछे उल्लेख किया गया है । अन्य घटना-स्थितियों में नर्मदा नदी में प्रियम्बद का हाथी के

रूप में निकलने का चित्र स्वाभाविक है। जहाँ तक घटना की स्थिति का प्रश्न है इसका वर्णन सहज है, पर हाथी का रूप-परिवर्तन अलौकिक घटना मानी जायगी। अज की सेना ने नर्मदा के तट पर पड़ाव डाला था कि इसी बीच उसके जल से एक हाथी निकला—

निःशेषविद्धाखितधातुनापि वप्रक्रियामृच्चवतस्तटेषु ।

नीलोर्ध्वरेखाशबलेन शंसन्दन्तद्वयेनाश्मविकुण्ठितेन ॥

[नहाने से दाँतो में लगी गेरु की लाली के झूट जाने पर भी पत्थर की रगड़ से उसके दाँतो पर पड़ी हुई नीली-नीली रेखाओं से जान पड़ता था कि उसने ऋक्षवान पर्वत की शिलाओं से टक्कर मारने की कोड़ा की है।] यही हाथी अज के बाण से प्रताड़ित होकर दिव्य पुरुष का रूप धारण कर लेता है। पुरदेवी ने कुश से जो अयोध्या नगरी की विध्वंस-स्थिति का वर्णन किया है वह एक प्राकृतिक घटना के समान है। नगरी का यह वर्णन वानावरण जैसा जान पड़ता है; पर वह अपने आप में घटना है, क्योंकि अन्य किसी घटना की पार्श्वभूमि के रूप में नहीं है। यह घटनात्मक-स्थिति की योजना यथार्थ और सहज सजीवता के साथ प्रस्तुत हुई है—‘स्वामी के बिना मेरी निवास-भूमि अयोध्या ध्वस्त अट्टालिकाओं और प्राकारों से, सूर्यास्त के के समय पवन वेग से इधर-उधर छितराए बादलोंवाली सन्ध्या के समान उदास जान पड़ती है।’ उजड़ी हुई नगरी का यह चित्र स्थिति को सामने प्रत्यक्ष कर देता है—

वृक्षेशया यष्टिनिवासमङ्गान्मृदङ्गशब्दापगमादत्तास्याः ।

प्राप्ता दवोल्काहत्तशेषबद्धाः क्रीडामयूरा वनबहिंसत्वम् ॥ १९

[अड़्डों के टूट जाने से वृक्षों का आश्रय लेनेवाले, मृदंग न बजने से जिनका नाचना भी बन्द हो गया है ऐसे पालतू मोर वन की आग से झुलसे हुए पखोंवाले जंगली मोरों के समान हो गये हैं।] आखेट के

प्रसंग में कुमारदास ने कालिदास के समान घटना-स्थिति के रूप में प्रकृति का उल्लेख किया है। स्थिति के अन्तर्गत एक चित्र उपस्थित किया जा चुका है। इन स्थितियों को घटना के रूप में लिया जा सकता है, क्योंकि इनमें प्रकृति का योग क्रियात्मक है—‘सिंह की गति वाले तथा लक्ष्य भेदन करने के समय अदृश्य भुजावाले राजा दशरथ ने अपने बाणों से, घोड़े को मारने के लिये छुलाँग भरकर आक्रमण के लिये सिकुड़े हुए चीता के प्रत्येक चिह्न को एक क्षण में ही वेध दिया।’ आगे चलकर कुमारदास ने रघुवंश से प्रेरणा ग्रहण कर विश्वामित्र के राक्षसों द्वारा ध्वस्त आश्रम का चित्र उपस्थित किया है। इसमें कालिदास जैसी स्वाभाविक सजीवता नहीं है, फिर भी कवि के पर्यावेक्षण का पता चल जाता है—

भुवि भोगिनिभं विलोक्यंस्तुट्टुमो हारमहार्यवेपथुः ।

हरिहस्तहतस्य दन्तिनः कररन्ध्रे निभृतं निक्षीयते ॥ २०

[पृथ्वी पर पड़ी हुई फूलों की माला सर्प के समान जान पड़ती है। और उससे भयभीत एक चूहा लगातार काँपता हुआ सिंह की चपेटों से मारे गये हाथी के दाँत की कोटर में चुपचाप जा छिपा है।] प्रवरसेन के सेतुबन्ध में प्रमुख घटना प्रकृति के क्षेत्र से सम्बंधित है। पर सेतु बाँधने की योजना स्वयं में आलौकिक घटना है; फिर साथ ही कवि की प्रवृत्ति आदर्शोक्ति को है। इसलिये सेतुबन्ध में स्वाभाविक प्राकृतिक घटना-स्थिति का दूँदना सरल नहीं है। अन्य काव्यों में मानव जीवन में सहज रूप से प्रकृति को स्थान नहीं मिल सका है।

१६—कथा-वस्तु के अनुरूप कभी महाकाव्यों में ये घटना-स्थितियाँ आदर्श प्रकृति का निर्माण करती हैं। सौन्दरनन्द में दशम सर्ग में वर्णित दृश्य नन्द को विशेष उद्देश्य से दिखाया गया है, इस कारण देशगत-स्थिति के साथ इस

(11) आदर्श

वर्णना में घटनात्मक विशेषता है। नन्द के आकर्षण के लिये जिस स्वर्गीय सौन्दर्य की कल्पना की गई है वह आदर्श प्रकृति का रूप है—

चित्रैः सुवर्णच्छदनैस्तथान्यैः वैदूर्यनीलैर्नयनैः प्रसन्नैः ।

विहङ्गमा शीञ्जिरिकाभिधाना रुतैर्मनः श्रोत्रहरैर्भ्रमन्ति ॥ २१

[सोने के पंखोंवाले नाना प्रकार के पक्षी तथा नीलमणि के नयनों वाले शीञ्जीरक नाम के पक्षी अपनी प्रसन्नता के मधुर स्वर से मन को आकर्षित करते हैं।] कालिदास ने कुमारसम्भव की सारी घटना को प्रकृति से एक रूप कर दिया है। हिमवान् कथावस्तु की घटना-स्थली के रूप में ही नहीं है, वरन् स्वयं एक पात्र है। साथ ही वसन्त, कामदेव आदि की भूमिका में प्रकृति घटना के रूप में अवतरित हुई है। इस महाकाव्य के प्रमुख पात्र शंकर-पार्वती की कल्पना प्रकृति के व्यापक सौन्दर्य से ग्रहण की गई है। फलस्वरूप इसकी प्रत्येक घटना में प्रकृति का योग स्वाभाविक हो गया है, और पौराणिक कल्पना के आधार के कारण प्रकृति का यह रूप कहीं आदर्श और कहीं अलौकिक है। प्रारम्भ में हिमालय का वर्णन कथानक की भूमिका जान पड़ता है, परन्तु सौन्दर्य का यह चित्रण कथावस्तु से इतना अभिन्न है कि उसकी घटना का अंग बन गया है। यह समस्त वर्णना प्रकृति के आदर्श सौन्दर्य का रूप है। प्रकृति का यह आदर्श-रूप कुमारसम्भव की कथा के अनुरूप है—

यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां सम्पादयित्रीं शिखरैर्बिभर्ति ।

बलाहकच्छेदविभक्तरागामकाबलसन्ध्यामिव धातुमत्ताम् ॥

आमेखलं सन्वर्त्तनां घनानां द्वायामधःसानुगतां निषेव्य ।

उद्धे जिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृङ्गाश्चि यस्यात्पवन्ति सिद्धाः ॥ २२

२१. सौन्द० ; स० १०, २९।

२२. कुमा० ; स० १ ; ४, ५।

[इस हिमालय के शिखरो पर रंग-बिरंगी चट्टानें हैं । निकट आये हुए बादलों पर इनकी छाया पड़ने से अप्सराएँ सन्ध्या के अम से हड़बड़ी में नाच गाने के लिये अपना शृंगार प्रारम्भ कर देती हैं । शिखरों के निचले भाग में विचरते हुए मेघों की छाया में आनन्द से रहनेवाले सिद्ध अधिक वर्षा से घबड़ा कर धूपवाली चौटियों पर जाकर रहने लगते हैं ।] बौद्ध-काव्यों में बुद्ध के जन्म के समय प्रकृति में अलौकिक घटना घटित होती है, उसमें कहीं-कहीं प्रकृति अपने आदर्श रूप में भी उपस्थित होती है । बुद्ध-चरित में जन्म के समय—‘मृग और पक्षी चुप हो जाते हैं और नदियाँ नीरव जल के साथ प्रवाहित होती हैं । दिशाएँ स्वच्छ हो गईं और आकाश निरभ्र होकर प्रकाशित हो जाता है । गगन में देवता दुन्दुभियों बजाने लगते हैं ।’ इसी प्रकार पद्म-चुडामणि में बुद्धघोष आदर्श प्रकृति को चित्रित करते हैं—

शाखासु शाखासु समुद्भवद्भिर्विचित्रपत्रैः शतपत्रजातैः ।

चकाशिरे तस्य विलोकनाय सञ्जातनेत्रा इव शाखिनोऽपि ॥^{२३}

[वृक्षों की डाली-डाली पर नाना रंगों के विचित्र शतपत्र कमल उत्पन्न हो गये मानों उनको (बुद्ध देव को) देखने के लिये वृक्षों के नेत्र लग गये हैं ।] पिछले अनुच्छेद में प्रवरसेन के सेतुबन्ध में प्राकृतिक घटनाओं की आदर्श योजना का निर्देश किया गया है । वास्तव में सेतु बाँधने की सारी घटना प्रकृति से एक रूप हो गई है । राम के मार्ग में समुद्र विराट बाधा के रूप में फैला हुआ है—

गगनस्येव प्रतिबिम्बं धरण्या इव निर्गमं दिशामिव निलयम् ।

भुवनस्येव मखितडिमं प्रलयस्येव सावशेषजलविच्छेदम् ॥

[आकाश के प्रतिबिम्ब के समान, पृथ्वी के निकास के द्वार के समान, दिशाएँ जिसमें विलीन हो जाती हैं ऐसा सागर भुवन-मण्डल की नील-मखि की परिखा के समान प्रलय के अवशेष जल के रूप में फैला है ।]

इस चित्र में स्वाभाविक विस्तार है पर कल्पना के साथ आदर्श जान पड़ता है। राम के ब्राह्मण से प्रताडित होने पर समुद्र की दशा का वर्णन आदर्श-स्थितियों से भरा हुआ है। 'ब्राह्मण के आघात से समुद्र के एक भाग का जल उछल गया है और दूसरे भाग का जल आलौकिक होता हुआ उस खाली भाग की ओर आ रहा है।' और इतना ही नहीं—

भिन्नगिरिधात्वात्ताम्रा विषमच्छिन्नप्रवमानमहीधरपद्माः ।

क्षुभ्यन्ति क्षुभितमकरा आपाताब्जगभीराः समुद्रोद्देशाः ॥ २४

[तीर से गिराई हुई गिरिधाताओं से ताम्रवर्ण के, और जिसमें टूटे हुए विषम पर्वतों के खण्ड तैर रहे हैं ऐसे पाताल तक गहरे समुद्री भाग अत्यन्त क्षुभित हो गये हैं और उनमें मकरों का समूह भी विकल हो उठा है।] ऐसी आदर्श घटना-स्थितियों से समस्त सेतु-बन्ध प्रसंग प्रस्तुत किया गया है, जिसमें यत्र-तत्र अलौकिकता की छाप है। किराता-जुनीय की घटना-स्थली हिमालय का प्रदेश है। अर्जुन अपनी तपस्या के लिये जिस प्रकृति के मध्य में पहुँचते हैं, वह उनके इतने निकट आ जाती है कि उस घटना का भाग बन जाती है—'मणियों की किरणों के जाल रूपी बस्त्र से शोभित, जिसके लता-गृहों में सुरवधुएँ निवास करती हैं और जिसमें ऊँची शिलाओं के द्वार हैं ऐसा वह पर्वत पुष्पित उपवन वाले नगर के समान पृथ्वी पर स्थित था।' आगे इन्द्रकील पर अप्सराओं का वर्णन स्वयं प्रकृति के साथ मिलजुल कर एक रूप हो गया है—

माहेन्द्रं नामभितः करेणुवर्याः पर्यन्तस्थितजलदा दिवः पतन्तः ।

सादृश्यं निलयननिष्प्रकम्पपदैराजग्मुर्जलनिधिशाधिभिर्नगेन्द्रैः ॥ २५

[चारों ओर से मेघों से घिरा हुआ श्रेष्ठ हाथी आकाश से इन्द्रकील पर्वत पर उतरता हुआ ऐसा जान पड़ा मानों सागर में बड़े-बड़े पर्वत

२४. सेतु० ; आ २ ; २ : आ० ५ ; १६ , ३७ ।

२५. किरा० ; स० ७ ; २० ।

निश्चल पत्तों के साथ सो रहे हैं।] अन्य महाकाव्यों में प्रकृति का आदर्शिकरण किया है, पर वह कथानक का अंग इस रूप में नहीं बन सकी है।

§ ७—प्रकृति जब स्वाभाविक के विरुद्ध व्यवहार करती हुई कथानक की घटना का अंग बन जाता है, तब उसका अलौकिक रूप हमारे सामने आता है। भारतीय महाकाव्यों में प्रकृति के अलौकिक इस अलौकिक रूप के आधार में दो सिद्धान्त प्रमुखतः हैं। पहली बात है कि यहाँ जीवन और प्रकृति एक दूसरे के इतने निकट स्वीकृत रहे हैं कि प्रकृति के विभिन्न उपकरणों का मानव के समान व्यवहार करना सहज हो गया है। और दूसरी बात है कि प्रकृति से महाप्राण का इतना तादात्म्य माना गया है कि किसी महत्वपूर्ण मानवीय घटना के साथ प्रकृति का अलौकिक हो उठना सरल है। प्रकृति की ये घटना-स्थितियाँ एक प्रकार से वातावरण का सचेष्ट रूप हैं जिसमें प्रकृति क्रियाशील जान पड़ती है। अश्वघोष, शाक्य-मुनि तथा मार के युद्ध के पूर्व प्रकृति के अलौकिक रूप को 'अन्धकारपूरित आकाश, कौपती हुई पृथ्वी और प्रज्वलित तथा निनादित दिशाओं में' देखते हैं। और प्रकृति की इस अलौकिक स्थिति में—

विष्वग्बधौ वायुरुदीर्यवेगस्तारा न रेजुर्न बभौ शशाङ्कः ।

तमश्च भूयो वितवान रात्रिः सर्वे च सञ्जुक्षुभिरे समुद्राः ॥ २६

[मुक्त वेग से पवन चारों ओर प्रवाहित हुआ, आकाश में न तारे प्रकाशित हुए और न चन्द्रमा । रात्रि ने अन्धकार को और भी घनीभूत कर लिया तथा सभी समुद्र चूर्ण हो गये।] कालिदास के कुमार सम्भव में कथावस्तु के अनुरूप प्रकृति अलौकिक घटनाओं में अनेक स्थलों पर उपस्थित हुई है। वसन्त कामदेव की आज्ञा से अपना विस्तार करता है; असमय ही शिव के मन को चंचल करने के लिए प्रकृति

में वसन्त छा जाता है। पर कहाँ शिव और कहाँ बेचारा वसन्त। शिव के अनुचर नन्दी के एक संकेत से प्रकृति मौन हो जाती है—

निष्कम्पवृक्षं निभृतद्विरेफ मूकाण्डजं शान्तमृगप्रचारम् ।

तच्छासनात्काननमेव सर्वं चित्रार्पितारम्भमिवावतस्थे ॥

[उसका संकेत पाकर वृक्षों ने हिलना बन्द कर दिया, भौरों की गुंजार बन्द हो गई, पक्षिगण मौन हो गये और पशुओं ने भी संचरण बन्द कर दिया। इस प्रकार उसकी आज्ञा से सारा कानन चित्रलिखित सा हो गया।] आगे सप्तऋषि जब हिमालय के पास विवाह का प्रस्ताव लेकर जाते हैं, उस समय हिमालय के व्यक्तित्व का वर्णन प्रकृति को अलौकिक कर देता है। ऋषियों ने हिमालय को ठोस बोझीले पग रखते हुए आते देखा जिससे पृथ्वी झुक-झुक जाती थी, और देखते ही उन्होंने पहचान लिया—

घातताम्राधरः प्रांशुर्देवदास्वृहद्भुजः ।

प्रकूर्यैव शिबोरस्कः सुव्यक्षां हिमवानिति ॥ २७

[घातुओं की लाल चट्टानों के ओठोंवाला, देवदारु की विशाल भुजाओंवाला और स्वभाव में ही शिलाओं की चौड़ी आर दृढ़ छाती वाला हिमालय यही है।] यहाँ अलौकिकता प्रकृति की स्थिति में नहीं है, वरन् उसके व्यक्तीकरण में है। बुद्धशोष ने बुद्धदेव के जन्म के समय प्रकृति में अलौकिक घटनाओं का उल्लेख किया है—‘मेरु पर्वत चलायमान हो गया जो नाम से ही अचल प्रविद्ध है, सिन्धु ने अपना खारीपन छोड़ कर माधुर्य स्वीकार कर लिया और सदा प्रवाहित होनेवाली नदियाँ भी विस्मय से स्थिर हो गईं।’ और भी—

ववर्ष वर्षासमयं विनापि वज्राहको वारिधिघोरघोषः ।

आश्चर्यकर्माणि बभूवुरित्थं जाते सतामप्रसरे कुमारं ॥ २८

[इस प्रकार के आश्चर्य कार्य कुमार के जन्म के समय हुए, जैसे वर्षाकाल के बिना ही मेघों ने वर्षा की और समुद्र ने गम्भीर घोष किया ।] कहा गया है कि प्रवरसेन मे सेतुबन्ध की घटना को आदर्श तथा अलौकिक घटना-स्थिति से निर्माण किया है । इसमें समुद्र का व्यक्तीकरण अपनी कल्पना में अलौकिक हैं—‘धुआँ से व्याप्त पाताल के वन को छोड़ कर दिग्गज के समान समुद्र बाण की ज्वाला से भुलसे हुए सर्पों और वृक्षों के समूह के साथ बाहर निकला ।’ इसके साथ कवि ने समुद्र के व्यक्तित्व को और भी प्रत्यक्ष किया है । सेतुबन्ध के लिये कपि-सेना का पर्वत लाने, जाने का वर्णन अलौकिकता में अद्वितीय है । कपि-सेना के चलने से समुद्र क्षुब्ध हो उठता है—

प्लवगक्षोभितमहौतलधूतमलयपतच्छिखरमुक्तकलकलः ।

उद्धावितोऽनागतघटमानधरणिधरसंक्रम इव समुद्रः ॥ २९

[बानरों से क्षुभित पृथ्वीतल के हिलने से मलय पर्वत के शिखरों के गिरने से कोलाहल व्याप्त हो गया है जिसमें ऐसा समुद्र मानों सेतु बंधने के समय पर्वतों से आक्रान्त होने का समय आ गया जान कर उछल रहा है ।] सेतु बंधने का दृश्य भी आदर्श कल्पनाओं के साथ अलौकिक है । किरातार्जुनीय में भारवि ने अर्जुन की तपस्या-भंग करने के लिये आनेवाली अप्सराओं के विलास आदि का जो चित्र उपस्थित किया है वह घटना की दृष्टि से अलौकिक माना जायगा, यद्यपि उसमें वर्णनात्मक स्थितियों का रूप आदर्श प्रकृति का विशेष है । ‘आकाश-मार्ग से आती हुई अप्सराओं के रत्नजटित आभूषणों ने जलहीन मेघों में निकले हुए खण्डित इन्द्रधनुष को पूरा कर दिया है ।’ ३०

२९. सेतु० ; आ० ६ ; १ , २१ ।

३०. किरा० ; स० ७ ; १६ । इसी प्रकार बादलों के पुल से उनके रथों के उतरने की कल्पना है—

‘सेतुत्वं दधति पयोमुचां विताने संरम्भादभियततो रथाञ्जवेन ।

आनिन्युनियमितरश्मिभुग्मघोणाः कृच्छ्रेण क्षितिमवनामिनस्तुरङ्गाः ॥ १९ ॥

इसमें स्थिति का सौन्दर्य्य आदर्श है, पर घटना अलौकिक है। शिशुपालवध में रैवतक पर श्रीकृष्ण के विनास-वर्णन में यत्र-तत्र अलौकिकता है, पर वास्तव में कथानक की घटना से इसका कुछ सम्बन्ध नहीं है। नैषधीय में हंस का व्यक्तित्व अलौकिक है, इसके अतिरिक्त उसके कथानक में प्रकृति का घटना-स्थिति के रूप में कोई स्थान नहीं है।

§ ८—पिछले अनुच्छेदों में प्रकृति के कथानक के आधार के रूप में प्रयोग पर विचार किया गया है अथवा वह घटना-स्थिति के रूप में कथावस्तु का किस प्रकार अंग बन जाती है वानावरण का निर्माण यह बताया गया है। परन्तु पार्श्व-भूमि के रूप में चित्रित प्रकृति कथानक से अनेक स्थलों पर सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। उस समय वह कथानक की केवल आधारभूमि नहीं रह जाती वरन् वातावरण का निर्माण करती है। पार्श्वभूमि के रूप में प्रकृति केवल देश-काल की स्थितियों का बोध भर कराती है, पर वातावरण के रूप में वह घटना अथवा चरित्र से सम्बन्ध स्थापित करती है। जब प्रकृति की वर्णना में कथानक के क्रम की छाया पड़ती हो या भविष्य सम्बन्धी संकेत सन्निहित हों अथवा पात्रों के चरित्र की व्यंजना अन्तर्निहित हो, तब वह वातावरण का रूप ग्रहण करती है। इस प्रकार प्रकृति के नीरव और स्वच्छ आकाश में इतिवृत्त का छाया-प्रकाश वातावरण की उद्भावना करता है।

क—वातावरण के निर्माण में कभी प्रकृति तथा घटना में सहज अनुरूपता रहती है। कवि जैसी घटना का वर्णन करने जा रहा है अथवा चरित्र का जो रूप प्रस्तुत करनेवाला है सहज अनुरूप पार्श्वभूमि की प्रकृति में उसी के अनुरूप वातावरण का निर्माण करेगा। इस प्रकार के प्रयोग से प्रकृति और मानव जीवन में एक सहज सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और प्रकृति की यह अवतारणा अधिक प्रभावोत्पादक होती है। सौन्दरनन्द में अश्वघोष कपिल

मुनि के आश्रम का वर्णन हमी वातावरण के साथ करते हैं—
‘हिमालय की पार्श्वभूमि में विस्तृत क्षेत्रवाली पवित्र कपिल की
तपोभूमि थी,’ जो—

पर्याप्तफलपुष्पाभिः सर्वतो वनराजिभिः ।

शुशुभे वृधे चैव नरः साधनवानिव ॥^{३१}

[साधना करनेवाले पुरुष की भोंति अत्याधिक फल-फूलों से आच्छादित
वनसमूहों से शोभित थी और वर्धमान थी ।] तपोभूमि की समस्त
वर्णना में इस प्रकार शांति तथा पवित्रता की भावना वातावरण बनकर
फैली हुई है । कालिदास प्रकृति के सौन्दर्य को वातावरण का रूप देने
में सब से अधिक सफल हुए हैं । रघुवश के प्रथम सर्ग में दिलीप के
मार्ग में प्रकृति अनुरूप वातावरण प्रस्तुत करती है—‘मन की इच्छाओं
के पूर्ण होने का संकेत देता हुआ पवन उनके अनुकूल ऐसी दिशा से
प्रवाहित हो रहा था कि धूल न देवी सुदान्धिण के बालों को छू पाती
थी और न राजा दिलीप की पगड़ी को ।’ और—

सरसीष्वरविन्दानां वीचिविद्धोभशीतलम् ।

आमोदमुपजिघ्रन्तौ स्वनिश्वासानुकारिण्यम् ॥

[मार्ग में पड़नेवाले तालों के कमलों की, अपनी साँस के समान,
पवन से चंचल की हुई लहरों के झकोरों से शीतल गन्ध को ग्रहण
करते हुए वे चल जा रहेथे ।] नन्दिनी को चराते समय भी प्रकृति
राजा दिलीप के अनुकूल है और उनके ऐश्वर्य के अनुरूप वातावरण
प्रस्तुत करती है—‘मार्गवर्ती वृद्धों पर अनेक मतवाले पक्षियों ने अपने
कलख से जिसके साथ सेवक नहीं हैं ऐसे राजा दिलीप का मानों जय-
बन्धन किया ।’ रघु की दिग्विजय की यात्रा में प्रकृति अपने वातावरण
में उनके अनुकूल विधित की गई है—

भूर्जेषु मर्मरीभूताः कीचकध्वनिहेतवः ।
गङ्गाशीकरिण्यो मार्गे मरुतस्तं सिपेविरे ॥

[वहाँ मार्ग में भोजपत्रों को मर्मर करता हुआ पर्वतीय बाँसों के छेदों में बाँसुरी सी बजाता हुआ और गंगा जी की फुहारों से ठण्डा हुआ पवन रघु की सेवा कर रहा था ।] विमान से लौटते समय राम प्रकृति के जिस रूप का उल्लेख करते हैं, उसमें वातावरण सम्बन्धी भावात्मक अनुरूपता है—

अमूर्विमानान्तरत्नम्बिनीनां श्रुत्वा स्वनं काञ्चनकिङ्किण्यानाम् ।

प्रत्युद्ब्रजन्तीषु खमुत्पतन्त्यो गोदावरीसारसपङ्क्तयस्त्वाम् ॥

[देखो, विमान के नीचे लटकती हुई सोने की किङ्किणियों का शब्द सुन कर गोदावरी नदी से सारसों की पाँतें मानों तुम्हारी अगवानी करने के लिये उड़ी चली आ रही हैं ।] कालिदास ने कुमारसम्भव में इसी प्रकार अनुरूप वातावरण कई स्थलों पर प्रस्तुत किया है। पिछले अनुच्छेद में घट्टना-स्थल के रूप में हिमानय के आदर्श तथा अलौकिक वर्णन का जो उल्लेख किया है वह वातावरण के निर्माण के लिये हुआ है। तीसरे सर्ग में वसन्त ने जो उद्दीपक प्रमार प्रकृति में किया है वह भी एक प्रकार से शिव की तपस्या-भंग के अनुरूप वातावरण की उद्भावना है, पर इसका विचार उद्दीपन-विभाव के अर्न्तगत किया जायगा। शंकर-पार्वती के विलास के साथ प्रकृति का चित्र अनुकूल है—‘घूमते हुए वे मलय पर्वत पर पहुँचे, जहाँ चन्दन की कोमल शाखाओं को कम्पित करनेवाला और लौंग के फूलों की केसर उड़ाने वाला मलय पवन सभोग में थकी हुई पार्वती जी की थकावट मीठी बातों से किसी के मन बहलाने के समान, दूर कर रहा था।’³² बुद्धघोष ने सिद्धार्थ की तपस्या की पार्श्वभूमि में साल वन का वर्णन अनुरूप

३२. रघु० ; स० १ ; ४२ , ४३ : स० २ ; ९ : स० ४ ; ७३ : स० १३ ;
३३ । कुमा० ; स० ८ ; २५ ।

वातावरण के निर्माण के लिये किया है। इस वन का उल्लास तपस्या की सिद्धि के अनुकूल व्यक्त किया गया है—

उत्फुल्लमञ्जरीपुञ्जपिञ्जरीकृतसत्पथे ।

अमद्भ्रमरभङ्गारहुङ्गारचकिताध्वगे ॥^{३३}

[जिस वन में विकसित मंजरियों के पुंज से व्याप्त आकाश पीला था और जिसमें गुंजार करते हुए भौरो के स्वर से पथिक चकित हो रहे थे ।] इस पुष्पित तथा मन्द पवन वाले कानन में शाक्य मुनि ने तपस्या प्रारम्भ की है। यह वातावरण शृंगार प्रधान होने के कारण तपस्या के प्रतिकूल कहा जा सकता है, परन्तु सिद्धि का फल इतना प्रत्यक्ष है कि यह प्रतिकूलता अनुकूल अधिक जान पड़ती है।

ख—कभी कवि घटना से वातावरण को अधिक प्रधान चित्रित करता है। ऐसी स्थिति में वातावरण सघन हो जाता है और वह घटना का एक अंग बन जाता है। सेतुबन्ध कथानक की सघन वातावरण दृष्टि से वातावरण प्रधान महाकाव्य है। उसका सारा विस्तार वातावरण की सघनता में खो गया है, इसका एक कारण जैसा कहा गया है इसकी प्राकृतिक घटनाओं की नियोजना भी है। इस महाकाव्य में सेतुबन्धन की घटना ही प्रधान है, और इसी के चारों ओर रामकथा को ले लिया गया है। इस कारण समुद्र के वर्णन से लेकर सेतु सम्पूर्ण होने तक की समस्त वर्णना प्राकृतिक घटनाओं की जिस शृंखला में उपस्थित होती है वह कथा का सघन वातावरण ही है। घटना की पार्श्व-भूमि में प्रकृति की अवतारणा और इस घटनात्मक वर्णना में वातावरण का रूप भिन्न होता है। पहली स्थिति में वातावरण कथा की घटना का आधार प्रदान करती है अथवा उस पर किसी प्रकार का छायातप डालता है, पर दूसरी स्थिति में वातावरण कथा का अंग बन जाता है। प्रवरसेन ने पार्श्वभूमि के रूप में भी वातावरण का

निर्माण किया है। और इसकी योजना अपनी सवनता में घटना के अनुकूल पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती है। प्रथम आश्वास में हनुमान का सीता का सन्देश देने के पूर्व शरद् का वर्णन इसी भावना से प्रभावित है—‘जिम काल में नाल रूपी अपने करटकित (पुलकित) शरीर को जल रूपी वज्रो में छिपाये हुए किंचित किंचित विकसित होती हुई सुग्ध स्वभाववाली नलिनी सूर्य किरणों से चुम्बित होते से अपने कमल रूपी मुख को हटाती नहीं।’ इसमें आरोह द्वारा राम के विरह को उद्दीप्त करने की प्रवृत्ति है, पर यह वर्णना का व्यापक विस्तार सीता-सन्देश तथा उससे उत्साहित होकर सेतुबन्ध की योजना की अनुरूप पार्श्व-भूमि है। यह भावना आगे अधिक व्यक्त हुई है—

इति प्रहसितकुमुदसरसि भटीमुखपङ्कजविरुद्धचन्द्रालोकायाम ।

जातायां स्फुरत्तारायां लक्ष्मीस्वयंग्राहनवप्रदोषे शरदि ॥^{३६}

[इस प्रकार जिसमें सरोवरों में कुमुद विकसित हो गये हैं, जिसमें शत्रु-योद्धाओं की स्त्रियों के मुन्द-रूपी कमल को म्लान करनेवाला चन्द्रमा का आलोक फैलता है, ऐसी चमकते हुए तारों से युक्त तथा लक्ष्मी के स्वयं वरण की गोधूलि के समान शरद् ऋतु के आ जाने पर] राम के आशा के सम्बल के समान पवनसुत आ जाते हैं। इस प्रकार वातावरण में भविष्य का संकेत भी छिपा है, जिसकी व्याख्या अगले अनुच्छेद में की जायगी ।

जैसा कहा गया है सेतुबन्ध में घटनात्मक वातावरण का प्रस्तार अधिक है, जिसमें सघन प्रगुम्फन है। समुद्र का विस्तार विद्वन्ध समुद्र, वानरों द्वारा पर्वतों का आकाश-मार्ग से लाया जाना, पर्वतों से आकुल समुद्र, सेतु-बन्धन तथा उसके बाद का समुद्र-दर्शन आदि सभी इसी के अन्तर्गत आ जाते हैं। सभी वर्णनों में समान रूप से कल्पना के वैचित्र्य के साथ वातावरण घना हो उठा है। द्वितीय भाग में इनको

विस्तार से प्रस्तुत किया जायगा। राम के बाण से समुद्र इस प्रकार व्याकुल है—‘जिसका प्रवाल-पुंज बिखर गया है, संक्षोभ के कारण ऊपर आये हुए अधः जलस्तर से निकले हुए रत्नों की ज्योति से युक्त, फन की भाँति मुक्ता-समूह को उछालता हुआ, वेलाप्रदेश में स्थावित समुद्र का जल तट प्रदेश में पृथ्वी के नत और उन्नत भागों में फैल रहा है।’ वानर सेना द्वारा पर्वतों के उखाड़े जाने का चित्र ऐसा ही वातावरण प्रस्तुत करता है—‘वर्षा में बादल बरस कर जिनको छोड़ चुके हैं, शरत् काल के अवतीर्ण होने पर कुछ सूखे हुए और कोमल होने के कारण केवल एक बार के प्रयत्न से वानर सैनिकों द्वारा उत्खात पर्वत खण्ड-खण्ड हो रहे हैं।’ और भी—

दलितमहीवेष्टशिथिला मूलाब्जभुजगेन्द्रकृष्यमायाः ।

सञ्चाल्यमाना पृषायान्ति गुरवो रसातलं धरणिधराः ॥ ३५

[उखाड़े जाने पर धरातल से सम्बंध विच्छिन्न होने के कारण शिथिल, मूत्र में लगे हुए पातालीय सपो द्वारा नीचे की ओर आकृष्ट वानरों द्वारा उत्तोलित होते भारवाही पर्वत रसातल की ओर खिसके जा रहे हैं।] इन वर्णनों की सघनता का पूरा आभास विस्तृत योजना में ही मिल सकता है।

ख—कथानक की घटना से सम्बंधित वातावरण-निर्माण की दृष्टि से भारवि ने कुमारदत्त, माघ तथा श्री हर्ष से अधिक सरल प्रयोग किये हैं। बाद के कवियों में जिस प्रकार घटना का आग्रह अन्य कवियों में कम होता गया है उसी प्रकार प्रकृति का प्रयोग भी रूढिवादो हो गया है। प्रकृति का वर्णन कथानक से अधिक सामंजस्य नहीं बनाये रख सका है और न घटनाओं के वातावरण के रूप में उपस्थित हो सका है। इन स्वतंत्र वर्णनों में उद्दीपन का वातावरण अक्षय्य है जिसका सम्बंध कथानायक के क्रीड़ा-विलास की पार्श्वभूमि से

स्थापित किया गया है, और इस अर्थ में वह वातावरण के अन्तर्गत आ सकता है। उद्दीपन-विभाव के प्ररूपण के अन्तर्गत इस पर विचार किया जायगा। परन्तु भारवि ने घटना-स्थिति का वातावरण निर्माण किया है। पिछली विवेचना में अर्जुन के मार्ग में शरद-वर्णन का उल्लेख किया गया है जिसमें कवि ने अनुरूप वातावरण प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त इन्द्रकील का वर्णन अर्जुन की साधना के अनुरूप है—

अधिरुह्य पुष्पभरनम्रशिखैः परितः परिष्कृततलां तरुभिः

मनसः प्रसत्तिमिव मूर्ध्नि गिरेः शुचिमाससाद स वनान्तभुवम् ॥ ३६

[ऊपर चढ़ कर अर्जुन पर्वत शिखर के वन के मीमान्त पर पहुँचा, जिसका निचला भाग चारों ओर से फूलों के भार से झुके हुए वृक्षों से विभूषित अपनी पवित्रता (सौन्दर्य) से मन की शान्ति का अनुकरण करता था।]

§ ६—कभी कवि पृष्ठभूमि रूप वर्णना में अपने पात्र का चरित्र व्यंगित करता है, और कभी चरित्र के समानान्तर वर्णना करता है। यह वर्णना का रूप एक प्रकार से वातावरण के अन्तर्गत चरित्रिक सकेत आता है। इस प्रयोग के सफल कलाकार कालिदास हैं। नन्दिनी को चराते समय मार्ग में प्रकृति दिलीप का स्वागत कर रही है—

स कीचकैर्मारुतपूर्व्वरन्ध्रैः कूजङ्गिरापादितवंशकृत्पम् ।

शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः ॥

[राजा दिलीप सुन रहे थे छेदों में वायु भर जाने के कारण मधुर स्वर निकलने से जिनके साथ बाँस मधुर बाँसुरी का काम कर रहे थे ऐसे वन-देवता वन के कुंजों में ऊँचे स्वर से उसका यश गा रहे हैं।] इस प्रसंग में प्रकृति अपने उल्लास में राजा का स्वागत करती हुई उनके महान चरित्र को प्रकट करती है। रघुवंश के चौथे सर्ग में शरद ऋतु के

वर्णन के साथ रघु के प्रताप और ऐश्वर्य्य को व्यक्त किया गया है—
 'वर्षा ब्रीत जाने पर मेघ हट जाने से मुक्त आकाश में सूर्य के प्रकाश के साथ ही शत्रु नष्ट हो जाने पर राजा रघु का प्रताप भी फैल गया । शरद् ऋतु ने कमल के छत्र और फूले हुए कांस के चँवर से रघु की होड़ की पर उनकी शोभा नहीं पा सकी ।' पाँचवे सर्ग में वन्दीजन अज्ञ के सौन्दर्य्य और प्रताप के समानान्तर प्रातःकाल का वर्णन करते हैं—

ताम्रोदरेषु पतितं तरुपल्लवेषु
 निर्धौ तहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः ।

आभाति लब्धपरभागतयाधरोष्ठे

लीलास्मितं सदशनार्चिरिव त्वदीयम् ॥ ३७

[हार के मुक्तामणियों के समान निर्मल ओस के कण वृक्षों के लाल-लाल पत्तों पर गिर कर, तुम्हारे हँसने के समय लाल-लाल ओठों पर पड़ी हुई दाँतों की चमक के समान सुन्दर लग रहे हैं ।] कालिदास प्रकृति और पात्र में इस प्रकार के सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध के किसी अवसर को छोड़ते नहीं । रघुवंश के नवम सर्ग में वसन्त राजा दशरथ के ऐश्वर्य्य को प्रकट करता हुआ फैल जाता है—

नवगुणोपचिताभिव भूपतेः सदुपकारफलां श्रियमर्थिनः ।

अभिययुः सरसां मधुसभृतां कमलिनीमलिनीरपतत्रिणः ॥ ३८

[अपने सुन्दर गुणों से अर्जित और प्रजा का उपकार करनेवाली राजा की लक्ष्मी की याचना करने के लिए जैसे याचक एकत्र होते थे, वैसे ही वसन्त की शोभा से युक्त ताल को कमलिनी के आसवास भौरे और हंस भी मँडराने लगे ।] अन्य कवियों ने इस प्रकार के प्रयोग बहुत कम किये हैं । प्रवरसेन प्रकृति में एक स्थल पर चरित-नायक के गौरव को प्रतिध्वनित करते हैं—

३७. रघु० ; स० २ ; १२ : स० ४ , १५ ; १७ : स० ५ ; ७० ।

३८. बही ; स० ९ ; २७ ।

नन्तरं च मलयगुहामुखभृताद्दृत्तस्फुटनिहृदप्रतिरवम् ।

पवनेनोदधिसखिलं प्रभाततूर्यमिवाहृतं रघुपते ॥ ३०

[अनन्तर मलय पर्वत की कन्दराओं में प्रविष्ट होकर गर्जता हुआ और प्रतिध्वनित होता हुआ समुद्र की ओर लौटता हुआ समुद्र का जल रघुपति के लिये प्रातःकाल के मंगलवाद्य का कार्य कर रहा था ।] श्रीहर्ष ने भी प्रकृति को राजा नल के प्रति आदर-सम्मान प्रदर्शित करते उपस्थित किया है—

फलानि पुष्पाणि च पल्लवे करे

वयोतिपातोद्गतवातवेधिते ।

स्थितैः समादाय महर्षिवद्विका—

द्वने तदातिथ्यमशिद्धिं शास्त्रिभिः ॥ ४०

[ऊपर उड़ते हुए पक्षियों के कारण उत्पन्न पवन के झोंके से हिलती हुई शाखाओं रूपी हाथों में पुष्प और फल लेकर वृक्षों ने वन के ऋषि-समूह से राजा के आतिथ्य करने की शिक्षा ली ।] वास्तव में इस प्रकार कवि प्रकृति और पात्रों के सम्बन्ध को व्यञ्जित करता है । परन्तु जिस सीमा तक ऐसे प्रयोगों से चरित्र के ऐश्वर्य्य आदि पक्षों पर प्रभाव पड़ता है, इनको वातावरण के अन्तर्गत ही स्वीकार करना उचित है ।

§ १०—वातावरण के विस्तार में कथानक के भविष्योन्मुखी संकेत कभी छिपे रहते हैं । इस प्रकार कवि प्रकृति की योजना में भविष्य की भविष्योन्मुखी व्यञ्जना अन्तर्निहित कर देता है । कथानक में प्रकृति का यह कलात्मक प्रयोग है । रघुवंश में वशिष्ठ के आश्रम की ओर जाते समय राजा दिलीप को मार्ग में प्रकृति के वातावरण में मनोरथ सफल होने के संकेत मिलते हैं । इसी प्रकार नन्दिनी को चराते समय प्रकृति अपने आचरण में दिलीप की भविष्य में होने-

३९. सेतु० ; स० ५ ; ११ ।

४०. नैष० ; स० १ ; ७७ ।

वाली सफलता को छिपाये हुए है—

शशाम वृष्ट्यापि विना दवाभिरासीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः ।

ऊनं न सत्त्वेष्वधिकं बबाधे तस्मिन्वनं गोप्सुरि गाहमाने ॥^{४१}

[उस प्रजापालक राजा के वन में प्रवेश करने पर वर्षा के बिना ही वन की आग ठण्डी हो गई, वहाँ के वृक्ष फल फूलों से लद गये और बलशाली जीवों ने छोटे जीवों को सताना छोड़ दिया ।] अश्वघोष ने भी सिद्धार्थ के तपोवन प्रवेश के अवसर पर प्रकृति के उल्लास में ऐसी ही प्रेरणा सन्निहित कर दी है—

हृष्टारच केका मुमुचुर्मयूरा दृष्ट्वाब्जुदं नीलमिवोन्नमन्तः ।

शष्पाणि हित्वाभिमुखाश्च तस्थुमृगाश्चलात्ता मृगचारिणश्च ॥^{४२}

[प्रसन्न होकर उठते हुए मोर बोलने लगे जैसे नीले बादलों को देखा हो । तृण छोड़ कर चंचल आँखोवाले मृग और मृगों के समान विचरण करनेवाले तपस्वी सामने खड़े हो गये ।] इस प्रकार मानों प्रकृति ने बुद्धदेव को सफलता का पहले ही स्वागत किया है । बुद्धघोष ने भी प्रकृति को सिद्धार्थ की दीक्षा के समय आनन्दित प्रस्तुत किया है—

अथावलोक्य लोकेशं दीक्षितं शक्रदिङ्मुखम् ।

आनन्दमन्दहसितैरिव पाण्डरतामचात् ॥^{४३}

[लोकपति सिद्धार्थ को दीक्षित देख कर प्राची का मुख मानों हँसी और आनन्द के उल्लास से प्रकाशित हो गया है ।] प्रातः के वर्णन में कवि ने सिद्धि की भावना व्यंजित की है । सेतुबन्ध में प्रथम आश्वास के शरद् वर्णन में राम-विजय का सकेत वातावरण के साथ मिला हुआ है । और इसी प्रकार बारहवें आश्वास में प्रभातकाल का वर्णन है—

४१. खु० : स० २ ; १४ ।

४२. बुद्ध ० ; स० ७ , ५ ।

४३. पञ्च० ; स० ९ ; २२ ।

तावच्च दरदलितोत्पलप्रलुठितधूलिमलिनायमानकलहंसकुलः ।

जातो दरसम्मीलितहरितायमानकुमुदाकरः प्रत्यूषः ॥ ४४

[(ज्योंही त्रिजटा द्वारा आश्वासित सीता का विलाप शान्त हुआ) त्या ही किंचित विकसित कमलों से उड़े हुए परिमल रूमी धूल से मलिन होते हुए हंसों से युक्त तथा किंचित मुँदे हुए कुमुदों से हरिताम सरोवरों वाला प्रभात काल प्रकट हुआ।] प्रातःकाल के प्रकाश के साथ मानों राम की विजय हमारे समाने प्रत्यक्ष हो उठती है। अन्य काव्यों में जिस प्रकार कथा-वस्तु का वर्णन से सम्बंध कम हो गया है, उसी प्रकार ऐसे प्रयोगों के लिये स्थान नहीं रह जाता।

§ ११—पिछले प्रकरण में गीति-काव्य के अन्तर्गत प्रकृति और मानवीय जीवन के आत्मीय साहचर्य का उल्लेख किया है। दूत-काव्य में यह साहचर्य की भावना व्यक्तिगत थी; परन्तु आत्मीय साहचर्य महाकाव्यों में व्यापक दृष्टि से इस भावना पर विचार किया जा सकता है। गीतियों की व्यक्तिगत भाव धारा में प्रकृति जिस निकटता से उगस्थित होती है, उसकी कल्पना महाकाव्यों में की भी नहीं जा सकती। महाकाव्यों की घटनाओं के विस्तार में अथवा चरित्रों के प्रसार में प्रकृति पात्रों के जीवन के निकट आ जाती है और इस निकटता में आत्मीयता की भावना भी कभी कभी सम्मिलित हो जाती है।

क—महाकाव्यों की घटनाओं की योजना में अथवा उनके चरित्रों के निर्माण के समानान्तर कभी प्रकृति अपने सौन्दर्य-विस्तार में फैल जाती है। उस स्थिति में मानवीय जीवन और प्रकृति प्रकृति और जीवन एक दूसरे के इतने समीप रहते हैं कि उनका सम्बंध स्वाभाविक जान पड़ता है। प्रकृति और जीवन का यह साहचर्य किसी सम्बंध की व्याख्या न करके भी आत्मीय बना रहता है। सौन्दर्य-विस्तार के

प्रथम सग में अश्वघोष तपोवन में—‘विचरण करते हुए, तपस्वियों से विनय की शिक्षा पाये हुए मृगो’,^{४५} का उल्लेख इसी प्रकार करते हैं। कालिदास ने वशिष्ठ के आश्रम में प्रकृति को इसी जीवन के धरातल पर उपस्थित किया है—

आकीर्णं ऋषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः

अपस्यैरिव नीवारभागधेयोचितैर्मृगैः ।

सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्त्वणोष्णितवृक्षकम् ।

विश्वासाय विहंगानामालवालाम्बुपायिनाम् ॥^{४६}

[ऋषि-पत्नियों के बच्चों के समान तिन्नी के दानों को खाने का अभ्यास हो गया है जिनको ऐसे बहुत से मृग वहाँ आश्रम में इधर-उधर पर्ण-कुट्टियों के द्वार रोके खड़े थे। सींचने के बाद ऋषि-कन्याएँ वहाँ से हट गई थीं जिससे आश्रम के पत्नी उन पौधों के थावलों का जल विश्वस्त होकर पी सकें।] इस प्रकृति के आश्रम-जीवन में आत्मीयता का भाव स्वतः आ गया है। कभी कवि प्रकृति को पात्र के साथ इस प्रकार चित्रित करता है कि वह पूरा चित्र एक रस होकर हमारे सामने आता है। दिलीप को मार्ग में हरिणियाँ देख रही हैं—‘वे उनके हाथों में घनुष देखकर भी डरी नहीं, क्योंकि वे उन्हें देखकर समझ गईं कि ये अत्यंत कोमल हृदयवाले हैं। वे राजा को एकटक देखती रहीं, मानों अपने नेत्रों के बड़े होने का सच्चा फल उन्हें मिला हो।’ यही नहीं अचर प्रकृति की स्थिति भी जीवन के अनुरूप आत्मीयता का वातावरण प्रस्तुत करती है— ●

पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्कराणामनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी ।

तमातपङ्गान्तमनातपत्रमाचारपूतं पवनः सिधेवे ॥^{४७}

४५. सौ० ; स० १ , १३।

४६. रघु० ; स० १ ; ५० , ५१।

४७. वही ; स० २ ; ११ ; १३।

[पर्वतीय झरनों की शीतल फुहारों से लदा हुआ, मन्द-मन्द कम्पित वृक्षों के फूलों की गन्ध में बसा हुआ पवन उन सदाचारी राजा को ठंडक देता हुआ बह रहा था, जिन्हें छत्र न होने के कारण धूर कष्ट दे रही थी ।] कभी प्रकृति की विशेष स्थिति को उपस्थित कर कवि जीवन-प्रकृति की अनुरूपता प्रकट कर देता है—

आविशङ्गिरुजङ्ग्यां मृगैर्मूलसेकसरसैरक्ष वृषकैः ।

आश्रमाः प्रविशदप्रयधेनवो बिभ्रति श्रियमुदीरिताप्रयः ॥ ४८

[पर्याकुटियों के आँगन में आते हुए हरियों से, सींचे हुए मूलवाले हरे-भरे पौधों से, वापस आती हुई सुन्दर दुधारू गौओं से और हवन की जलती हुई आग से ये आश्रम कैसे मुहावने लगते हैं ।]

अन्य महाकाव्यों में प्रकृति का ऐसा रूप कम मिलता है । यह स्थिति मुक्त भावना के अनुरूप है, और महाकाव्यों की परम्परा में स्वच्छन्द भावना के लिए स्थान नहीं रहा है । जानकीहरण में आश्रम में राम लक्ष्मण को 'चीतल के चिह्नों का गिनते हुए ऋषिकुमारों को दिखाते हैं ।' यह वर्णन शाकुन्तल के अनुकरण पर है । और एक स्थल पर राजा दशरथ को रात्रि में प्रकृति का सामीप्य प्राप्त है—

राजा रजन्यामधिशय्य तस्मिन् शिलातलं शीतलमिन्दुपादैः ।

खेदं विनिन्ये मृदुभिः समीरैरासारसारैर्गिरिनिर्कराणाम् ॥ ४९

[चन्द्र-किरणों से शीतल उस शिलातल पर रात्रि में सोकर राजा ने पर्वत के झरनों के जलकणों के स्पर्श से मृदुल समीर से अपनी थकान दूर की ।] इसमें प्रकृति और जीवन की समीपता की वह स्थिति नहीं है जो आत्मीय सम्बंध को व्यक्त कर सके । सेतुबन्ध में यद्यपि प्रकृति का व्यापक विस्तार है और जैसा कहा गया प्राकृतिक घटनाओं की विस्तृत योजनाएँ भी हैं, पर उसको जीवन की वह समीपता प्राप्त नहीं हो सकी

४८. कुमा० ; स० ८ ; ३८ ।

४९. जा० , स० ५ ; २३ ; स० १ ; ६७ ।

है। ऐसा जान पड़ता है कि प्रवरसेन के सम्मुख प्रकृति अपने रग-रूपों में इतनी गहरी होकर भी अपनी सजीवता में मानवीय जीवन के धरातल पर उससे सम्बन्ध नहीं स्थापित कर सकी है। जहाँ इस महाकाव्य प्रकृति में मानव-जीवन के समीप आयी है, उस स्थल पर वह प्राकृतिक घटना का अथवा वातावरण का निर्माण करती है। इन चित्रणों में आत्मीय साहचर्य की भावना का अभाव है। छूटे आश्वास में समुद्र मानव के रूप में राम के समीप आता है—

शरघातरुधिरकुसुमस्त्रिपथगावल्लीपिनद्धमणिरत्नफलः ।

रामचरणयोरुदधिदंडपवनाविद्धपादप इव निपतितः ॥^{५०}

[बाणों के आघात से स्रवित रक्तबिन्दु रूरी फूलों, त्रिपथगा रूपी लता द्वारा धारण किये हुए मणि और रत्न रूपी फलों से युक्त, प्रबल पवन से प्रेरित वृक्ष की भाँति समुद्र राम के चरणों पर गिर पड़ा।] पर इस समस्त प्रसंग में प्राकृतिक घटना की नियोजना मात्र है। किरातार्जुनीय में एक स्थल पर अर्जुन 'गोपों को अपने गृहों में आश्रित पशुओं के साथ सस्नेह वनों में सुशोभित' देखते हैं। छूटे सर्ग में प्रकृति अपने स्वागत में अर्जुन की आत्मीयता के निकट पहुँच जाती है—

तमनिन्द्यबन्दिन इवेन्द्रसुतं विहितास्त्रिनिष्करणजयध्वनयः ।

पवनेरिताकुलविजिह्वाशिक्षा जगतीरुद्रोऽवचकरुः कुसुमैः ॥^{५१}

[आकुलित भौरों की गुंजार रूपी जयध्वनि करनेवाले तथा पवन से प्रेरित चंचल शाखाओं वाले वृक्षों ने स्तुतिपाठकों के समान अर्जुन पर पुष्प-वर्षा की।] इस चित्र में अर्जुन की भविष्य में होनेवाली सफलता का संकेत भी निहित है।

§ १२—मानव जीवन के निकट आकर कभी-कभी प्रकृति आत्मीय

५०. सेतु० ; आ० ६ ; ७।

५१. कि० ; स० ४ ; १३ : स० ६ ; २।

सहानुभूति के स्तर तक आ जाती है। इस सीमा पर सम्बंध अधिक आत्मीय महानुभूति कोमल व्यजनाओं में व्यक्त होता है। पिछले वर्ग में जीवन और प्रकृति का सामीप्य अपेक्षित था, परन्तु इस रूप में आत्मीयता का सम्बन्ध भी वाञ्छित है। इस प्रकार के प्रयोग में कालिदास ही सर्वश्रेष्ठ हैं। उनके मेघदूत पर हम विचार कर चुके हैं और आगे शाकुन्तल में हम आत्मीय सहानुभूति का कोमल रूप देखेंगे। रघुवश के आठवें सर्ग में विलाप करते हुए राजा अज अपनी प्रिया के 'आम और प्रियंगुलता' का इसी भावना से प्रेरित होकर उल्लेख करते हैं। और तेरहवें सर्ग में राम 'पंचवटी में ऊपर सिर उठाकर विमान की ओर देखते हुए सीता द्वारा पालित मृगों को सीता को दिखाते हैं।' यह राम के हृदय का स्नेह उनके प्रति व्यंजित होता है। राजा दशरथ मृगया खेलते समय हरिण और हरिणी के प्रेम से कर्णार्द्र हो जाते हैं—

लक्ष्मीकृतस्य हरिणस्य हरिप्रभावः

प्रेक्ष्य स्थितां सहचरीं व्यवधाय देहम् ।

आकर्णकृष्टमपि कामितया स धन्वी

बाणं कृपामृदुमनाः प्रतिसंजहार ॥^{५२}

[विष्णु के समान शक्तिमान् राजा दशरथ ने लक्ष्य किये हुए हरिण के बीच में व्यवधान के रूप में हरिणी को आया देख कर, स्वयं प्रेमी होने के कारण, कृपा से कोमल हृदय होकर कान तक खींचे हुए बाण को भी नहीं छोड़ा।] कुमारसम्भव में पार्वती और हरिणी के स्नेह का सहज वर्णन है—

अरण्यबीजाञ्जलिदानलालितास्तथा च तस्यां हरिणा विशश्वसुः ।

यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात्पुरः सस्त्रीनाममिमीत लोचनं ॥^{५३}

५२. रघु० ; स० ८ ; ६१ : स० १३ ; ३४ : स० ९ ; ५७ ।

५३. कुमा० ; स० ५ ; १५ ।

[अपने हाथ से तिन्नी के दाने खिलाने से जो विश्वस्त हो गये थे ऐमे हरिणों को मन बहलाने के लिए अपनी सखियों के आगे जाकर उनके नेत्रों से अपने नेत्र मापा करती थी ।] इस कोमल आत्मीयता से सहज सहानुभूति व्यक्त होती है । जानकीहरण के कवि ने रघुवंश की मृगया के अनुकरण पर राजा दशरथ को दयार्द्रता का वर्णन किया है—

अन्योन्यवक्त्रार्पितपल्लवाप्रघ्रासं नृवीरस्य कुरङ्गयुग्मम् ।

प्रियानुनीतौ भृशमिष्टचाटुचेष्टस्य घाताभिरतिं निरासे ॥ ५४

[एक दूसरे के मुख में घास के तिनकों को रखते हुए हरिणों के जोड़े ने, प्रिया को प्रसन्न करनेवाले तथा चाटुकारी की कलाओं में चतुर राजा के मन से मृगया का आकर्षण दूर कर दिया ।] सेतुबन्ध में मानव और प्रकृति की सहानुभूति का अभाव है, क्योंकि जैसा कहा गया है इसमें आत्मीयता का वातावरण नहीं है । प्रकृति में स्वयं आत्मीय सहानुभूति एक-दो स्थल में मिल सकती है, जो मानवीय जीवन का आरोप कहा जायगा । यूथ-पति के विरह में हथिनियों व्याकुल हैं—

लोचनपन्त्रान्तरितान्कणान्रुद्रत्यो

धारयन्ति बाष्पमयान्करेणुपंक्तयः ।

मन्यन्ते चास्वादं विषं नवतृणस्य

विरहे यूथपतेर्विषण्वदनस्य ॥ ५५

[यूथपति के विरह में खिन्न मुख और रोती हुई हथिनियों की बरौनियों में आँसू छलक आये हैं और वे नये तृणों के आस्वादन को भी विष के समान मान रही हैं ।]

क—आत्मीय सहानुभूति के वातावरण में ही उपालम्भ की भावना उत्पन्न होती है । लोक-गीतों में प्रकृति के प्रति उपालम्भ की भावना व्यापक रूप से पाई जाती है । परन्तु संस्कृत-काव्य में उपालम्भ-काव्य की परम्परा नहीं मिलती है । हिन्दी

उपालम्भ

५४. जा० ; सं० १ ; ५७ ।

५५. सेतु० ; आ० ६ ; ६८ ।

में इसकी परम्परा सम्भवतः लोक-साहित्य से आई जान पड़ती है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्य साहित्यों पर इसका प्रभाव नहीं है। नैपथीय में प्रकृति के प्रति उगलम्भ की भावना पाई जाती है, परन्तु इसमें स्वाभाविकता के स्थान पर उक्ति का आग्रह और उद्‌घोषण की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। चौथे सर्ग में विरह की स्थिति में चन्द्रमा के प्रति ऐसी ही उक्तियाँ हैं—

निशि शशिन्मज्ज कैतवभानुतामसति भास्वति तापय पाप माम ।

ब्रह्महृन्व्यवलोकायितास्मि ते पुनरहर्षतिनिहृतदर्पताम् ॥ ५६

[हे पापी चन्द्र, रात में तू सूर्य के भेष में सूर्य की अनुपस्थिति में मुझे जला ले, परन्तु जब दिन होगा, मैं देखूँगी कि तेरा दर्प सूर्य द्वारा कैसे अपहरण किया जाता है।] इन उक्तियों में विरह की उद्‌घोषक भाव-स्थिति अधिक सामने आती है।

§ १३—कवि प्रकृति पर मानव-जीवन का आरोप करता है, और यह आरोप प्रकृति तथा मानव की आत्मीय सहानुभूति का अर्धन्तरित रूप है। मनुष्य प्रकृति को अपने जीवन के निकट जीवन का आरोप पाकर उसमें अपने क्रिया-कलाप का आरोप कर लेता है। उस समय प्रकृति मानव के समान संप्राण और स्पन्दित हो जाती है। युग-युग के सम्बंध से मानव ने प्रकृति को अपनी आत्मीयता का यह दान दिया है। केवल आलंकारिक प्रयोग में जो आरोप किया जाता है, उसके मूल में भी यह भावना है। परन्तु उसका उल्लेख शैली के अन्तर्गत किया गया है। यहाँ जब यह आरोप प्रमुख हो जाता है उसका विचार करना है। रघुवंश के पाँचवें सर्ग में सूर्य के पुत्र प्रातःकाल के वर्णन में सूर्य और अरुण का उल्लेख इसी प्रकार करते हैं—‘सूर्यके उदय होने के पहले ही उनका चतुर सारथी अरुण ससार का अँधेरा दूर कर देता है।’ इसी प्रकार ग्यारहवें सर्ग में मुनि के आश्रम में प्रकृति

लोहितार्कमणिभाजनार्पितं कल्पवृक्षमधु बिभ्रती स्वयम् ।

स्वामियं स्थितिमतोमुरागता गन्धमादनवनाधिदेवता ॥^{५८}

[देखो, तुम्हें यहाँ बैठी हुई देखकर लाल सूर्यकान्तमणि के प्याले में कल्पवृक्ष की मदिरा लिए हुए गन्धमादन की वनदेवी अपने आप तुम्हारा स्वागत करने आ पहुँची हैं ।] पद्यचुडामणि में सन्ध्या के वर्णन में इसी प्रकार का आरोप किया गया है—‘सूर्य पति के नष्ट होने पर सन्ध्या-धात्री ने कमलनी के कमल रूपी मुख से भ्रमरों की पत्ति रूपी मंगल-सूत्र उतार लिया ।’ और भी—

विश्लेषद्दुःखादिव तिग्मभानोः संकोचभाजां नलिनीवधूनाम् ।

शोकाग्निधूमास्त्रिवोज्ज्वलभे भृङ्गावली पङ्करुहाननेभ्यः ।^{५९}

[सूर्य के वियोग के दुःख से संकोच को प्राप्त नलिनी वधुओं के कमल-मुखों पर शोकाग्नि की धूम-रेखा के समान भ्रमरों की पत्ति उठ रही है ।] बुद्धघोष को कल्पना और शैली दोनों कालिदास से प्रभावित हैं ।

क—क्रमशः बाद के कवियों में आलंकारिक आरोप अधिक प्रधान होता गया है, शैली के अन्तर्गत इसका उल्लेख किया गया है। स्वाभाविक

रूप से प्रकृति में मानव जीवन की समानान्तर-
अप्रत्यक्ष और अलंकृत रता के स्थान पर काल्पनिक आरोप इन कवियों में अधिक पाये जाते हैं । पहले चित्रों में स्वाभाविक

आत्मीयता का भाव अधिक है । यद्यपि सेतुबन्ध में अलंकृत आरोप की प्रवृत्ति अधिक है, पर एक दो स्थलों पर अप्रत्यक्ष आरोप भी मिलते हैं । इनमें प्रकृति के क्रिया-बलापों के माध्यम से भान होने लगता है मानों मानवीय जीवन का चित्र हो । सन्ध्या समय—‘आतप के क्षीण हो जाने के कारण कान्तिहीन, मकरन्द से मस्त भ्रमरों के चंचल

५८. कुमा० , स० ४ ; २३, २४, २५ : स० ८ , ७५ ।

५९. पद्य० ; स० ८ , ९, १० ।

पंखो से पुँछ गया है मधु जिनका ऐसे कमलो के दल मुँद रहे हैं ।' इस वर्णन मे बन्द होते कमलो के साथ अलसित नायिका का चित्र स्वभावनः सामने आ जाता है । इसी प्रकार इन हरिण और हरिणियों की दशा का वर्णन कवि करता है—

भिन्नमीलितमपि भिद्यते पुनरप्येकैकमावलोकनसुखितम् ।

शैलास्तमननतोन्नततरङ्गहियमाणकातरं हरिणकुलम् ॥^{६०}

[पर्वतो के झुबने से उठती हुई ऊँची-नीची तरंगो से प्लावित होने से व्याकुल, फिर भी एक दूसरे के अवलोकन से सुखी हरिण-समूह (जल के वेग से) एक दूसरे से अलग होकर फिर मिलते हैं और मिल कर फिर अलग हो जाते हैं ।] इस चित्र की स्वाभाविक उद्भावना के साथ हरिणो मे मानवोय आत्मोय स्नेह की कल्पना सन्निहित है । जैसा कहा गया है अन्य महाकाव्यों में यह आरोप प्रधानतः आलंकारिक प्रयोगों में सीमित हो गया है । किरातार्जुनीय में भ्रमरों का चित्र ऊपर के हरिणो के वर्णन के समान है—

अमी समुद्धूतसरोजरेणुना हता हतासारकणेन वायुना ।

उपागमे दुश्चरिता इवापदां गतिं न निश्चेतुमलं शिलीमुखाः ॥^{६१}

[आपद् में पड़े हुए दुश्चरित व्यक्ति के समान, कमल के पराग को उड़ाने वाले तथा जलकणवाही पवन से आकृष्ट, ये भौरे अपनी गति निश्चित करने मे असमर्थ हैं ।] इसमे भौरे को 'दुश्चरित व्यक्ति' कह कर स्थिति को स्पष्ट किया गया है । माघ उत्प्रेक्षा द्वारा प्रकृति पर जीवन प्रतिघटित करते हैं—

अपराहृशीतलतरेण शनैरनिखेन लोलितलताङ्गुलये ।

निखयाय शाखिन इवाह्वयते ददुराकुलाः खगकुलानि गिरः ॥^{६२}

६०. सेतु०, आ० १० ; ११ ; आ० ७ ; २४ ।

६१. किरा० ; स० ४, ३५ ।

६२. शिशु० ; स० ९ ; ४ ।

[दिवस के अन्तिम प्रहर, प्रवाहित शीतल पवन द्वारा धीरे-धीरे लना रूमी अगुलियों को हिलाकर मानों वृद्ध पत्नियों को घर लौटने के लिए सकेत कर रहे हैं, और ये पत्नी भी मधुर-रव करते हुए मानों प्रत्युत्तर में कहते हैं—‘अभो आये’ ।] इस वर्णना में अलंकृत होने पर भी सहज वातावरण रक्षित है, पर ऐसे स्थल इन कवियों में अत्र-तत्र ही हैं ।

§ १४—अभी तक प्रकृति और जीवन के सम्बंध की व्याख्या बाह्य दृष्टि से की गई है; अर्थात् प्रकृति मनुष्य के जीवन से किन रूपों में सम्बंधित है इस पर विचार किया गया है । परन्तु भाव-नादात्म्य का वातावरण प्रकृति मानव के भाव-जगत् से भी इसी प्रकार सम्बंधित है, वह उसके भावों को प्रभावित करती है और उसके भाव जगत् से स्वयं भी प्रभावित होता है । प्रकृति का निर्भर सौन्दर्य मनुष्य के मन के लिए स्वतः आकर्षण का विषय है और उसमें प्रभावित होकर उस सौन्दर्य-वर्णन में कवि या पात्र के मन का उल्लास भी सम्मिलित हो जाता है । हम पहले ही कह चुके हैं कि मुक्त प्रगीतियों के अभाव में ऐसे प्रकृति-रूपों का संस्कृत में प्रायः अभाव है । जैसे प्रकृति मानव के समान सप्राण है वैसे ही उसके समान भावों से आकुल भी । और प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोप है, अलंकृत शैली में प्रयुक्त भावार्थ पर विचार हम कर चुके हैं । प्रभावित करती हुई प्रकृति, मानव जीवन के अन्य भावों की पृष्ठभूमि में, उद्दीपन की सीमा पर पहुँच जाती है ।

§ क—हम कह चुके हैं कि मनस्-परक प्रगीतियों के अभाव में संस्कृत-काव्य में प्रकृति के निर्भर सौन्दर्य की अवतारणा बहुत कम हो सकी है । अपेक्षाकृत वाल्मीकि रामायण में ऐसे निर्भर सौन्दर्य स्थल अधिक हैं । यह प्रकृति के सौन्दर्य को वह स्थिति है जिसके सामने मनुष्य मौन होकर आनन्द को अनुभूति प्राप्त करता है । इसमें कवि अथवा पात्र को मानसिक स्थिति प्रत्यक्ष होकर भी

मौन रहती है। प्रकृति का ऐसा रूप कालिदास ने शंकर द्वारा वर्णित सन्ध्या के वर्णन में उपस्थित किया है। मानों तन्मय होकर शंकर और पार्वती प्रकृति के सौन्दर्य का उपभोग कर रहे हैं—

सीकरव्यतिकरं मरीचिभिर्दूरयत्यवनते विवस्वति ।

इन्द्रचापपरिवेषशून्यतां निर्भरास्तव पितृव्रजन्म्यमी ॥

[हे प्रिये, देखो ! ज्यो-ज्यो दिन ढलता जाता है, सूर्य की किरणों हिमालय के झरनों की फुहागों से हटती जाती हैं और उनके हटते ही उन फुहारों में बने हुए इन्द्र-धनुष भी छिपते जा रहे हैं ।] इसमें पात्र की मनःस्थिति प्रकृति के सीधे सम्पर्क में है और वह सौन्दर्य से अभिभूत है। ऐसा ही वर्णन अन्धकार का है तथा चन्द्रोदय का भी है। 'सामने फैलते हुए अंधकार को देखकर शंकर कहते हैं—'हे दीर्घ नेत्रोवाली, सूर्यास्त हो जाने से रात्रि और दिवस की सन्धि करनेवाली सन्ध्या का सत्र प्रकाश सुमेरु पर्वत के बीच में आ जाने से जाता रहा और अब यह घोर अंधकार चारों ओर मनमाने ढंग से फैल रहा है।' चन्द्रमा के उदित होने के समय का सौन्दर्य-चित्रण भी ऐसा ही है—

नूनमुन्नमति यज्वनां पतिः शर्वरस्य तमसो निषिद्धये ।

पुण्डरीकमुखि ! पूर्वदिङ्मुखं कैतकैरिव रजोभिराहतम् ॥^{६३}

[हे कमलनेत्रि, केतकी के फूल के बिखरे हुए पराग के समान पूर्व दिशा के अगले भाग में फैलते हुए उजाले से यह निश्चित जान पड़ता है कि रात का अंधेरा दूर करने के लिए चन्द्रमा निकलता आ रहा है ।] इन सत्र सौन्दर्य चित्रों में एक ऐसी निर्भरता है जिसके अन्तराल में शंकर-पार्वती की आनन्दमयी भाव-स्थिति सहज ही छिपी हुई है।

अन्य महाकाव्यों में ऐसे अवसर आए हैं, जब किसी पात्र के सम्मुख प्रकृति का मुक्त सौन्दर्य आ गया है। उनका वर्णन कवि करता है अथवा किसी पात्र के मुख से कराया जाता है। पर अलंकृत प्रयोग

ऊहात्मक कल्पनाओं के कारण इन कवियों में न तो प्रकृति का सौन्दर्य एकान्त रूप से सम्मुख आ पाया है और न पात्र की आनन्दविभोर मनःस्थिति का आभास ही मिल सका है। जानकीहरण में सन्ध्या और रात्रि का वर्णन दो प्रसंगों में किया गया है। एक में दशरथ के सम्मुख और दूसरे में राम-सीता के सम्मुख प्रकृति का यह रूप उपस्थित हुआ है। दोनों स्थलों में सौन्दर्य की निर्भरता कम और कला तथा कलाना का आग्रह अधिक है। यह अन्य कवियों के विषय में भी कहा जा सकता है। 'अस्त होता हुआ सूर्य (जगत् का मर्जन करनेवाला) दिवस की सन्ध्या-वेला में विचरण करनेवाली अपनी विद्रुम के ममान लाल आभा तथा स्वर्ण-किरणों (करो) वाला सूर्य अपने कमल-हस्त की अगुलियों को कमलों के साथ ही समेट रहा है।' इस चित्र में सौन्दर्य का आधार कलात्मक हो गया है। राम-सीता से रात्रि का वर्णन इसी प्रकार करते हैं। चन्द्रोदय से 'यद्यपि अन्धकार उसकी किरणों से नष्ट हो गया है, परन्तु पुष्पित कुमुद की गन्ध से एकत्र कौकिल और भ्रमरों के रूप में मानों शेष रह गया है।' तथा—

पत्रजालशतरन्ध्रविच्युतः सामिसिक्त इव भूरुहस्तले ।

स्थण्डिले निरवशेषमिन्दुना भाति मुक्त इव रश्मिसंचयः ॥ ६४

[चन्द्रमा द्वारा डाले हुए किरण-समूह ने पत्तों के जाल के असंख्य छिद्रों से वृक्षों के निम्न भाग का अधूरा छिड़काव किया है, पर पवित्र वेदियों का भर्त्सना-भाति डुबो दिया है।] कलात्मकता के साथ भी इन प्रकृति चित्रों में जो सौन्दर्य-कल्पना है वह पात्र की मानसिक भाव-स्थिति से सम्बंधित अवश्य है। किरातार्जुनीय में यक्ष द्वारा वर्णित शरद तथा अर्जुन के सामने फैले हिमालय के वर्णन में कुछ चित्र मिल जाते हैं, जिनमें सौन्दर्य का यह रूप रक्षित है, परन्तु वर्णना की व्यापकप्रवृत्ति कलात्मकता और वैचित्र्य की ओर ही है। अर्जुन के सम्मुख हिमालय

एकाएक प्रत्यक्ष हो जाता है—

इति कथयति तत्र नातिदूराद्य दृश्ये पिहितोष्णरश्मिबिम्बः ।

विगलितजलभारशुक्लभासां निचय इवाम्बुमुचां नगाधिराजः ॥ ६५

[इस प्रकार जत्र यत्न शरद का वर्णन कर रहा था, अर्जुन ने निकट ही सूर्य के मण्डल को तिरोहित करनेवाले हिमालय को जल भार से हलके होने से श्वेत चमकवाले बादलों के समूह के समान देखा ।] इस सौन्दर्य को देखकर पात्र के मन में उत्सुकता का जो आनन्द उत्पन्न हुआ है वह भी चित्र में व्यजित है । शिशुपालवध में दारुक द्वारा रैवतक का वर्णन ऐसी ही परिस्थिति का है, परन्तु उसमें ऊहात्मक कल्पनाएँ और भी वैचित्र्य मूचक हैं, इस कारण सौन्दर्य का यह रूप व्यक्त नहीं हो सका है । कुछ स्थल आकर्षक अवश्य हैं—

उत्क्षिप्तमुच्छ्रितसितांशुकरावलम्बै-

रुत्तम्भितोद्भिरतीवतरां शिरोभिः ।

अद्वेयनिर्भरजलव्यपदेशमस्य

विष्वक्तटेषु पतति स्फुटमन्तरीक्षम् ॥ ६६

[यह रैवतक पर्वत चन्द्र की उठी हुई किरणों रूपी हाथों से और नक्षत्र-मण्डल रूपी शिरो से आकाश को उठाये हुए है । किन्तु आकाश भ्रूनों के जल के बहाने इसके चारों ओर की निम्न-भूमि पर स्पष्ट ही उतरा आ रहा है ।] परन्तु इसके साथ पात्र की मनःस्थिति का तादात्म्य नहीं हो सका है । नैषधीय में सन्ध्या तथा रात्रि का वर्णन नल-दमयन्ती के सामने इसी परिस्थिति में किया गया है, पर ऊहात्मक वैचित्र्य की प्रवृत्ति सौन्दर्य-बोध की बाधक है । नन्दी प्रातः सौन्दर्य की ओर ध्यान आकर्षित करता है—

नभसि महसां ध्वान्तध्वाङ्क्षप्रमापणपत्रिण्या-

मिह विहरयैः शयैर्नपातां रवेरवधारयन् ।

६५. किरा०, स० ४ ; ३७ ।

६६. शिशु० ; स० ४ ; २५ ।

शशविशसनत्रासादाशामयाच्चरमां शशी

तदधिगमनात्तारापारापतैरुद्धीयत ॥ ६७

[आकाश में भ्रमित बाज रूमी किरणों से कौशां रूपी अन्धकार को नष्ट कर सूर्य्य ऐसा जान पड़ा, मानों अपने भागते हुए शत्रु को पश्चिम दिशा में पछाड़ कर उसके सुमेरु के चारों ओर के परिभ्रमणों को सफलता मिली हो ।] इस प्रातःकालीन सौन्दर्य्य-चित्र में मानवीकरण का आरोप इतना प्रधान हो गया है कि दृश्य का भावात्मक प्रभाव नष्ट हो गया है । वह वर्णनात्मक सौन्दर्य्य मात्र रह गया है ।

§ १३—प्रकृति के सौन्दर्य्य के साथ अप्रत्यक्ष आनन्द की भावस्थिति का उल्लेख पिछले अनुच्छेद में किया गया है । परन्तु कभी यह स्थिति

भावोत्पास

उल्लास के रूप में वर्णन के साथ आती है । यह रूप प्रगोतियों में प्रमुखतः मिलता है । महाकाव्यों की

वर्णना में इसके लिए विशेष अवसर नहीं है । कभी पात्र की मनःस्थिति का योग वर्णना-सौन्दर्य्य के साथ हो गया है । अधिकतर प्रकृति का प्रभाव इन महाकाव्यों में उद्दीपन के रूप में वर्णित है । पिछले अनुच्छेद में जिस कुमारसम्भव के प्रसंग का उल्लेख किया गया उसमें कभी शंकर-पार्वती के मन का उल्लास प्रत्यक्ष भी होता है । शंकर पार्वती से कहते हैं—‘देखो, ये बन्द होते कमल इस समय पलभर के लिए अपना मुख किंचित इसलिये खुल्ला रखते हैं, जिससे जो भौरे बाहर रह गये हों उन्हें भी वे प्रेम से भीतर बसा लें ।’ यहाँ पात्र के मन की प्रेम की भावना ही उल्लसित होकर व्यक्त हुई है । और आगे शंकर पार्वती को सान्ध्य-कालीन बादलों को दिखा कर जैसे मुग्ध हो उठते हों—

रक्षपीतकपिशाः पयोमुखां कोटयः कुटिलकेशि ! सान्ध्यमूः ।

द्रक्ष्यसि त्वमिति सन्ध्ययानया वर्तिकाभिरिव साधुमण्डिताः ॥ ६८

६७. नैष० ; स० १९ ; १२ ।

६८. कुमा० ; स० ८ ; ३९ ; ४५ ।

[हे धुंधराले बालावाली, सामने बिखरे हुए ये लाल-पीले और भूरे बादलों के टुकड़े ऐसे लग रहे हैं मानों सन्ध्या ने यह जानकर हीरग दिया है कि तुम इन्हे देखोगी ।] परन्तु इन चित्रों में भी भावोल्लास का स्पष्ट रूप सामने नहीं आया है, ऐसे वर्णन केवल वाल्मीकि रामायण में हैं जिनका उल्लेख पिछले प्रकरण में किया गया है । सेतुबन्ध में वर्णना का ऐसा घटाटोप है कि उसके सामने पात्र और उसकी मनःस्थिति दोनों ही खो जाते हैं । ऐसी स्थिति में भावोल्लास के प्रत्यक्ष समन्वय का रूप पाना असम्भव ही है । सौन्दर्य-वर्णन के भावारोप में इस मनःस्थिति का अन्वय इतना इन कवियों में अवश्य पाया जाता है, जिस पर अगले अनुच्छेद में विचार किया जायगा । किरातार्जुनीय में अर्जुन शरद के सौन्दर्य पर सुगव होते हैं—

विनम्रशालिप्रसवौघशालिनीरपेतपङ्का. ससरोरुहाम्भसः ।

ननन्द पश्यन्नुपसीम स स्थलीरुपायनीभूतशरदगुणश्रियः ॥ ६९

[शालि के अन्न से भुके हुए पौधों से सुन्दर, निष्पक तथा कमलों से आच्छादित सरोवरोंवाली, गाँव के पास की स्थली को शरद के सौन्दर्य की भेट के समान देखकर अर्जुन प्रसन्न हुए ।] परन्तु जैसा कहा गया है प्रकृति-सौन्दर्य के साथ भावोल्लास का तादात्म्य इन महाकाव्यों में नहीं मिलता है ।

§ १४—जिस प्रकार प्रकृति पर मानवीय जीवन का आरोप किया जाता है उसी प्रकार भावों का आरोप भी होता है । परन्तु प्रकृति वर्णना में आरोपों का अलङ्कृत प्रयोग दूसरी बात है भावारोप की स्थिति और प्रकृति को मानवीय जीवन तथा भावों से स्पन्दित चित्रित करना सर्वथा भिन्न बात है । पहले में भावों का आरोप कल्पना-प्रधान होता है, परन्तु दूसरे में कवि या पात्र प्रकृति को भावात्मक स्थिति में सहज रूप से पाता है । परन्तु महाकाव्यों में इस प्रकार

का प्रकृति में सहज भाव-तादात्म्य बहुत कम मिलता है, अधिकांश स्थलों पर अलाकारों के माध्यम से ही यह भावात्मक आरोप चित्रित किया गया है। कुमारसम्भव के आठवें सर्ग के एक चित्र (३६) का उल्लेख पिछले अनुच्छेद में किया गया है, जिसमें प्रकृति की भावात्मकता का सकेत है। इसके अतिरिक्त 'सूर्य के पीछे अन्तर्धान होती हुई सन्ध्या' जा रही है, क्योंकि प्रातः उदय के समय जो सूर्य के आगे रही वह सूर्य की विपत्ति में उनका साथ भला कैसे छोड़ दे' इस चित्र में भी कवि ने भावात्मक व्यंजना की है। परन्तु इस दृश्य में सहज अभिव्यक्ति नहीं है। अलाकृत प्रयोग के साथ भी इस चित्र में अधिक भाव-सौन्दर्य है—

मन्दरान्तरितभूर्तिना निशा लक्ष्यते शशमृता सतारका ।

त्वं मया प्रियसखीसमागता श्रोष्यतेव वचनानि पृष्ठतः ॥^{७०}

[मन्दराचल के पीछे छिपा हुआ चन्द्रमा इस तारवाली रात में ऐसा लगता है, जैसे आई हुई प्रिय सखिया से तुम्हारी बात पीछे से मेरे द्वारा सुनी जाय।] वास्तव में अलंकृत भावारोप के उदाहरण महाकाव्यों में कम ही मिलते हैं, अधिक आरोप शारीरिक क्रियाओं और मधुके ड्रात्रों के हैं। बुद्धघोष ऐसे आरोपों से भाव व्यंजना करते हैं—

भावर्ज्य शाखां करपल्लवेन प्रसह्य पुष्पापचर्यान्मुखायाः ।

रुषेव कस्याश्चिदशोकयष्टिस्तिरस्करोति स्म दृशं परागैः ॥^{७१}

[कोई अशोक का वृक्ष हठात्, पुष्पों को ग्रहण करनेवाली शाखा की अपने करपल्लवों से अवहेलना कर रुष्ट होकर दृष्टि को पराग से भर देता है।] पर इसमें भाव के स्थान पर क्रिया अधिक प्रधान है। जानकीहरण में इस प्रकार व्यंजनाएँ अधिक सुन्दर हैं। 'वापी अपने मित्र (सूर्य) के लिए देर तक विलाप करने के बाद मूर्च्छित हो गई है, क्योंकि कलहंस का कूजन अधिक तीव्र होने के उपरान्त शांत हो चुका

७०. कुमार , स० ८ ; ४४, ५९ ।

७१. पद्य , स० ७ ; १५ ।

हैं और वन्द कमलों के रूप में उसके नेत्र वन्द हो गये हैं ।' यहाँ प्रकृति स्वतः शोक से अभिभूत है ।—'हंसिनी अपने राजहंस को रजत-तट पर श्वेत चाँदनी के पुज के रूप में खोया पाकर रुदन कर रही है', इस चित्र में दृश्य भावात्मक संवेदना से पूर्ण है । और आगे सरोजिनी के वियोग की स्थिति का चित्र है—

तिग्मरश्मिविरहे सरोजिनी लोकमिन्दुकिरणवगुण्डितम् ।

नाभिवीक्षितुमिव क्षपागमे मीलयत्यसितवारिजेक्षणम् ॥ ७२

[रात्रि के आगमन पर कमल-सरोवर ने सूर्य के विरह में अपने नील-कमलों के रूप में नेत्रों को वन्द कर लिया, जिससे इन्दु की किरणों से अवगुण्डित संसार को न देख सके ।] सेतुबन्ध में भी इस प्रकार की सुन्दर भाव-व्यंजनाएँ अधिक हैं । इस दृश्य में कमल की अनुभूति का रूप है—'बादलों के अवरोध से छुटकारा पाये हुए सूर्य की किरणों के स्पर्श से, भौरों की गुन-गुन से सचेष्ट हुए जल में स्थित नालवाले कमल सुख का अनुभव करते हुए विकसित हो रहे हैं ।' समग्र चित्र में प्रकृति मानवीय भावों से अभिभूत चित्रित है । छूटे आश्वास में उदास हंसिनी का चित्र इस प्रकार है—

कम्प्यमानधराधरशिखरसमाविद्धजलधररवोद्विग्ना ।

गतसुखवर्त्मनिषण्णा वेपते हंसी सहस्रपत्रनिषण्णा ॥ ७३

[(वानरों द्वारा उखाड़े जाने पर) पहाड़ों के शिखरों पर लटके बादल गरज उठते हैं, उससे वर्षा ऋतु का आगमन समझ कर स्वच्छन्द विचरण का समय बीत जाने का भान कर कमल पर बैठी हुई हंसिनी खिन्नमना हो रही है ।] किरातार्जुनीय में अर्जुन के सम्मुख फैली हुई प्रकृति मानवीय भावों को व्यक्त करती है । 'सरिता कहीं अपने प्रवाह में अन्दर छिपे हुए अनेक प्रकार के मणि-समूह के कारण अपनी चंचल

७२. बा० ; स० ८ ; ८४, ८५ ; ८६ ।

७३. सेतु; आ० १ ; २८ ; आ० ६ ; ३८ ।

तरंगों से विभिन्न रंगों के रूप में अपना मनोभाव व्यक्त करती है' और कहीं 'केनकी के समान उठते हुए अपने भाग से, जो मरुत के स्फालन द्वारा चट्टानों से टकराने से उत्पन्न होता है, अर्जुन ने नदी को अट्टहास करते देखा'। और उस गीता के तट पर एक दूसरा भी ऐसा ही दृश्य है—

अनुहेमवप्रमरुणै समतां गतमूर्मिभिः सहचरं पृथुभिः ।

स रथाङ्गनामवनितां करुणैरनुबध्नतीमभिननन्द स्तैः ॥^{७४}

[स्वर्ण-शिखरों की समीपता से अरुण लहरों की समता में छिपे हुए अपने सहचर को करुणा से रोती हुई चक्रवाकी को दूढ़ते देखकर उसका मनोरंजन हुआ।] चक्रवाकी का अपने प्रिय सहचर का यह दूढ़ना मानवीय करुणा और वेदना से भी अधिक सवेदक है। शिशुपालवध में प्रवृत्ति में भाव-व्यंजना के स्थान पर मधु-क्रीडाओं के आरोप की प्रकृति अधिकाधिक विकसित हो गई है। परन्तु कुछ स्थलों पर व्यंजना सुन्दर बन पड़ी है। चक्रवा और चकवी इस प्रकार विरह में व्याकुल हैं—

विगततिभिरपङ्कं पश्यति व्योमयाव-

दुवति विरहस्निन्नः पचती यावदेव ।

रथचरणसमाहस्तावदौत्सुक्यनुत्था

सरिदपरतटान्तादागता चक्रवाकी ॥

[जब तक अन्वकार शून्य आकाश को देख उड़ने के लिए विरह-दुःख से दुखित चक्रवा अपने पंखों को फड़फड़ाता है, इमी बीच में चकवी उत्कण्ठित होकर नदी के दूसरे तीर के प्रान्त में आकर उसके पाम उपस्थित हो गई।] इस दृश्य में चक्रवा-चकवी की व्याकुल उत्सुकता का चित्र अत्यन्त सद्ग बन पड़ा है। इन मीधे आरोपों के स्थान पर अलंकृत आरोपों की प्रवृत्ति महाकाव्यों की परम्परा में अधिक है।

प्रातः के दृश्य-चित्र पर माघ की कल्पना इस प्रकार भावात्मक रंग भरती है—

सपदि कुमुदिनीभिर्मोक्षित हा क्षपापि
 क्षयमगमदपेतास्तारकास्ताः समस्ताः ।
 इति दयितकलत्रश्चिन्तयन्नङ्गमिन्दु
 वर्हति कृशमशेष भ्रष्टशोभं शुचेव ॥ ७५

[हा, समस्त कुमुदिनियों निद्रित हो गईं (अचेतन), रात भी क्षीण हो गई और तारे भी अन्तर्हित हो गये । माना शोक से इस प्रकार की चिन्ता करता हुआ पत्नी-प्रिय चन्द्र क्षीण और शोभाशून्य सम्पूर्ण अंग धारण कर रहा है ।] वास्तव में महाकाव्यों में इस प्रकार के आरोप की प्रवृत्ति ही प्रारम्भ से रही है ।

विभिन्न काव्य-रूपों में प्रकृति (क्रमशः)

गद्य-कथा-काव्य

§ १—प्रकृति का कथा-वस्तु के साथ, इन कथा-काव्यों में अधिक सहज सम्बंध है। पिछले प्रकरण में महाकाव्यों में प्रकृति के रूपों पर विचार किया गया है। उसमें हम देख चुके हैं कि कथा और प्रकृति इन महाकाव्यों में वर्णना सम्बंधी कथात्मक प्रवाह का आग्रह नहीं है, वरन् अपने कलात्मक काव्य-मौन्दर्य के चित्रण के सम्बंध में ये अधिक सतर्क हैं। गद्य-काव्यों में कलात्मक अभिरुचि तो उसी श्रेणी की है, परन्तु प्रवाह में एक सूत्रता और क्रमिकता अधिक है, और इस कारण कथानक में प्रकृति का स्थान देश-काल की शृंखला में उपस्थित हुआ है। और इस शृंखला में प्रकृति स्वाभाविक रूप से कथा-वस्तु का आधार प्रस्तुत करती है, वातावरण निर्माण करती है। कवि घटनाओं की योजना के पूर्व देश-काल की सीमाओं को प्रत्येक रेखा और रंग में घेरने का प्रयत्न करता है। और कभी यह वर्णन अपनी सघनता और गहरी अभिव्यक्ति के साथ वातावरण बन जाता है

और कभी भाव-स्थिति की व्यंजना करने लगता है। कादम्बरी का अधिकांश कथा-क्षेत्र सुन्दर प्रकृति-प्रदेश है, इस कारण उसके अनेक वर्णन घटना-स्थिति के अग्र जान पड़ते हैं। साथ ही कुछ प्राकृतिक घटनाएँ कथावस्तु की शृंखला पूति भी करती हैं। बाण की वर्णन-शैली का सकेत शैली के प्रकरण के अन्तर्गत मिल चुका है। बाण ही वास्तव में गद्य-काव्य के क्षेत्र में प्रमुख हैं। इनकी शैली में सरिलिखात्मक वर्णना से लेकर ऊहात्मक वैचित्र्य तक का संयोग मिलता है; परन्तु अपनी व्यापक प्रवृत्ति में वे चित्रमय योजना के कलाकार हैं। इनके वैचित्र्य प्रधान अलंकृत वर्णन सघन वातावरण के साथ दृश्य को चित्रमय ही करते हैं। घटना हो, पात्र हो, चरित्र हो अथवा प्रकृति हो, बाण उसकी वर्णनात्मक अवतारणा में अद्वितीय है। वर्णन की योजना वे इस प्रकार करते हैं जिससे समस्त वस्तु या स्थिति क्रमशः सामने आकर प्रत्यक्ष हो जाती है। समग्र चित्र की कल्पना अपने पूर्ण रंग-रूपों में बाण के वर्णनों की विशेषता है। जैसे आज के चित्र-पट पर दृश्य को क्रमिक रूप से घटना-स्थिति की ओर केन्द्रित कर के दर्शक के मन को एकाग्र किया जाता है, उसी प्रकार बाण अपने वर्णनों में व्यापक आधार-भूमि से चल कर क्रमशः घटना-स्थिति को प्रत्यक्ष करते हैं। सुबन्धु की वासवदत्ता में देश-काल के रूप में यत्र-तत्र प्रकृति का वर्णन आ गया है, यद्यपि शैली का रूप बाण के निकट है। कथा और प्रकृति-वर्णना का सामंजस्य जैसा स्वाभाविक इन कथा-गद्य-काव्यों में बन पड़ा, ऐसा बाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त किसी अन्य काव्य में नहीं सम्भव हो सका है।

§ २—कथा वस्तु में देश-काल का आधार प्रस्तुत करने में बाण अद्वितीय है। कादम्बरी में विन्ध्याचल की अटवी में दण्डकारण्य स्थिति
 देश-काल का आधार अग्रस्थ के आश्रम के समीप के पम्पासर के पश्चिम किनारे पर पुराने ताल वृद्धों के कुज के पास एक बड़े खोर्ण सेमर के वृक्ष पर तोता की स्थिति का वर्णन करने के लिये कवि वर्णना की देशगत विशाल योजना करता है। और घटना की

स्थिति को अधिक प्रत्यक्ष करने के लिये सूत्र्योंदय का कालगत चित्र भी उपस्थित करता है। कवि जावालि क आश्रम की घटना के पूर्ण उसका वर्णन करता है और मन्था के दृश्य को उपस्थित कर घटना-स्थिति को अधिक साकार कर देता है। कुमार चन्द्रापीड मृगया से थक कर क्रमशः किम प्रकार सरोवर का अनुमान लगाते हुए अच्छोद सरोवर पर पहुँचता है, और फिर सरोवर के दक्षिण तट पर, संगीत की ध्वनि का अनुसरण करता हुआ महादेव के मन्दिर में जाता है। इस ममस्त घटना का आधार प्रकृति को व्यापक प्रदेश की वर्णना है। इसी प्रकार कवि हर्ष-चरित के प्रारम्भ में सरस्वती के शाप के उपरान्त मन्था का वर्णन कर घटना-स्थिति को काल का आधार देता है और सरस्वती के मृथ्वी पर आते समय मन्दाकिनी का वर्णन देश की सीमाएँ प्रस्तुत करता है। सोन नदी के तट-प्रदेश का चित्रण नगस्वती के आश्रम की भूमिका है। द्वितीय उच्छ्रवाम का विस्तृत ग्रीष्म-वर्णन काल का व्यापक और कलात्मक सश्लिष्ट चित्र है। जैसा कहा गया है सुत्रन्धु की वासवदत्ता में देश काल का आधार प्रस्तुत किया गया है, परन्तु उनमें बाण जैसी व्यापकता नहीं है।

क—अगले भाग में विस्तार से प्रमुख कवियों के वर्णनों को उपस्थित करना है, इस कारण यहाँ हम प्रकृति के विभिन्न रूपों के प्रयोग पर ही विचार करेंगे। देश हो अथवा काल
देश
बाण उसको सम्पूर्ण स्थिति के साथ ही चित्रित करते हैं। उनमें स्थिति को देश काल से अलग नहीं किया जा सकता। और न शैली की दृष्टि से वर्णनात्मक, चित्रात्मक तथा ऊहात्मक आदि वर्णनों को अलग अलग देखा जा सकता है। इसी प्रकार प्रकृति के स्वभाविक, आदर्श तथा अलौकिक रूपों का संयोग भी देखा जाता है। स्वभाविक के साथ आदर्श और आदर्श के साथ अलौकिक प्रकृति के चित्र मिले-जुले हुए हैं। चन्द्रापीड को सरोवर की खोज में जो चिह्न मिलते हैं वे प्रकृति रूप के स्वाभाविक अंग हैं—

सरलसालसल्लकीप्रायैरविरलैरपि नि शाखतया विरलैरिवोपलक्ष्य-
मायैः पादपैहपेतेन, स्थूलकपिलबालुकेन, शिलाबहुलतया विरलतृणोल-
पेन, वनद्विपदशनदलितमनःशिलाधूलिकपिलेन, आभङ्गिनीभिरुकीर्णाभि-
रिव पत्रभङ्गकुटिलाभिः पाषाणभेदकमञ्जरीभिर्जटिलीकृतशिलान्त
रालेन ...।^१

[(वह देखता है) सरल, साज और सल्लकी के बहुत से वृक्षों से
(वह प्रदेश) भरा है जिनके ऊपर के भाग में छत्र-मंडन के आकार के
होने पर भी टहनियाँ न होने से जो विंगल से दीखते हैं, वहाँ की बालू
मोटी और कपित है, चट्टानों के होने से जहाँ थोड़े ही घास और
तृण उगते हैं, वनैले हाथियों के दाँतों से टूटी हुई मैन्सिल की धूल
से वह धूसर दीखता है; चारों ओर मुड़ी हुई—और उत्कीर्ण सी मालूम
होती—पत्र-भग के समान, कुच्छ-कुच्छ गोल, पाषाण-भेद वृक्ष की मंजरियों
उसकी शिलाओं के बीच के छेदों में एकत्र पड़ी हैं।] इस वर्णना में
संश्लिष्ट शैली की योजना है। बाण ने स्थान-स्थान पर प्रकृति को
आदर्श-रूप में चित्रित किया है। कवि विन्ध्याचल की अटवी का
आदर्श-चित्र इस प्रकार उपस्थित करता जाता है—‘इसमें जंगलो
हाथियों के मदजल के सिंचन से वृक्षों का सवर्धन हुआ है, उनकी
चोटियों पर अत्यंत प्रफुल्लित श्वेत पुष्पों के गुच्छे अधिक ऊँचाई
के कारण तारागण के समान देख पड़ते हैं, वहाँ मद-मत्त कुरुर पक्षी
मिर्चों के पत्तों को कुतरते हैं और हाथी के बच्चों की सूडों से मसले गए

१. काद०; पू० भा०, जला०, पृ० २६१। वासवदत्ता में, जब चिन्तामणि
मकरन्द के साथ मृगया के लिये जाता है, उस समय विन्ध्यकूट का वर्णन
इस प्रकार है—‘अगस्त्यवचनसहृद्ब्रह्माण्डगनशिखरसहस्रः क्रन्दरान्तरा-
ललतागृहसुखसुप्तविद्याधरमिथुनगीताकर्णनसुखिनचमरीशतभारण्योत्सुकितशब-
रशस्त्रसन्नाथकच्छः... . गन्धवाहशिशिरितशिलातलः सुदूरपतनभग्नता-
लफलरसाद्रकरतलास्वादनोत्सुकशाखाभृगः आदि। इन वर्णनों में सभी
प्रकार की शैलियों का संयोग है।

तमाल के पत्तों की सुगन्ध फैल रही है, '....दिनरात उडती हुई फूलों की रज से वहाँ के लता-मडप मलिन हो गए हैं और वे वन-लक्ष्मी के रहने के महलों के समान मालूम होते हैं।'^२ कलात्मक चित्रमयता से दृश्य के रंगरूप तथा स्थिति को प्रत्यक्ष करने में बाण की कल्पना असीम है। अन्यत्र अच्छोद सरोवर के पास का दृश्य भी कभी आदर्श कल्पनाओं से युक्त है और कभी उसमें अलौकिक प्रकृति का रूप है। मन्दिर के पास प्रकृति का रूप आदर्श है—

सर्वतो मरकतहरितैः, हारिहारीतरुतिरमणीयैः, भ्रमद्भृङ्गराजनखर-
जर्जरितजरठकुड्मलैः, उन्मदकोकिलकुलकवलीकृतसहकारकोमलाप्र-
पल्लवैः, उन्मदषट्चरणचक्रवालवाचाञ्जितविकचचूतकान्तिकैः, अचकित-
चकोरचुम्बितमरिचाङ्कुरैः, चम्पकपरागपुञ्जपिञ्जरकपिञ्जलजगधपिप्पली-
फलैः, फलभरनिकरपीडितदाडिमनीडप्रसूतकलविङ्गैः, प्रक्रीडितकपिकुल-
करतलताडनतरलितताडीपुटैः...।^३

[सत्र ओर लगे हुए मरकत के समान हरे वृक्ष लगे हुए थे। मनोहर हारीत पक्षियों की गुंजार से जो रमणीय लगते थे; जिनकी कलियाँ उड़ते हुए भृंगराज पक्षी के नखों से जर्जरित हो गई थी; जहाँ आमों की कोमल कोंपलों को उन्मत्त कोकिल खा जाते थे और खिली हुई कलियों पर मद्मत्त भ्रमरो के भुंड गुंजार करते थे; डरे हुए चकोर पक्षी मिर्च के अकुर खाये जाते थे, चपा के बहुते से पराग से पीले पडे हुए चातक पीपल के फल खाते थे; फल के भार से लचे हुए घने अनारों के पेडों के घोंसलों में चिडियों ने बच्चे दिये थे; खेलते हुए बन्दरों के कर-प्रहार से ताड के वृक्ष हिलने लगते थे...।] यहाँ कवि ने केवल स्थिति में आदर्श कल्पना की है। बाण की इस कल्पना में प्रवरसेन के समान वैचित्र्य की प्रधानता न होकर स्वाभाविकता अधिक

२. वही, वही, विन्ध्य०, पृ० ३९-वनकरिकुल .लतामण्डपैः।

३. वही, वही, शिव०, पृ० २७२।

है। बाण वर्णन के लिए वैचित्र्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अवश्य अधिक करते हैं, परन्तु उनकी प्रकृति का रूप अपने रंग-रूप और स्थितियों में अधिकतर सहज है। देश-काल की सीमा का प्रकृतिगत विशेषताओं में अतिक्रमण भारतीय आदर्श भावना में स्वाभाविक रूप से ग्रहीत रहा है, यही कारण है कि बाण के इन आदर्श चित्रों में जो अतिक्रमण है वह स्वाभाविक जैसा जान पड़ता है। इसी प्रकार अच्छोद सरोवर के वर्णन में पौराणिक कल्पनाओं के साथ प्रकृति का अलौकिक रूप मिलता है—

क्वचिद्वरुणहंसोपात्तकमलवनमकरन्दम्, क्वचिद्दिग्गजमञ्जनजर्जरित-
जरन्मृगालदण्डम्, क्वचित्त्र्यम्बकवृषभविषाणकोटिखण्डिततटशिलाखण्डम्,
क्वचिद्धममहिषशृङ्गशिखरविच्छिन्नफेनपिण्डम्, क्वचिदैरावतदशनमुसल-
खण्डितकुमुदखण्डम्—।^४

[उस सरोवर के किसी भाग में वरुण के हंस कमल-वन का मकरन्द पी रहे थे, किसी किसी स्थल में दिग्गजों के नहाने से पके हुए मृगाल-दण्ड जर्जरित हो गये थे; किसी किसी स्थल में शंकर के बैल के सींगों की नोक से तट की शिलाएँ टूट गई थीं, कहीं कहीं यम के महिष ने सींग की नोक से फेन इधर-उधर फैना दिया था; और कहीं कहीं ऐरावत के दंत रूरी मूसल से कुमुद-खंड टुकड़े टुकड़े हो गये थे।] इसमें चित्रण सम्बंधी कोई अलौकिकता नहीं है, वरन् स्थिति की कल्पना मात्र से ऐसा किया गया है।

ख—बाण जिस प्रकार देश के चित्रण में प्रत्येक वस्तु और स्थिति का सूक्ष्म और संश्लिष्ट विवरण कलात्मक और वैचित्र्य की शैली में प्रस्तुत करते हैं; उसी प्रकार काल की वर्णना में वे काल परिवर्तित परिस्थितियों और घटनात्मक क्रिया-स्थितियों का निर्माण भी करते हैं। इस प्रकार के वर्णन में कथा-वस्तु के घटना-

४. वही; वही; अच्छो०, पृ० २६५। वास० में रेवा के वर्णन में कुछ भाग।

प्रवाह मे बाधा भले ही पडती हो, पर उसका आधार दृश्य-पट के समाने गोचर और प्रत्यक्ष हो जाता है। चित्र की एक एक रेखा उसे सर्जीव बनातो हुई उभरने लगती है। प्रातः सायं सन्ध्याओं, मध्याह्न और रात्रि के सूक्ष्म रंग और रूप के परिवर्तनो तथा व्यापारों की योजना से बाण खूब परिचित हैं। इनके चित्रण के लिए काल्पनिक अलकृत योजना भी वे उसी प्रकार करते हैं। किसी भी कथा-वस्तु को घटना को इन प्राकृतिक परिवर्तनों के मध्य मे बाण प्रत्यक्ष करने की प्रतिभा रखते है। विन्ध्य-अटवी मे सूर्योदय काल की स्वाभाविक वर्णना इस प्रकार है—‘पाले की बूँदे टपक रही थीं, मोर जाग चुके थे ; सिंह जँभाई ले रहे थे, हथिनियाँ मद-गजों को जगा रही थीं ; रात को ओस पड़ने से जिनकी केसर ठिठर गई थीं ऐसे फूल पेड़ों से गिरने लगे थे, वह ओस की बूँदों से शीतल कमल-वन को कम्पित करता हुआ, वन के भैसो की जुगाली के भागों की बूँदों को साथ लिए हुए, कम्पित टहनियों को खूब नचाता हुआ खिले हुए कमलों के रस की वर्षा काता हुआ, फूलों की गन्ध से भौरों को तृप्त करता हुआ, रात्रि के अन्त होने से शीतल प्रभातकाल का पवन मन्द-मन्द चल रहा था।’^५ अन्यत्र भी प्रभात-काल का चित्र कवि सहज संश्लिष्ट स्थितियों और कार्यों की योजना मे खींचता है—

सशेषनिद्रालसैश्चिरप्रसारणाविशदजड् घाङ् घ्रिभिर्हठाकृष्टदीर्घपदस-
चारिभिरभृङ्गकदम्बकैरनुच्यमानासूषरशय्यासु, इच्छावस्त्राणि इतोत्खात-
पत्वलोपान्तरूढमस्ताग्रन्थिष्वरण्यगह्वराभिमुखेषु वराहयूथेषु, निशावसान
प्रचारनिर्गतैर्गोधनैरितस्तो धवलायमानासु ग्रामसीमान्तारण्यस्थलीषु,
आलोक्यमानजनरद्विनिर्गमेषु प्रसूयमानेष्विव ग्रामेषु, यथार्ककिरणाव
ल्लोकोद्गमं चोन्नाम्यमान इव पूर्वदिग्भागे, समुत्सार्यमाणास्विवाशासु ।^६

५. वही; वही; प्रभात०, पृ० ५६—‘तुषारविन्दुव पिण्णि मानरिश्वनि’

६. वही, वही, मार्गे प्रातःकाल, पृ० ५४७।

[जब नींद शेष रह जाने से अलसित हरिनों के झुण्ड, बहुत देर से फैला रखने के कारण अकड़ी हुई जंघाओं तथा पैरों को जोर से खींच कर लम्बे-लम्बे पैर रखते तृण-रहित भूमि पर उठ कर दौड़ने लगे, तालाबों के किनारे पर उगे हुए नगार मोथे की गँठों को उखाड़ कर स्वेच्छा से काटते बराहों के झुण्ड वन की गुफाओं की ओर जाने लगे, जब रात्रि के अंत में चरने के लिए जानेवाली गायों के झुण्डों से ग्राम की सीमा के अन्त के वन के स्थल इधर-उधर सफेद दीखने लगे, बाहर आते जाते लोगों के दीखने के कारण गाँव मानो नवीन उत्पन्न हुए मालूम होने लगे, सूर्य की किरणों के प्रकाश के साथ-साथ जब पूर्व दिग्भाग मानो ऊँचा हो गया, दिशाएँ मानो आगे बढ़ती गईं **।]

इस संश्लिष्टता में दृश्य का क्रमशः सामने फैलता जाता है और इसमें प्रयुक्त उपेक्षाओं से स्वाभाविक स्थिति का प्रत्यक्षीकरण ही हुआ है। महाश्वेता के वृत्तान्त सुनाते-सुनाते सन्ध्या आ जाती है और कवि उसके परिवर्तित होते रंगों को कलात्मक तूलिका से चित्रात्मक शैली में उतारता है—‘फिर जब दिन क्षीण हो गया, आकाश में लटकता हुआ रविमडल पकी हुई प्रियगुलता की मंजरी की रज के समान पीले रंग से रंग गया; पुष्पित फूलों के रस से रगे हुए वस्त्र के समान अस्त समय की कोमल धूप ने दिशाओं के मुख को छोड़ दिया; आकाश का नीला रंग दूर होकर चकोर की पुतली के समान पिगल रंग वहाँ लिप गया; कोकिल के लोचनों के समान पिगल सन्ध्या के प्रकाश से भुवन लाल हो गया ... ।’^७ इस वर्णना में बाण ने सायंकाल के रंगों को उपमानों से अधिक प्रत्यक्ष और व्यक्त कर दिया है, रंगों के स्वाभाविक सामंजस्य में बाण अप्रतिम है, प्रवरसेन में काल्पनिक रंगों का संयोग अद्वितीय है। साथ ही इस चित्र में भावात्मक वातावरण भी रक्षित है,

७. वही, पूर्व०, सन्ध्या०, पृ० ३६८-० अथ क्षीणे दिवसे . . सान्धये भुवन-मर्चिषि’।

महाश्वेता के विथोगजन्य दुःख अभिभूत हृदय से प्रकृति का दृश्य तादात्म्य स्थापित करता है। अगले अनुच्छेद में इस विषय में अधिक विचार करना है। बाण के अलंकृत वर्णनों में भी कलात्मक सौन्दर्य तथा काल का सजीव रूप रक्षित है। साय-सन्ध्या की इस अलंकृत योजना में दृश्य की कल्पना अधिक प्रत्यक्ष हुई है—

अलोहितांशुजालं जलशयनमध्यगतस्य मधुरिपोर्विगलन्मधुधारमिव नाभिनलिनं प्रतिमागतमपारार्णवे सूर्यमण्डलमलक्षयत । विहायाम्बरतल-मुन्मुच्य च कमलिनीवनानि शकुनय इव दिवसावसाने तरुशिखरेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणाः स्थितिमकुर्वत । आलम्बलोहितातपच्छेदा मुनि-भिरालम्बितलोहितवल्कला इव तरवः क्षणमदृश्यन्त । अस्तमुपगते च भगवति सहस्रदीधितावपारार्णवतजादुबलसन्ती विद्रुमलतेव पाटला सन्ध्या समदृश्यत ।^८

[पश्चिम समुद्र में कुछ-कुछ लाल किरणोवाले सूर्य-मण्डल का प्रतिबिम्ब ऐसा दीखने लगा मानो जल-शय्या पर सोये हुए विष्णु की नाभि-कमल से मधु-धारा निकल रही हों। पृथ्वीतल को त्याग कर तथा कमल-वन को छोड़ कर, सन्ध्या काल, सूर्य की किरणों ने पत्नी के समान तपोवन के वृक्षों और पर्वतों की चोटियों पर वास किया। ऊपर कहीं-कहीं लाल धूप पड़ने से थोड़ी देर तक आश्रम के वृक्ष ऐसे दीखने लगे मानों मुनियों ने उन पर लाल बल्कल लटकाए हैं। सूर्यास्त के बाद पश्चिम समुद्र के तट में से निकलती लाल-लाल सन्ध्या प्रबान लता के समान दीखने लगी।] इस अलंकृत वर्णना में प्रयुक्त उत्प्रेक्षाओं में जिन उपमानों का आधार है वे (स्वतःसम्भावी और प्रौढोक्ति-सम्भव दोनों रूपों में) वैचित्र्य की प्रवृत्ति रखते हुए भी सौन्दर्य का सर्जन करते हैं। जैसा शैली के प्रकरण के अन्तर्गत कहा गया है, चमत्कृत वैचित्र्य तथा ऊहात्मक कल्पनाएँ बाण के वर्णनों में

^८ वही, वही, सन्ध्या०, पृ० १०४।

विखरी हुई है, परन्तु देश-काल की घटनात्मक स्थिति-योजना के वे अनुकूल हैं तथा वर्णना-विस्तार के सौन्दर्य-बोध के साथ एक रूप हो जाती हैं। रात्रि के दृश्य में चमत्कृत उपमान-योजना मिली जुली है—
‘चन्द्रमा से भूपित और तारा रूपी कपाल के टुकड़ों से अलकृत शिव के मस्तक के समान आकाश से सागर को भरती हुई गंगा के समान हस-धवल चौदनी पृथ्वी पर छिटकी’। परन्तु इस चमत्कृत कल्पना के साथ ही कलात्मक सौन्दर्य-बोध को व्यंजित करनेवाले उपमानों की योजना है—

हिमकारसरांसि विकचपुण्डरीकसिते चन्द्रिकाजलपानलोभादवतीर्णो
निश्चलमूर्तिरमृतशङ्कजग्न इवाद्दश्यत हरिण । तिमिरजलधरसमयापगमा-
नन्तरमभिनवसितसिन्दुवारकुसुमपाण्डुरैरणवागतैरवगाह्यन्त हंसैरिव
कुमुदसरांसि चन्द्रपादैः ।^९

[चन्द्रमा के बिम्ब में हरिण ऐसा लगता है मानो पुष्पित श्वेत कमल के सरोवर में पानी पीने के लोभ से उतरा हुआ निश्चल हरिण कीचड़ में फस गया हो। अंधकार दूर होने के बाद तालाब में चन्द्रमा की किरणों ऐसी शोभित हुईं मानों वर्षा-श्रुत के बाद, सिंधुवार के ताजे फूल के समान सफेद हस आकाश से उतर कर कुमुद-सरोवर में तैरते हों।]
इस प्रकार देश-काल की सुन्दर अवतारणा कवि कथानक की घटना स्थली को प्रत्यक्ष गोचर करने के लिए करता है जिससे वस्तु को आधार और वातावरण दोनों ही मिलता है।

१३—कथा-वस्तु के अन्तर्गत प्रकृति की स्थिति घटना के आधार को प्रस्तुत करने के अतिरिक्त वातावरण निर्माण करती है। कवि-
कथाकार अपनी वस्तु की देश-काल गत स्थिति को
वातावरण निर्माण पाठक के सामने प्रत्यक्ष करना चाहता है, साथ ही
वह वस्तु-योजना की घटना-स्थिति को व्यंजित करनेवाला वातावरण भी

प्रस्तुत करता है। महाकाव्यों में वर्णना और कथा वस्तु का सामंजस्य सदा रक्षित नहीं रहा है, और जैसा विचार किया गया है बाद के कवियों ने प्रकृति के वर्णनों को परम्परा पालन के दृष्टिकोण मात्र से रखा है। परन्तु कथा-गद्य-काव्यों में स्थिति ऐसी नहीं है। वर्णना का विस्तार अपनी कलात्मकता तथा सूक्ष्म विवरण में चाहें जितना व्यापक और सघन हो, परन्तु कथा की शृंखला से उसका घनिष्ठ सम्बंध सदा बना रहता है। वर्णना सौन्दर्य में रस लेनेवाली भारतीय प्रवृत्ति के लिए ये घटनाओं के क्रमिक विकास और कथावस्तु के प्रवाह में बाधक न होकर चित्रमयता उत्पन्न करते हैं।

क—बाण ने सभी स्थलों पर प्रकृति को इस सघनता के साथ उपस्थित किया है कि उसका एक वातावरण बन गया है। प्रारम्भ में विन्ध्य-अटवी के वर्णन में वन जैसी भयंकरता और सहज अनुरूप सरोवर के वर्णन में एकान्त-शून्य की भावना मन में उत्पन्न हो जाती है। चित्रमय सौन्दर्य के साथ यह भावना प्रकृति को वातावरण का रूप देती है। अनेक स्थलों पर यह वातावरण देश-काल की उद्भावना से सम्बंधित है, कथा-वस्तु की घटना और पात्रों से नहीं। पर ऐसे भी स्थल हैं जहाँ घटना की स्थिति अथवा पात्र की मनःस्थिति के अनुकूल प्रकृति वातावरण का निर्माण करती है। कथामुख भाग में शिकारियों का भुण्ड आपस में जिस प्रकृति का उल्लेख करता है वह शिकार की घटना के अनुरूप वातावरण प्रस्तुत करती है—‘इस ओर से हाथियों की कुचली हुई कमलिनियों की गन्ध आती है, इधर से शूकरों के काटे हुए मोथे के रस की सुगन्ध आती है, इस ओर हाथी के बच्चों से तोड़ी गई सल्लकी की गन्ध आती है, इधर झड़े हुए सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट सुनाई देती है, इस दिशा में जंगली भैंसों से तोड़ी गई बल्मीकी की धूल है।’^{१०} और कभी प्रकृति का वातावरण पात्र की

मनःस्थिति के अनुरूप फैल जाता है—

वनमहिषमलीमसवपुषि च मुषिततारकापथपथिञ्चि काञ्चिमान-
मातन्वति शार्वरे तमसि, अतनुतिमिरतिरोहितहरिततासु गहनतां यान्तीषु
वनराजिषु, रजनिजलजालबिन्दुजनितजडिञ्चि बहलवनकुसुमपरिम-
लानुमितगमने चञ्चितलताविटपगहने प्रवृत्ते च पवने, निद्रानिभृत-
पतत्रिणि...।^{११}

[वन-महिष के समान श्याम रंगवाला और आकाश के विस्तार को लीन करता हुआ रात्रि का अधकार अधिकाधिक काला होने लगा, अपना हरा रंग घने अधेरे में ढक जाने से वृक्षों की झाड़ियाँ गहन दीखने लगी; ओस की बूँदों से जड़ता उत्पन्न करती हुई, वन-पुष्पों के अतिशय परिमल से जिसके चलने का अनुमान होता था, ऐसी लता और वृक्ष-कुंजों को हिलाती हुई वायु बहने लगी, और रात आने से पक्षी निद्रा के कारण चुप हो गये...।] रात्रि के अन्धकार में फैली हुई निद्रा और तन्द्रा की भावना के साथ महाश्वेता के वियोगी मन का सामंजस्य है।

ख—कभी कभी इसी वातावरण में दृश्य का रूप इस प्रकार सामने आता है जिसमें प्रकृति स्वयं भाव-निमज्जित दिखाई पड़ती है। कवि

अपनी कल्पना से प्रकृति में भावात्मक वातावरण का भावात्मक प्रसार

निर्माण करता है। यह वातावरण कभी स्वतः से पूर्ण होता है और घटना से व्यापक सम्बंध मात्र स्थापित करता है। सन्ध्या की वर्णना में यहाँ ऐसे ही वातावरण की अवतारणा हुई है—‘फिर हृदय-स्थित कमलिनी के राग से मानों जब सम्पूर्ण भुवन मंडल के

वासवदत्ता में वातावरण के लिए दे० रेवा-वर्णन—‘मदकलकलहससारसरसितोद्र-
भ्रान्तभा.....मदमुखराजहसकुलकोलाहलमुखरितकूलपुलिनया.....

आदि।

११. वही ; वही ; सान्ध्यविधि, ३६९।

चक्रवर्ती, कमलो के प्राणनाथ, भगवान भास्कर रक्त होने लगे; दिन बढ़ा कर देने से कुपित होती कामिनियों की लाल लाल दृष्टि से ही मानों आकाश जब लाल लाल हो गया; रवि-वियोग से बन्द हुए पद्मवाले कमल-वन जब हरे दीखने लगे. १^२ यह रागात्मक वातावरण महाश्वेता और चन्द्रापीड के प्रेम से भावात्मक अनुरूपता स्थापित करता है। कुछ स्थलो पर प्रकृति का यह रूप पात्र के मन को प्रभावित करता जान पड़ता है। ऐसे वर्णनों का भावात्मक वातावरण पात्र की मनःस्थिति से सीधे सम्बंधित है। नवयोवन में प्रवेश करती हुई महाश्वेता के लिए चैत्र का वातावरण भावाशील है—

अथ विजृम्भमाणनवनलिनवनेषु, अकठोरचूतकलिकाकलापकृतका-
मुकोत्कलिकेषु, कोमलमलयमारुतावतारतरङ्गितानङ्गध्वजांशुवेषु, मदकलित-
कामिनीगण्डूषसीधुसेकपुलकितबकुलेशु, मधुकरकुलकलङ्ककालीकृत-
कालेयककुसुमकुड्मलेशु । १३

[नये कमल वन खिल रहे थे, आम की कोमल कलियों का कलाप कामियों को उत्कंठित कर रहा था, मलयाचल की ठडी पवन चलने से कामदेव की ध्वजा फहरा रही थी; मदमत्त कामिनियों के मुख से छिड़के गए मधु से बकुल वृद्ध-पुलकित हो रहे थे, मधुकर-कुल रूपी कलंकमे चमेली की कलियाँ काली हो गईं थीं...।] यही भावात्मकता जब पात्र की मनःस्थिति के स्थायी भाव को प्रभावित करने लगती है, उस समय प्रकृति उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत आ जाती है।

§४—कथा-वस्तु की शृंखला में प्राकृतिक घटनाओं की आवतरणा तभी सम्भव हो सकती है जब कथानक प्रकृति से घटना के रूप में नियोजित घटनाएँ सम्बंधित हो। और यह स्थिति हर्ष-चरित और वासवता में नहीं मिलती है। इनमें कथानक प्रकृति से एक रूप

१२. वही ; वही , सन्ध्या, पृ० ४२१ —अथ हृदय " कमलवनेषु ।

१३. वही ; वही ; महाश्वेतास्नानागमन वृत्तान्त , पृ० २९६—९७ ।

नहीं हो सका है। पर कादम्बरी की कथावस्तु प्रकृति से अति निकट से सम्बन्धित है, उसकी कल्पना के प्रसार में घटना, पात्र और प्रकृति सब एक रस हो जाते हैं। वास्तव में कादम्बरी की कथा का अधिक भाग प्रकृति की गोद में अभिनीत हुआ है। इसके पात्रों में कुछ पशु-पक्षी तथा गन्धर्व-किन्नर आदि हैं, जिससे प्रकृति की स्थिति का वस्तु की घटना के रूप में अवतरित होना सहज है। कथामुख भाग में शबरो की मृगया और वृद्ध शत्रु का पक्षि संहार प्राकृतिक घटनाएँ हैं जो कथा-वस्तु के अन्तर्गत आती हैं। मृगया की घटना का वर्णन बड़ा ही सजीव है—‘इतने ही में वन में अनेक प्रकार के शब्द होने लगे, लेप करने से आर्द्र हुए मृदुग की ध्वनि के समान धीरे और पर्वतों की गुफाओं से उठते हुए प्रतिशब्द से गम्भीर भीलो के बाणों से घायल हुए सिंहों का नाद होने लगा; त्रास पाये हुए भुंड से बिछड़े हुए अकेले भटकते गजपतियों की कंठ-गर्जना मेघ-निर्घोष के समान हो रही थी और उसीके साथ बार बार ताड़ना की गई सूँडों का शब्द सुनाई दे रहा था, कुत्तों से काटे जाने से लटक गये हैं अवयव जिनके और जिनकी आँखों की पुतलियाँ चंचल कातर और क्षुब्ध हैं ऐसे हरियों की करुणामय चीत्कार हो रही थी - ११४ इस कथा काव्य में प्रकृति की विस्तृत वर्णनाएँ अपने आप घटनाएँ जैसी गम्भीर जान पड़ती हैं; वातावरण की सघन व्यञ्जना में प्रकृति का विस्तार कथा-वस्तु की घटनाओं का अंग बन जाता है। परन्तु ऊपर का दृश्य घटना-क्रम की स्वतंत्र शृंखला है। धीरे-धीरे सेना के संज्ञोभ से उड़ती हुई धूल का वर्णन घटना का अंग माना जा सकता है—

शनैः शनैश्च बलसंज्ञोभजन्मा हितेरनेकवर्णांतया क्वचिज्जीर्णैर्षफरक्रो-
डभूत्रः क्वचित्क्रमेलकसटासंनिभः, क्वचिपरिणतरत्नकरोमरत्नजवमलिनः,

क्वचिदुत्पन्नोर्णातन्नुपाण्डुरः, क्वचिज्जरठमृणालदृण्डधवलः, क्वचिज्ज-
रत्कपिकेशकपिलः । १५

[वह धूल पृथ्वी के अनेक वर्णान होने के कारण, कहीं बूढ़े मत्स्य की छाती के समान धुंधली, कहीं ऊँट के बाल के समान मटियाली, कहीं बूढ़े हरिण के रोये के समान मलीन, कहीं धुले हुए रेशमी वस्त्र के तागे के समान पाण्डुर, कहीं पके हुए मृणाल की डडी के समान धौली, और कहीं बूढ़े बानर के बालों के समान कपिल थी ।]

§ ५—इन काव्यो मे कथा के क्रम की भावना प्रधान रहती है । इस कारण कथावस्तु के विस्तार में प्रकृति का रूप चित्रात्मक अधिक है, और प्रकृति तथा पात्रों का सम्बन्ध आधार तथा आत्मीय सहानुभूति वातावरण का विशेष है । वर्णना के आग्रह में कवि प्रकृति और मानवीय जीवन का भावात्मक आत्मीय सम्बन्ध बहुत कम स्थलों पर स्थापित कर पाता है । इसी प्रकार प्रकृति मे आत्मीय सहानुभूति का दृश्य या आरोप भी बहुत कम है । कादम्बरी की काल्पनिक कथा मे शुक, मैना तथा सारिका आदि पात्र हैं और प्राकृतिक पृष्ठ-भूमि का उल्लेख किया गया है । बाण इनको मनुष्य-पात्र के समान उपस्थित करते हैं । कादम्बरी की मैना और तोता को कवि ने इस प्रकार व्यक्तित्व प्रदान किया है—‘कुमुदों की केसर के समान पीले चरणवाली, चंपा की कली के समान मुख वाली, कुबलय-पत्र के समान श्याम पंखोवाली, और इस कारण पुष्पमयी लगनेवाली एक मैना सहसा जल्दी जल्दी आई । उसके पीछे पीछे एक इन्द्र-धनुष सदृश तीन रंग का कठला गर्दन में पहने, प्रबालाकुर सदृश लाल चोंचवाला और मरकत की कांति के समान पद्ममूलवाला तोता मन्दगति से चला आता था ।’^{१६} प्रकृति मे ऐसे पात्रों की कल्पना और उनका स्वाभाविक

१५. वही, वही, दिग्विजयप्रस्थानम्, पृ० २४७—४८ ।

१६. वही ; वही, शुकमारिकामुखेन कौतुकारम्भ ; पृ० ४०२-३—‘अथ सह-
सैव’ कुसुममयीवागत्य सारिका’ ।

व्यवहार आत्मीयता का सूचक है। कभी प्रकृति के सौन्दर्य की कल्पना कवि पात्र के रूप में कर लेता है और इस प्रकार प्रकृति में मानवीय अनुभूति की व्यञ्जना करता है। वनदेवी स्वयं प्रकट होकर पुण्डरीक को पारिजात की मंजरी प्रदान करती है—

साक्षान्मधुमासलक्ष्मीदत्तललितहस्तावलम्बया बकुलमालि-
कामेखलया कुसुमपल्लवप्रथिताभिराजानुलम्बिनीभिः कण्ठमालिका-
भिर्निरन्तरच्छादितविग्रहया नवचूताङ्कुरकर्णपूरया पुष्पासवपानमत्तया
वनदेवतया . । १७

[वसत लक्ष्मी ने जिसको अपने ललित हाथ का सहारा दिया था, बकुल-माला की जिम्मे मेखला पहिनी थी, पुष्प पल्लवों से गुंथी हुई और जॉधों तक लटकनी हुई मालाओं से जिसका सम्पूर्ण शरीर ढका हुआ था और आम के नये अंकुर का जिसने कर्णपूर पहना था ऐसी, पुष्पों का आसव पीने से मत्त हुई साक्षात् नन्दनवन की देवी ने आकर. .।] इस कल्पना में मानों कवि ने अपनी सहानुभूति द्वारा प्रकृति के सौन्दर्य को ही साकार कर दिया है।

क—मानव और प्रकृति के सहानुभूति-पूर्ण आत्मीय सम्बंधों की कल्पना के लिए यत्र-तत्र अवसर मिला है। कवि ने पंचवटी के प्राकृतिक

दृश्यों के वर्णनों में राम-सीता के निवास की स्मृति
सम्बंध दिला कर इस स्नेहमय सम्बंध को व्यक्त किया है।

बाण की कल्पना में आज भी प्रकृति को राम की स्मृति है और उनके वियोग में वह विषाद-मग्न भी है—‘वहाँ पूजा के लिए फूल तोड़ती हुई सीता के हाथों से लगा हुआ लाल रंग मानों लता और पत्तों में चमक रहा है; सीता के पाले हुए जिन पुराने हरिनों के सींग बुढ़ापे के कारण क्षर्जरित हो गये हैं, वे वर्षा-काल में नव-मेघों की गम्भीर गर्जन सुनकर भगवान् रामचन्द्र के त्रिभुवन-व्यापी धनुष-टंकार का आज भी

स्मरण करते हैं, पर दिन-रात बहती अश्रुधारा से व्याप्त दीन नेत्रों से दशों दिशाओं को शून्य देख कर घास की एक मुट्टी भी नहीं खाते हैं'।^{१८} इसी प्रकार की भावना जाबालि के आश्रम के वर्णन के प्रसंग में पाई जाती है। आश्रम के जीवन में प्रकृति से कैसी आत्मीयता उत्पन्न हो जाती है इसका उल्लेख महाकाव्यों के प्रसंग में किया गया है। यह सम्बंध कहीं कल्पना द्वारा व्यक्त किया गया है और कहीं वस्तु-स्थित से—

विकचकुमुदवनमृषिजनमुपासितुमवतीर्णं प्रहाणमिव निशासू-
द्रहन्तीभिर्दीर्घिकाभिः परिवृतम्, अनिजावनमितशिखराभिः प्रणम्यमा-
नमिव वनजताभिः, अनवरतमुक्तकुसुमैरभ्यर्च्यमानमिव पादपैः, आबद्ध-
पल्लवाञ्जलिभिरुपास्यमानमिव विटपैः ...।

[सरोवर में फूले हुए कुमुद ऐसे देख पड़ते थे मानो रात्रि में ऋषियों की सेवा करने के लिए नीचे उतरे तारे हों, पवन से झुकी हुई अपनी चोटियों से वन-लताएँ मानो उसे प्रणाम करती थीं; दिन-रात फूल गिरा-गिरा कर सब वृक्ष मानो उसकी पूजा करते थे; पल्लवों की अजलि बना कर डालियों मानों उसकी सेवा करती थीं...।] यह आत्मीयता तो उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से व्यक्त हुई है, परन्तु सहज सम्बंध का चित्र भी इसी प्रसंग में मिलता है—'बटुओं के पाठ को सुन कर वषट्कार शब्द का उच्चारण करने से तोते वाचाल हो रहे थे; असंख्य मैना वेद का घोष कर रही थीं; पास की बावली में रहते हुए कल-हंस के बच्चे नीवार की कलिका का आहार करते थे, हरिनियों अपनी पल्लव के समान कोमल जिह्वाओं से मुनियों के बालकों को चाटती थीं;...।'^{१९} इस दृश्य में प्रकृति और मानव का जीवन जैसे हिल-मिल गया है। प्रकृति के व्यापारों में आत्मीय सहानुभूति का आरोप बहुत कम स्थलों पर

१८. वही; वही, आश्रम, पृ० ४६— 'अधुनापि...जीर्णमृगाः।

१९. वही; वही, जाबाल्याश्रम, पृ० ८५, ८६— 'अनवरत...मुनिबालकम्'।

मिलता है, इसका कारण, जैसा कहा गया है बाण की प्रवृत्ति दृश्यों को चित्रमय करने की अधिक है। सन्ध्या के इस वर्णन में मानवीय जीवन और भावों का प्रकृति में आरोप किया गया है। इस व्यजना में भी रूपान्तर का प्रत्यक्ष आधार अधिक स्पष्ट है—

अभिनवपल्लवलोहिततलेन करेणोवाधोमुखप्रसृतेन रविबिम्बेन
वासरः कमलरागमवशेषं ममार्ज । कमलिनीपरिमलपरिचयागतालि-
मात्माकुलितकण्ठं कालपाशैरिव चक्रवाकमिथुनमाकृष्यमाणं विजघटे । २०
[दिवस ने नये पल्लव-सदृश लाल हथेलीवाले हाथ के समान नीचे लटकते सूर्य-बिम्ब से मानो समस्त कमल-राग को पोल्ल दिया। कमलिनी की महक से आकृष्ट हुए भ्रमरों से घिरे हुए कंठवाले चक्रवाक मिथुन कालपाश से खींचे गये की भाँति एक दूसरे से अलग हो गये।] परन्तु यह आरोप मानवीय जीवन की व्यापक रेखाओं तथा भावना की गम्भीर परिस्थितियों तक नहीं पहुँचा है।

नाट्य-काव्य की परम्परा

§ ६—नाटक दृश्य-काव्य है उसमें घटनाओं की अवतारणा रंगमंच पर की जाती है। ऐसी स्थिति में प्रकृति-वर्णन के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। परन्तु यह भी याद रखना प्रकृति का स्थान चाहिए कि प्राचीन रंगमंच पर देश-काल के अनुरूप स्थिति सजाने की सुविधा नहीं थी और इन नाटकों में कवित्व भी अधिक है। इस कारण देश-काल का ज्ञान कराने के लिए और वातावरण की योजना के लिए प्रकृति का चित्रण दृश्य-काव्यों में यत्र-तत्र हुआ है। इन वर्णनों को अवसर के अनुरूप पात्रों के मुख से कराया गया है। परन्तु इन नाटकों में उनकी प्रवृत्ति के अनुसार प्रकृति का उपयोग हुआ है। मुद्राराक्षस में राजनीतिक वातावरण अधिक

प्रधान है, और प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में धर्म तथा उपदेश की ऐसी प्रवृत्ति है जिससे उसे नाटक की श्रेणी में लेना भी उचित नहीं जान पड़ता। ऐसे नाटकों में प्रकृति के लिए कोई स्थान नहीं रहा है, इनमें एकाध स्थल पर काल के रूप में प्रकृति का उल्लेख मात्र हुआ है। स्वप्नवासवदत्ता तथा मालविकाग्निमित्र में भी प्रेमकथा राज-प्रासादों में चलती रही है और इस कारण प्रकृति की वर्णना का अवसर नहीं आया है। प्रतिमा, कुन्दमाला तथा महावीरचरित नाटक रामकथा से सम्बंधित हैं। इनकी कथा इस प्रकार विकसित हुई है कि देश-काल के सन्निहित उल्लेखों के अतिरिक्त प्रकृति की अवतारणा विशेष नहीं हुई है। मृच्छकटिक, नागानन्द और रत्नावली में प्रकृति की रंगस्थली नाटक की कथावस्तु का अंग बनो है और इस कारण इनमें प्रकृति का रूप अधिक उभरा है। अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, मालतीमाधव तथा उत्तररामचरित का वातावरण प्रकृति से निर्मित है। इन नाटकों की स्वच्छन्द भावना में प्रकृति का आत्मीय स्थान है। प्रकृति के सामीप्य से इन नाटकों में सौन्दर्य तथा आकर्षण बढ़ गया है। इनमें अभिज्ञान-शाकुन्तल तथा उत्तररामचरित में प्रकृति मानवीय जीवन से तादात्म्य स्थापित करती हुई आत्मीय सहानुभूति से अनुप्राणित हो उठी है। विक्रमोर्वशीय तथा मालतीमाधव में प्रकृति ने व्यापक भावात्मक वातावरण प्रस्तुत किया है।

§ ७—दृश्य-काव्य की कथा-वस्तु को देश-काल की स्थिति में उपस्थित करने के लिए प्राचीन रंग-मंच पर इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था कि पात्र उनका वर्णन करे। इस प्रकार देश-काल की स्थिति कथा-वस्तु का आधार देश-काल की स्थिति-जन्य सीमाओं में इन वर्णनों के आधार पर प्रस्तुत हो सका है। भास संस्कृत साहित्य के प्रारम्भिक नाटककार माने जाते हैं, और उनके नाटकों में उपस्थित प्रकृति-चित्रों की सरल स्वाभाविक शैली से इसी स्वरूप का संकेत मिलता है। स्वप्नवासवदत्ता में प्रकृति की स्थितियों के चित्रण के

लिए अवसर नहीं मिला है, परन्तु राजप्रासाद के जिस प्रमदवन में इस प्रेम-कथा का केन्द्र स्थापित किया गया है उसकी कुछ रेखाओं का निर्देश मिलता है। चेटी पद्मावती का ध्यान 'लाज कमलों की माला के समान सुन्दर पक्ति में आगे बढ़ते हुए सारसों के समूह'^{२१} की ओर आकर्षित करती है। प्रतिमा में राम-कथा के वनवास प्रसंग के साथ प्रकृति का कुछ अधिक सम्पर्क है, परन्तु भास कथानक के विकास में अधिक ध्यान देते हैं। प्रारम्भिक कवियों के समान भास प्रकृति-वर्णना को अधिक विस्तार नहीं देते हैं। शीघ्र ही सिंचे हुए वृक्षों को देख कर राम सीता का पता पा लेते हैं और प्रकृति की स्थिति का यह चित्र इस प्रकार है—

भ्रमति सखिलं वृक्षावर्ते सफेनमवस्थितं
 नृषितपतिता नैते विल्लष्टं पिवन्ति जलं खगाः ।
 स्थलमभिपतन्त्यार्द्राः कीटा बिल्ले जलपूरिते
 नववलयिनो वृक्षा मूले जलक्षयरेखया ॥^{२२}

[वृक्षों के थावलों में फेनिल जल पूरित होकर चक्कर लगा रहा है ; प्यास के कारण उतरे हुए पक्षी सरलता से जल पी रहे हैं ; बिलों में पानी भर जाने से भीगे हुए कीड़े सूखी भूमि की ओर आ रहे हैं , और वृक्ष इन पानी की रेखाओं से नवीन कड़े पहने हुए जान पड़ते हैं ।]
 इस दृश्य में सहज स्थिति के साथ कवि की सूक्ष्म अन्वेषण शक्ति का पता चलता है ।

{ ८—कालिदास ने अपने नाटकों में कुशल कलाकार के समान प्रकृति का प्रयोग किया है । मालाविकाग्निमित्र की प्रेम-कथा में प्रकृति

कालिदास

के लिए अवसर नहीं मिला है, पर दोपहर का चित्र दूसरे अंक में बहुत अच्छा बन पड़ा है । विक्रमोर्वशीय में जैसा हम आगे विचार करेंगे, सघन आत्मीयता का वातावरण प्रस्तुत किया

गया है। परन्तु अभिज्ञानशाकुन्तल में आत्मीय सहानुभूति के प्रसार के साथ देश-काल की स्थितियों के चित्र हैं। इस नाटक की रंग-स्थली का अधिकांश प्रकृति की गोद में ही अभिनीत हुआ है, परन्तु कालिदास देश-काल की स्थितियों में अधिकतर वातावरण का निर्माण करते हैं। नाटक के प्रारम्भ में कवि ग्रीष्म ऋतु के आगमन का उल्लेख करता है। आगे चलकर प्रथम अंक के अंतिम भाग में नैपथ्य से एक स्थिति-चित्र का उल्लेख किया गया है जिससे आखेट का तपोवन पर प्रभाव व्यक्त होता है—‘आखेट प्रेमी राजा के घोड़ों की टापों से उठी हुई सँभ्र की ललाई के समान लाल-लाल धून टिड्डी दल के समान उडकर आश्रम के उन वृक्षों पर पड़ रही है जिनकी शाखाओं पर गीले वल्कल के वस्त्र फैलाये हुए हैं।’ छठे अंक में राजा चित्र-फलक पर कण्व के आश्रम का जो दृश्य खींचने को कहता है वह स्थिति सौन्दर्य का उदाहरण है—

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी

पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः ।

शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः

शृंगे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगोम् ॥

[अभी, जिसकी बालुका पर हंस के जोड़े बैठे हों ऐसी मालिनी नदी बनानी है ; उसके दोनों ओर हिमालय की वह तलहटी दिखानी है जहाँ हरिण बैठे हों। मैं एक ऐसा वृक्ष भी चित्रित करना चाहता हूँ जिस पर वल्कल के वस्त्र टंगे हों और जिसके नीचे एक हरिणी अपनी बाईं आँख काले हरिण के सींग से रगड़ कर खुजला रही हो।] इस सौन्दर्य में राजा के मन की भावना का छायातप ध्वंजित है। स्वर्ग से उतरते समय राजा मातिल को पृथ्वी का दृश्य दिखा रहा है जो सहज कल्पना में सजीव हो उठा है—

शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी

पर्यास्वान्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदधात्पादपाः ।

संतानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्तं भजन्यापगाः

वेनाप्युत्क्षिपतेव पशव भुवनं मत्पाश्वरमानीयते ॥^{२३}

[जान पडता है मानो धरती पर्वतों को ऊँची चोटियों से नीचे उतर रही हो, पत्तो में छिपी हुई वृक्षों की शाखाएँ अब दिखाई देती जा रही हैं, दूर से पतली जान पडने वाली नदियाँ अधिकाधिक व्यक्त होती जा रही हैं और यह पृथ्वी इस प्रकार हमारी ओर उठी चली आ रही है मानो कोई इसे ऊपर को उछाल रहा है ।] इस प्रकार स्थितियों को प्रत्यक्ष करने में कालिदास ने सूक्ष्म अन्वेषक की दृष्टि का परिचय दिया है ।

§ ६—देश-काल की स्थिति-जन्य अवतारणा के लिए मुद्राराक्षस में अवसर नहीं है, ऐसा कहा गया है । इसके राजनीतिक हलचल से परिपूर्ण

तीन नाटक कथानक मे नाटककार को अन्यत्र ध्यान ले जाने का अवसर नहीं मिल सका है । समस्त कथानक पाटलि-

पुत्र मे प्रतिघटित है और घटनाओं का सम्बंध वन उपवनो से नहीं है । केवल इस नाटक में चन्द्रिकोत्सव का उपयोग किया गया है, इस कारण चन्द्रगुप्त सुमागप्रासाद पर से शरद ऋतु की शोभा निहारता है—‘सर्व दिशाओं की शोभा कैसी सुन्दर लग रही है, इस ऋतु में आकाश कैसा निर्मल नीला है । चन्द्रमा पूर्ण कलाओं से उदित है, सरोवर मे सुन्दर कमल छाये हुए हैं, और नदियों के किनारे चारो ओर श्वेत हंस विचर रहे हैं ।’^{२४} परन्तु इस वर्णन मे काल का कोई निश्चित रूप नहीं आता है, केवल व्यापक रेखाओं का निर्देश है । विशाखदत्त

२३. अभि०; अ० १, २८ : अ० ६; १७ : अ० ७, ८ ।

२४. मुद्रा०; अ० ३, ७ में दसों दिशाओं का वर्णन प्रवाहित शरत्कालीन सरिताओं के रूप में किया गया है—

शनैः शयानीभूताः सितजलधरच्छेदपुलिनाः

समन्तादाकीर्णाः कलविरतिभिः सारसकुलैः ।

चिताश्चित्राकारैर्निशि विकचनक्षत्रकुमुदै—

नभस्तः स्पन्दन्ते सरित इव दीर्घा दश दिशः ॥

का यह नाटक अपने कथानक के रूप और विकास की दृष्टि से संस्कृत के अन्य नाटको से भिन्न है; कथा-वस्तु में उत्सुकता का तत्त्व विशाल-दत्त की अपनी विशेषता है। दिङ्नाग के कुन्दमाला की राम-कथा प्रकृति के रंगमंच पर अधिक अभिनीत हुई है। तृतीय अंक में राम दलती हुई दोपहरी को देखते हैं—‘कठिन दोपहर का समय वृद्धों के मूलों में व्यतीत कर अब छाया शनैः शनैः बाहर निकल चली है।’ इसी प्रकार कबूत अपने आश्रम के आस पास के दृश्य राम को दिखाते हैं—‘पुष्पों से वासित सभी दिशाओं में हरियाली छाई हुई है और फूलों से आच्छादित डाली डाली सुन्दर है। यह श्याम वनमाला इस प्रकार घिरी हुई है मानों मेघमाला झुक आई हो। क्या यह दृश्य तुम्हारी आँखों को सुख देता है?’^{२५} मृच्छकटिक की प्रेमकथा में कवि ने प्रकृति का स्वच्छन्द वातावरण प्रस्तुत किया है। इसमें देशकाल की स्थितियों को शुद्धक ने अनेक स्थलों पर उपस्थित किया है। चन्द्रमा से प्रकाशित राजमार्ग का उल्लेख चारुदत्त करते हैं—‘कामिनी के कपोल के समान गौर चन्द्रमा तारा-समूह के साथ राजमार्ग को प्रकाशित करता हुआ उदित हो रहा है। जिसकी उज्ज्वल किरणों अघकार में इस प्रकार पड़ रही हैं मानो कीचड़ के बीच में दूध की धारा गिर रही हो।’ इस दृश्य में स्थिति का सुन्दर रूप हमारे सामने आता है। अन्यत्र विट और शकार उद्यान की शोभा की स्थिति को प्रत्यक्ष करते हैं —

बहुकुशुम-विचिन्तिदा अ भूमि

कुशुम भलेण विणामिदा अ लुक्खा ।

दुम शिहल लद अ लम्बमाणा

पणशफला विअ वाणला ललन्ति ॥^{२६}

२५. कुन्द०; अ० ३, १६ : अ० ४, ३।

२६. मृच्छ; अ० १ ; ५४ : अ० ८, ७।

[पृथ्वी अनेक रंगों के फूलों से चित्रित है; फूलों के भार से डाले भूमि पर गिरी सी पड़ती हैं। वृक्ष की चोटियों से लताएँ लटक रही हैं। वृक्षों पर बन्दर कटहल के फल के समान लटके हुए हैं।] इन स्थितियों की योजना से शुद्रक ने अनेक स्थलों पर वातावरण का निर्माण किया है जिनका आगे उल्लेख किया जायगा।

§१०—महाकवि भवभूति के दो नाटक उत्तररामचरित तथा महावीर-चरित राम-कथा से सम्बन्धित हैं। इन दोनों में प्रकृति का विस्तार है।

महावीरचरित में राम के वनवास प्रसंग में प्रकृति भवभूति

रंगस्थली है और उत्तररामचरित का अधिकांश वन और आश्रम के वातावरण से सम्बन्धित है। मालतीमाधव की प्रेम-कथा की उन्मुक्त भावना के साथ प्रकृति की व्यापक अवतारणा कवि ने की है। इस प्रकार भवभूति प्रकृति के रंगमंच पर मानव-जीवन का अभिनय कराने में श्रेष्ठ कलाकार है। महावीरचरित में जटायु समुद्र से जन-स्थान की ओर उड़ता हुआ प्रसवण पर्वत का वर्णन करता है—
‘जन-स्थान के बीच में यह प्रसवण नामक पहाड़ है जिसका नीला रंग नार-नार पानी के बरसने से धूमिल हो गया है और जिसकी कन्दराएँ सघन वृक्षों के सुन्दर वनों के किनारे गोदावरी की हिल्लोरो से गुंज रही हैं।’^{२७}
इस स्थिति की स्थापना के बाद जटायु सीता-हरण की घटना का उल्लेख करता है। उत्तर० और मालती० में प्रकृति का व्यापक विस्तार है जिससे घटनाएँ एकरूप हो गई हैं, इस कारण इनमें देश-काल की स्थिति के साथ वातावरण और घटनाओं की नियोजना मिल-जुल गई है। श्मशान में कपालकुडला सन्ध्या के दृश्य में वातावरण की व्यंजना भी सन्निहित कर देती है—

भ्योन्नस्तापिच्छगुच्छावलिभिरिव तमोवल्लरीभिन्नियन्ते

पर्यन्ताः प्रान्तवृत्त्या पयसि वसुमतीनूतने मज्जतीव ।

वास्यासंवेगविश्वग्विततवलयितस्फीसधूम्याप्रकाशं

प्रारम्भेऽपि त्रियामा तरुण्यति निजं नीलिमानं वनेषु ॥

[व्योम तमाल के फूल के गुच्छे के समान अन्धकार (तम) की वल्चरी से आच्छादित हो रहा है। पृथ्वी चारों ओर से फैले हुए अन्धकार रूपी नवनीर में डूबती जाती है। अपने प्रवेश के समय से ही रजनी, वात-चक्रों के सम्यक् वेग से चारों ओर फैलते हुए धूम्र-पुंज के समान मण्डलाकार चक्र में वन में अपने नीले अन्धकार को सघन कर रही है।] इस अन्धकार में डूबती हुई सन्ध्या के चित्र में काल के परिवर्तित रूप की स्थिति है। सौदामिनी ने नवें अंक के विष्कम्भक में विन्ध्य-पर्वत का दृश्य उपस्थित किया है—‘ऊँचे पर्वतों से सरिताओं का जल गिरकर मेघ के समान गम्भीर गर्जना करता है, उससे आस-पास के शैलों के कुंज इस प्रकार गुंजित होते हैं मानों गणेश के गले की गर्जना हो।’^{२८} इस प्रकार इस अंक की पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है। उत्तर-रामचरित के आदि और अन्त के अंकों को छोड़कर अन्य सभी अंकों का स्थल वन और आश्रम है। इस कारण कवि को स्थान तथा काल का स्थिति-बोध कराने के लिए मुक्त अवसर मिला है। वास्तव में इस नाटक के करुण-रस के साथ प्रकृति भी तादात्म्य स्थापित करती जान पड़ती है। अनुरूप वातावरण तथा आत्मीय सहानुभूति जन-स्थान तथा दंडकारण्य की प्रकृति में जैसे बिल्वी हुई हो। वासन्ती जनस्थान में बढ़ती हुई दोपहरी के साथ प्रकृति का रूप उपस्थित करती है—

कण्डूलाद्विपरागडपिशडकषणोत्कम्पेन सम्पातिभि-

धर्मसंसितबन्धनैः स्वकुसुमैरचन्ति गोदावरीम् ।

छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटस्वचः

कूजतक्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः फूले कुलायद्गुमाः ॥^{२९}

२८. माल०; अ० ५; ६ : अ० ९, ३।

२९. उत्तर०; अ० २, ९।

योजना की प्रवृत्ति स्पष्ट है। प्रियदर्शिका के प्रथक अंक के अन्त में राजा मध्याह्न का वर्णन अधिक चित्रमयता के साथ करता है—

आभात्यकौशुतापकथदिव शफरोद्वर्तनैर्दीधिकाम्भः

छत्रामं नृत्तलीलाशिथिलमपि शिखी बहभारं तनोति ।

छायाचक्रं तरुण्यां हरिणशिशुरुपैत्यालवालाम्बुलुम्भः

सद्यस्त्वक्त्वा कपोलं विशति मधुकरः कर्णपालीं राजस्य ॥^{३१}

[सूर्य की किरणों के प्रकाश पडने से वापी का जल मछलियों के आवर्तन में चमक रहा है। नृत्य की क्रीडा से शिथिल होने पर भी मयूर अपनी पूँछ को छत्र के समान फैलाता है। आलवाल के जल के आकर्षण से हरिण के बच्चे वृत्तो की छाया के नीचे एकत्र हैं। भौरे हाथी के कपोल को छोड़ अभी ही कानों के नीचे बैठ रहे हैं।] इस दृश्य में वस्तु-स्थिति का समग्र चित्र सम्मुख आ जाता है। नागानन्द के प्रारम्भ में ही मलयगिरि का दृश्य सामने आ जाना है—

माद्यत्कुञ्जरगाण्डभित्तिकषणैर्भ्रमस्त्रवच्चन्दनः

ऋन्दत्कन्दरगह्वरो जलनिधेरास्फालितो बीचिभिः ।

पादालक्तकरक्तमौक्तिकशिलः सिद्धाङ्गनानां गतैः ।

सेव्योऽयं मलायाचलः किमपि मे चेतः करोत्युत्सुकम् ॥

[यह मलायाचल रहने के योग्य है और न जाने क्यों मेरे मन को उत्सुक बना रहा है। इसमें मदमस्त हाथियों के गण्डस्थलो की रगड़ से चन्दन वृक्ष भग्न होकर खवित हो रहे हैं; इसकी गिरि-कन्दराओं में सागर की तरंगों के स्फालन की ध्वनि गूँजती है और जहाँ मुक्ता-शिलाएँ घूमती हुई सिद्ध की स्त्रियों के पैर की महावर से रजित है।] इसी प्रकार तृतीय अंक में कुसुमाकरोद्यान की स्थिति भी नाटककार दर्शकों के सम्मुख उपस्थित करता है—'इस कुसुमाकर उद्यान की, शोभा तो देखिए। एक ओर चन्दन के वृत्तो से रस टपक टपक कर लतागृह के फर्श को शीतल

कर रहा है, निकट ही मोर फुहारो की ध्वनि सुनकर नाच रहे हैं, और धारा-यन्त्रों से तीव्रता से प्रवाहित जल की धार, जो प्रवाह में बहे हुए फूलों के पराग से रक्तपीत हो गई है, वृद्धो के थावलो को भरती हुई बह रही है।^{३२} इस वर्णन में दृश्य की रूप-रेखा उभर आती है, और दर्शक अपनी कल्पना में घटना के लिए देश-काल का आधार प्रस्तुत कर लेता है।

§१२—जहाँ तक नाटको की कथा-वस्तु में प्राकृतिक घटनाओं का प्रश्न है, प्राचीन रंग-मंच पर ऐसी अवतारणा करना सम्भव नहीं था।

जैसे प्रकृति का रूप वर्णनों द्वारा प्रेक्षक के मन पर प्राकृतिक घटना

घटना के आधार के समान प्रस्तुत किया जाता था, उसी प्रकार प्रकृति की घटनात्मक योजना की स्थिति भी है। इस रूप में प्रकृति एक प्रकार से कथा-वस्तु का आधार न रह कर उसका अंग बन जाती है, इस कारण नाटकों में ऐसे कम स्थल प्रस्तुत किये गए हैं। प्रतिमा-नाटक में भरत रथ पर वेग से प्रवेश करते हैं और यह घटना उनके शब्दों में साकार होती है—

द्रुमा धावन्तोव द्रु तरथगतिक्षीणविषया

नदीवोद्वृत्ताम्बुनिर्पतति मही नेमिविवरे ।

अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं

रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥^{३३}

[रथ की तेज गति के कारण जिनके रूप स्पष्ट नहीं है ऐसे वृद्ध दौड़ते जान पड़ते हैं, पृथ्वी बटे हुए जलवाली नदी के समान मानों केन्द्रस्थ विवर में प्रवेश कर रही है; तीव्र गति के कारण आरो के सदृश्य हो जाने से चक्र की परिधि स्थिर जान पड़ती है और घोड़ों से उठाई हुई धूल आगे टीखती है पर, उसका अनुसरण नहीं कर पाती है।] इसमें

३२. नागा०, अ० १; दः अ० ३, ७।

३३. प्रति०; अ० ३; २।

रथ के वेग की घटना सामने चित्रित हो जाती है और वास्तव में यह प्रकृति का एक अंग है। कुन्दमाला में देवी सीता के प्रभाव से प्रकृति का जो रूप सब लोगो के सामने उपस्थित होता है वह कथा-वस्तु की एक घटना ही है—

उदन्वन्तः शान्ताः स्तिमिततरकल्लोलवलया
निरारम्भो व्योम्नि प्रकृतिचपलांऽप्येष पवनः ।
प्रवृत्ता एतस्मिन्निभृततरकर्या गजघटा
जगत् कृत्स्नं जातं जनकतनयोक्ताववहितम् ॥^{३४}

[उस समय समुद्र तरंगो के कोलाहल के निश्चल होने से शान्त हो गया, प्रकृति से चंचल पवन आकाश में स्पन्दनरहित हो गया; समस्त दिशाओं के दिग्गज स्तब्ध करण हो कर खड़े हो गये और इस प्रकार सारा संसार सीता को सुनने के लिए निस्तब्ध हो गया।] प्रकृति की इस घटना-स्थिति में अलौकिक भावना सन्निहित है।

§ १३—कालिदास वास्तव में प्रकृति के कवि हैं। उनके काव्य में और वैसे ही नाटको में प्रकृति का सघन विस्तार है। उनकी कल्पना में मे प्रकृति और मानव जीवन एक रूप हो गये हैं, कालिदास उनकी सौन्दर्य-सृष्टि से प्रकृति के रंग-रूपों को न निकाला जा सकता है और न प्रकृति के सौन्दर्य से मानवीय प्राणों का स्पन्दन ही। कालिदास के नाटकों में भी प्रकृति और मानव-जीवन इसी प्रकार घुल-मिल गये हैं। देश-काल की पार्श्वभूमि के अतिरिक्त कभी प्रकृति घटना का रूप भी ग्रहण कर लेती है। अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रारम्भ में ही भागते हुए हरिण का दृश्य मृगया की घटना का अंग है—‘बार बार पीछे की ओर इस रथ को एकटक देखता हुआ सुन्दर लगने वाला हरिण, बाण लगने के भय से पिछले आधे शरीर को सिकोड़ कर आगे के भाग से मिलाता हुआ, थकावट के कारण जिसके

खुले हुए मुख से आधी चबाई हुई कुशा मार्ग में गिरती जा रही है, देखो इतनी लम्बी छलॉगे भर रहा है कि जान पड़ता है पैर पृथ्वी पर पड ही नहीं रहे हैं, मानो आकाश मे उडा जा रहा है ।' इसो प्रकार प्रथम अंक के अन्त मे नेपथ्य से ऐसी ही घटना की सूचना मिलती है—

तीव्राघातप्रतिहततरुः स्कन्धलग्नैकदन्तः

पादाकृष्टव्रततिवलयसङ्गसजातपाशः ।

मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारङ्गयूथो

धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः ।

[और देखो—अपनी करारी टक्कर से एक वृद्ध उखाड लिया है जिसमें उसका एक दाँत फँसा हुआ है और टूटी हुई लताएँ फन्दे के समान उसके पैरों मे उलझी हुई हैं, ऐसा राजा के रथ से डरा हुआ यह जंगली हाथी हमारी तपस्या के लिए साक्षात् विघ्न बना हुआ हरिणों के मुँड को तितर-बितर करता हुआ तपोवन में घुसा आ रहा है ।] चौथे अंक में कण्व के शिष्य लता-वृद्धों द्वारा आभूषण दिये जाने का उल्लेख करते हैं । यह इस अंक के प्रकृति के आत्मीय वातावरण के अनुरूप है । सातवे अंक मे आकाश मार्ग से लौटते हुए राजा दुष्यन्त मातलि से रथ की गति का वर्णन करता है । यह दृश्य स्थिति के रूप में भी घटना का अंग ही माना जायगा—

अयमरविवरेभ्यश्चातकैर्निष्पतद्भि-

ह्रिभिरचिरभासां तेजसा चानुजिप्तैः ।

गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणां

पिशुनयति रथस्ने सीकरङ्गिन्नेमिः ॥^{३५}

[यह तो जल-कणों से भीगा हुआ आप के रथ का धुरा ही बतला रहा है कि हम जल-भरे मेघों के ऊपर से चले जा रहे हैं; जिसके घोड़े

विजली की चमक से चमक उठते हैं और पहियों के अरों के बीच से निकल-निकल कर चातक इधर-उधर उड़ते फिर रहे हैं।] विक्रमोर्वशीय के चौथे अंक का समस्त वातावरण और उसकी समस्त घटना प्रकृति को लेकर ही है। इस अंक में एक ओर पार्श्वभूमि में प्रकृति की प्रतीकात्मक घटना का उल्लेख नाटककार करता चलता है। हंस-हंसी, हाथी तथा सुअर आदि की क्रीडाओं का जो उल्लेख नेपथ्य से किया गया है, वह एक प्रकार से इस अंक की घटना का प्रतीक-चित्र है। सहजन्धा और चित्रलेखा के प्रवेश के साथ कवि—‘अपनी सखी के दुःख में घबराई हुई और एक दूसरी को प्यार करने वाली आँखों से आँसू बहाती हुई, तालाब के तीर पर बैठी हुई सिसकती हुई दो हंसिनियों’ का उल्लेख नेपथ्य में कर देता है। इस प्रकार यह रंग-मंच की घटना का प्रकृति की घटना के साथ सामंजस्य है। राजा पुरुरवा के विलाप के साथ हाथी का यह उल्लेख भी ऐसा ही है—

इद्भारहिभ्रो अहिभ्रं दुहिभ्रो बिरहाणुगभ्रो परिसंथरभ्रो ।

गिरिकाण्णण् कुसुमुज्जलण् राजजूहवई बहुमीण्णगई ॥^{३६}

[प्रेमिका के विरह से अत्यन्त दुःखी होकर यह हाथी फूलों से उज्जल इस पहाड़ी वन में धीरे-धीरे घूम रहा है।] इसके अतिरिक्त राजा उद्विग्न मनःस्थिति में अनेक प्रकृति के उपकरणों को सम्बोधित करता है, वे कभी-कभी इस अंक में घटना के पात्र के समान जान पड़ते हैं। इस अंक में अनेक प्रकृति के चित्र उपस्थित होकर घटना के समान जान पड़ते हैं—

अस्यान्तिकमायान्ती शिशुना स्तनपायिना मृगी रुद्धा ।

तामयमनन्यदृष्टिभुं भ्रम्रौचो विलोकयति ॥^{३७}

३६. विक्र०; अ० ४; २, १४। परन्तु इस भाग के कालिदास कृत होने में विद्वानों को सन्देह है।

३७. विक्र०; अं० ४, ५८।

[हरिण को देखकर राजा कहता है—इसके पास जो इसकी हरिणी चली आ रही थी, जिसे दूध पीनेवाले मृगछौने ने बीच में ही रोक लिया है उसकी ओर आँख लगाए यह एक-टक देख रहा है ।] इस प्रकार राजा शब्द-चित्रों से दर्शकों के सामने प्रकृति की पूर्ण घटना-स्थिति उपस्थित करता है ।

§१४—भवभूति के मालतीमाधव में प्रकृति को व्यापक रूप से स्थान मिला है, परन्तु उसकी कथावस्तु में प्रकृति का घटना के रूप में स्थान

नहीं है । महावीरचरित तथा उत्तररामचरित दोनों

111 भवभूति

की कथावस्तु ऐसे प्रयोगों के उपयुक्त है । लक्ष्मण दिव्यास्त्रों के प्रकट होने के दृश्य को उपस्थित करते हैं—‘अचानक ही कनक के रंग से दिशाएँ उत्तत हो उठी हैं, कपिल हो जाने के कारण दिवस सन्ध्या में तिरोहित होता उद्भासित हो रहा है, दिव्यास्त्र से व्याप्त आकाश निरन्तर चमकती हुईं बिजली से पिशाग वर्ण हुआ ऐसा जान पड़ता है मानो दीप्त ध्वजा समूह से आच्छादित हो गया है ।’ इस घटना का रूप अलौकिक है । पर यह अलौकिकता वस्तु-स्थिति से सम्बंधित नहीं, वरन् अस्त्र की प्रभावशीलता के कारण है । आकाश में इस प्रकार का परिवर्तन वैसे स्वाभाविक है, लेकिन अस्त्र के कारण होने से यह अलौकिक हो गया है । जटायु के आगमन की सूचना देते समय सम्पाति प्रकृति की एक ऐसी घटना का उल्लेख करता है, जो वस्तु के रूप में स्वाभाविक है पर अपनी स्थितियों में अलौकिक है—

दूरोद्ग्रे लिखतवाडवस्य जलधेरुल्लोलमिन्नान्भसो

रन्ध्रैरापतितेन वेगमरुता पातालमाध्मायते ।

यद्वै कुण्डवराहकण्ठकुहरस्फारोच्चलज्ञैरव-

ध्वानोच्चगडमकाण्डकालरजनीपर्जन्यवद्गर्जति ॥^{3८}

[अत्यधिक उद्वेलित वड़वाग्नि से अत्यंत चलित और भिन्न स्थानों से

हटा हुआ समुद्र का जल (जटायु के पखों की) वायु के वेग से छिद्रों के भरने से पाताल तक व्याप रहा है। पाताल में जो बराह है उसके मुख से निकली हुई कठोर और भयंकर ध्वनि ऐसी जान पड़ती है मानों काल-रात्रि में प्रलय मेघ गर्जन कर रहा है।] यह घटना की सूचना नाटक की कथावस्तु का अंग है, इसलिए यह घटना ही स्वीकार की जायगी। उत्तररामचरित का बहुत बड़ा अंश प्रकृति के व्यापक क्षेत्र से सम्बंधित है। जनस्थान में जो घटनाएँ अवतरित हुई हैं उनको हम प्रकृति से अलग नहीं कर सकते। उसमें जो प्रकृति पात्र के रूप में आई है, चित्रण के रूप में उपस्थित हुई है या वातावरण बनकर फैनी है, वह सब घटना का अंग बन गई है। इस अंक की घटना प्रकृतिमयी है और प्रकृति घटनामयी है। प्रकृति स्वयं वनदेवी वासन्ती के रूप में राम की करुण-स्थिति में उन्हें सान्त्वना देती है। तमसा और मुरला नदियों सीता की सखी के रूप में उन्हें सँभालती हैं। और इसके साथ जनस्थान की सारी प्रकृति राम-सीता के प्रेम की साक्षी है। इसमें राम-सीता द्वारा पाले गये हाथी का वृण घटना की योजना ही है—

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु सम्पादिताः

पुण्यपुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः।

सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन-

र्यत् स्नेहादनराखनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम् ॥

[यह करो क्रीड़ा भाव से मृणाल के खण्ड के कोरों से करिणी को खिलाता है, फूले हुए कमल से सुवासित जल को सूँड़ में लेकर पिलाता है; जल-कणों से बार-बार उसके शरीर का सिंचन करता है और पत्तों के साथ मृणाल-दण्ड को लेकर स्नेह-पूर्वक उस पर छत्र लगता है।] इस प्रकार यह अंक प्रकृति और जीवन को एक-रूप उपस्थित करता है। आगे चल कर युद्ध के वर्णन में प्रकृति घटना के रूप में उपस्थित हुई है। इसमें प्रकृति का अलौकिक रूप जान पड़ता है। चन्द्रकेतु जम्भकासुर के प्रभाव का वर्णन करता है—‘निश्चय ही यह अत्यन्त

तेजरूप जृम्भकास्त्र का प्रयोग है। चारों ओर अन्धकार तथा विद्युति-प्रकाश साथ फैल रहा है, जिससे आँख चौंधियाती है और दृष्टिगोचर कुछ नहीं होता। सब लोग चित्र लिखे से बेहोश हो गये हैं।' अन्यत्र विद्याधर और विद्याधरी युद्ध का वर्णन करते हैं, जिसमें बाणों के प्रभाव के साथ प्रकृति की घटना-स्थिति का भी उल्लेख है—

हन्त ! हन्त ! भो भोः ! सर्वमतिमात्रं दोषाय यत् प्रबलवातावलि-
 चोभगम्भीरगुणगणायमानमेघमेदुरान्धकारनीरन्धनिबद्धम् एकबारविश्व-
 प्रसनविकटविकरालकालकण्ठमुखकन्दरविवर्त्तमानमिव युगान्तयोग-
 निद्रानिरुद्धसर्वद्वारनारायणोदरनिविष्टमिव भूतजातं प्रवेपते । ३९

[हाय हाय, अरे रे ! अति सब की बुरी होती है। देखो, बड़े प्रबल बगूले से क्षुब्ध हुए सघन बादलों के अंधेरे से ससार बँधा हुआ जान पड़ता है, और विश्व को एक ही बार लीलने के लिए कराल काल के मुँह में चक्कर खाता हुआ सा प्रलय के समय योग-निद्रा से रोके हुए चारों ओर से बन्द नारायण के पेट में पड़ा हुआ सा काँप रहा है।]

§ १५—श्री हर्ष के नाटकों में प्रियदर्शिका तथा रत्नावली दोनों की कथावस्तु राजप्रासादों से अधिक सम्बंधित है तथा इनमें राजाओं का प्रेम प्रसंग है। इस कारण इनमें प्रकृति तथा प्राकृतिक घटनाओं के लिए विशेष स्थान नहीं रहा है।

१४ श्रीहर्ष
 रत्नावली के चौथे अंक में अग्निकाण्ड का वर्णन घटना के रूप में आवश्यक है—‘अन्तःपुर में अग्नि के प्रज्वलित होने से उसकी ज्वाल-मालाओं से भवन सुनहले शिखरों से शोभित हो गया है, मुलसती हुई उपवन के वृक्ष-समूह की चोटियों से अग्नि की ज्वाला का पता चल रहा है; और धुआँ के छा जाने से क्रीडाशैल श्याम जलधर के समान लगता है।’^{४०} परन्तु नागानन्द में अपेक्षाकृत प्रकृति का विस्तार

३९. उक्त०; अ० ३, १६ : अ० ५; १३ : अ० ६, पूर्व ६।

४०. रत्ना०, अ० ४; ७८।

अधिक है। इसका घटनास्थल वन-पर्वत है और गरुड़ के वर्णन के साथ प्रकृति घटना के रूप में अवतरित होती है। गरुड़ के चरित्र के अनुरूप यह घटना-स्थिति अलौकिक है। जोमूतवाहन गरुड़ को आता देखकर उसका वर्णन करता है—‘पावस के मेघों के समान अपने पखों से आकाश को आच्छादित करते हुए, अपने वेग से सागर के जल को तट पर गिरा कर मानों पृथ्वी को प्लावित करते हुए, सहसा कल्पान्त की शका उत्पन्न करते हुए जिनको देखकर दिग्गज भयभीत हो गये, उसने अपने बारह आदित्यों के समान कान्तिवाले शरीर से दसों दिशाओं को कपिश कर दिया।’ इस वर्णन में स्थिति में स्वतः उतनी अलौकिकता नहीं है जितनी उसकी वर्णना में। ऐसी ही स्थिति की ओर शंखचूड़ सकेत करता है। उसके सामने पर्वत की चोटी पर गरुड़ बैठा है—

कुर्वाणो रुधिराद् चञ्चुकषयैर्द्रोणीरिवाद्ग्रेः शिखाः
प्लुथोपान्तवनान्तरः स्वनयनज्योति शिखासंचयैः ।

मज्जद्वज्रकठोरघोरनखरप्रान्तावगाढावनिः

शृङ्गाग्रं मलयस्य पन्नगरिपुदूरादयं दृश्यते ॥ ६१

[लं.हू लगी हुई अपनी चांच के मघर्षण से पर्वत शिला को द्रोणी बनाता हुआ; अपने नेत्रों की ज्योति के समूह से पास के वनों को झुनसाता हुआ तथा अपने वज्र-कठोर पजों को (नायक को दबोच कर) पृथ्वी पर गडांता हुआ सर्पों का शत्रु गरुड़ सामने मलय पर्वत के शिखर पर दिखाई देता है।] इस चित्र में भी घटना का रूप स्वाभाविक है पर उसका वर्णन अलौकिक जान पड़ता है।

§ १६—नाटको में देश-काल की स्थिति प्रत्यक्ष करने के अतिरिक्त प्रकृति वातावरण के रूप में भी उपस्थित हुई है। परन्तु ऐसा मुक्त वातावरण वाले नाटकों में ही सम्भव हुआ है। जैसा वातावरण (1) अनुरूप कहा गया है राजप्रासादों के अन्दर जिन नाटकों की कथावस्तु विकसित हुई है उनमें प्रकृति को अधिक स्थान नहीं मिला

है। वातावरण के रूप में प्रकृति की अवतारणा के लिए अधिक स्वच्छन्द भूमिका की आवश्यकता है। कालिदास के शाकुंतल में यत्र-तत्र सहज-अनुरूप वातावरण प्रस्तुत किया गया है। चौथे अंक में प्रातःकाल के उल्लेख में शाकुंतला की विदा का संकेत छिपा है—‘एक ओर औषधियों के पति चन्द्रमा अस्ताचल को चले जा रहे हैं और दूसरी ओर अपने सारथी अरुण को आगे लिए हुए सूर्य निकल रहे हैं।’ और कचुकी द्वारा वसंत के इस वर्णन में दुःख के वियोग-जन्य दुःख की भूमिका वातावरण बन गई है—

चूतानां चिरनिर्गतापि वल्लिका बध्नाति न स्व रजः

संनद्धं यदपि स्थित कुरवकं तत्कोरकावस्थया ।

वयंषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिन्नानां रूतं

शङ्कै संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणाधकृष्टं शरम् ॥४२

[आम की मजरी निकल आई है, पर उनमें पराग अभी तक नहीं आ पाया है। फूलने के लिए तत्पर कुरवक का फूल अभी तक अस्फुटित कली के रूप में ही है। शिशिर के बीतने पर भी कोयल की कूक उसके गले तक आकर ही रुक गई है। कामदेव भी आने तूणीर से बाण निकालता है पर भयभीत होकर उसीमें रख देता है, छोड़ नहीं पाता।] प्रकृति की इस स्थिति में मानव के दुःख का वातावरण छिपा हुआ है। ऐसे ही अनुरूप वातावरण की स्थापना कुन्दमाला में नैमिश की हुई है। इस शांत आश्रम में

अस्मिन् कपोलमदपानसमाकुलानां

विघ्नं न जातु जनयन्ति मधुवतानाम् ।

सामध्वनिश्रवणदत्तमनोऽवधान-

निष्पन्दमन्दमदवारणकर्णतालाः ॥४३

४२. अभि०, अ० ४, २ : अ० ६, ४।

४३. कुन्द०; अ० ४, ९।

[आँख मूँदे हुए, स्तब्ध-कर्ण, सन्द-हीन, अपने गालों पर मंडराते मधुपीने में मग्न, भ्रमरो की अभिलाषाओं को भग्न न करते हुए मत्त मत्तग यहाँ सामगान सुनने में लवलीन हैं ।] भवभूति के मालतीमाधव और उत्तररामचरित में प्रकृति का वर्णन वातावरण के रूप में हुआ है, पर यह सहज रूप में है। मालतीमाधव के नवे अंक में घाटी के वर्णन में एक-दो स्थलों पर अनुरूप वातावरण है—

वानीरप्रसवैर्निकुञ्जसरितामासक्तवासं पयः

पर्यन्तेषु च यूथिकासुमनसामुज्जृम्भितं जालकैः ।

उन्मीलत्कुटजप्रहासिषु गिरैरालम्ब्य सानूतितः

प्राग्भागेषु शिखण्डिताण्डवविधौ मेदैर्वितानायते ।^{४४}

[बेत के निकुंज से फूलों के झरने से सरिता का पानी सुवासित हो गया है। नदी का तट जुही के पुष्प-समूह से विकसित है। गिरि भागों में विकसित कुटज-पुष्पों से हँसती हुई चोटियों का आलम्बन किये हुए मेघ मयूगों के नृत्य के लिए मण्डप के रूप में फैल रहे हैं ।] श्रीहर्ष की रत्नावली में विदूषक अनुरूप प्रकृति का वर्णन इस प्रकार करता है—‘इस मकरन्द उद्यान ने तुम्हारे स्वागत के लिए रेशमी पटवितान फैलाया है। मलय पवन से दौलित आम की मंजरी का मकरन्द उसमें फैल रहा है, कोकिल के मधुर-स्वर तथा भ्रमरो के गुंजार के रूप में उसमें सगीत चल रहा है ।’^{४५} इसी प्रकार नागानन्द के प्रारम्भ में तपोवन का वर्णन है। इसका शांत वातावरण समस्त कथा-वस्तु के अनुरूप है—

४४. माल०, अ० ९, १५ इसमें पौर्व्वे अंक के १९ वे श्लोक में इमशान का अनुरूप

वानावरण प्रस्तुत किया गया है—‘गुञ्जत्कुञ्ज...पारेश्मान मरित्।

४५. रत्ना०, अ० १; पूर्व १८।

मधुरमिव वदन्ति स्वागतं भृङ्गशब्दै-
नतिमिव फलनत्रैः कुर्वतेऽमी शिरोभिः ।

मम ददत इवार्ध्यं पुष्पवृष्टिं किरन्तः

कथमतिथिसपर्यां शिञ्जिताः शाखिनोऽपि ॥ ४६

[देखो, किस प्रकार इन वृद्धों को अतिथियों के सत्कार की शिक्षा दी गई है। ये भ्रमर-शब्दों के मिस मधुर स्वागत कर रहे हैं, फलों से नमित शाखाओं से मानों वे सिर झुका कर नमस्कार कर रहे हैं और फूलों को बिलखा कर मुझे अर्ध्य दे रहे हैं।] प्रकृति का यह रूप एक प्रकार से भावों के अनुरूप है।

§ १७—जब वातावरण में किसी प्रकार की व्यंजना नहीं रहती है, उस समय सहज रूप में उसका चित्रण होता है। यह वर्णना देश-काल तथा घटना के समान वातावरण की सृष्टि मात्र करती है। वातावरण के इस रूप में वस्तु से किसी प्रकार का सम्बन्ध परिलक्षित नहीं होता। कालिदास के सहज वातावरण में भी किसी प्रकार की कथात्मक अनुरूपता मिल जाती है। मृच्छकटिक के आठवें अंक में देश-काल के साथ सहज वातावरण का भी प्रस्तुत किया गया है। दोपहर का वर्णन शकार इस प्रकार करता है—

शिलशि मम शिलीणे भाव । शुज्जश पादे,

शउणि-खग-विहङ्गा लुक्खशाहाशु लीणा ।

णल-पुल्लिश-मनुशशा उणहदीहं शशन्ता

घल-शल्लण-णिशणा आदबं शिव्वहन्ति ॥ ४७

[सूर्य की किरणों मेरे सिर पर आकर पड़ीं, अनेक प्रकार के पक्षी वृद्धों की शाखाओं में छिप रहे, सभी लोग गर्मों के कारण हाफते हुए घरों में छिप कर दोपहर के कठिन धाम को बिता रहे हैं।] इस चित्रण

४६. नागा०; अ० १, ११ ।

४७. मृच्छ०; अ० ८; ११ ।

में काल का रूप वातावरण बन कर फैल गया है, परन्तु कथा-वस्तु का कोई संकेत इसमें न होने से यह सहज है। कुन्दमाला के प्रथम अंक में लक्ष्मण गंगा के तट का वर्णन सहज रूप में करते हैं। इस चित्र में प्रकृति अपने आन में सहज है, वह कथा-वस्तु के प्रति पूर्ण रूप से निर्वेच है—

आदाय पङ्कजवनान्मकरन्दगन्धान्

कर्षक्षितान्तमधुरान् कलहंसनादान् ।

शीतास्तरङ्गकणिका विकिरन्नुपैति

गंगानिलस्तव सभाजन काङ्क्षयेव ॥^{४८}

[कमल-वनो की मकरन्द-गंध को लेकर, कलहंस के समूह के मधुर नाद को वहन करता हुआ, तरंगों से उच्छलित शीतल जल के छींटों को बिखेरता हुआ पवन तुम्हें प्रसन्न करने को गंगा की ओर से प्रवाहित हो रहा है ।] ऐसे चित्रों के लिए नाटको में अधिक स्थान नहीं मिलता है। परन्तु कभी कभी नाटककार घटना आदि के समान मुक्त वातावरण प्रस्तुत कर देता है। नागानन्द में समुद्र के तट के वर्णन में वातावरण को ऐसी उद्भावना है—

उन्मज्जज्जलकुञ्जरेन्द्रभसास्फालानुबन्धोद्धतः

सर्वाः पर्वतकन्दरोदरभुवः कुर्वन् प्रतिध्वानिनीः ।

हृच्चैरुच्चरति ध्वनि श्रुतिपथोन्मथी यथायं तथा

प्रायः प्रोद्धसंख्यशङ्खधवला वेल्लेयमागच्छति ॥^{४९}

[क्योंकि यहाँ पानी से निकलते हुए जल-हस्तियों की टक्कर तथा स्फालन से बढ़ा हुआ कानों के परतों को फाड़ता हुआ शोर पर्वत की कन्द्राओं को प्रतिध्वनित कर रहा है, इससे जान पड़ता है चक्कर लगाते हुए असंख्य शंखों से धवलित ज्वार आ रहा है ।] भवभूति के नाटको में

४८ कुन्द०, अ० १; ५।

४९ नागा०; अ० ४; ३।

प्रकृति के स्थल अधिक हैं, साथ ही वे प्रकृति की सघन स्थिति के चित्रण में अधिक सफल हुए हैं। उनके वातावरण में यही सघनता प्रत्यक्ष हुई है। इस वातावरण में वस्तु-स्थिति की अनुरूपता की अपेक्षा सहज प्रकृति को उपस्थिति करने का प्रयास अधिक है। मालतीमाधव में श्मशान का चित्र भयानक है और वह घटना-स्थिति के अनुरूप अवश्य है। परन्तु कवि की प्रवृत्ति प्रकृति की स्थिति को सघनता के साथ सहज रूप में धित्रित करने की है। मालतीमाधव में विन्ध्याचल तथा उत्तररामचरित में दरडकवन का वर्णन इसी प्रकार हुआ है। गुफाओं का यह वर्णन दोनों में एक ही है—‘यहाँ पर्वत की खोहों में भालू के बच्चों के गुरुराने का नाद प्रतिध्वनित होकर गुंज रहा है और मदमत्त हाथियों द्वारा विदीर्ण सल्लकी के वृक्षों का गाठों की शीतल, कड़ुई और कसैली गंध फैल रही है।’ उत्तररामचरित में कवि सघन वातावरण की सहज अवतारणा इस प्रकार करता है—

कूजकूजकुटीरकौशिकघटाघुत्कारवत्कौचक-

स्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौञ्चावतोऽयं गिरिः ।

एतस्मिन् प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्गेजिताः कूजितै-

रुद्धेवलन्ति पुराणचन्दनतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः ॥ ५०

[यह क्रौंचावत पर्वत है। इसके सघन बाँसों के कुंज अपने घोंसलों में बुधुआते हुए उल्लुओं से गुंजित है और उससे भयभीत होकर कौए चुप हैं और यहाँ इधर-उधर उड़ते हुए मोरों के कूजन को सुनकर साँप बरगद की पुरानी कोटरों में व्याकुल होकर काँपते हैं।] इस चित्र में स्थितिओं के साथ ध्वनियों के संयोग से वातावरण की सघनता का निर्देश किया गया है।

§ १८—नाटकों में प्रकृति के भावात्मक चित्रण के लिए अधिक अवसर नहीं मिलता। पात्रों द्वारा उल्लिखित प्रकृति में यत्र-तत्र ही

भावात्मक आरोप मिलता है। परन्तु अपनी प्रकृति के अनुसार कुछ नाटकों में भावात्मक वातावरण प्रस्तुत करने वाले चित्र मिलते हैं। इसमें कालिदास का विक्रमोर्वशीय तथा भवभूति का मालतीमाधव प्रमुख हैं। शाकुतल के पाँचवें अंक में नैपथ्य का गीत भावात्मक प्रकृति के प्रतीक चित्र के रूप में है—

अहिणवमहुलोलुबो भवं

तह परिचुंबिअ सुअमंजरि ।

कमलवसइमेत्तणिण्वुदो

महुअर ! विरहरिओ सि णं कहं ॥ ५१

[हे नये नये मधु के लोलुप मधुकर ! एक बार इस रसाल की मधुर मजरी को चूम कर तुमने कमलकोश में निवास पाकर इसे कदो एकदम कैसे भुला दिया ।] इसमें प्रिय की निष्ठुरता के प्रति उपालम्भ की स्पष्ट व्यंजना है। गिछले तेरहवें अनुच्छेद में विक्रमोर्वशीय के चौथे अंक के प्रकृति तथा मानव जीवन के सामजस्य का उल्लेख किया गया है। इस अंक में प्रकृति का सघन वातावरण भावों से अनुप्राणित है। पृष्ठभूमि से जिन प्रतीक चित्रों का उल्लेख किया गया है, वे समस्त चित्र इस अंक को भावपूर्ण वातावरण प्रदान करते हैं। चित्रलेखा और सहज्या की मानसिक स्थिति तथा वेदना को व्यक्त करते हुए दो हसियों का उल्लेख किया जाता है—‘एक दूसरे को प्यार करने वाली दो हंसनियाँ अपनी सखी के दुःख में घबराई हुई आँखों में आँसू भरे हुए तालाब के तीर पर बैठी सिसक रही हैं।’ और इसी प्रकार राजा के वियोग दुःख को व्यक्त करने वाला हंस का चित्र है—

हिअआहि अपिअ दुक्खओ सरवरए धुदपक्खओ ।

वाहोग्गअ णअणओ तम्मइ हंसजु आणओ ॥

[यह युवा हंस अपनी प्रेमिका के वियोग में पंख फड़फड़ाता हुआ

आँखों में आँसू भरे सरोवर के किनारे बैठा सिसक रहा है।] राजा के सामने प्रकृति उसकी वेदना से अपरिचित अपने आप व्यस्त है— 'सुगन्ध से भूमनेवाले भ्रमरों के गान के साथ कोयल की बोली में बजनेवाली बंसियों की ध्वनि से गूँजते हुए पवन से सुन्दरता से अनेक प्रकार के हाव-भाव के साथ नाचता हुआ कल्प-वृक्ष अपने कोमल पत्ते हिला रहा है।' नायक स्वयं भी अपने सामने की अपने आप में सुग्ध प्रकृति का वर्णन करता है—

आलोकयति पयोदान्प्रबलपुरोवातताडितशिखण्ड ।

केका गर्भेण शिखी दूरोन्नमितेन कण्ठेन ॥^{५८}

[प्रबल पवन से छितराई हुई कल्लेगीवाला यह मोर अपना कण्ठ ऊँचा उठा कर केका करता हुआ सामने बादलो को देख रहा है।] प्रकृति का यह उल्लास मानवीय वेदना के विरोध में व्यक्त हुआ है। कुन्दमाला में गगा के तट-प्रदेश में लक्ष्मण प्रकृति को अपनी भावशील स्थिति में उपस्थिति करते हैं— 'शीतल समीर चचल तरंगो को उठा रहा है। किसी स्थान पर कल-हंस अपने कलकण्ठ से मनोहर गा रहे हैं और छाया सखी के समान गले मिलती हुई सुख दे रही है। इस प्रकार इस वन में अकेली होने पर भी आप परजिनो से युक्त जान पड़ती हैं।' यह प्रकृति मनःस्थिति के अनुकूल है, परन्तु आगे की घटना का करुण संकेत भी छिपाये हुए है। तीसरे अंक में लक्ष्मण दुःखी राम के मन को सान्त्वना देने के लिए उनका ध्यान आनन्दमग्न प्रकृति की ओर आकर्षित करते हैं—

सरकतहरितानामम्भसामेकयोनि-

मंदकल कलहंसीगीतरभ्योपकण्ठ ।

नखिनवनविकासैर्वासयन्ती दिगन्तान्

नरवर पुरतस्ते दृश्यते गोमतीयम् ॥^{५३}

५२. विक्र०, अ० ४, ३, ६, १२, १८ ।

५३. कुन्द०, अ० १, ७; अ० ३; ५ ।

[मरकत-मणि के समान हरित मनोहर जलवाली, और जिसके तटों को मद्रमस्त कल-हंस सुन्दर निनादित कर रहे हैं, ऐसी गोमती अपने विकसित कमलों के परिमल से समस्त दिशाओं को महकाती हुई आप के सामने दृष्टिगोचर हो रही है ।] इस प्रकृति के रूप में भावशीलता प्रत्यक्ष है । मृच्छकटिक में उपवन, वर्षा, और मध्याह्न का विस्तृत वर्णन है । परन्तु इन वर्णनों में भावशीलता के स्थान पर उद्दीपन की भावना अधिक प्रधान है । वर्षा के वर्णन में उद्दीपन के साथ कहीं सहज भावशीलता की व्यञ्जना भी है । वसंतसेना प्रकृति के इस दृश्य की ओर संकेत करती है—

पह्येहीति शिखण्डिनां पटुतरं केकाभिराक्रन्दितः
 प्रोड्डीयेव वलाकथा सरभसं सोत्कण्ठमालिङ्कितः ।
 हंसैरुज्ज्वलपङ्कजैरतितरां सोद्वेगमुद्गीहितः ।
 कुर्वन्नजनमेचका इव दिशो मेघः समुत्तिष्ठते ॥५४

[आओ, आओ कहकर मयूरो के केकास्वर से बुलाया जाता हुआ; हर्ष के साथ उत्सुकता से आकाश में उड़ती हुई बगुली से आलिंगन किया जाता हुआ मेघ कमल को छोड़ कर व्याकुल हंस द्वारा देखा जाता हुआ, दिशाओं को अंजन के समान श्याम करता हुआ उठ रहा है ।] प्रकृति के इस चित्र में भावारोप है ।

क—श्रीहर्ष के नाटकों में रत्नावली तथा प्रियदर्शिका में प्रकृति व्यापक वातावरण के लिए प्रस्तुत नहीं होती । प्रियदर्शिका के इस सन्ध्या चित्र में जो मंदिन वातावरण की उद्भावना श्रीहर्ष और भवभूति है उसमें भाव-व्यञ्जना भी अन्तर्निहित है । राजा सन्ध्या के साथ अपने हृदय का भावात्मक तादात्म्य स्थापित करता है—

हृत्वा पद्मवनद्युति प्रियतमेवेयं दिनश्रीर्गता
 रागोऽस्मिन्मम चेतसीव सवितुर्बिम्बेऽधिकं लक्ष्यते
 चक्राह्नोऽहमिव स्थितः सहचरीं ध्यायन्नलिन्यास्तटे

संजाता सहसा ममेव भुवनस्याप्यन्धकारा दिशः ॥ ५५

[कमल-वन की सुन्दरता का अपहरण करके प्रियतमा के समान यह दिन की श्री चली गई है। मेरे हृदय के समान इस समय सूर्य के बिम्ब में लालिमा (राग) अधिक दिखाई देती है। मेरे समान ही चक्रवाक सरोजनों के तट पर अपनी सहचरी का ध्यान कर रहा है। और मेरे समान ही सम्पूर्ण दिशाओं में सहसा अंधकार फैल गया है।] मानव जीवन के समानान्तर प्रकृति में भी भावों का व्यापार परिलक्षित हो रहा है। पर रत्नावली में उद्यान-वर्णन के प्रसंग में एक दृश्य मानवीय मधुकीड़ा का अनुकरण करता है—‘उद्यान के वृक्ष वसत के स्पर्श से मदमस्त जान पड़ते हैं। उनके किसलयों की आभा मूँगा के अंकुर के समान जान पड़ती है। भ्रमरों की मधुर गुंजार से जान पड़ता है मदसेवी की अस्पष्ट ध्वनि हो और मलय पवन के झोंकों से उनकी शाखाएँ झूम रही हैं।’ इस चित्र में भावारोप नहीं है, वरन् भाव-स्थिति के प्रभाव का वर्णन है। नागानन्द के वसंतवाग के वातावरण के साथ ऐसी ही मधुकीड़ा का भावशील आरोप है—

अमी गीतारम्भैमुखरितलतामण्डपभुवः

परागैः पुष्पाणा प्रकटपटवास्रव्यतिकराः ।

पिबन्तः पर्याप्तं सह सहचरीभिर्मधुरसं

समन्तादापानोत्सवमनुभवन्तीव मधुपाः ॥ ५७

[गीत के आरम्भ होने से लतामण्डप को मुखरित कर तथा

५५. प्रिय०, अ० ३, १० ।

५६. रत्ना०, अ० १; १८ ।

५७. नागा०, अ० ३, ८ ।

पुष्पो के पराग से नाना प्रकार के विचित्र वस्त्र धारण कर मधुकर, मानों अपनी सहचरियों के साथ पर्याप्त मधुरस पीकर चारों ओर आपानक का उत्सव मना रहे हैं।] भाव-व्यंजना के स्थान पर मधु-क्रोड़ाओं के वर्णन की प्रवृत्ति विकसित होती गई है, ऐसा कई बार उल्लेख किया जा चुका है। भवभूति के नाटको में प्रकृति की सघन अवतारण के साथ कुछ स्थलों पर भावात्मक व्यंजना की गई है। भवभूति की दृष्टि प्रकृति के प्रति अधिक सूक्ष्म है, इस कारण इन व्यंजनाओं में आरोप नहीं है और भावशीलता व्यापक रूप से व्यजित हुई है। महावीरचरित में श्रवण द्वारा वर्णित पम्पासर के निकट को भूमि तथा उत्तरगमचरित में शम्बूक द्वारा वर्णित जनस्थान के दृश्य में प्रकृति भाव मग्न है—यहाँ मत्त पक्षियों से आक्रान्त वानीर की लताओं से गिरे हुए पुष्पों से सुगंधित शीतल और निर्मल जलवाली तथा अत्यन्त फलो के भार से श्यामायमान जामुन के निकुञ्जों में गिरने से शब्दायमान करती हुई निर्भरिणियाँ प्रवाहित हो रही हैं।^{५९} इस दृश्य-चित्र में भाव के आरोप के स्थान पर व्यापक उल्लास की व्यंजना मात्र अन्तर्निहित है। ऐसी ही व्यंजना राम द्वारा वर्णित जनस्थान की प्रकृति में है—

एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा-

स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थानानि ।

आमञ्जुवञ्जुबलतानि च तान्यमूनि

- नीरन्ध्रवीनचिुलानि सरित्तानि ॥^{५९}

[मयूर कुंजन करते हैं जहाँ यह वही गिरि है, और ये वन के वे ही भाग हैं जहाँ उन्मुक्त हरिण विचरते हैं और अशोक के कुंजों में सघनता से छाई हुई वानीर की लताओं वाले ये वे ही सरिता के तट हैं।] अपने आप में तन्मय प्रकृति के इस रूप के साथ राम के वनवास के

५८. महा०, अ० ५; ४०। उत्त०, अ० २, २०।

५९. उत्त०; अ० २; २३।

आनन्दोल्लास की स्मृति छिड़ी हुई है और इस स्मृति के विरोध में वर्तमान मानसिक वेदना की व्यंजना प्रत्यक्ष हो जाती है। इस प्रसंग में यत्र-तत्र यह भावना आ गई है। मालतीमाधव की विस्तृत प्रकृति योजना में भावशीलता को अधिक स्थान मिला है। इसमें प्रकृति उद्दीपन के रूप में प्रयुक्त हुई है, और भावात्मक भी है। नवे अंक में मकरन्द वन-भूमि के उल्लास को वर्णन करता है—‘चारों ओर कदम्ब के वृक्षों ने अपने पुष्पों की विकास-श्री से सुशोभित किया। शैल के पास का भूमि उनए हुए घनघोर से श्यामल लगती है। केतकी और मोगरा के फूलों से आच्छादित तरित-तट पर जान पड़ता है चादर पड़ी है। और लोध्र तथा केनर के पुष्पों से मानो वन-भूमि सुसकाती हुई दिखाई पड़ती है।’ प्रकृति के रंगों तथा क्रियाओं के संयोग से उत्फुल्ल उल्लास की भावना व्यंजित होती है। माधव के वियोगी मन के लिये प्रकृति का यह रूप उद्वेगकारी है—

तरुणतमालमालनीलबहुलोज्ज्वलमदम्बुधराः

शिशिरसमीरणावधुतनूतनवारिकण्याः ।

कथमवलोकयेयमधुना हरिहेतिमती-

मदकलनीलकण्ठकलहैमुखराः वकुभः ॥ ६०

[जिसमें अत्यधिक नीले तथा तरुण तमाल के समान बादल भुक्त आते हैं, पवन के झुकझोरने से शीतल जल के कण फैल रहे हैं ऐसी, मदमत्त मयूरों के समवेत स्वर से कूजित दिशाओं को इस समय इन्द्र-धनुष से व्याप्त किस प्रकार देखा जाय।] इस प्रकृति के चित्रण में सहज भावशीलता है जो अपने उल्लास में नायक के मन के विरोध में उपस्थित हुई है।

§१६—नाटकीय कथा-वस्तु में प्रकृति में आत्मीय सहानुभूति प्रदर्शित करने का अवसर साधारणतः नहीं रहता। क्योंकि प्रकृति के

प्रति आत्मीयता के लिए मानव जीवन तथा प्रकृति में सम्बंध उपस्थित होना चाहिए । रंग-मंच पर प्रकृति का प्रदर्शन आत्मीय सहानुभूति उल्लेखों पर निर्भर है, ऐसी स्थिति में कथा-वस्तु के विकास में पात्र और प्रकृति में किसी सम्बंध की कल्पना सहज नहीं है । परन्तु इस कठिनाई की स्थिति में भी कालिदास और भवभूति ने प्रकृति और मानव-जीवन को जिस निकटता से चित्रित किया है और जिस आत्मीय सहानुभूति का वातावरण प्रस्तुत किया है वह महान कला का उदाहरण है । कालिदास की श्रेष्ठता का बहुत बड़ा श्रेय प्रकृति और जीवन के इस तादात्म्य को मिलना चाहिए । इन दोनों कवियों के अतिरिक्त अन्य कवियों ने कहीं-कहीं इस प्रकार का प्रयोग किया है । प्रतिमा के सातवें अंक में राम सीता को जनस्थान दिखलाते हुए प्रकृति के साथ अपने पूर्व आत्मीय सम्बंध का उल्लेख करते हैं । सीता अपने 'पुत्र के समान पाले हुए वृद्धों को अब दृष्टि उठाकर देखने योग्य पाती हैं' राम 'सप्तपर्ण के नीचे भरत को देख कर भयभीत मृग-समूह का' स्मरण करते हैं ।^{६१} कुन्दमाला में सीता को छोड़ने की कल्पना से विह्वल होकर लक्ष्मण प्रकृति को सहानुभूति-जन्य शोक से अभिभूत पाते हैं—

एते रुदन्ति हरिणा हरितं विमुच्य

हंसारुच शोकविधुराः करुणं रुदन्ति ।

नृत्तं त्यजन्ति शिखोनोऽपि विलोक्य देवीं

तिर्यग्गता वरममी न परं मनुष्यः ॥^{६२}

[हरी घास को छोड़ कर ये हरिण करुण रुदन कर रहे हैं; शोक-विह्वल हंस करुण विलाप कर रहे हैं, देवी को देखकर मोरों ने नृत्य छोड़ छोड़ दिया है । इस प्रकार पत्नी तक शोक मग्न हो गए, परन्तु नरों का

६१. प्रति०, अ० ७, पूर्व ४ ।

६२. कुन्द०; अ० १; १८ ।

हृदय प्रभावित नहीं हुआ ।] इसी प्रकार नागानन्द में आश्रम की प्रकृति स्वागत-सत्कार करती चित्रित की गई है, यह एक प्रकार से प्रकृति में मानवीय सम्बन्ध का संकेत है (१, ११) ।

§२०—जैसा कहा गया है कालिदास ने जीवन और प्रकृति में आत्मीय तादात्म्य स्थापित करने में अपूर्व सफलता प्राप्त की है ।

शाकुंतल के आश्रम-जीवन और विक्रमोर्वशीय के वियोग-अंक में प्रकृति मानव-जीवन को व्यापक

१ कालिदास

सहानुभूति से घेरे हुए है । शकुंतला निसर्ग-पुत्री कही गई है । कालिदास ने शकुंतला का चरित्र प्रकृति से एकरस कर दिया है । कण्व के आश्रम में शकुंतला का विकास लता-वृद्धों, हरिण-हरिणियों के साथ हुआ है । आश्रम की प्रकृति से शकुंतला का कितना स्नेह है यह उसके इस उत्तर से प्रकट होता है—

ए केअलं तादृशिओओ एव; अस्थि मे सोदर सणेहो एदेसु,

[केवल पिता की आज्ञा से नहीं, मेरा इनसे सगे भाई जैसा प्यार भी है] । प्रकृति की गोद में विचरण करती हुई सखियों इसी आत्मीय स्नेह के साथ लता-वृद्धों का उल्लेख करती चलती हैं । शकुंतला भीमते केसर वृद्ध को देखकर कहती है—‘यह पवन के भोंको से हिलती हुई पत्तियों की उँगलियों से मुझे बुला रहा है ।’^{६३} आम के वृद्ध के साथ वनज्योत्स्ना का उल्लेख आत्मीयता का स्नेह-सम्बन्ध ही व्यक्त करता है । अभिज्ञानशाकुंतल के चौथे अंक में यह आत्मीय स्नेह अधिक प्रत्यक्ष होता है । शकुंतला को लता-वृद्ध फूल-पत्तों के स्थान पर आभूषण दान देते हैं । विदा के अवसर पर आश्रम-वासियों की भक्ति प्रकृति में भी करुण अवसाद छा जाता है । प्रियंवदा कहती है कि ‘ज्यों-ज्यों शकुंतला की विदाई की घड़ी पास आ रही है, त्यों-त्यों तपोवन भी उदास दिखाई पड़ता है, देखो—

उगल्लिभदम्भकवला मिश्रा परिचत्तणच्चणा मोरा ।

ओलारिभपंडुपत्ता मुअंति अस्सु विअ लदाओ ॥

[मृगियों चबाई हुई कुश के कौर उगल रही हैं, मोरो ने नाचना छोड़ दिया है और लताओ से पीले पत्ते इन प्रकार झड़ रहे हैं मानों उनके आँसू गिर रहे हैं ।] आगे शकुंतला बन-ज्योत्स्ना को प्रेम-पूर्वक भेटती है । कण्व आगे रोक कर खड़े हुए हरिण की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं, रोती हुई शकुंतला उसे वापस करती है—

वच्छ ! किं सहवासपरिच्चाइणिं नं अणुसरसि ? अचिरप्पसूदाए जणणीए विणा वडिडदो एव्व । दाणिं पि मएविरहिदं तुम तादो चित्त-इस्सदि । शिवत्तेहि दाव ।^{६४}

[वत्स, मुझ साथ छोड़कर जानेवाली के पीछे-पीछे तू क्यों वापस आ रहा है । तेरी माँ जब तुझे जन्म देकर मर गई थी उस समय मैंने तुझे पाल-पोस कर बड़ा किया था । अब मेरे पीछे पिता जी तेरी देख-भाल करेंगे । जा लौट जा ।] प्रकृति के साथ ऐसी आत्मीय सहानुभूति का चित्र कहाँ मिलेगा । अपनी सहचरी प्रकृति को छोड़कर जाते शकुंतला को परिजनों को छोड़ने जैसा दुःख हो रहा है, और प्रकृति भी इस बेला में उदास तथा दुःखी है । विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अंक में जो वातावरण और घटना की नियोजना की गई है, उसके अन्दर आत्मीयता की भावना परिलक्षित होती है । पार्श्वभूमि में जिन प्रतीक-चित्रों का उल्लेख किया गया है, वे प्रकृति की सहानुभूति से रजित हैं—‘दुःख से भरा हुआ अपनी प्रियतमा को देखने के लिये अधीर और अपने शत्रु को पछाड़ देनेवाला यह बड़ा सा हाथी मन में धराराया हुआ-सा बड़े वेग से चला जा रहा है ।’ इस हाथी के रूप में मानों प्रकृति राजा के दुःख से संवेदित हो उठी है । प्रत्यक्ष प्रकृति राजा के दुःख से अपरिचित अपने आप में मग्न है । नायक सामने बिखरी हुई प्रकृति से

अत्यंत स्नेह के साथ अपनी प्रिया का पता पूछता है—

नीलकण्ठ समोत्कण्ठा वनेऽहिमन्वनिता त्वया ।

दीर्घापाङ्गा सितापाङ्गदृष्टा दृष्टिन्वमा भवेत् ॥

[हे उजले कोएवाली आँखोंवाले मयूर ! क्या, तुमने मेरी उस प्रियतमा को इस वन में देखा है जिसकी बड़ी बड़ी आँखें हैं, जिसके लिए मैं व्याकुल हूँ और जो देखते ही बनती है ।] परन्तु मोर अपने नृत्य में तन्मय है, वह उसकी बात पर ध्यान नहीं देता । इस उपेक्षा के फारण नायक प्रकृति के प्रति उपालम्भशील होता है—

महदपि परदुःखं शीतलं सम्यगाहुः

प्रणयमगणयित्वा यन्ममापद्गतस्य ।

अधरमिव मदान्धा पातुमेषा प्रवृत्ता

फलमभिमुखपाकं राजजम्बूद्मस्य ॥ ६५

[दूसरे के दुःख को कितना ही अधिक होने पर लोग कम ही समझते हैं । इसलिए मुझ विरति में पड़े को अनसुनी करके यह कोयल पकी जामुन का रस, मदान्ध द्वारा प्यारी के अधरो के समान पीने में लगा हुआ है ।] इस उपालम्भ में प्रकृति के प्रति आत्मीय भावना ही सन्निहित है ।

§२१—कालिदास के समान भवभूति ने अपने नाटकों में प्रकृति को मानवीय जीवन के अति समीप उपस्थित किया है । मालतीमाधव में

॥ भवभूति
माधव अपनी वियोग वेदना में प्रकृति को सम्बोधित करता है । शैल शिखर पर छाये हुए मेघ 'जिसके

अंग में बिजली लीट रही है, अंग की शोभा इन्द्र धनुष से बढ रही है और जिमसे चातक प्रेमपूर्वक जल की याचना करते हैं' से वह अपना संदेश भेजने की प्रार्थना करता है । लेकिन प्रकृति उसकी वेदना के प्रति निरपेक्ष है । वह अपने आग में मस्त है, और उसके विलास को नायक

आत्मीयता के साथ देखकर उगलम्भशील भी नहीं हो पाता—

केकाभिर्नोत्सृज्यस्तिरयति वचनं ताण्डवादुच्छिखण्डः

कान्तामन्त- प्रमोदादभिसरति मद्भ्रान्ततारश्चकोरः ।

गोलाङ्गूल कपोलं छुरयति रजसा कौसुमेन प्रियायाः

कं याचे यत्र तत्र ध्रुवमनवसरग्रस्त एवार्थिभावः ॥६६

[आनन्द से पूँछ उठाकर नाचते हुए मोर केका ध्वनि करते हैं, मद से अपने नेत्र के तारों को नचाते हुए चकोर मोद से अपनी प्रिया के पास जाते हैं और लंगूर अपनी प्रिया के गाल पर पुष्पों की धूलि लगाते हैं । ऐसे समय किससे याचना की जाय, याचना के लिए अवसर ही नहीं मिलता ।] इस समस्त वर्णन में नायक की मनःस्थिति प्रकृति को आत्मीय निकटता से उपस्थित करती है । शकुंतला के समान उत्तररामचरित में प्रकृति की आत्मीय सहानुभूति का व्यापक प्रसार मिलता है । प्रथम अंक में राम-सीता भिति-चित्रों को देखकर अपने वन-जीवन की सहचरी प्रकृति का स्मरण करते हैं । दूसरे अंक में जनस्थान की वन देवी वासन्ती स्वयं पात्र के रूप में प्रकट होती है । आत्रेयो द्वारा सीता-परित्याग की कथा से देवी वासन्ती के रूप में मानों सारा जनस्थान दुःख में डूब जाता है । शम्बूक द्वारा निर्देशित जनस्थान की विखरी हुई प्रकृति को देखकर राम को अपने वन-जीवन की स्मृति वेग से आ जाती है । सीता के साथ के उस जीवन के साथ यह प्रकृति भी उनकी सहचरी हो गई थी । पचवटी का स्नेह बरबस राम को अपना ओर खींच रहा है । तीसरे अंक की योजना में कवि ने प्रकृति के क्षेत्र में प्रकृति-पात्रों की अवतरण द्वारा जिस प्रकृति और जीवन की सहानुभूति-पूर्ण आत्मीयता का परिचय दिया है वह अद्वितीय है । तमसा और मुरला नदियों पात्र के रूप में सीता को आश्वासन दे रही हैं और स्वयं वनदेवी वासन्ती राम के साथ दण्डक वन में विचर रही है । यह

प्रसंग आने आगे में अनुपम है। इसमें एक ओर अदृश्य सीता प्रकृति के अपने विहार स्थलों को घनी सवेदना के साथ देख रही हैं और दूसरी ओर राम वासन्ती के साथ अपनी पुरानी परिचित आत्मीय प्रकृति को देखते घूम रहे हैं। वासन्ती कदम की डाल पर कूजते मयूर की ओर राम का ध्यान आकर्षित करती हैं—

अतरुणमदताण्डवात्सवान्ते

स्वयमचिरोद्गतमुग्धलोलवहः ।

मणिमुकुट इवोच्छिखः कदम्बे

नर्दति स एष बधूमखः शिखण्डी ॥

[यौवन प्राण होने से नवीन मनोहर चंचल पूँछवाला तथा जिसकी शिखा मणि मुकुट के समान उठी हुई है ऐसा यह मयूर हर्षोन्माद के नृत्य के बाद अपनी वधू के साथ कदम्ब पर कूजन कर रहा है।]
और वास्तव में यह वही मयूर है जिसे राम-सीता ने पाला था। राम को 'अपनी आँखों में पुतलियों को नचाती हुई तथा अपनी भौहों से मण्डल का संकेत देती हुई कमलवत हथेलियों की ताल पर मयूर को नचाती हुई' सीता की याद आ जाती है। सीता का यह वात्सल्य प्रगाढ़ सहानुभूति का परिचय देता है और इसी कारण राम के हृदय को यह स्मृति अत्यधिक सवेदित कर देती है। आगे वासन्ती प्रकृति के अन्य आत्मीय स्थल का संकेत करती है—

एतत्तदेव

कदलीवनमध्यवर्ति

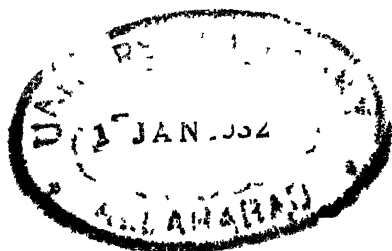
कान्तासखस्य शयनीयशिलातलं ने ।

अत्र स्थिता तृणमदाद् बहुशो येद्भ्यः

सीता, ततो हरिणकैर्न विमुच्यते स्म ॥ ६७

[यह देखो, प्रिया के साथ शयन करने की कदलीवन के मध्य-स्थित शिला तल है। और क्योंकि यहाँ सीता ने अनेक बार हरिणों को घास दी थी

इस कारण आज भी वे इसे नहीं छोड़ते ।] राम के लिए यह दृश्य असह्य हो जाता है । और अदृश्य सीता भी इन समस्त प्रकृति को देखकर अपने स्नेह सम्बंध की याद कर विह्वल हो जाती हैं । वास्तव में जन्मस्थान और पंचवटी के साथ जिस प्रेम-सम्बंध की स्थापना वनवास के दिनों में उन्होंने की थी, वही इस अंक में वियोग की स्थिति में उन्हें विकल कर रहा है ।



सप्तम प्रकरण

उद्दीपन के रूप में प्रकृति

§१—आलम्बन-रूप की व्याख्या करते समय हम कह चुके हैं कि जब आश्रय की भाव-स्थिति का आलम्बन प्रत्यक्ष रूप से दूसरा व्यक्ति रहता है, उस समय प्रकृति उस भाव-स्थिति से उद्दीपन उद्दीपन की सीमा के रूप में ही सम्बन्धित होती है। वस्तुतः प्रकृति की गति और चेतना के साथ मानव अपनी भाव स्थिति में सम प्राप्त करता है। इस सम-स्थिति पर प्रकृतिवादी कवि के लिए प्रकृति आलम्बन होती है। इस रूप में वह प्रकृति पर अपनी भाव-स्थिति तथा संवेदनाओं का आरोप कर लेता है अथवा प्रकृति के माध्यम से उनकी व्यञ्जना करता है। पर यही सम जब किसी पूर्व-निश्चित (अन्य आलम्बन के सम्बन्ध में) भाव-स्थिति से समता या विरोध उपस्थित करता है, उस समय कभी प्रकृति से भावस्थिति प्रभावित होती है और कभी भाव-स्थिति से प्रकृति। प्रकृति की यह स्थिति प्रत्यक्ष उद्दीपन की सीमा है। प्रकृति के विभिन्न दृश्यों और उनकी परिवर्तित होती स्थितियों में जो संचलन तथा गति का भाव छिपा है, वही सम-विषम होकर भावों को उद्दीप्त करता है। और कभी

भावों की सम-विषम स्थिति से प्रकृति प्रभावित जान पड़ती है।

क—यह प्रकृति और जीवन का सम-तल है। जीवन की भावशीलता और प्रकृति पर उसी का प्रतिबिम्बित अथवा प्रतिघटित रूप साथ-साथ उपस्थित होते हैं। इनमें साम्य तथा विरोध दोनों की सम्भावना है। जीवन की सुखमयी स्थिति में प्रकृति की कठोरता तथा उससे सम्बंधित कष्टों की भावना से सुरक्षा का विचार उसे अधिक बढ़ाता है। इसी प्रकार प्रकृति में व्यक्त होता हुआ उल्लास जीवन की वेदना को और भी तीव्र करता है। इस स्थिति में प्रकृति और जीवन लगभग समान तल पर होते हैं। इन्हीं में किंचित् भेद पड़ जाने से दो रूपों का विकास होता है। एक स्थिति में भाव आधार रूप में उपस्थित होता है। भाव की स्थिति मंयोग-विबोग की दुःख सुखमयी भावना होती है। और प्रकृति इन्हीं भावनाओं की व्यंजना करती हुई प्रकट होती है। प्रकृति का यह चित्र भावों के रंगों से रजित होता है। जिस प्रकार अनेक व्यभिचारियों तथा अनुभावों से स्थायी भावों की स्थिति व्यक्त होती है, उसी प्रकार उनके आधार पर प्रकृति की भावशीलता व्यजित होती है। आलम्बन-रूप में कवि प्रकृति के समक्ष अपनी स्थिति को, अपनी अनुभूतियों को उसी के माध्यम से समझता और व्यक्त करता है। इसी प्रकार उद्दीपन रूप में कवि आश्रय की पूर्व-आलम्बन से सम्बंधित भाव-स्थिति की प्रकृति के माध्यम से व्यजित करता है। इसी की दूसरी स्थिति में प्रकृति केवल आधार रूप में रहती है और प्रमुखतः भावों की अभिव्यक्ति रहती है। प्रकृति के आधार में वर्तमान संयोग या वियोग की तीव्र व्यंजना छिपी रहती है और इसी के आधार पर भावों की अभिव्यक्ति होती है। आलम्बन की दृष्टि से इस स्थिति में कवि प्रकृति के समक्ष उससे प्रभाव ग्रहण करता हुआ भी अपनी भाव-स्थिति को अधिक सामने रखता है। पिछले प्रकरणों में वर्णना की व्यापक भावशीलता की दृष्टि से इन रूपों को आलम्बन के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है।

ख—पुंस्कृत महाकाव्यों की परम्परा में रूढ़िवाद के साथ भाव-व्यजना के स्यान पर अनुभावों के वर्णन को महत्व मिलता गया है। इस कारण भाव-व्यजना का रूप अनुभावों के माध्यम से व्यक्त किया जाने लगा। प्रकृति से अनुभावों को व्यक्त करने की परम्परा चली। दूसरे पक्ष में प्रकृति की हल्की उल्लेखात्मक पृष्ठ-भूमि पर भावों को व्यक्त किया जाता है और इसमें अनुभावों का आश्रय ही अधिक लिया गया है। यह समस्त व्यंजना प्रत्यक्ष आरोप के माध्यम से भी की जा सकती है। प्रकृति पर यह आरोप उद्दीपन की सीमा में ऊपर के सिद्धान्त के अनुसार माना जा सकता है। आलम्बन के रूप में कवि आरोप के रूप में प्रकृति को व्यापक जीवन और भावों में संलग्न पाता है। प्रकृतिवादी का आरोप व्यापक रूप से अपनी मानसिक चेतना से सम्बंधित है, और बाद में प्रत्यक्ष सामाजिक आधार के अभाव में उसकी अभिव्यक्ति का रूप व्यक्तिगत सीमाओं से अलग हो जाता है। उद्दीपन-विभाव में आरोप सामाजिक स्थायी-भाव को दृष्टि से किया जाता है। मानवीय भावों की प्रधानता से प्रकृति का आरोप इसमें रूपात्मक तथा सकुचित होकर व्यक्तिगत सीमाओं में अधिक बंधा रहता है। इस कारण इनमें सामाजिक सम्बन्ध और भाव ही प्रत्यक्ष रहता है, प्रकृति गौण हो जाती है। इस आरोप में भावों, अनुभावों के साथ शारीरिक आरोप भी सम्मिलित हैं।

महाप्रबन्ध काव्य

§ २—महाभारत के कथा-विस्तार में जिस प्रकार प्रकृति वर्णन के कम असवर आए हैं, उसी प्रकार उद्दीपन की भावना व्यापक रूप में ही पाई जाती है। अर्जुन के सम्मुख फैली प्रकृति के इस रूप में जो भावशीलता व्याप्त है उसमें उद्दीपन की स्थिति प्रतिबिम्बित है—‘कमल के मधु को पीकर मस्त, कमल के

महाभारत

पराग से सन कर पीले हुए भौरे फूलों पर घूम-घूम कर गुनगुना रहे थे । इसी प्रकार आनन्द से मस्त धीमी चाल से चलने वाले मोर मोरनियों के साथ टहल रहे थे । वे मेषों की गरजना सुनकर मदन से व्याकुल हो अपनी विचित्र पँछे फैलाकर मधुर शब्द करते हुए नाच उठते थे ।' प्रकृति के क्रिया-कलाप में जो मानवाय मन-स्थिति प्रतिबन्धित हुई है, वह पात्र की भाव-स्थिति को पार्श्वभूमि पर प्रकृति को उद्दीपन की सीमा प्रदान करती है । कभी इस भावरोप के बिना प्रकृति मानव के लिए सहज उद्दीपन के रूप में उपस्थित होती है—

कणिकारान्विरचितान्कर्णपूरानिवोत्तमान् ।

अथापश्ययन्कुरवकान्वनराजिषु पुष्पितान् ।

कामवश्योत्सुककरान्कामस्येव शरोत्करान् ॥

[कहीं पर फूले हुए कनैर कर्ण फूलों के समान दिखाई पड़ते थे । कहीं पर फूले हुए कुरवक के वृक्ष कामदेव के बाणों के समान कामियों के हृदय में वेदना उःपन्न कर रहे थे ।] आर 'कहीं पर तिलक के वृक्षों की कतारें देख कर जान पड़ता था कि महावन के मस्तक पर तिलक लगा है । भौरे जिन पर गुंज रहे हैं ऐसे मजरी मडित आम के पेड़ों की पंक्तियों भी कामदेव के बाण के समान जान पड़ती थीं ।' इस प्रकृति के रूप में अर्जुन के मन में स्वाभाविक रति-भावना को तीव्र करने की स्थिति लक्षित होती है । पर इस प्रकार का प्रकृति का उद्दीपन रूप महाभारत में एक दो स्थलों पर ही टूँटा जा सकता है ।

§ ३—महाभारत के समान रामायण की स्थिति भी है । इसके अन्तर्गत प्रकृति की वर्णना का व्यापक विस्तार मिलता है, परन्तु उसमें उद्दीपन रूप नहीं के बराबर है । जैसा कहा रामायण गया है आदि कवि ने प्रकृति को बहुत मुक्त भाव से देखा है, और उसी रूप में अपने काव्य में भी स्थान दिया है । वियोग

को स्थिति में भी राम के सामने प्रकृति उद्दीपन-रूप में नहीं आई है । इस मानसिक स्थिति में राम प्रकृति को उसके स्वतंत्र रूप में देख सके हैं । ऐसे वर्णनों में विरोध के माध्यम से प्रकृति में सहज उद्दीपन को व्यजना मात्र यत्र-तत्र मिल जाती है । प्रकृति अपने उल्लास में, अपनी उमंग में राम को वियोग-व्यथा के विरोध में उग्रस्थित हुई है । इस स्थिति में पूर्व-स्मृति को जगाकर वह पात्र को अधिक संवेदनशील कर देती है । राम पम्पा सरोवर के मार्ग के दृश्यों के सौंदर्य से आकर्षित होकर भी दुःखी होते हैं ।^२ किष्किन्धा काण्ड में राम द्वारा वर्णित वर्षा और शरद् के वर्णनों में यत्र तत्र इस प्रकार की व्यंजना मिल जाती है । लेकिन कहीं प्रकृति ने स्रष्ट रूप से मनोभावों को उद्दीप्त नहीं किया है । वर्षा-ऋतु के उल्लासमें वर्णन में विरोध के कारण राम की व्यथा की तीव्र व्यजना स्वतः आ जाती है । परन्तु कभी उसमें रति-भावना का उद्दीपन इस प्रकार स्रष्ट भी हुआ है—

सुरतामदविच्छिन्नाः स्वर्गस्त्रीहारमौक्तिकाः ।

पतन्ति चातुला दिक्षु तोयधारा समंततः ॥^३

[सुरत के उग्रान्त मर्दन से स्वर्ग की स्त्रियों के बिखरे हुए हार के समान चारों ओर जलधारा गिर रही है ।] इसी प्रकार शरद् वर्णन में एक दो उल्लेख आरोप के अतिरिक्त स्रष्ट उद्दीपन के हैं—‘त्राण पादप के पुष्पित होने से तथा उस पर भ्रमरो की गुंजार से जान पड़ता है मानों कामदेव ने अपना प्रचंड चाप धारण कर लिया है ।’^४ काम-धनुष के उल्लेख से

२ रामा०, अर०, स० ७५, १५, १८—

तत्र जग्मतुरव्यग्रौ राघवो हि समाहितौ ।

स तु शोकसमाविष्टो रामो दशगथात्मजः ॥

मृत्युरुच्छपसदाथा तीरस्थद्रुमशोभिताम् ।

मखीभिरिव सयुक्ता लताभिरनुवैष्टिताम् ॥

३ वही, किष्कि०, स० २८, ५१ ।

४, वही; वही, स० ३०, ५६ ।

प्रकृति की उद्दीपन-शक्ति का उल्लेख किया गया है। हनुमान जब अशोक-वाटिका में पहुँचते हैं, उस समय वाटिका के वर्णन में सहज रूप से यह व्यंजना छिपी है—

वृत्तैर्नानाविधैर्वृत्तैः पुष्पोपगफलोपगैः ।

कोकिलैर्भृंगाराजैश्च मत्तैर्नित्यनिषेविताम् ॥

प्रहृष्टमनुजां काले मृगपक्षिमदाकुलाम् ।

मत्तबर्हिणसंघुष्टां नानाद्विजगणायुताम् ॥^५

[उस वाटिका में विविध प्रकार के फलों और फूलों से लदे हुए वृक्षों पर मतवाली कौयले कूक रही हैं और मस्त भौरे गुंजार कर रहे हैं। वहाँ मतवाले मृग और पक्षी भरे हुए हैं, और अनेक पक्षियों के साथ मतवाले मयूरों के झुंड नाच रहे हैं।] प्रकृति के इस उल्लास और उन्माद में शृङ्गार के उद्दीपन की भावना विद्यमान है।

क—इसके अतिरिक्त कुछ स्थलों पर प्रकृति पर मानवीय आरोप से उद्दीपन-रूप को प्रस्तुत किया गया है। लेकिन यह प्रवृत्ति भी रामायण में यत्र-तत्र ही मिलती है। शरद् ऋतु के वर्णन में आरोप कतिपय आरोप मिलते हैं—‘मीनों के रूप में जिनकी करघनी प्रत्यक्ष हैं ऐसी नदी रूपी वधुएँ मन्द-मन्द प्रवाहित हैं, जैसे कातोपभुक्त कामिनी प्रातःकाल मन्द चाल से चलती हैं।’^६ इस चित्र की प्रकृति में शृंगार की भावना पात्र की मनःस्थिति के लिए उद्दीपक है। हनुमान पर्वत से प्रवाहित नदी को लंका में इसी भावना से देखते हैं—‘उस पर्वत से निकल कर एक नदी बह रही थी, वह ऐसी जान पड़ी मानों कोई प्रियतमा कामिनी कुपित हो अपने प्रियतम की गोद को त्याग कर भूमि पर पड़ी हो।’^७ इस आरोप द्वारा प्रकृति जैसे रति-भाव

५. वही सुन्द०, स० १४, ७, ८।

६. वही, किष्कि०; स० ३०; ५४।

७. वही, सुन्द०, स० २, २७।

जगाती है। आगे चल कर हम देख सकेंगे कि इस प्रकार के प्रयोग महाकाव्यों में बढ़ते गये हैं।

गीत-काव्य

१४—विभिन्न काव्य रूपों की विवेचना के अन्तर्गत यह कहा गया है कि संस्कृत काव्य की परम्परा में गीतियों को स्थान नहीं मिल सका है। यद्यपि इस भावना का रूप कुछ काव्यों में उन्मुक्त भावना मिलता है। गीति की गेय-शैली में तो केवल जयदेव के गीत गोविन्द का नाम लिया जा सकता है। इसमें गीति-भावना का उन्मुक्त वातावरण तथा उसकी स्वच्छद अभिव्यक्ति तो मिलती है, पर व्यक्तिगत स्पर्श का अभाव है। यह ठीक है कि इसमें राधा-कृष्ण के प्रेम को कवि ने अत्यधिक तन्मयता से व्यक्त किया है, लेकिन वर्णनात्मक होने के कारण मासल स्थूलता अधिक प्रत्यक्ष हो उठती है। मनस-परक न होकर जब गीत कथा-सूत्र का आश्रय लेता है, उस समय ऐसा होना स्वाभाविक है। लेकिन लोक-गीति का उन्मुक्त वातावरण इसमें पूर्ण-रूप से रक्षित है। लोक का गायक सहज रूप में प्रकृति को अपनी भावाभिव्यक्ति में ग्रहण कर लेता है। प्रकृति से उसका युगों का सम्पर्क उसकी भाव-स्थिति से सामजस्य स्थापित कर लेता है, ऐसी स्थिति में प्रकृति उसको आत्माय जान पड़ती है और कभी अपने समानान्तर उल्लास-विलास में उसकी पूर्व भाव-स्थिति को प्रभावित करती है। रति के स्थायी-भाव को लेकर सयोग-पक्ष में वह कामोद्दीपक है और इसी भाव-स्थिति के वियोग-पक्ष में अतृप्त रहने से प्रकृति वियोगी के दुःख को बढ़ाती है। जयदेव के गीतगोविन्द में आत्मीयता का सहज रूप नहीं मिलता है, परन्तु प्रकृति में उद्दीपन की उन्मुक्त भावना रक्षित है। लोक गीतियों के इसी पक्ष का काव्यात्मक रूप इसमें मिलता है।

१६—गीत गोविन्द में प्रेम की भावशील व्याकुलता के स्थान पर रति का वामनामय स्फुरण अधिक है। इसमें वियोग-जन्य वेदना के स्थान पर

काम की अतृप्ति की विकलता अधिक परिलक्षित होती है। यही कारण है कि इसमें वसंत की अवतारणा कामोद्दीपक वातावरण प्रस्तुत करती है। प्रकृति की सहज स्थिति की कल्पना में भी यह वातावरण इसी प्रकार का लगता है—

नित्योत्सङ्गवसद्भुजङ्गकवज्ज्वलेशादिवेशाचलं

प्राज्ञेयप्लवनेच्छयानुसरति श्रीखण्डशैलानिबः ।

किंच स्निग्धरसाजमौलिमुकुलान्याज्जोम्य हर्षोद्भया-

दुन्मीलन्ति कुहूः कुहूरिति कब्जोत्तालाः पिकानां गिरः ॥८

[नित्य गोद में रहनेवाले भुजगों के दर्शन के क्लेशों से तुषार में स्नान करने की इच्छा से मलय पवन हिमालय की ओर प्रवाहित होता है। सुन्दर आम की मंजरियों को देखकर हर्ष से उल्लसित हो बोकिलों के स्वरा ने कुहू कुहू प्रारम्भ कर दिया है।] इसमें उद्दीपन की सहज भावना व्यंजित है, पर समस्त प्रसंग में इसकी ध्वनि कामोद्दीपन के अनुरूप लगती है। अन्यत्र वातावरण कामोद्दीपक निर्माण किया गया है। जान पड़ता है प्रकृति में एक उत्तेजना व्यापक हो गई है—“भ्रमरो का समूह वक्रुन के पुष्पो में व्याप्त होकर पथिक-वधुओं के मन को मदन मनोरथ से व्याकुल कर रहा है। कस्तूरी की गन्धवाली तमाल के नवदलों की माला धारण किये हुए युवतियों के हृदय को पुष्पित पलास कामदेव के नख की शोभा के समान विह्वल कर रहा है। और इसी प्रकार—

मदनमहीपतिः कवकदण्डरुचिकेशरकुसुमविकासे ।

मिञ्जितशिबीमुखपाटलपटलकृतस्मरतूणविलासे ॥९

[राजा मदन के कनकदण्ड की शोभा के समान नागकेसर विकसित हो

८. गीत०, स० १, प्र० ४, ११ ।

९. भी वही, वही, प्र० ३, ३, ४, ५ ।

गहा है, और भ्रमरो से आकुलित पाटल कामदेव के तुषीर की शोभा धारण करता है।] प्रकृति का सारा वातावरण मानवीय काम-पीड़ा की पृष्ठि-भूमि बन गया है। इसी प्रभाव को उत्पन्न करने के लिए कुछ ही स्थलों पर आरोप का आश्रय लिया गया है, पर यह आरोप मात्रिक अनुभावों का है। 'लज्जाहीन जगत् को देखकर नवकरण वृक्ष भी अपने पुष्पा के मिस हँस रहा है। ... स्फुरित होती हुई मुक्त लताओं के आलिंगन से आम्र वृक्ष पुलकित हो गया है।'^{१०}

१६—लोक गीतिशो के समान ही गीतगोविन्द में प्रकृति प्रत्यक्ष रूप में मानवीय रति-भावना को उद्दीप्त करती हुई उपस्थित हुई है।

वातावरण के रूप में प्रकृति और मानवीय भाव-

प्रत्यक्ष उद्दीपन

स्थिति में एक प्रकार का सामंजस्य था। प्रकृति मानव के समान उद्वेलित है और इसी कारण उद्दीपन की प्रेरणा उसमें सन्निहित है। लेकिन अन्यत्र प्रकृति प्रत्यक्ष रूप से उद्दीपन का कार्य करती है—'इस ऋतु में (इन दिनों) मधुगन्ध से व्याप्त पुष्पों से आकर्षित भ्रमरों से आम को मजरियों आन्दोलित हैं, और क्रीड़ा करती हुई कोकिलाओं से कूजित हैं। ऐसे समय अपनी प्रियाओं का स्मरण करके पथिक कठिनता से समय व्यतीत करते हैं, क्योंकि उनका मन उद्वेलित हो गया है।' यहाँ प्रकृति मन को प्रभावित करती हुई स्वतः उपस्थित हुई है। इसी प्रकार पवन की प्रभावशीलता प्रकट होती है—

दरविश्रितवल्लीमल्लिचञ्चत्पराग-

प्रगटितपटवासैर्वासयन्काननानि ।

इह हि दहति चेतः केतकीगन्धवन्धुः

प्रसरदसमबाय्यप्रायवद्गाधन्वाह. ॥^{११}

१०. वही; वही, वही, ६, ७।

११. वही, वही; वही, ११, १०।

[कामदेव के बाण से प्रेरित, केतकी-गन्ध को धारण किए हुए, पुष्पित जाती की चंचल लताओं से किंचित विकीर्ण पराग रूपी सुगन्धित चूर्ण से कानन को वासित करता हुआ पवन वसन्त में विरहियों को जलाता है ।] पवन की जलनशीलता प्रत्यक्ष उद्दीपक शक्ति है । प्रकृति-जगत् का उल्लास-विकास कामना को उत्तेजित कर व्यथित करता है, इस कारण नायिका प्रकृति के प्रति उपालम्भशील होती है । पर इस उपालम्भ में आत्मीयता के स्थान पर प्रकृति के व्यथा देने वाले रूप की शिकायत है—

दुरालोकस्तोकस्तबकनवकाशोकलतिका-

विकासः कासारोपवनपवनोऽपि व्यथयति ।

अपि भ्राम्यद्भृङ्गीरणितरमणीया न सुकुल-

प्रसूतिश्चूतानां सखि शिखरिणीयं सुखयति ॥^{१२}

[हे सखि, दूर से दिखाई देने वाले अशोक लता के अल्प गुच्छे को विकसित करने वाला सरोवर के उपवन का शीतल पवन भी हृदय को व्यथित करता है । और भ्रमित भ्रमरो की गुजार से सुन्दर शिखर वाले आम की मंजरियों का विकास भी सुख नहीं देता ।] इस प्रकार की प्रत्यक्ष उद्दीपन की प्रवृत्ति ऋतु-काव्य की विशेषता है, आगे की विवेचना में हम देख सकेंगे । गीतगोविन्द की रचना इस प्रकार के काव्यों के प्रभाव में हुई है, यद्यपि हम कह चुके हैं कि इसके इस रूप में जन-गीतियों की प्रवृत्ति है ।

दूत-काव्य

§ ७— दूत-काव्य का सम्बंध लोक-गीतियों के स्वच्छन्द वातावरण से है । और हम देख चुके हैं कि इनमें आत्मीय सहानुभूति का वैसा ही वातावरण मिलता है । परन्तु इस काव्य-रूप की मूल प्रेरणा उद्दीपन से

के मन में भी घर लौटने के लिए हड़ मड़ी मचा देता हूँ ।^{१४} मेघ द्वारा पथिकों के मन के उद्वेगशील होने की बात यहाँ सहज ढंग से व्यक्त की गई है । इस प्रकार की सहज उद्दीपन की भावना पवन-दूत में यत्र-तत्र मिल जाती है । नायिका पवन को आश्वासन देती है—‘तुम्हारे प्रस्थान किए हुए के लिए मार्ग में स्थान स्थान पर तालाबों से युक्त ग्राम मिलेंगे । जिनके प्रान्त भाग में अशोक तथा क्रमुर के उपवन हैं जिनमें ऊँचे पीले स्तनों से झुकी ग्राम स्त्रियों के प्रेम में वियोगी पथिक घूमते हैं ।^{१५} इस चित्र में वसत के व्यापक उद्दीपक प्रभाव का रूप है ।

६८—कभी कवि ने वर्णना में वातावरण इस प्रकार का निर्मित किया है कि उसमें स्थायी रति की भावस्थिति को प्रेरणा मिलती है । पवनदूत में कवि इस प्रकार वातावरण निर्माण करता है—

हिस्वा काञ्चीमविनयवतीमक्तरोधोनिकुञ्जां

उद्दीपन का
वातावरण

तां कावेरीमनुसर खगश्रेणिवाचालकूलाम ।

कान्तारश्लेषादपि खलु सुखस्पर्शमिन्दुत्विषोऽपि

स्वच्छं भिच्चाप्रवणमनसोऽप्यम्बु यस्या लघीयः ॥

[कोंची नगरी को छोड़ कर तुम चंचल प्रवाहवाली, निकुंजों से युक्त पुलिनवाली तथा पक्षियों के झुंड से कूजित कूलवाली कावेरी का अनुसरण करना, जिसका स्पर्श-सुख कातालिंगन से अधिक सुखद है, चन्द्र से अधिक स्वच्छ है और जिसका जल-प्रवाह भिच्चा लेने में चतुर मन से भी अधिक दुर्बल है ।] इसमें आलिंगन की भावना से वातावरण में प्रकृति उद्दीपन की व्यंजना प्रस्तुत करती है । अन्यत्र पवनदूत में प्रकृति के साथ मानवीय विलास को युक्त करके भी यही प्रभाव उत्पन्न किया गया है—‘हे पवन तुम गोदावरी तट के शुकों से श्यामायमान वनों में जाना, जहाँ क्रीडालीन शत्रु-स्त्रियों ने प्रेमपूर्वक भिच्चाई की

१४. वही , उत्तर , ४१ ।

१५. पवन० ; २१ ।

है। और जहाँ प्रौढ रमणियों का लीलामान भी प्रेम से अपरिचित युवको द्वारा सच्चा माना जाता है।^{१६} मेघदूत की प्रकृति का यह रूप भी ऐसा ही है—‘उस नगरी में मतवाले सारसों की मीठी बोली को दूर दूर तक फैलाता हुआ, प्रातः खिले हुए कमलों की गंध में बसा हुआ और सुखद शिप्रा का पवन स्त्रियो के संभोग की थकावट को उसी प्रकार दूर कर रहा है जैसे चतुर प्रेमी।’ इस दृश्य में प्रकृति उद्दीपन का वातावरण व्यंजित करती है, क्योंकि इसमें शृंगार का प्रत्यक्ष उल्लेख किया गया है। अन्यत्र प्रकृति और मानवीय जीवन का उल्लेख एक दूसरे के समक्ष इसी भावना से किया गया है—

तस्मिन्काले नयनसखिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु ।
प्राखेयास्त्रं कमलवदनारसोऽपि हतुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनत्पाभ्यसूयः ॥^{१७}

[उस समय अनेक प्रेमी जन अपनी खण्डिता नायिकाओं के आँसू पोंछ रहे होंगे, इसलिये तुम सूर्य की कमलिनी के मुख-कमल पर पड़ी हुई आँसू की बूँदें पोंछने के लिए आई हुई किरणों (करो) को न रोकना, नहीं वे बुरा मानेंगे।] यहाँ मानवीय विलास और प्रकृति के व्यापार को समानान्तर उल्लेख किया गया है, जिससे रति-भाव का दीपन होता है।

§६—प्रकृति पर मानवीय जीवन के उल्लेख के विषय में पिछले प्रकरणों में विचार किया गया है। परन्तु जब इस आरोप में किसी अन्य भाव-स्थिति को प्रभावित करने का उद्देश्य आरोप द्वारा प्रमुख होता है, तब यह उद्दीपन के अन्तर्गत स्वीकार

१६. वही; १५, २५।

१७. मेघ०, पूर्व, ३३, ४३।

किया जायगा। दूतकाव्य में प्रकृति के उपकरणों के आत्मीय सम्बंध का उल्लेख किया गया है, पर जत्र यह सम्बंध रति-विलास में परिणत हो जाता है उस समय प्रकृति का व्यापार पात्र की भाव-स्थिति के प्रसरण के रूप में उसे प्रभावित ही करता है। यत्न मार्ग में पड़नेवाली निर्विन्ध्या नदी को नायिका रूप में बताता है—‘इस नदी की उछलती हुई लहरो पर पक्षियों की चहचहाती हुई पातें करधनी सी दिखाई देंगी, और सुन्दर ढंग से रुक रुक कर बहने के कारण उसमें पड़ी हुई भँवर नाभि जैसी दिखाई देगी; ऐसी उस नदी का रस तुम उतर कर ले लेना, क्योंकि स्त्रियाँ हाव-भाव से अपनी बातें प्रेमियों से कह देती हैं।’ इस आरोप में प्रत्यक्ष ही रति-भाव की व्यंजना है जो यत्न की भावना की प्रतिछाया है। इसके अतिरिक्त मेघ और सरिता के इस सम्बंध में और भी प्रत्यक्ष उद्दीपन की प्रेरणा आरोप के माध्यम से व्यक्त की गई है—

तस्या. किञ्चित्करधृतमिव प्रासवानोरशाखं
ह्रस्वा नील सज्जिज्वसनं मुक्तरोधोनितम्बम् ।

प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि

ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥ १८

[जत्र तुम गम्भीरा नदी का जल पी चुकोगे तो उसका जल कम हो जाने से उसके दोनों तट नीचे तक दिखाई देने लगेंगे। उस समय जल में झुकी हुई बेंत की लताओं को देखने से ऐसा जान पड़ेगा मानो गम्भीरा नदी, अपने तट के नितम्बों पर से जल के वस्त्र खिसक जाने पर लज्जा से बेंत की लताओं के हाथों से अपने जल का वस्त्र थामे हुए है। उस पर झुके हुए तुम, वहाँ से जा न पाओगे क्योंकि रस जानने वाला ऐसा कौन प्रेमी होगा जो कामिनी की खुली हुई जाँघों को छोड़ सकने में

१८. वही, वही, ३०, ४५। पवन० १६ में नदी की तरंगों को अ विलास आदि कह कर इसी प्रकार का आरोप किया गया है।

समर्थ हो ।] इस रति-विलास के आरोप में प्रकृति के सम्बन्ध से अधिक शृंगार की व्यंजना है ।

§१०—प्रकृति के इस रूप में प्रस्तुत करने की अन्तिम परिणति प्रकृति-वर्णन को पार्श्वभूमि में डाल कर केवल मानवीय विलास की योजना में हुई है । ऋतु-वर्णनों के समान दूतकाव्यों विलाम का रूप में भी यह स्थिति मिलती है । प्रकृति उद्दीपन की सीमा में प्रत्यक्ष सुख-दुःख का कारण समझी जाती है, ऐसी स्थिति में—
‘सयोग के दिनों में अमृत के समान ठठी लगनेवाली जाली से छन कर आनेवाली चन्द्रमा की किरणें विरह के कारण उसे जलाने लगेगी ।’
और फिर प्रकृति की भूमिका में उल्लास-विलास प्रमुख हो जाते हैं । यत्न मेघ से अलका के विलास का उल्लेख करता है—

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्वासिताना-

मङ्गलानि सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः ।

त्वसं रोधापगमविशद्वैश्चन्द्रपादैर्निशीथे

व्यालुम्भन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः ॥

[वहाँ आधी रात के समय, खुली चाँदनी में, झालरों में लटकती हुई चन्द्रकात मणियों से टपकता हुआ जल, जिनका शरीर प्रियतम की भुजाओं में कसे रहने से ढीला पड़ गया है ऐसी स्त्रियों की थकावट दूर करता है ।]’ इस विलासके के साथ प्रकृति का किंचित संयोग मात्र रहता है, अन्यथा समस्त वर्णन उत्सवों तथा कामोद्दीपनों से सम्बंधित हैं—‘वहाँ अथाह सम्पत्ति वाले कामी लोग, अप्सराओं के साथ बातें करते हुए और उच्चस्वर से कुबेर का यश गाते हुए किन्नरों के साथ बैठे हुए वैभ्राज नामक बाहरी उपवन में रात-दिन विहार किया करते हैं ।’^{१९} आगे चल कर प्रकृति को परोक्ष में रख कर इस प्रकार के

१९. वही, उक्त०, ३२, ९, १० । पवनद्वन में १३ और १७ में जलकेलि का वर्णन है, पर ९ में रति-विलास का दृश्य है—

ऐश्वर्य-विलास के वर्णन प्रमुख हो गए हैं। यह प्रवृत्ति सभी काव्य रूपों में मिलती है।

मुक्तक-काव्य

§११—मुक्तक-काव्य का वातावरण अधिक मुक्त तथा जनगीतियों के समान स्वच्छन्द है। जनगीतियों में लोक की भावना प्रकृति से इतनी तादात्म्य हो जाती है कि उनमें विभाजन की रेखा महत्र उद्दीपन का सकेत खींचना भी सरल नहीं रह जाता। लोक-गायक प्रकृति को अपनी निकटता में पाता है और अपनी स्वच्छन्द अभिव्यक्ति में उसे अपनी भाव-स्थिति को प्रभावित करते भी उपस्थित करता है। गाथा सप्तशती में जनगीतियों का रूप अधिक रक्षित है। इस कारण इसमें प्रकृति सहज उद्दीपक प्रेरणा के साथ उपस्थित हुई है। सखी 'वियोगिनी को आश्वास देती हुई कहती है कि यह नवीन प्रावृट् के बादल नहीं है वरन् दावाग्नि से मलिन हुए विन्ध्य शिखर है।' इसमें सम्भावित वर्षा-ऋतु में उद्दीपन शक्ति का सकेत अन्तर्निहित है। कभी यह रूप व्यञ्जना में सम्मिलित रहता है, परन्तु व्यापक रूप से इसमें भावात्मक वातावरण मात्र स्वीकार किया जा सकता है—'रात्रि व्ययीत होने पर सूर्य की किरणों के स्पर्श से खिले हुए कमलों की अपनी विश्वविजयिनी शोभा से चारों ओर महर महर होने लगा।' रति स्थायी-भाव को जाग्रत करने की व्यञ्जना कमल और सूर्य के सम्बंध पर निर्भर है। प्रकृति के इस दृश्य में ऐसी ही भावात्मक प्रेरणा है—

पपुल्लवणकलम्बा णिद्धोअसिन्हाअला मुइअमोरा ।

पसरन्तोऊरमुहला ओसाहन्ते गिरिगामा ॥^{२०}

सम्भोगान्ते श्लथमुजलनानिःसहाना वधूना

व्याधुन्वन्तोऽनुचितकवरीभारमव्याजमुग्धम् ।

अस्मिन् सद्यः श्रमजलनुदः मौधजालैरुपेत्य

प्रत्यासन्ना मलयमरुतस्नालवृन्तीभवन्नि ॥

२०. गाथा ; श० १ , ७० , श० ७ ; ४, ३६ । आर्या० , ४ ; ३९ ।

[सघन फूले हुए कदम्बों से, स्वच्छ धुली हुई शिलाओं से, मस्त मयूरों के समूह से तथा मुखरित होते हुए निर्भरों से पर्वतीय गाँव उत्साहित हो उठे हैं।] इसी प्रकार आर्या मे वर्षा की घटाओं से वियोगिनी का मन उद्वेलित होने लगता है।

§ १२—प्रकृति पर मानवीय विलास या मधु-क्रीड़ाओं का आरोप उद्दीपन के रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है। इसमें जिस भाव-स्थिति की छाया रहती है उसी को यह प्रभावित भी करती आरोप का माध्यम है। 'शरद् ऋतु में नील कमलों के सुगन्धित सरोवरों के जल को पथिक अपनी पत्नियों के मुख के समान पीते हैं' इसमें 'दयिता के मुख' द्वारा प्रकृति का सम्बंध प्रभावात्मक हो गया है। कभी प्रकृति पर आरोप अधिक पूर्ण होता है—

उष्वहृद् शवतण्डुररोमञ्जपसाहिआह् अङ्गाह् ।

पाडसलचञ्चोभ पओहरेहिं परिपल्लिओ विन्को ॥^{२१}

[वर्षा की लक्ष्मी के पयोधरो से, नव-तृणों के अंकुरों रूपी रोमावली से मंडित अंगवाला विन्ध्याचल उत्तेजित होकर शोभित है।] प्रकृति में जो उद्वेग है वह मानव के लिए उद्दीपन का कारण है।

क—अन्त में प्रकृति त्रिलकुल पृष्ठभूमि में चली जाती है और उसके स्थान पर केवल मानवीय ऐश्वर्य्य-विलास का उल्लेख रह जाता है।

ऐसी परिस्थिति में प्रकृति को ऋतु या देश का नाम ऐश्वर्य्य और विलास ले लेना पर्याप्त माना जाता है। ग्रीष्म-ऋतु की दोपहरी में 'स्नान की हुई स्त्री के रेशमी वस्त्र से प्रकट हुए अरुण वर्ण के उरोज और जंघाएँ कामोजन को बाण फल के समान घायल करती है।' यहाँ ऋतु-वर्णन तो प्रसंग मात्र है, कवि का उद्देश्य रति-स्थायी का उद्दीपन है। इसी प्रकार ग्रीष्म-ऋतु के इस चित्र में विलास का रूप प्रधान है—

खिण्यस्स उरे पङ्खो ठवेइ गिन्हावरणहरमिअस्स ।

ओलं गलन्तकुसुमं पहाणसुअन्धं चिडरभारम् ॥^{२२}

[रमण करने से खिन्न हुए पति के हृदय पर पुष्पो के जल से स्नान करने से सुगन्धित तथा गीले बालों को रखती है ।] प्रकृति को भावों के प्रत्यक्ष उत्तेजक के रूप में प्रयुक्त करने के बाद उसका चिह्न भी ओझल हो जाता है, और यह विलास-क्रीडा मात्र उसके स्थान पर शेष रह जाती है ।

ऋतु-काव्य

§ १३—विभिन्न काव्य-रूपों के अन्तर्गत कहा गया है कि ऋतु-काव्य का विकास लोक-गीतियों से सम्भावित है । इस कारण इन काव्यों में उद्दीपन की स्वच्छद स्थिति मिलती है । परन्तु ये सहज भावशीलता अपनी काव्यात्मक प्रवृत्ति के कारण दूसरी ओर सामन्ती ऐश्वर्य-विलास से पूर्ण भी हैं । ब्राह्मणों की परम्परा अधिक लौकिक तथा मुक्त रह सकी है । ऋतु सम्बंधी स्वतन्त्र काव्य प्रमुखतः कालिदास का ऋतुसंहार है, यद्यपि महाकाव्यों में ऋतु वर्णन की परम्परा का रूप ऐसा ही रहा है । ऋतु के परिवर्तित रूप में एक सहज भावशीलता पाई जाती है जिसमें उद्दीपन की व्यंजना सन्निहित होती है—‘कदम्ब, सर्ज, अर्जुन और केतकी से पूर्ण वनों को कपाता हुआ और उन वृक्षों के फूलों को सुगन्ध में बसा हुआ और चन्द्रमा की किरणों से तथा बादलों से ढका बहनेवाला पवन किसे मस्त नहीं करना ।’ प्रकृति का उल्लास मानव के मन को उल्लसित करता है, पर यह भाव-स्थिति अन्य स्थायी-भाव से सम्बंधित होने के कारण उद्दीपन के अन्तर्गत स्वीकार की जायगी । वर्षा-कालीन पवन भी पथिक के मन को उत्सुक कर रहा है—

नवजलकणसङ्गाच्छीततामादधानः

कुसुमभरनतानां लासकः पादपानाम् ॥

जनितरुचिरगन्धः केतकीनां रजोभिः

परिहरति नभस्वान्प्रोषितानां मनांसि ॥

[वर्षा के नवीन जल की फुहारों से शीतल हुआ पवन, फूलों के बोझ से झुके हुए वृक्षों को नचाता हुआ, केतकी के फूलों का पराग लेकर चारों ओर मन भावनी सुगन्ध फैलाता हुआ परदेस गये हुए प्रेमियों का मन चुराता है ।] यद्यपि ऋतुसंहार में रूढि तथा परम्परा का रूप मिलता है, परन्तु फिर भी कलात्मक दृष्टि से पर्याप्त उन्मुक्त वातावरण इसमें है । महाकाव्यों के अन्तर्ग आनेवाले ऋतु-वर्णनों में प्रत्यक्ष उद्दीपन तथा विलास का वर्णन बढता गया है । महाकाव्यों के प्रसंग में इसका उल्लेख किया जायगा । कालिदास के शरदू वर्णन में ऐसी ही भावशील-स्थिति मिलती है—‘शेफालिका के फूलों की गन्ध जिन उपवनों में मन भावनी फैल रही है, जिनमें निश्चिन्त बैठी हुई चिड़ियों की चहचहाहट चारों ओर गूँज रही है, जिनमें कमल जैसी आँखों वाली हरिणियाँ स्थान-स्थान पर पगुरा रही हैं, उन्हें देख कर लोगों के मन उत्कण्ठित हो जाते हैं ।’ इसी प्रकार हेमन्त के सरोवरों का सौन्दर्य नागरिकों के मन को उल्लसित करता है—

प्रफुल्लनीलोत्पलशोभितानि

सोन्मादकादम्बविभूषितानि ।

प्रसन्नतोयानि सुशीतलानि

सरांसि चेतांसि हरन्ति पुंसाम् ॥ २३

[ऐसे सरोवर जिनमें पुष्पित नील कमल शोभित हैं, मस्त कलहस सतरण कर रहे हैं और निर्मल शीतल जल भरा हुआ है, लोगों के मन को हरते हैं ।] इस प्रकृति में सहज सौन्दर्य का आकर्षण मात्र है, परन्तु जिस भूमिका में यह उपस्थित है उस पर आकर्षण में रति व्यजना सम्मिलित हो गयी है ।

§ १३— प्रकृति के इस रूप के आगे वह स्थिति आती है जिसमें

प्रभावशीलता के संकेत और अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। यह सारा उद्दीपन प्रसंग रति-भाव को लेकर है। इस कारण इस प्रभावशील स्थिति रूप में प्रकृति मानवीय मन को किंचित अधिक संवेदित कर देती है। पहले रूप में मानसिक स्थिति का उत्सुक होना भर पर्याप्त था, पर इसमें यह उत्सुकता स्पष्ट पूर्व भाव-स्थिति (रति) के प्रति लक्षित होती है। 'वर्षा में मेघ मृदंग जैसी ध्वनि करते हुए त्रिजली की डोरी वाला इन्द्र धनुष चढाये हुए अपनी तीखी धारों के पैने बाण बरसा कर विदेश में रहने वाले लोगों के मन को व्यथित करता है।' इसमें मेघ-क्रीड़ा से वियोगियों के मन के कसकने का उल्लेख है, जो उद्दीप्त भाव-स्थिति की स्पष्ट व्यंजना है। शरत्काल की नवयुवकों की इस उत्कण्ठा में यही भाव परिलक्षित है—

भिन्नाञ्जनप्रचयकान्ति नमो मनोज्ञं

बन्धूदृग्परचिताहृगता च भूमिः ।

वप्राश्च चारुमलावृतभूमिभागाः

प्रोत्करदयन्ति न मनो भुवि कस्य यूनः॥

[घुटे हुए काजल के समूह के समान सुन्दर नीला आकाश दुपहरिया के फूलों से लाल बनी हुई धरती और पके हुए धान से लदे हुए सुन्दर खेत इस संसार में किस युवक-मन में हलचल नहीं मचा देते।] वसन्त में सारा प्रकृति का उल्लास मानवीय मन को काम की भावना से अविभूत कर रहा है। कुछ दृश्यों में सहज भावशीलता मात्र है, कुछ में प्रभावित भाव-स्थिति मिलती है और अन्य रूप भी पाये जाते हैं। वसन्त में आम का शृंगार मन को प्रभावित किये बिना कैसे रह सकता है—'लाल लाल कांपलों के गुच्छों से झुके हुए और सुन्दर मजरियां से लदी हुई शाखाओं वाले आम के पेड़ पवन के भोकों से हिलकर कामिनियों के मन को रति भावना से उत्कण्ठित करते हैं।' और भी—

मत्तद्विरेफपरिचुम्बितचारुपुष्पा

मन्दानिलाकुलितनम्रमृदुप्रवालाः ।

कुर्वन्ति कामिमनसां सहसोरसुकच

बालातिमुक्तलतिकाः समवेक्ष्यमाणाः ॥ २४

[मत्त भ्रमरों से चूमें गये हैं सुन्दर पुष्प जिसके और मन्द पवन से नये कोमल पत्ते जिसके हिल रहे हैं ऐसी कोमल मुक्त लताओं को देख कर कामियों के मन अचानक समुत्सुक हो उठे हैं ।] इन दृश्यों में जो उत्सुक आकर्षण है वह काम-भावना के प्रति प्रत्यक्ष लक्षित होता है ।

§ १४—अन्य रूपों में प्रकृति प्रत्यक्ष रूप में मानवीय मन को कष्ट और पीड़ा (वियोग पक्ष में) आदि देती उपस्थित हुई है । मन में जो स्थायी प्रेरक उद्दीपन भाव जाग गया है उसकी अनुभूति को प्रगाढ़ करने में यहाँ प्रकृति सहयोगिनी होती है । अभी तक प्रकृति ने मन को अप्रत्यक्ष भावना को उत्कण्ठित भर किया था, लेकिन इस सीमा पर वह जाग्रत भाव-स्थिति के सुख-दुःख को बढ़ाने में सहयोग देने लगती है । वर्षा का यह दृश्य वियोगिनी के लिए असह्य हो उठता है—‘कमल-दल के समान सॉवले, पानी के भार से झुक जाने के कारण थोड़ी ऊँचाई पर ही छाये हुए तथा मन्द-मन्द पवन के सहारे चलनेवाले जिन बादलों में इन्द्रधनुष निकल आया है उन्होंने परदेस में गए हुए लोगों की पत्नियों की सुध-बुध हर ली है ।’ शरत्कालीन वातावरण वियोगिनी के लिए और भी उद्दीपक है—‘सब की आँखों को भला लगनेवाले जिस चन्द्रमा की किरणें मन को बरबस अपनी ओर खींच लेती हैं, वही फुहार बरसानेवाला चन्द्रमा, अपने पतिओं के बिछोह के त्रिप बुझे बाणों से घायल हुई घरों में पड़ी स्त्रियों के अंगों को जला रहा है ।’ यह उद्दीपन विभाव में प्रयुक्त प्रकृति के रूप का चरम है ।

कालिदास जैसे कवि की रत्ना भी इस परम्परा से नहीं हो सकी, सम्भवतः इसका कारण उस युग का सामन्ती वातावरण है। बसन्त वर्णन के अन्तर्गत यह रूप आधिक व्यापक है। कुरवक अपने सौन्दर्य में उत्तापक है—

कान्तामुखद्युतिजुषामपि चोद्गतानां

शोभां परां कुरवकद्रुममञ्जरोणाम् ।

दृष्ट्वा प्रिये सहृदयस्य भवेन्न कस्य

कंदर्पबाणपतनव्यथितं हि चेतः ॥ २५

[हे प्रिये, तत्काल खिले हुए स्त्रियों के मुख के समान सुन्दर लगनेवाले कुरवक के फूलों की अनोखी शोभा देख कर किस रसिक का मन कामदेव के बाणों से आहत नहीं होता।] कालिदास के इस प्रयोग में काव्यात्मक सौन्दर्य के साथ प्रकृति का रूप भी रक्षित है, अगले कवियों के रूढ़िवाद से इनमें यही भिन्नता है।

§१५—कभी इस काव्य में प्रकृति और मानव-जीवन एक दूसरे से सामंजस्य स्थापित करते हैं। इस स्थिति में प्रकृति किसी निश्चित भाव-स्थिति के लिए अनुरूप वातावरण प्रस्तुत करती है। वातावरण में परन्तु साधारण कथा-वस्तु के अनुरूप वातावरण में और इस प्रकार के वातावरण में अन्तर है। इसका सम्बंध जिस परिस्थिति से होगा वह स्वयं उत्तेजनापूर्ण होनी चाहिए। इसमें प्रकृति का रूप सहायक हो जाता है। ऋतुसंहार के इस वर्षा-वर्णन में ऐसा ही उद्दीपक वातावरण है—‘अभिसारिकाएँ अपने प्रेमी के लिए, बार-बार गरजन करते हुए बादलों से घिरी हुई घनी अँधेरी रात में भी त्रिजली की चमक से आगे का मार्ग देखती हुई चली जा रही हैं।’ रति-विलास की उत्सुकता के साथ अँधेरी रात का यह घन-गरजन ऐसा ही है। शरद् का परदेसी प्रकृति के विस्तार से अपने वियोग का सम्बन्ध स्थापित

करता है—

असितनयनज्जर्मा लक्षित्वोत्पलेषु

कण्ठितकनककाञ्ची मत्तहसस्वनेषु ।

अधरश्चिरशोभां बन्धुजीवे प्रियाणां

पथिकजन इदानीं रोदिति भ्रान्तचित्तः ॥

[बेचारे परदेसी लोग नील-कमल में अपनी प्रियतमा की काली आँखों की शोभा, मस्त हंस की ध्वनि में उसकी सुनहली करधनी की रुनभुन तथा बन्धुजीव के फूलों में उसके निचले ओठों की सुन्दर शोभा देख कर भ्रान्ति में पड़ कर रोने लगते हैं ।] अगले श्लोक में इस सामजस्य का दूसरा रूप है । इसमें एक प्रकार का आरोप है, पर यह भी वातावरण के साथ स्वीकार किया जा सकता है । प्रकृति में 'शरद् की शोभा, कहीं चन्द्रमा के सौन्दर्य को छोड़ कर स्त्रियों के मुँह में पहुँच गई है, कहीं हंसों की मीठी बोली छोड़ कर उनके मणि-मय त्रिभुजों में चली गई है और कहीं बन्धूक फूलों की लाली छोड़ कर उनके निचले ओठों में जा चटी है ।'^{२६} जिस नारी के माध्यम से इस चित्र में प्रकृति-रूप की स्थापना की गई है, उसी की कल्पना ने इसे उद्दीपन का वातावरण भी प्रदान किया है ।

§१६—प्रकृति पर मानव-जीवन तथा भावों के आरोप का उल्लेख पिछले प्रकरणों में किया गया है । यहाँ पर इस आरोप में किसी पूर्व

भाव-स्थिति की स्वीकृति भी आवश्यक है । साधारणतः

भाव-भाव तथा विलास-क्रीड़ा आदि के आरोप से प्रकृति में कोमोद्दीपन रूप समन्वित हो जाता है । शरत्कालान सरिताओं की कामिनियों से तुलना इसी प्रकार की है—'इस ऋतु में मदमाती प्रमदाओं के समान नदियाँ मन्द मन्द प्रवाहित होती हैं । उज्ज्वली हुई सुन्दर मञ्जलियाँ ही उन नदियों की करधनी हैं, तीर पर

बैठी हुई उजली चिड़ियों की पॉत ही उनकी मालाएँ हैं और ऊँचे-ऊँचे रेतीले टीले ही उनके गोल नितम्ब हैं।' अन्यत्र इसी ऋतु में प्रकृति 'खिले हुए उजले कमल के मुखवाली, फूले हुए नीले कमल की आँवोवाली, सुन्दर कुमुदिनी की कान्तिवाली और फूले हुए काँस की साडों पहननेवाली कामिनी के रूप में लोगों के मन को प्रीतिमान् करती है।' वसन्त के मोहक वातावरण में प्रकृति मानवीय क्रीडा-विनास में मग्न भी उपस्थित हुई है—

पुं स्कोकिन्नश्चूतरसासवेन

मत्तः प्रियां चुम्बति रागाहृष्टः ।

कूजद्विरेफोऽप्ययमम्बुजस्थः

प्रियं प्रियायाः प्रकरोति चाटु ॥ २७

[देखां, यह नर कोयल आम की मजरियो के रस में मद मस्त होकर अपनी प्यारी को प्रेम से चूम कर प्रसन्न हो रहा है। कमल पर बैठा हुआ भौरा गुनगुना कर अपनी प्यारी की चाटुकारिता कर रहा है।] इस रूप में आरोप के साथ जीवन का जो प्रतिबिम्ब है वह मानवीय विलास को उद्दीप्त करने के लिए है।

§ १७—ऋतु-वर्णन के अन्तर्गत ऐश्वर्य्य और विलास का रूप ऋतुसंहार से ही पूर्णतः प्रारम्भ हो गया है। इसका कारण इस काव्य

का लोकगतियों की भावधारा से प्रभावित होने के साथ सामन्तो वातावरण में रचा जाना भी है।

लोक का गायक अपने भावोल्लास और प्रकृति को ऐसा मिला जुला देता है कि एक से दूसरे को अलग कर सकना कठिन हो जाता है। कभी प्रकृति परोक्ष में रहती है और गायिका अपने ही उल्लास या विषाद का चित्र उपस्थित करती है। इसी प्रवृत्ति में जब सामन्ती वातावरण की छाप पड़ी, तब भावशीलता के वर्णन के स्थान पर केवल

ऐश्वर्य-विलास का रूप रह गया। जैसा कहा गया है बारहमासा की परम्परा अधिक लौकिक रह सकी है, इस कारण उसमें भावशीलता अधिक तथा विलास कम है। ग्रीष्म-काल में कवि प्रारम्भ में बताता है कि 'विलासी लोग इस ऋतु में चाहते हैं कि रात्रि में चाँदनी छिटकी हो, विचित्र शोभावाले फव्वारों के तले हम लोग बैठे हों। इधर-उधर अनेक प्रकार के रत्न बिखरे पड़े हों और सुगन्धित चंदन चारों ओर छिड़का हुआ हो'। आगे कवि सामन्तों के ग्रीष्म से बचने के अन्य प्रसाधनों का वर्णन करता है—

कमलवनचिताम्बुः पाटलामोदरम्यः

सुखसखिलनिषेकः सेव्यचन्द्रांशुहारः ।

व्रजतु तव निदाघः कामिनीभिः समेतो

निशि सुललितगीतैः हर्म्यपृष्ठे सुखेन ॥^{२८}

[जिस गर्मा की ऋतु में कमलों से भरे हुए और खिले हुए पाटल की गंध में बसे हुए जल में स्नान करना बहुत सुख देता है, जिन दिनों चाँदनी तथा मोती के हार सुखप्रद हैं, वह ऋतु आन की कामिनियों के साथ मनोहर संगीत के वातावरण में महल की छत पर बीते।] इस ऐश्वर्य के साथ विलास के वर्णन से भी ऋतुसंहार पूर्ण है। वर्षा ऋतु में—'स्त्रियाँ अपने भारी-भारी नितम्बों पर केश लटका कर, अपने कानों में सुगन्धित फूलों के कनफूल पहन कर, छाती पर माला धारण कर और मदिरा पीकर अपने प्रेमियों के मन में काम उकसा रही हैं'। अन्यत्र इस विलास का और भा स्पष्ट वर्णन है—

प्रियङ्गुकालीयककुङ्कुमाक्षं

स्तनेषु गौरैषु विलासिनीभिः ।

आलिप्यसे चन्दनमङ्गनाभि-

मंदालसामिष्टं गनाभियुक्तम् ॥^{२९}

२८. वही, स० १; २, २८।

२९. वही, स० २; १८; स० ६, १२।

[मद से अलसित कामिनियाँ प्रियगु, कालागुरु और केसर के घोल में कस्तूरी मिला कर अपने गोरे-गोरे स्तनों पर चन्दन का लेप कर रही हैं ।] इस समस्त विलासिता में उस युग का सामन्ती वातावरण भाँक रहा है । कवि का वर्णन आगे रति-विलास में चरम पर पहुँच जाता है । आगे के महाकाव्यों के ऋतु-वर्णन तथा अन्य वर्णनों में यह परम्परा रूढ़ि के समान पाई जाती है ।

महाकाव्य

§ १८—अश्वघोष के महाकाव्य प्रारम्भिक हैं और उनमें धार्मिक स्वर प्रधान है । इस कारण महाकाव्यों से कुछ भिन्न वातावरण है ।

अश्वघोष

परन्तु मूल रूप से सभी परम्पराओं का प्रत्यक्ष रूप इनमें ढँढा जा सकता है । प्रकृति को उपस्थित करने का जो क्रम बाद के महाकाव्यों में मिलता है, वह अश्वघोष के महाकाव्यों में नहीं है । परन्तु चौथे सर्ग में प्रकृति का जो उद्दीपक रूप है, उससे जान पड़ता है कि वे प्रकृति के इस प्रकार के उपयोग से पूर्ण परिचित थे । इस समस्त सर्ग में सांसारिक भोग विलास का वातावरण प्रस्तुत किया गया है जिससे कुमार का मन विमोहित हो सके, इस प्रकार इसमें प्रकृति का उद्दीपक रूप कथा-प्रसंग के अनुरूप अवश्य है । यहाँ प्रकृति और मानव जीवन समान रूप से काम-प्रेरणा का वातावरण निर्मित करते हैं—‘कोई कमलाक्षी कमल-वन से कमल के साथ आकर इस कमल-सुख के पास कमल श्री के समान खड़ी हुई ।’ आगे प्रकृति में सहज भावशीलता है जो रति-भाव को प्रभावित करती है—

फुल्लं कुरुवकं पश्य निमुं कालककप्रभम् ।

यो नखप्रभया स्त्रीणां निर्भर्त्सित इवानतः ॥

[निचोड़े हुए अलकक (महावर) के समान प्रभावान् विकसित कुरुवक को देखिए, जो स्त्रियों की नख-प्रभा से मानों भर्त्सित होकर मुक गया

है ।] और कान्ता के हाथों की शोभा से लज्जित होता हुआ पल्लवों से भरा बाल अशोक^{३०} के चित्र में ऐसी ही प्रेरणा परिलक्षित है ।

क—मानव जीवन तथा क्रीडाओं के आरोप द्वारा उद्दीपन का प्रभाव उत्पन्न करने वाले चित्र भी अश्वघोष में मिल जायेंगे । आम और तिलक का अलिगन रति-क्रीडा का प्रतीक है—
 आरोप
 'आम की शाखा से अलिगित होते तिलक-वृक्ष को देखिए, जैसे श्वेत वस्त्रधारी पुरुष पीत अंगराग वाली स्त्री को अलिगन कर रहा हो ।' फिर प्रमदा के रूप में सरोवर की कल्पना में उद्दीपन की प्रेरणा है—

दीर्घिकां प्रावृतां पश्य तोरजैः सिन्धुवारकैः ।

पाण्डुरांशुकसंवीतां शयानां प्रमदामिव ॥^{३१}

[तीर पर उत्पन्न होने वाले सिन्धुवारों से आच्छादित दीर्घिका (सरोवर) को देखिए, जो सफ़ेद वस्त्रों से ढकी सो रही प्रमदा के समान है ।]

§ १६— पिछले प्रकरणों में कहा गया है कि कालिदास ने अपने महाकाव्यों में प्रकृति-वर्णना को रूढि के रूप में स्थान नहीं दिया है ।

कालिदास
 वर्णन-प्रियता भारतीय प्रवृत्ति है, परन्तु कालिदास के वर्णन प्रसंग से सम्बंध रखते हैं । इन विस्तृत वर्णनों

में उद्दीपन की भावना केवल उन्हीं स्थलों पर है जिनका प्रयोग प्रसंग के अनुरूप है, और ये वर्णन ऋतु के हैं । परन्तु इन वर्णनों में अधिक विस्तार नहीं है, इस कारण इनका प्रयोग स्वाभाविक जान पड़ता है । रघुवंश में आठवें सर्ग का वसन्त-वर्णन राजा दशरथ के विलास की भूमिका में तथा सोलहवें सर्ग का ग्रीष्म-वर्णन अयोध्या नगरी के फिरलौट आने वाले ऐश्वर्य की भूमिका में उद्दीपन की भावना से प्रभावित हैं । इसी प्रकार कामदेव की सहायता करने वाले वसन्त के प्रसार में उद्दीपन

३०. बुद्ध ० ; स० ४, ३६, ४७, ४८ ।

३१. वही , स० ४, ४६, ४९ ।

की भावना कुमारसम्भव में मिलती है, जो प्रसंग के अनुरूप है। कालिदास के अन्य वर्णनों में जैसा विवेचित किया गया है वर्णन सौन्दर्य विशेष है।

क— ऋतुसंहार जैसा विलास का वातावरण इन महाकाव्यों के ऋतु-वर्णनों में नहीं है। कथा-वस्तु के साथ ये चित्रण अधिक सहज हैं
 महज स्थिति यद्यपि इनमें उद्दीपन की समस्त प्रेरणा का रूप मिल जाता है। राजा दशरथ के लिए वसन्त के प्रसार में सहज भावशील स्थिति का रूप इस प्रकार है—‘पवन से उड़ाये हुए पराग के पीछे भौरे भी उड़ चले। वह उड़ता हुआ पराग ऐसा जान पड़ता था मानो घनुषधारी कामदेव की पताका हो अथवा वसन्तश्री के मुख पर लगाने का शृंगार-चूर्ण।’ इस चित्र में काम और शृंगार की कल्पना से रति-भाव को उद्भूत किया गया है। इसी प्रकार कुमारसम्भव के वसन्त-प्रसार में कहीं-कहीं केवल सहज प्रेरणा मात्र है। वसन्त के आते ही ‘दूज के चाँद के समान टेढ़े, अत्यंत लाल-लाल अधखिले टेसू के फूल वन-भूमि में फैल हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानों वसन्त ने वनस्थलियों के साथ विहार करके उन पर नख-चिह्न बना दिए हैं।’ इस चित्र में रति-क्रीड़ा के संकेत से यह भाव-स्थिति उत्पन्न हुई है। आगे प्रकृति में समाहित उल्लास में यह भावना और सुन्दर रीति से व्यंजित हुई है—

ददौ रसात्पङ्कजरेखुगन्धि गजाय गण्डूषजलं करेणु ।

अर्धोपभुक्तेन बिसेन जायां संभावयामास रथाङ्गनामा ॥^{३२}

[हथिनी प्रेम-पूर्वक कमल के पराग में बसा हुआ जल अपनी सूँड से अपने हाथी को पिलाने लगी और चकवा आधी कुतरी हुई कमल-नाल को चकवी को देने लगा।] इस व्यापार में रति-भावना अन्तर्निहित है।

ख—कभी यह स्थिति वातावरण के निर्माण में परिलक्षित होनी

है। यह वातावरण प्रकृति और मानव जीवन के सामंजस्य से बनता है। ग्रीष्म-ऋतु में अयोध्या की 'बावलियों का जल सेवार जमी हुई सीढ़ियों को छोड़ता हुआ पीछे हटने लगा। उनमें कमल की डडियों-दिखाई देने लगीं और पानी हटकर स्त्रियों की कमर तक रह गया।' इसमें स्त्रियों की कमर के उल्लेख ने उद्दीपक वातावरण निर्मित किया है। अन्यत्र वर्णन में पौराणिक प्रसंग के संयोग से ऐसा प्रभाव उपस्थित किया गया है—'पाला दूर हो जाने से चन्द्रमा निर्मल हो गया और सभंग-श्रम के दूर करने-वाली उसकी ठंडी किरणों से कामदेव के फूलों के धनुष को मानों और भी अधिक बल मिला हो।' कविप्रसिद्ध की कल्पना में ऐसे ही वातावरण प्रस्तुत करने की भावना है—

ससूत सद्य कुसुमान्यशोकः स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि ।

पादेन नापैक्षत सुन्दरीणां संपर्कमासिञ्जितनूपुरेण ॥^{३३}

[अशोक वृक्ष भी तत्काल नीचे से ऊपर तक फूल पत्तों से लद गया, उसने झनझनाते हुए बिछुआवाले सुन्दरियों के चरण-प्रहार की बाट नहीं देखी।] कुमारसम्भव के वसन्त-प्रसार में उद्दीपन का वातावरण इस प्रकार निर्मित हुआ है।

ग—कभी प्रकृति का प्रत्यक्ष उद्दीपक रूप भी इन वर्णनों के अन्तर्गत मिल जाता है, परन्तु ऐसा बहुत कम हुआ है। साथ ही इस प्रत्यक्ष उद्दीपन में कालिदास ने स्वाभाविकता का प्रत्यक्ष रूप में निर्वाह किया है। नवें सर्ग के 'वसंत में फूले हुए अशोक के फूलों को देख कर ही कामोद्दीपन नहीं होता था, वरन् कामियों को मतवाला बनाने वाले जो कोमल कोंपलों के गुच्छे स्त्रियों ने अपने कानों पर रख लिए थे उन्हें देख कर भी मन हाथ से निकल जाता था।' इस वर्णन में उद्दीपन की प्रत्यक्ष भावना है। कुमारसम्भव

के वसन्त प्रसार में ऐसा ही उद्दीपन का प्रभाव कौकिल के स्वर से प्रकट होता है—

चूताङ्कुरास्वादकषायकण्ठः पुंस्कांकिलो यन्मधुरं चुकूज ।

मनस्विनीमानविघातदहं तदेव जातं वचनं स्मरस्य ॥^{३४}

[आम की मजरियो के खा लेने से जिसका स्वर मीठा हो गया है ऐसा कौकिल जब मीठे स्वर से कूक उठता था, तब उसे सुन कर रूठी हुई स्त्रियाँ अपना रूठना भूल जाती थीं ।] इस प्रकार उद्दीपक चित्र कालिदास में कम हैं, पर अगले कवियों में क्रमशः यह प्रवृत्ति अधिक विकसित होती गई है ।

घ—कालिदास ने प्रकृति को मानव जीवन तथा प्राणों से स्थान स्थान पर सन्दिग्ध कर दिया है । परन्तु कुछ आरोपों में रति-विलास और मधु-क्रीड़ाओं के सकेत से प्रकृति उद्दीपन का कार्य करती है । परन्तु इनमें कवि की काव्यात्मक प्रतिभा के कारण कृत्रिमता के स्थान पर सौन्दर्य ही अधिक है । वसन्त के उल्लास में प्रकृति पर कामिनी का आरोप स्वभावतः उद्दीपक है—
‘तिलक वृक्ष के फूलों पर मँडराते हुए काजल की बुँदियों के समान भौरे ऐसे जान पड़ते थे मानों वनस्थलियों का मुख चीत दिया गया हो । इस प्रकार शृंगार की हुई युवती के रूप में, तिलक वृक्ष ने वनस्थली की कम शोभा नहीं बढ़ाई ।’ कुमारसम्भव में वसन्त-श्री स्वयं इस प्रकार नायिका के समान शृंगार करती है—

लग्नद्विरेफाब्जनभक्तिचित्रं मुखे मधुश्रीस्तिब्जकं प्रकाश्य ।

रागेण बालारूणकोमलेन चूतप्रवालौष्ठमलंचकार ॥^{३५}

[उड़ते हुए भौरे रूपी अर्जुन से अपना मुँह चीत कर, अपने माथे पर तिलक के फूल का तिलक लगा कर और प्रातःकाल निकलते हुए सूर्य

३४. रघु० ; स० ९ ; २८ ; कुमा० , स० ३ , ३२ ।

३५. रघु० , स० ९ ; ४२ । कुमा० ; स० ३ ; ३० ।

की कोमल लाली में चमकनेवाले आम की कोंपलों से मानो वसन्त की शोभा रूमी स्त्री ने अपने आँठ रंग लिए हों ।] इन चित्रों में शृंगार की भावना परिलक्षित होती है ।

ड—कालिदास के ऋतुसंहार में ऐश्वर्य-विलास का पूर्ण सामन्ती वातावरण मिलता है, परन्तु महाकाव्यों में विलास का वैसा रूप नहीं है । और विलास का जो रूप मिलता है वह प्रसंग

विलास

में खप जाता है ; दशरथ के ऐश्वर्य के अनुरूप यह

स्त्रियों की क्रीड़ा का वर्णन है—‘जो स्त्रियाँ वसन्तोत्सव में नये भूचों पर सावधान होकर भूल रही थीं, वे भी अपने हाथ की रस्सियाँ इसलिए ढीली कर देती थीं, जिससे हाथ छूटने पर प्रियतम हमें थाम ही लगे और इस प्रकार उनके गले से भी लग जायेंगी ।’ सोलहवें सर्ग में गर्मी के ऐश्वर्य का वर्णन इस प्रकार है—‘धनी लोग गर्मी में ठंडी रहनेवाली उन विशेष प्रकार की शिलाओं पर सोकर टुपहरी बिताते थे जो चन्दन से धुली होती थीं और जिनके चारों ओर जल-धाराएँ छूटती थीं ।’ इस प्रकार के वर्णन ऋतु-काव्य की परम्परा में बढ़ते गये हैं । कुमारसम्भव में वसन्त के प्रभाव में किन्नरों की यह क्रीड़ा स्वाभाविक लगती है ।

गीतान्तरेषु श्रमवारिलेशैः किञ्चित्समुच्छ्वासितपत्रलेखम् ।

पुष्पासवाघृषितनेत्रशोभि प्रियामुखं किंपुरुषश्चुम्बे ॥ ३६

[किन्नर लोग गीतों के बीच में ही अपनी प्रियाओं के उन मुखों को चूमने लगे जिन पर थकावट के कारण पसीना छा गया था, जिन पर चींटी हुई चित्रकारी लिप गई थी और जिनके नेत्र पुष्पों के आसव से मतवाले होने के कारण बड़े सुन्दर लग रहे थे ।]

§ २०—काल-क्रम से बुद्धघोष कालिदास के बाद के हैं, इस कारण उद्दीपन सम्बंधी समस्त प्रवृत्तियाँ इनके महाकाव्य में पाई जाती हैं ।

पद्मचूडामांश

परन्तु बुद्धघोष में अन्य क्षेत्रों के समान यहाँ भी रूढ़ि के स्थान पर सौन्दर्य का रूप प्रधान है । कहीं उद्दीपन

का सहज रूप इस प्रकार उपस्थित किया गया है—‘अशोक-लता ने तरुणियों के पद-कमल के ताड़न के प्रति असहनशील हो नूतन पल्लवों के मिस मानों अपना कोपानल (विरहिणियों के लिए) प्रकट किया है।’ कभी प्रकृति के वातावरण के साथ उद्दीपन की भावना व्यक्त हुई है—‘हसों को निकालने में बेत की छड़ी के समान त्रिजली विरहिणियों की भर्त्सना करनेवाली मेघ की अंगुली के रूप में सुशोभित है।’ इस वर्षा के चित्र में वियोगिनी की व्यथा के साथ दृश्य उद्दीपक हो गया है। कुछ स्थलों पर प्रत्यक्ष रूप में प्रकृति पूर्व-निश्चित रति-भावना को उद्दीप्त करती उपस्थित होती है—‘आधा उगा हुआ चन्द्रबिम्ब, जिसमें किंचित कलंक प्रकट है, स्त्रियों के लिए विषाक्त कामदेव के बाण के समान उदित हो गया है।’ यहाँ चन्द्रमा का उदित होना स्वतः कामिनियों के मन को कसकने वाला कड़ा गया है। अनेक प्रकार के शारीरिक तथा मधु-क्रीड़ाओं के आरोप से यह प्रभाव उत्पन्न किया गया है। इन आरोप चित्रों में मधु-क्रीड़ाओं के दृश्य अधिक हैं। ‘आकाश की शोभा नक्षत्रों से इस प्रकार है मानों पति के कर-स्पर्श से शिथिल होकर अन्धकार-रूपी रात्रि-कामिनी के केशों से नव-प्रसून गिर कर फैल गये हों।’ इस वर्णन में आलिगन की व्यजना अन्तर्निहित है। अन्यत्र भी प्रकृति में इस प्रकार क्रीडा-विलास लक्षित होता है—‘मकरन्द के सिन्धु के सुन्दर प्रसून की धूलि बने हुए पुलिन पर भ्रमर अपनी भ्रमरियों के साथ मण्डल बना कर मधु-रस पी रहे हैं।’ इसी प्रकार—

अशोक्यष्ट्याः स्तवकोपनीत-

मादाय पुष्पासवमाननेन ।

संभोगस्त्रिधां तरुणद्विरेफः

सचाटुकं पाययति स्म कान्ताम् ॥ ३७

[तरुण भ्रमर प्रिय वचनों के साथ अपनी संभोग से श्रान्त कान्ता

को अशोकलता के फूलों के गुच्छे से पुष्प-रस लेकर पिला रहा है ।] वास्तव में यह समस्त आरोप हमारे समान मानवीय विलास का रूप प्रत्यक्ष कर देता है ।

§ २१—प्रवरसेन के महाकाव्य का प्रधान रस शृंगार नहीं है और साथ ही उसमें विस्तृत वर्णनाएँ हैं । इन कारणों से सेतुबन्ध में प्रकृति

उद्दीपन-विभाव के रूप में बहुत कम प्रयुक्त हुई है ।
सेतुबन्ध

इस महाकाव्य में प्रकृति के ऋतु आदि रूपों को केवल परम्परा-पालन की दृष्टि से नहीं रखा गया है । इसका समस्त वातावरण घटना के अनुरूप है । प्रातःकाल के इस वर्णन में उद्दीपन का सहज आभास है—‘दिन डूब जाने पर किञ्चित विकसित होकर पुनः गाढी सी प्रतीत होने के कारण हाथ से हटाई जाने योग्य प्रतीत होने वाली ज्योत्स्ना के भार से अपने विकसित दलों वाला मुकलित कुमुद कोंप सा रहा है ।’ शब्द के इस वर्णन में वातावरण इसी प्रकार का है—

खण्डितोत्पातितमृणालां दृष्ट्वा प्रियामिव शिथिलवक्ष्यां नलिनीम् ।

मधुकरौमधुरोत्क्ष्वापं मधुमयाताम्रं सुखमिव गृह्यते कमलम् ॥^{३८}

[जिसके हाथों से कंकण खिसक गया है अपनी उस प्रियतमा के समान, तोड़ लिये गये हैं कमल जिसका ऐसी नलिनी को देख कर मधुकर मधुमय और थोड़ी-थोड़ी लाली लिए हुए कमल को उसका मुख समझ कर उसकी ओर अनुरक्त हो रहे हैं ।] इस वातावरण में आरोप का माध्यम प्रधान है । परन्तु कभी आरोप उद्दीपन के लिए प्रधान भी हो जाता है । समुद्र की वेला का यह चित्र संभोगोपरान्त नायिका के समान उपस्थित किया गया है—‘नत-उन्नत रूप में स्थित फेनराशि जिसका अगाराग है, जिसका नदी-प्रवेश रूपी मुख विद्रुम-जाल रूपी दन्त-व्रण से विशेष कान्तिमान है तथा मृदित वन-रूपी कुसुम ग्रथित केशपाश है जिसका ऐसी, समुद्र-रूपी नायक के संभोग-चिह्नों को वेला नायिका धारण

करती है ।' बारहवें आश्वास में प्रातःकाल के साथ विलास का वर्णन है । कवि प्रभात-काल के सुख का उल्लेख करता हुआ मदिरा पात्र का वर्णन भी करता है—

संक्रान्ताधररागं स्तेकसुरासंस्थितोत्पत्तार्धस्थगितम् ।

चषकं कामिनीमुक्तं क्लाम्यद्बकुलतनुको न मुञ्चति गन्धः ॥^{३९}

[जिसमें पान के समय की ओठों की लाली लगी हुई है, थोड़ी मदिरा के शेष रह जाने के कारण अर्द्ध कमल-दल से आच्छादित सा कामिनियों द्वारा त्यक्त चषक मुर्झाते बकुल पुष्प की भाँति मदिरा की गन्ध को नहीं छोड़ रहा है ।] इस उल्लेख में ऐश्वर्य्य-विलास वर्णन की परम्परा का रूप रक्षित है ।

§२२—कुमारदास के महाकाव्य में, जैसा कहा गया है प्रकृति-वर्णन कथा-वस्तु से अधिक दूर नहीं पड़ गया है । प्रकृति और कथा-वस्तु का सम्बंध इसमें रक्षित है । और साथ ही उद्दीपन-रूप जानकीहरण की रूढिवादिता का प्रवेश इस महाकाव्य तक नहीं हुआ था । वर्णन अलंकृत हैं, पर उनमें उद्दीपक भाव-स्थिति के संकेत का समावेश नहीं किया गया है । रात्रि-वर्णन के इस दृश्य की सहज भाव-शील व्यंजना में उद्दीपन का संकेत है—'चन्द्रमा ने निश्चय ही अंधेरे पल्ल में खोये हुए अपने मण्डल को वियोगिनी स्त्रियों के कमल-मुखों के प्रकाश से पुनः पूरा कर लिया है ।' इसमें चन्द्रमा वियोगिनियों के लिए उत्तेजक है, इस बात की व्यंजना निहित है । अन्यत्र वसन्त के विकास के साथ अशोक के वर्णन में कवि-प्रसिद्धि उद्दीपन का वातावरण प्रस्तुत करती है—

वन्ध्योऽपि साजक्तकपादघातं

लब्ध्वा रणक्षूपुरमङ्गनानाम् ।

ऊर्ध्वतरोमांच इवातिहर्षात्

पुष्पाङ्कुरैरास नवैरशोकः ॥ ४०

[वन्ध्या होने पर भी अशोक, युवतियों के महावर से रंजित तथा बजते हुए नूपुरों वाले पैरों के आघात से ऐमा फूल उठा है मानों हर्षातिके से उसका शरीर रोमांचित है ।] कहीं-कहीं प्रकृति प्रत्यक्ष उद्दीपक के रूप में उपस्थित हुई है । वसन्त में करवीर इस प्रकार पुष्पित हो रहा है— 'आभा से चमकती हुई करवीर की नवीन लाल-लाल कलियाँ परदेशी पथिकों के लिए मदन के तीक्ष्ण बाण के फल के समान प्रकट हुई ।' इसी प्रकार अस्त होते हुए सूर्य के दृश्य में यही भावना है— 'कुंकुम से लाल स्त्री के कुचमण्डल के समान सूर्य प्रवासियों के मन को आतुर करता हुआ पश्चिम सागर की तरंगों में डूब रहा है ।'^{४१} आरोप का माध्यम कम ही स्थलों पर लिया गया है । इस चित्र में सूर्य तथा सरोजनी के प्रेम प्रसंग को उपस्थित किया गया है—

विरामः शर्वर्यां हिमरुचिरवाप्तोऽस्तरशिखरं

किमद्यापि स्वापस्तव मुकुलिताम्भोरुहदराः ।

इतीवायं भानुः प्रमदवनपर्यन्तसरसीं

करेयाताम्रेण प्रहरति विबोधाय तरुणः ॥

[रात्रि के समाप्त होने पर 'मुकुलित कमल-नेत्रोंवाली अभी तक तुम सो रही हो' इन शब्दों के साथ तरुण अरुण अपने रक्त-करों से जगाने के लिए प्रमद वन के निकट स्थित सरसी को थपथपाता है ।] प्रेमी-प्रेमिका की व्यंजना से इस आरोप में रति-भावना का उद्दीपन है । इसी सर्ग में रात्रि-वर्णन प्रसंग के साथ राजा दशरथ के विलास का वर्णन भी प्रस्तुत हुआ है । आसव-पान के प्रसंग को कवि इस प्रकार प्रकृति-वर्णन के साथ मिला देता है—'चषक की मदिरा में प्रतिबिम्बित

४०. जान०, म० ८, ७७ : स० ३ ; ७ ।

४१. वही ; स० ३, ६, ६४ ।

चन्द्रमा युवती के कमल गन्ध वाले मुख में जाने के लिए इच्छुक, प्रेम पीड़ित के समान कौंप रहा है।^{४२} यह विलास-वर्णन जानकी-हरण में अधिक विस्तृत नहीं है और प्रकृति से सम्बंधित रह कर अधिक स्वाभाविक है।

§ २३—भारवि तक कथा-वस्तु में प्रकृति-वर्णन को शास्त्र-निर्दिष्ट रीति से उपस्थित करने की परम्परा अधिक विकसित हो चुकी थी।

किरातार्जुनीय

लेकिन किरातार्जुनीय में प्रकृति तथा वस्तु में कुछ

दूर तक सम्बंध का निर्वाह हो सका है। आगे के

कवियों में प्रकृति-वर्णना के स्थल नितान्त निर्पेक्ष रूप से रखे गये हैं। माघ तथा श्रीहर्ष दोनों में यह बात देखी जा सकती है। साथ ही किरातार्जुनीय में उद्दीपन की प्रवृत्ति माघ जैसी परिलक्षित नहीं होती। भारवि ने प्रकृति को मानवीय भावों के माध्यम से ही नहीं देखा है। वैसे विलास-क्रीडा का वर्णन भारवि में भी अधिक है। अर्जुन की तपस्या-भग करने के लिए आई हुई अप्सराओं के माध्यम से यह वर्णन कथा-वस्तु के अनुकूल बना लिया गया है। अप्सराओं के प्रति प्रकृति कभी सहज भावशील स्थिति में उपस्थित हुई है—‘कमलो का स्पर्श कर, जलकणों से युक्त पवन ने जल-तरंगों का आश्रय लेकर विलासिनी स्त्रियों का आतप दूर कर अपने हाथ का सहारा दिया।’ इसी प्रकार की उद्दीपन की सहज भाव-स्थिति वसन्त के इस प्रसार में है—‘मधु के लिए उत्सुक भ्रमर पास के पराग-युक्त केतकी पुष्पों को छोड़कर कदम्ब पर मड़रा रहे हैं।’ अन्यत्र अर्जुन के सम्मुख प्रकृति उद्दीपक वातावरण में फैली हुई है—

प्रतिबोधजम्भणविभिन्नमुखी पुलिने सरोरुहदृशा दृदशे ।

पतदच्छमौक्तिकमणिप्रकरा गलदश्रुभिन्दुरिध शुक्तिवधूः ॥^{४३}

४२. वही, स० ३; ७८, ७३।

४३. किरा०, स० ८; २८ : स० १०; २६; स० ६, १०।

[कमल-नेत्र अर्जुन ने देखा—तट पर हाल की स्फुटित होने से जिसके मोती बिखर गये हैं और जल-बिन्दु चूर रहे हैं ऐसी मौक्तिक-सीपी उस सुन्दरी के समान है जो सोकर उठने के कारण उभाई ले रही हो, जिसके बिस्तर पर आभूषण फैले हो और प्रसन्नता से जिसके आँसू बह रहे हो ।] प्रकृति और मानव-जीवन को सामने रख कर कवि ने इस वातावरण का निर्माण किया है ।

क—ऋतुओं के वर्णन में प्रकृति प्रत्यक्ष उद्दीपन के अन्तर्गत अधिक उपस्थित हुई है । 'वर्षा में आकाश को आच्छादित करते हुए मेघ, विजली का चंचल नृत्य, गम्भीर बादलों का गर्जन सभी प्रेमियों के रति-विग्रह (भान) को दूर करते हैं ।' इसी प्रकार अन्य दृश्य भी हैं । 'प्रत्येक दिशा में प्रवाहित होने वाले पुष्पो की सुगन्धि से वासित पवन के स्पर्श से लोगों के मन काम से आकुल हो जाते हैं ।' इन रूपों में प्रकृति स्वतः-वासना को दीपित करती है । भारवि ने प्रकृति पर आरोप द्वारा यह प्रभाव उत्पन्न किया है, पर इनके आरोप कुछ जटिलता लिए हुए हैं । इन आरोपों में नारी-भावना है, पर मात्र जैसी मधु-क्रीड़ाओं का रूप अधिक नहीं है । जहाँ विलास का यह रूप है वहाँ भी प्रकृति बिलकुल अप्रमुख नहीं हो जाती है—

अवशूतपङ्कजपरागकणास्तनुनाह्ववीसलिलवीचिभिदः ।

परिरेभिरेऽभिमुखमेत्य सुखाः सुहृद् सखायमिव तं मरुतः ॥

[कमल के पराग से लित हुआ तथा गंगा के सलिल तरंगों से शीतल पवन ने सम्मुख से आकर उसे सखा के समान आलिंगित किया ।] यहाँ पवन विलासी पुरुष की व्यंजना दे रहा है । अन्य आरोपों का पिछले प्रकरणों में उल्लेख किया गया है (४; ३४ : ५; ३२७) । विलास और मधु-क्रीड़ाओं के अनेक दृश्य नवे सर्ग तथा दसवे सर्ग में मिलते हैं; यह सारा प्रसंग अप्सराओं के क्रीडा-विलास का है—'विरह की स्थिति में उनको मालाएँ, चन्दन, मदिरा कुछ भी नहीं रुचा, उनकी कामना

केवल प्रिय समागम की थी।^{४४} यह प्रसंग इसी प्रकार चलता है।

§२४—माघ के शिशुपालवध में प्रकृति का स्थान कथा-वस्तु से निर्वेक्ष परम्परा के रूप में है, और साथ ही इसमें प्रकृति उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत अधिक प्रयुक्त हुई है। प्रकृति वर्णन के शिशुपाल-वध साथ क्रीड़ा-विलास प्रत्येक स्थान पर प्रमुख हो उठता है। इस महाकाव्य में सामन्ती ऐश्वर्य, प्रियता का रूढिवादी रूप है। इस कारण प्रकृति के वर्णनों में भी मधु-क्रीडाओं का विलास किसी न किसी रूप में अधिक व्यंजित तथा प्रत्यक्ष हो जाता है। प्रत्यक्ष-रूप में प्रकृति शृंगार-भावना को उद्दीप्त करती भी अधिक पाई जाती है। सहज भावशील उद्दीपन के चित्र बहुत कम हैं। वसन्त के 'आगमन से माधवी-लता विकसित हो गई और उसके फूलों का मधुपान करके भ्रमरियों की प्रतिभा बढ़ गई, और वे निरन्तर मन को उन्मत्त करने वाली गुंजार करने लगीं।' इस चित्र में भावों का प्रकम्पन है, वह मन को कोमोत्सुक कर देता है। इसी प्रकार—

नवकदम्बरजोरुणिताम्बरैरधिपुरन्धि शिलान्त्रसुगन्धिभिः ।

मनसि रागवतामनुरागिता नवनवा वनवायुभिराद्धे ॥^{४५}

[वन की प्रवाहित पवन कदम्ब के पुष्पों की रेणु द्वारा आकाश को लाल रंग की करके तथा भूमि कन्दली के फूलों के स्पर्श से सुगन्धित होकर, कामिनियों के प्रति अभिलाषी पुरुषों के चित्र में नवीन-नवीन अनुराग उत्पन्न करने लगी।] इस दृश्य में वही भाव-स्थिति व्यंजित है। अन्यत्र प्रकृति में इसी भाव को अभिव्यक्त करता हुआ वातावरण निर्मित हुआ है—'विरहिणी रमणियों के मन को उद्देलित करनेवाली कदम्ब वन की श्रेणी वल्लों के समान मेघमाला को धारण किये हुए दिशाओं के लिए अपने पराग को वल्लों की तरह बिखेरने लगी।'

४४. वही ; स० १० ; १९, २१ : स० ६ ; ३ : स० ९, ३५ ।

४५. शिशु० ; स० ६ ; २०, ३२ ।

इस चित्र में वातावरण के लिए प्रत्यक्ष उद्दीपन तथा आरोप का आश्रय ग्रहण किया गया है। पर आगे के इस दृश्य में केवल वातावरण में रति-भाव की व्यंजना सन्निहित की गई है—

विगतारागुणोऽपि जनो न कश्चञ्जति वाति पयोदनभस्वति ।

अभिहितेऽलिभिरेवमिवोच्चकैरननृते ननृते नवपल्लवैः ॥ ४६

['पावस ऋतु के पवन चलने पर विरक्त होने पर भी कौन व्यक्ति चंचल नहीं हो जाता ?' भ्रमरो के उच्च स्वर से इस प्रकार का सत्य वचन कहने पर मानो नवीन कोमल पत्ते नृत्य करने लगे ।]

क—जैसा कहा गया है इस महाकाव्य में प्रकृति प्रत्यक्ष रूप से भावोद्दीपक अधिक चित्रित की गई है। वसन्त में 'आम्र वन का पराग

प्रत्यक्ष उद्दीपक काम-रूपी तुषानल के चूर्ण के समान पथिकों के ऊपर उड़ कर उनके मन को अत्यधिक सन्तप्त करता

है।' आगे 'प्रिय सखी के समान कोयल के हितकारी रहस्यमय वचनों को सुन कर स्त्रियों ने मान छोड़ दिया और अपने प्रियतमों को बिना प्रार्थना के ही अपने अंग समर्पित कर दिये' इस चित्र में उद्दीपन का अत्यधिक रूढिवादी रूप है। 'भौरों की मधुर गुंजार से आकर्षित मधुर होकर विरहीजन उसी प्रकार काम के वश होने लगे जैसे वीणा के स्वर से मृग व्याध के वश में हो जाता है, इस प्रकृति के रूप में सहज उद्दीपन की प्रत्यक्ष भावना है। अन्यत्र पलास-पुष्पों का प्रस्ताव भी ऐसा ही है—

अरुणिताखिलशैलवना मुहुर्विदधती पथिकान् परितापितः

विकचकिंशुकसंहतिरुच्चकैरुदवहवहभ्यंवहश्रियम् ॥ ४७

[ऊँचाई पर स्थित विकसित पलास के पुष्प-समूह समस्त पर्वत और सारे वन को ही लाल रंग का करके और बार-बार पथिकों को सन्तप्त करते हुए

४६. शिशु० ; स० ६ ; ३७, ३९।

४७. वही , स० ६ ; ६, ८, ९, २१।

दावानल की शोभा को धारण कर रहे थे ।] इस प्रकार के चित्र इस महाकाव्य में बहुत हैं ।

ख—माघ आरोप की दृष्टि से प्रमुख कवि हैं । जहाँ तक मानवीय जीवन की मधु-क्रीड़ाओं तथा रति-विलास के प्रकृति पर आरोप का प्रश्न है माघ से अधिक स्थितियों का प्रस्तुत करने-
 आरोप वाला कवि अन्य नहीं है । माघ के लिए जैसे प्रकृति इन क्रीड़ाओं के वर्णन का माध्यम भर हो । इन विविध स्थितियों के आरोप से माघ ने प्रकृति की वर्णना को उद्दीपक प्रस्तुत किया है । सूक्ष्म हाव-भाव तक का आरोप ये प्रकृति पर करते हैं—‘उदयमान अरुण ने पूर्व दिशा-रूपी युवती के मुख पर स्त्री की लाली पैदा कर दी । इससे जान पड़ता था कि मानो वह मुख चिरस्थायी लज्जा का परित्याग कर रहा है और उस मुख के अवगुण्ठन वल्ल के समान चन्द्र की ये किरणें अब गिर रही हैं ।’ इस दृश्य में प्रेमियों के प्रथम-मिलन का चित्र है, और इस प्रकार यह प्रकृति पर मानव-जीवन का आरोप रति-भाव का उद्दीपक है । प्रेमियों की विदा का दृश्य प्रकृति में इस प्रकार वर्णित है—‘अस्त होते हुए सूर्य को दीर्घ समय तक बिना पलक बन्द किये देखने के कारण कमलिनियाँ थक गईं, और वियोग-दुःख के कारण कमल-नेत्रों से भौरों के समूह-रूपी आँसू निकलने लगे । कमलिनी ने नयन बन्द कर लिये, जैसे अनुरक्त कान्ता पति को अनिमेष भाव से देख रही हो और उसके चले जाने पर उसने आँखें बन्द कर ली हों ।’ इसमें वियोग की भावना व्यंजित होती है । कभी प्रकृति कामिनी के हास-विलास से कामोद्दीपक सिद्ध होती है—‘नवीन कमलों के केसरो की पराग को बिखेरती हुई वायु से ऐसा जान पड़ता था मानों शरद् कामिनी परिहास करने की इच्छा से श्रीकृष्ण की प्रेयसियों पर धूल फेंक रही थी ।’ और वर्षा के मेघों के साथ कवि रति-क्रीड़ा की कल्पना समक्ष रख देता है—

स्फुरदधीरतडिन्नयना मुहुः प्रियमिवागलितोरूपयोधरा ।

जलधरावलिरप्रतिपालितस्वसमया समयाजगतीधरम् ॥ ४८

[चंचल त्रिजली रूपी नेत्रों को नचाती हुई, अपने निर्दिष्ट समय की बिना प्रतीक्षा किये ही विशाल उन्नत पयोधरों वाली मेघमाला प्रियतम के समान रैवतक पर्वत के निकट आई ।] इन समस्त आरोपों का उद्देश्य रसिक के मन में रति-भाव को जाग्रत करना है, इस कारण यह प्रकृति का रूप उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है ।

ग—प्रकृति वर्णन के साथ मानवीय रति-विलास तथा ऐश्वर्य्य आदि के वर्णन की परम्परा बहुत प्राचीन है । इसका सम्बंध जैसा कहा गया है सामन्तीयुग के शृंगार-प्रधान वातावरण से है । माघ में यह रूप अपनी रूढिवादिता के साथ अपनाया गया है । माघ का समय सामन्ती परम्परा के अन्त का है । ऋतुवर्णन के साथ प्रेमियों का यह व्यापार भी चल रहा है—‘प्रियतम की बात सुन कर वह रमणी उससे तुरंत लपट गई, जैसे वह सचमुच भौंरे से भयभीत हो । आलिंगन करने के लिए दोनों भुजाओं के ऊपर उठ जाने से उस रमणी के कुच अधिक ऊँचे उठ गये और उसका मध्य-भाग वलियों से शोभित हुआ ।’ यह विलास ऋतु-वर्णन के अतिरिक्त अन्य वर्णनों में भी माघ ने सम्मिलित किया है । प्रातःकाल की प्रकृति के साथ यह दृश्य भी है—

चिररतिपरिखेदप्रासनिद्रासुखानां

चरममपि शयित्वा पूर्वमेव प्रबुद्धाः ।

अपरिचलितगात्राः कुर्वते न प्रियाणा-

मशयित्वभुजचक्राश्लेषभेदं तरुण्यः ॥ ४९

[देर तक रमण-श्रान्ति के सुख से सोनेवाले नायक से गाढ़ालिंगन में

४८. वही ; स० ११ ; १६ ; स० ९ ; ११, स० ६ ; २५,

४९. वही, स० ६ ; १३ ; स० ११, १३ ।

लिपटी हुई बाढ़ में सो कर पहले जागने वाली नायिकाएँ अपने बन्धन को ढीला न कर सकीं ।] वास्तव में माघ के महाकाव्य में आधिकारिक कथावस्तु से अधिक यह विलास-क्रीडा है ।

§ २५—श्रीहर्ष के महाकाव्य में परम्परागत रूढिवादिता का चरम दृष्टिगत हो जाता है । नैषधीय में प्रातः सायं सन्ध्याओं तथा ऋतु का वर्णन कथावस्तु से अलग थलग स्वतंत्र मर्गों में नैषधीय रखा गया है । परंतु इसमें एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है । अपनी शैली में पूर्ण उहात्मक तथा अलकृत होकर भी श्रीहर्ष की प्रकृति में मानवीय हाव-भाव तथा मधु-क्रीडाओं का आगेप पूर्व के कवियों से कम है । साथ ही प्रकृति-वर्णन के साथ मानवीय विलास-क्रीडा का वर्णन एक रूप नहीं हो गया है, जैसा अन्य काव्यों में हम कह चुके हैं । प्रथम सर्ग में क्रीडा-वन तथा सरोवर वर्णन के प्रसंग में प्रकृति का उद्दीपन-रूप अधिक प्रत्यक्ष हुआ है, पर यह प्रसंग के अनुकूल भी है । विरहावस्था में नल मजरित आम के पेड़ को सहज भावशील स्थिति में पाता है—

रसालसालः समदृश्यतामुना

स्फुरिद्द्विरेफारवरोषहुंकृतिः ।

समीरञ्चौलैमुक्कुलैर्वियोगिने

जनाय दित्सञ्चिव तर्जनीभियम् ॥

[राजा ने गुंजार करते हुए भ्रमरों के रव से क्रुद्ध हुकार करते हुए आम के पेड़ को देखा, मानों वह अपनी पवन से हिलती हुई कलियों से वियोगी-जनों को भय से आतंकित करता है ।] इसी प्रकार दुःखी नल के लिए कोकिल का स्वर उद्दीपक वातावरण निर्माण करता है—‘राजा ने लोहित-वर्ण की आँखवाली कोकिल को देखा, जो मानों कूक कर पथिकों को इस प्रकार शाप देती है कि तुम दिन-दिन अधिकाधिक ताप सहो और मूर्च्छित हो ।’ यह कोकिल का मादक स्वर वातावरण का ही रूप है । आगे प्रकृति का यह रूप प्रत्यक्ष व्यथा का प्रेरक और भाव का

उद्दीपक बन जाता है—‘उसने उद्विग्न मन से भ्रमरो से आच्छादित चम्पक कली देखी, और वह डरा कहीं यह प्रेमियों पर विपदा लाने वाला पुच्छल तारा तो नहीं उगा है।’ प्रकृति पर मानवीय आरोप से यह प्रभाव उत्पन्न किया गया है। सर पर उठती हुई तरंगों को कवि, अपनी वल्लभा को वक्ष पर धारण करनेवाले नायक के रूप में देखता है।^{४०} यह प्रसंग वियोग का है, इस कारण यहाँ विलास-क्रीडा का, उल्लेख नहीं है। परन्तु जैसे भी श्रीहर्ष ने प्रकृति के साथ मधु-क्रीडाओं को मिलाया नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि नैषधीय में क्रीडा-विलास का विस्तार नहीं है। चौथे सर्ग में वियोग की स्थिति में नायिका का उद्दीपक प्रकृति के प्रति उपालम्भ है, जो एक सीमा तक इस काव्य की अपनी विशेषता है। नायिका ‘चन्द्रमा से पूछने को कहती है कि सखी उससे पूछो कि तुम्हें यह जलनशील उदारता किसने सिखाई है, शकर के कठस्थ विष ने या बडवाग्नि ने।’ यहाँ उपालम्भ के व्याज से प्रकृति को प्रत्यक्ष उद्दीपक शक्ति का उल्लेख किया गया है। आगे यह चन्द्रमा की जलनशीलता और भी प्रत्यक्ष हुई है—

श्रवणपूरतमालदलाङ्कुरं

शशिकुरङ्गमुखे सखि निक्षिप ।

किमपि तुन्दितः स्थगयत्यमुं

सपदि तेन तदुच्छ्वसिमि क्षणम् ॥^{५०}

[हे सखि, कान के पहने हुए तमाल के अंकुर को चन्द्र के मृगा के मुख में दे दो, जिससे चन्द्रमा को वह कुछ तो टक ले जिससे एक क्षण के

४९, नैप०, म० १, ८९, ९०, ९१, ११२ ।

तरङ्गिणीरङ्गजुषः स्ववत्तभा

तरङ्गरेखा विभवावभूव यः ।

दरोद्गतैः कोकनदौघकोरकै-

धृतप्रवालाङ्कुरसचयश्च यः ।

लिए मैं सॉम ले लूँ] यह प्रकृति का रुढ़िवादी उद्दीपक रूप है ।

गद्य-काव्य

१२६—गद्य-काव्यों में कथा-वस्तु और वर्णना-विस्तार में सदा एक सम्बंध रक्षित रहा है । इस कारण जैसा कहा गया है प्रकृति कथा की स्थिति को प्रत्यक्ष करने के लिए तथा वातावरण कादम्बरी निर्माण के लिए प्रस्तुत की गई है । ऐसी परिस्थिति में उद्दीपन के अन्तर्गत प्रकृति एक प्रकार से वातावरण निर्माण करती है । वर्णना के विस्तार में जैसे अलङ्कृत प्रयोग वस्तु-स्थिति के स्वाभाविक अंग बन जाते हैं, वैसे ही उद्दीपन के प्रत्येक संकेत दृश्य में भाव-शीलता की व्यजना करके खो जाते हैं । दृश्यों का चित्रण ऐसे विस्तृत तथा संश्लिष्ट हैं कि उनका रूप हमारे सामने अधिक प्रत्यक्ष होता है । कभी वर्णना के अन्तर्गत सहज उद्दीपक भावशीलता व्यंजित हो जाती है—‘अशोक वृक्षां को लात मारने में युवतियों के मणि-नूपुर हजारों भोंति झनझना रहे थे, खिलती कलियों की सुगन्ध से एकत्र भ्रमरों की मधुर गुंजार से आम के वृक्ष मनोहर लग रहे थे, अविरल कमुम-धूलि रूपी सैकत-पुलिन से घरातल धवल दिखाई देता था, मधुमद से मत्त हुए मधुकर लता-रूपी भूलों पर झूज रहे थे; पल्लवों से छाई हुई लवली लताओं में धुसे मत्त कोकिल मधुकर उड़ा कर उत्कट दुर्दिन कर रहे थे ।’ अन्यत्र यह वातावरण अधिक उद्दीपक जान पड़ता है—

समुपोढमोहनिद्रे च द्राघोयोवोचिविचलितवपुषि विरुवति विरहिणि चक्रवाकचक्रवाले, निवृत्ते च चन्द्रोदये, विद्रते हर्षनयनजलकणनिहारिणि विषद्विहारिणि मनोहारिणि विद्याधराभिसारिकाजने, ...।^{५५}

[मोह-निद्रा में आई हुई बड़ी-बड़ी तरंगों की छलक से कॉपते विरही

५१ काठ०, पूर्व, महाश्वेताम्नानागमनवृत्तान्त, पृ० २९७—अशोक.... दुर्दिनेषु । केयूरकेण सह तरलिकाया आगमनम्, पृ० ३७३ ।

चक्रवाक के झुड जब चीखें मारने लगे, चन्द्रोदय जब पूर्ण हो गया और नयनों में से आनन्दाश्रु-बिन्दु-रूपी आँसु बरसाती, आकाश में विहार करने वाली मनोहर विद्याधरो की अभिसारिकाएँ जब दौड़ लगाने लगीं ..] कभी प्रत्यक्ष उद्दीप्त करती हुई प्रकृति का चित्र भी आ गया है—‘प्रोषित-पतिकाओं के प्राण लेने से हर्षित हुए कामदेव के चटाए हुए धनुष की टकार के भय से फटे हुए प्रवासियों के हृदयों से बहते रुधिर से सब मार्ग तर हो रहे हैं, लगातार गिरते कामदेव के शरो के पंखों की सनसनाहट से सब दिशा रुधिर हो रही थी; दिन में भी हृदय में कामदेव का संचार होने से अभिसारिकाएँ अधी हो रही थी, और उमड़ते हुए रति-रस-रूपी सागर के प्रवाह में सब डूब रहे थे।’ इसी प्रकार फैलते हुए अंधकार में प्रेरक प्रकृति का रूप निहित है—‘तत्काल उत्पन्न हुए कादम्बरी हृदय-राग-रस-सागर के समान सन्ध्या-राग से जब सकल भुवन पूर्ण हो गया, कामाग्नि से जलते हुए हजारों चक्रवालों के हृदयों में से निकलते धूम के समान—मानिनी के नयनों में से अश्रुधारा टपकता तरुण तमाल के समान अंधकार जब सब जगह फैल गया—...।’ परन्तु यह समस्त भावात्मक व्यंजना वातावरण से मिल जाती है। अन्यत्र प्रकृति वियोग के प्रभाव में चित्रित की गई है, इस अर्धव्यन्तरण में उद्दीपन की भावना ही सन्निहित है—

अम्यर्णाविरहविधुरस्य च कामिनीजनस्य निःश्वसितैरिवोष्णैस्त्वानि-
मनीयत चन्द्रिका । चन्द्रापीडविलोकनारूढमदनैव कुमुददलोपनीतनिशा
पङ्कजेषु निपपात लक्ष्मीः । ह्यदापगमे च स्मृत्वा कामिनीकस्योत्पल-
प्रहारानुत्कृष्टितैस्त्रिव चामतां ब्रजत्सु पाण्डुतनुषु गृह प्रदीपेषु, ...।^{५२}

[वियोग-समय निकट जान शोकातुर कामिनियों के मानों निश्वास से ही चन्द्रिका फीकी पड़ गई । चन्द्रापीड को देखने से मानों कामातुर

५२ वही, वही; महाश्वेता०, पृ० २९७—प्रोषित..... प्लावितेषु । पृ० ४२२। पृ० ४२५।

हुई लक्ष्मी सारी रात कुमुद-दल के भीतर बिता कर कमलों में जाकर पड़ी। रात बीत जाने पर जब मंद हुए शयन-गृह के दीपक कामिनियों के कर्णांतपल-प्रहार की याद कर मानों उत्कण्ठित हो दुर्बल हो गये।] इस गद्य-कथा-काव्य में आरोप द्वारा जब काम-विलास आदि का संकेत दिया गया है, तब भी दृश्य की चित्रात्मकता प्रधान रहती है। चन्द्रमा के उदित होते दृश्य में नायक-नायिकाओं के प्रेम-व्यवहार की जो व्यंजना है वह उद्दीपन की प्रेरक है—‘श्याम-मुख होने से कुपित सी दीखती दिशाओं को जो मानों प्रसन्न करता था, सोती हुई कमलिनियों को जान न पड़े इस डर से छोड़ता जाता था, लाज्जन के वहाने जो मानो साक्षात् रात्रि को अपने हृदय में धारण करता था, रोहिणी के चरण-प्रहार से लगी हुई महावर के समान उदय-राग से संयुक्त, अभिसारिका के समान तिमिर श्याम अम्बर युक्त आकाश के पास जाता था और उसके अतिशय प्रेम के कारण जो मानों सौभाग्य को बिखेरता था, वह नेत्रों को आनन्द देने वाला भगवान चन्द्रमा उदय हुआ।^{१५३} इस वर्णन में नायक के रूप में चन्द्रमा की कल्पना प्रकृति को रति-भाव के उद्दीपन-विभाव में प्रस्तुत करती है। कथा-वस्तु में संभोग-शृंगार को स्थान नहीं दिया गया है, साथ ही प्रकृति के वर्णन के साथ विलास-क्रीड़ा का उल्लेख नहीं के बराबर हुआ है। यद्यपि इसमें राजप्रासादों के वर्णन प्रसंग में ऐश्वर्य का विस्तृत और अलंकृत वर्णन है। यत्र-तत्र कहीं ऐसे उल्लेख समग्र दृश्य-चित्रण के बीच में आ गए हैं—

समारोपितकामु के प्रहीतसायके यामिक हवान्तःपुरप्रविष्टे मकरकेतौ,
 अवतसपत्न्यवेष्टिव सरांगेषु कर्णे क्रियमाणेषु सुरतदूतीवचनेषु, सूर्यकान्त-
 मणिभ्य इव सक्रान्तानजेषु प्रज्वलत्सु मानिनीनां शोकविधुरेषु
 इदयेषु,^{१५४}

५३. वही, वही काद० चन्द्रा० प्रीतिवर्धक उपचार, पृ० ४२२—नतो

सुधासूतिः ।

५४. वही, वही, चन्द्रापीडस्थ मृगया, पृ० २१३—१४।

[धनुष चद्रा कर बाण लेकर चौकीदार के समान कामदेव ने प्रवेश किया, कर्ण-पल्लव के समान सराग सुरत-दूती के वचन सुनाई देने लगे; सूर्यकान्ठ-मणियों से अग्नि लग जाने के कारण मानिनियों के शोकार्त हृदय मानों जलने लगे ।] इस वर्णन में कुछ सकेतों से विलास-क्रीड़ा का उल्लेख मात्र किया गया है ।

नाट्य-काव्य

§ २७—नाटकों में प्रकृति के उद्दीपक रूप के लिए अधिक अवसर नहीं रहता, क्योंकि उनमें अधिकतर स्थान-काल की सूचनाओं के लिए प्रकृति का उल्लेख किया जाता है या कभी वातावरण के रूप में भी वह प्रस्तुत की गई है । कभी ऐसे ही स्थलों में उद्दीपन की व्यञ्जना निहित की गई है । मृच्छकटिक तथा मालतीमाधव में अवश्य ऋतु तथा स्थान वर्णन में परम्परागत उद्दीपन विभाव के रूप में प्रकृति दिखाई देती है और वह प्रत्यक्ष रूप से मानवीय भावों को उत्तेजित करती है । विक्रमोर्वशीय के चौथे अंक के भावशील तथा आत्मीय वातावरण में कभी प्रकृति राजा की वियोग-पीड़ा में उद्दीपन का कार्य भी करती है । राजा कोयल के कूजन से व्यथित होकर कहता है—‘देखो, कामी लोग तुम्हें मदन की दूती मानते हैं और मानिनी स्त्रियों का रूठना दूर करने के लिए तुम अचूक हथियार कही जाती हो । इसलिए हे मधुर स्वरवाली, या तो तुम मेरी प्यारी को मेरे पास पहुँचा दो या मुझे मेरी प्यारी के पास ।’ जिस मानसिक स्थिति में राजा प्रकृति के प्रति आकर्षित होता है उसको प्रकृति प्रभावित कर रही है । अपनी प्रेयसी की स्मृति के आधार पर भी उसे प्रकृति उद्बलित कर रही है—

मेघश्यामा दिशो दृष्ट्वा मानसोत्सुकचेतसाम् ।

कूजितं राजहंसाणां नेदं नूपुरशिञ्जितम् ॥ ५५

[यह उठे हुए मेघों की श्यामता को देखकर मानमरोवर जाने को उत्सुक गजहंसों की कूजन है, मेरी प्यारी के बिल्लुओं की झनकार नहीं है।] इस भ्रम के साथ राजा की मनोवेदना का रूप भी व्यजित है। माल-विकाग्निमित्र के वसन्त में भावोद्दीपक वातावरण है—‘मतवाले काकिलों की कान को सुनाने वाली कूको में मानो वसन्त ऋतु मुझ पर दया दिखलाते हुए पूछ रहा हो—प्रेम की पीड़ा सही जा रही है ? इधर खिली हुई आम की मजरियों की गन्ध में बसा हुआ दक्षिण पवन मेरे शरीर से लग कर ऐसा जान पड़ता है मानो वसन्त ने अपना सुखद हाथ रख दिया हो।’ प्रकृति का यह रूप संवेदक है। इसके आगे कामिनी के शारीरिक आरोंपों से प्रकृति उद्दीपक चित्रित की गई है—

रक्ताशोकरुचा विशोषितगुणो बिम्बाधराजत्तकः

प्रत्याख्यातविशेषकं कुरबकं श्यामावदातारुणम् ।

आक्रान्ता तिलकक्रिया च तिलकैर्लभद्विरेफाञ्जनैः

सावज्ञेव मुखप्रसाधनविधौ श्रीर्माधवी योषिताम् ॥ ५६

[इस लाल अशोक की ललाई ने स्त्रियों के बिम्बाधरों की ललाई को लजा दिया है; काले, उजले और लाल रंग के कुरबक के फूलों ने स्त्रियों के मुखों पर चीती हुई चित्रकारी फीकी कर दी है काले भौरों से लिपट कर तिलक के फूलों ने स्त्रियों के माथे पर के तिलक को नीचा दिखा दिया है, इस प्रकार मानो वसन्त की शोभा आज स्त्रियों के मुख के साज शृंगार का निरादर करने पर तुली है।] नायिका के रूप में प्रकृति की कल्पना कामोद्दीपन के अनुरूप है।

§ २८—शूद्रक के इस नाटक में प्रकृति के उद्दीपन रूप का विस्तृत प्रयोग है। अंक पाँच में वर्षा का वर्णन भावशील स्थिति को व्यंजित करता है—‘मेघ से आच्छादित होती दिशाओं को देखकर पालतू मोरों ने उत्साह से नृत्य करने के

मृच्छकटिक

[इस समय जत्र पुष्पित कदम्ब और नीप की सुरभि पवन के साथ ब्रह्म रही है और काले घने बादल छाये हैं, यह कामनी जिसके बाल गीले हो गये हैं, अपने प्रिय के घर पर आई है। बादल में बिजली की गरज से चकित होती हुई तुम्हारे दर्श की आकाशा से अपने नूपर में लगे हुए कीचड़ को धोती हुई द्वार पर खड़ी है।] नाटकीय कथावस्तु में यह घटना के साथ स्वाभाविक चित्र है, पर अभिसारिका के रूप की कल्पना इससे की जा सकती है।

§ २६—कुन्दमाला में रामको संयोग-वियोग की स्थिति के अनुसार प्रकृति उत्तेजक जान पड़ती है—

अन्य नाटक

मुक्ताहारा मलयमरुतश्चन्दनं चन्द्रपादाः

सीतात्यागात्प्रभृति नितरां तापमेवावहन्ति ।

अद्याकस्माद्गमयति मनो गोमतीतीरवायु-

नूनं तस्यां दिशि निवसति प्रोषिता सा वराकी ।^{५९}

[मुक्ता के हार, मलय-पवन, चन्दन, चन्द्र-किरणों प्रिया के विरह में मेरे लिए तापकारी ही हो गये हैं। आज एकाएक गोमती-तट की वायु मुझे सुख दे रही है, इससे निश्चय ही वह मन्दभागिनी त्यक्त संता इधर ही रहती है।] नागानन्द के वसन्त बाग के प्रसंग में वातावरण में जो भावशीलता है, वह उद्दीपन के अन्तर्गत आ सकती है (३; ८)। और उसमें इस प्रसंग में विद्याधरों की मधुक्रीडाओं का उल्लेख है—
‘हरिचन्दन को अंग में पोते हुए, संतानक की माला पहिने हुए तथा भूषणों की ज्योति से जिनके कपड़ों पर भिन्न रंगों की छाया पड़ रही है ऐसे सिद्ध लोग विद्याधरों में मिल कर चन्दनलता की छाया में प्रियाओं का जूठा मद पी रहे हैं।’^{६०} रत्नावली नाटक में प्रथम अंक सम्पूर्ण मदनोत्सव प्रसंग से सम्बंधित है। इस प्रसंग में वसंत-श्रुत में उपवन

५९. कुन्द०, अ० ३, ६।

६०. नागा०; अ० ३; ९।

का वर्णन उत्सव के अनुरूप उल्लास क्रीडा से स्पन्दित है। कहीं प्रकृति उद्दीपक वातावरण प्रस्तुत करती है और कहीं स्वतः उद्दीप्त करती जान पड़ती है—‘दक्षिण मलय-पवन प्रवाहित है जो कामदेव का सच्चा दूत है, जिससे आम में और आ जाता है और जो लोक का मान दूर कर देता है। वह वसन्त मधुमास लोगों के मन को उद्वेलित कर देता है, फिर काम अपने विकसित पुष्प-त्राणों से उनके हृदय को वेध देता है।’ अन्यत्र मानवीय क्रीडा के साथ प्रकृति जैसे साथ देती है—

मूले गण्डूषसेकासव इव वकुलैर्वास्थते पुष्पवृष्ट्या
मध्वाताम्रे तरुण्या मुखशशिनि चिराच्चम्पकान्यद्य भान्ति ।
आकर्ण्याशोकपादाहतिषु च रणतां निर्भरं नूपुराणां
सङ्कारस्यानुगीतैरनुकरणमिवारभ्यते शृङ्गसार्थैः ॥ ६१

[आसव के कुल्ले से छिड़की हुई के समान मूल को वकुल ने अपनी पुष्पवृष्टि से सुगन्धित कर दिया है, चम्पक पुष्प इस प्रकार शोभित हैं माना मदिरा पीने से ताम्रवर्ण के मुखवाली तरुणियों के चन्द्रमुख हों; और अशोक ने जो ताडित होने पर नूपुरों का स्वर सुना था, भ्रमरों की गुजार के मिस मानो उसी का वह अनुकरण कर रहा है।] इस प्रकृति तथा मानव जीवन के उल्लास-विलास से पूर्ण सामजस्य में प्रकृति का रूप उद्दीपक है।

§ ३०—भवभूति ने कालिदास के समान प्रकृति को अपने नाटकों में स्थान दिया है। उत्तररामचरित की आत्मीय प्रकृति का रूप देखा गया है, पर मालतीमाधव में प्रकृति उद्दीपन रूप में अधिक विस्तार से उपस्थित हुई है। इस दृष्टि से इसका नाटकों में प्रमुख स्थान है। और प्रत्यक्ष रूप से भावों को उद्दीप्त करती हुई प्रकृति का रूप प्रमुखतः इस नाटक में अधिक है। परन्तु सहज रूप से भावशील स्थिति को जगाने वाले दृश्यों की

अवतारणा स्थल स्थल पर हुई है। तीसरे अंक के उपवन के वर्णन में लवंगिका ऐसे चित्र को उपस्थित करती है—‘यहाँ कैसी मादक वायु प्रवाहित है; आम के रसयुक्त बौर खाने के लिए, कोयलों का समूह कैसा घबराया सा कूजन करता हुआ फिर रहा है, फूजों के चारों ओर कैसे भौरे गूँज रहे हैं, चम्पे की कलियों की कैसी गन्ध आ रही है।’ इस समस्त दृश्य में रतिभाव की उल्लासपूर्ण व्यंजना अन्तर्निहित है। ऐसा ही वातावरण आठवें अंक के दृश्य में माधव द्वारा उल्लिखित है—

द्वयति परिशुष्यत्प्रौढताद्धीविपाण्डु-

स्तिमिरनिकरमुद्यत्तैन्दवः प्राक्प्रकाशः ।

वियति पवनवेगादुन्मुखः केतकीनां

प्रचञ्चित इव सान्द्रः स्फारस्फारं परागः ॥६२

[सुखे हुए प्रौढ ताड़पत्र के समान पीले रंग का चन्द्र-प्रकाश प्राची से घने अन्धकार को नष्ट करता हुआ फैल रहा है, पवन मानों ज्योत्स्ना का स्पर्श कर केतकी के फूलों को खिला रही है और चारों ओर अत्यधिक पराग फैला रही है।] इस प्रकृति के विकास में मानवीय उल्लास की भावना अन्तर्निहित है और जिसके द्वारा काम की सवेदना को उद्बोधित किया गया है। प्रत्यक्ष उत्तेजक प्रकृति का रूप इस नाटक में स्थल-स्थल पर है। तीसरे अंक में कामन्दकी माधव को सतप्त करनेवाली प्रकृति का वर्णन करती है—‘आम के वृक्ष पर कूजते हुए कोकिल को वह एकटक देखता रह जाता है, मौलश्री की सुगन्ध से वासित पवन के मार्ग में वह अपने को डालता है (मूर्च्छित होता है)।’ इसी प्रकार अन्यत्र माधव स्वयं प्रकृति से पीड़ित अपनी दशा का उल्लेख करता है—‘मेरा शरीर मलयसमीर से झुलस गया है, चाँदनी से जल गया है, और मस्त कोकिल के स्वर को सुन कर मेरे कान दुःखी हो गये हैं।’ इस चित्र में प्रकृति सीधे अर्थ में उच्चापक है। यह उद्दीपन की

भावना क्रमशः रूढिवादी दृष्टिकोण से अधिकाधिक काव्यों में आती गई है, जिसका प्रभाव हमको हिन्दी राति-काव्य पर मिलता है। इसके नवें सर्ग पर विक्रमोर्वशीय के चौथे अंक का प्रभाव है। इसमें नायक अपनी मानसिक स्थिति का प्रकृति पर आरोप करता है। इस कारण प्रकृति में आत्मीय सहानुभूति का वातावरण है और साथ ही उद्दीपन की प्रवृत्ति भी। करि तथा करिनी की प्रेमलीला के आरोप में नायक की ऐसी ही मनःस्थिति का संकेत मिलता है—

कण्डुकुड्मलितेक्षणां सहचरीं दन्तस्य कंट्या लिख-
नपर्यायव्यतिकीर्णकर्णापवनैराल्लादिभिर्वीजयन् ।

जग्धाधैर्नवसल्लकीकिसल्लयैरस्था- स्थितिं कल्पय-

ज्ञान्यो वन्यमतङ्गजः परिचयप्रागल्भ्यमभ्यस्यति ॥ ६४

[खुजाने से बन्द कर लिये हैं नेत्र जिसने ऐसी प्रिया को अपने दाँत की नोक से यह वन-गज खुजा रहा है, अपने कानों को फैला कर हवा करता हुआ उसे आनन्दित करता है, उसके सामने सल्लकी के नवीन पल्लवों को तोड़ कर रखता है और इस प्रकार यह तुमको प्रसन्न कर रहा है।] यहाँ इस क्रीड़ा के आरोप से प्रकृति उद्दीपन के अन्तर्गत उपस्थित हुई है।

६३. वही ; अ० ३, १२. अ० ८, ४।

६४ वही, अ० ९, ३२।

द्वितीय भाग

कवि और प्रकृति

प्रथम प्रकरण

वाल्मीकि

§ १—संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि आदि कवि माने जाते हैं। रामायण तथा महाभारत दोनों महाप्रबन्ध काव्यों की परम्परा उनके वर्तमान रूप से बहुत अधिक प्राचीन मानी जाती है। इनमें किसी प्राचीन परम्परा अधिक प्राचीन है, यहाँ यह प्रश्न न भी उठाया जाय, पर काव्य-शैली की दृष्टि से महाभारत अधिक प्राचीन माना जाता है। लेकिन महाभारत की रचना स्पष्ट ही एक व्यक्ति द्वारा नहीं हुई और न एक समय में। इस कारण रामायण ही कवि वाल्मीकि कृत प्रथम काव्य ग्रंथ माना जाता है। महाभारत की कथाओं के विस्तार तथा समस्त वस्तु योजना से भी स्पष्ट हो जाता है कि इसमें कथाओं के सकलन तथा चर्ित्रों के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया है। काव्य में पाई जाने वाले वर्णनों में रमने की भावना रामायण में पूर्ण रूप से मिलती। रामायण की कथा-वस्तु तथा वर्णन-प्रियता दोनों ही यह सिद्ध करती हैं कि यह एक काव्य ग्रंथ है और इसकी रचना एक कवि ने की है। आदि कवि की वाणी में सहज प्रसाद गुण है और

उनके वर्णनों में सरल स्वाभाविकता है। प्रकृति-वर्णन के क्षेत्र में हम यही देख चुके हैं। आदि कवि ने प्रकृति के नाना क्षेत्रों में बिखरे हुए सौन्दर्य को अपने सामने प्रत्यक्ष देखा है। और उन्होंने इस रूप को स्वतंत्र तथा मुक्त देखा है। इन दृश्यों के वर्णन में कवि ने मानवीय दृष्टिकोण को प्रधानता नहीं दी है, इनमें प्रकृति अपने आप में मुक्त है, स्वतंत्र है। मानव प्रकृति को अपने जीवन के साथ और समानान्तर पाता है, वह उससे निकटता का अनुभव करता है। मानव प्रकृति के सम्पर्क से उसके बीच में सौन्दर्यानुभूति से आनन्दित होता है और उससे सामीप्य स्थापित कर अपना अकेलापन भूल जाता है। अधिकतर स्थलों पर प्रकृति जीवन के निकट होकर निर्पेक्ष है, इसका कारण है कि कवि ने प्रकृति को मानवीय दृष्टिबिन्दु पर आधारित नहीं किया है। प्रकृति का अपना अलग अस्तित्व है, उसका अपना मुक्त कार्य-कलाप है, उसमें अपना स्वतंत्र रंग-रूप है और उसमें अपना ही गति-प्रसार है। मानवीय जीवन उसके समानान्तर है। इस कारण वह उसके सौन्दर्य से उल्लासित हो सकता है, उसको अपने जीवन के समीप आत्मीय रूप में ग्रहण कर सकता है। परन्तु प्रकृति मानवीय स्थायी-भावों से प्रभावित नहीं होती, वह अपने सौन्दर्य में चिर है, अपनी गति में मग्न है। इस महाकाव्य के इस वर्तमान रूप में अनेक पक्षेप मिल गये हैं, इस कारण मूल रूप में अध्ययन प्रस्तुत करना सरल नहीं है। लेकिन व्यापक रूप से इस वर्तमान रूप में भी सुमंत्र द्वारा वर्णित प्रकृति के अतिरिक्त कहीं उसका रूप मानवीय जीवन से प्रभावित नहीं हैं। उद्दीपन का इस काव्य में संकेत भर मिलता है, और वर्णन शैली की दृष्टि से इसमें संश्लिष्ट वर्णना का आदर्श सर्वत्र पाया जाता है। प्रकृति का रूप मैनाक तथा लंका वर्णन के अतिरिक्त सहज स्वाभाविक है, सम्भवतः ये वर्णन बाद के हों या कथा के अनुरूप इनमें वैचित्र्य का आग्रह रहा है।

उपवन तथा वन

§ २—पिछले भाग में कहा गया है कि वाल्मीकि रामायण की

कथा-वस्तु का विस्तार राम के वनवास के बाद वन-पर्वत आदि के विस्तृत प्रदेश में है। अयोध्याकाण्ड से कथावस्तु वन की भूमिका पर उपस्थित हुई है। इसके अनन्तर अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड तथा मुन्दगकाण्ड का विस्तार वन-भूमि में हुआ है। इस कारण रामायण के कवि को वन्य-प्रकृति उपस्थित करने का अवसर मिला है और सम्भवतः प्रकृति के इस रूप में आदि कवि का मन रमता भी खूब है। उपवनों का वर्णन अधिक स्थलों पर नहीं है। अयोध्या में किमी उपवन का उल्लेख नहीं है। उपवन के नाम से रावण की अशोक वाटिका का वर्णन उल्लेखनीय है, किष्किन्धा के मधुवन का उल्लेख, केवल वानरों की सीता-खोज के उपरान्त की क्रीड़ा के साथ हुआ है। सम्भवतः उपवनों का प्रचार आर्यों की संस्कृति में अनार्य संस्कृति की देन हो।

क—लंका में प्रवेश करते ही हनुमान की दृष्टि उन के इन सुन्दर उपवनों पर जाती है—‘वह लंका नाना उपवनों में पूर्ण है जिनमें सख्त कर्णिकार और खजूर के वृक्ष पुष्पित हैं। प्रियाल, उपवन मुचिलिद, कुटज, केतकी, प्रियंगु, नीप, सप्तपर्ण आदि लगे हुए हैं। असन, कोविदार, करवरि पुष्पित होकर फूलों के भार से झुके हुए थे। उनमें सुन्दर क्रीडा-सगेवर स्थान स्थान पर बने हुए थे। उनमें कमल खिल रहे थे और इस तथा कारंडव जल-क्रीड़ा कर रहे थे। वृक्षों की फुनगियों पवन के चलने से हिल जाती थी तथा ठन पर झुंड के झुंड पक्षी बैठे कूज रहे थे’।^१ अनन्तर हनुमान अशोक-वाटिका पहुँचते हैं—‘वह साल, अशोक, चम्पक, उदालक, नाग तथा आम के वृक्षों से भरा हुआ तथा नाना लताओं से आच्छादित था। उसमें स्वर्णम तथा रजत जैसे वृक्षों पर विचित्र पक्षी कलरव कर रहे थे। विचित्र पशु-पक्षियों से शोभित वह वन उदित होते सूर्य

१ वाल०, सुन्द०; स० २; ९-१३।

के समान था। वहाँ विविध प्रकार के फलों तथा फूलों के वृक्ष भरे थे, उनपर मतवाले कोकिल कूक रहे थे और भ्रमर गुंजार कर रहे थे। पशु-पक्षियों से भरे उस उपवन को देख कर लोगों का मन प्रसन्न होता था। मदमाती मोरनियों के झुंड नाच रहे थे। जब समस्त पक्षी चौके और परो को फैला कर उड़े, तब उनके पंखों की हवा से विविध वृक्षों ने रंग-विरंगे पुष्पों की वर्षा की। उन फूलों से टक कर हनुमान जी अशोक वाटिका में फूलों के पहाड़ लगाने लगे।^१ आगे हनुमान द्वारा उपवन के विध्वंस का उल्लेख है—‘जिस प्रकार वर्षा ऋतु में तेज हवा मैघों को छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार हनुमान ने वहाँ को बड़ी बड़ी लताओं को छिन्न-भिन्न कर डाला’। आगे—‘वहाँ हनुमान ने देखा रजतमयी, मणिमयी और सुवर्णमयी विविध प्रकार की मनोहर भूमियाँ थीं। वहाँ सुस्वादु मीठे जल से भरी हुईं अनेक आकार-प्रकार वाली बावलियाँ थीं जिनकी सीढियों में मूल्यवान मणियाँ जड़ी थीं, जिनमें मोती और मँगे बालू के स्थान पर दिखाई पड़ते थे और जिनका तल स्फटिक का था। उनके तीर पर रंग-विरंगे सुनहले वृक्ष शोभित थे और उनमें बिले हुए कमलों के वन में चक्रवाक पक्षी गुंज रहे थे। नृत्यूह, हंस तथा सारस पक्षी बोल रहे थे। इन वापियों के चारों ओर बड़े बड़े वृक्ष लगे हुए थे और छोटी छोटी नदियाँ बह रही थीं। इनका अमृत के समान जल भीतरी सोतों से उन नदियों में पहुँच जाता था। ऊपर लता के मडब बने हुए थे और वे फूलों से आच्छादित थे’। ‘नाना प्रकार के पशुओं से, चित्र-विचित्र वनों से युक्त तथा अनेक बड़े बड़े भवनों से शोभित उस वाटिका को विश्वकर्मा ने बनाया था। कुत्रिम वनों से वह चारों ओर से सजाई गई थी। वहाँ जितने फूलने-फलने वाले वृक्ष लगे थे सब सोने की सीढियों वाले चबूतरों पर छाये हुए थे। इन पर अनेक लताओं का जाल फैला था जिनकी पत्तियों से छाया बनी रहती थी’।^२ प्रतीक्षा करते हुए हनुमान का ध्यान फिर अशोक

२. वहाँ ; वहाँ , स० १४ ; ४-११, २०-२६, १४-३६।

वाटिका के विस्तार की ओर जाता है—‘वह वन कल्पवृक्ष तथा लताओं और अनेक वृक्षों से शोभित, दिव्य गन्धों और दिव्य रसों से पूर्ण तथा चारों ओर से सजा हुआ था। वह वन नन्दनवन के तुल्य मृग-पक्षियों से पूर्ण, अटारियों वाले भवनों से सघन और कोकिल के स्वर से कूजित था। उसमें सुवर्ण कमलों वाली वापी थीं जिनके किनारे सुन्दर विधानों से युक्त स्थान बने हुए थे और पृथ्वी के नीचे तहाखने भी थे। उसमें सब ऋतुओं में फलने-फूलने वाले वृक्ष लगे थे। पुष्पित अशोक की आभा लगती मानों सूर्योदय की प्रभा फैल रही थी। वृक्षों की डालियों पर अनेक पक्षी अपने दोनों पंखों को फैलाए और पत्तों को ढके बैठे थे जिससे जान पड़ता था मानों वृक्षों की डालियों में पत्ते हैं ही नहीं। सैकड़ों रंग-विरंगे पक्षी अपनी चोंच में फूलों को दबाये हुए आभूषणों से सजे हुए जान पड़ते थे। जड़ से लेकर फुनगी तक फूले, मन को हर्षित करने वाले अशोक वृक्ष फूलों के बोझ से झुक कर मानों पृथ्वी को छू रहे थे। फूले हुए कनैर और टेसू के फूलों की प्रभा से वह स्थान प्रदीप्त सा जान पड़ता था। पुन्नाग (नागकेसर), सप्तपर्ण, चंपक, उद्दालक (लसोडा) आदि विस्तृत मूल वाले फूले हुए वृक्ष वहाँ की शोभा बढ़ा रहे थे। इन वृक्षों में कोई मोने के रंग का कोई अग्नि के रंग का और कोई नीलाजन के रंग का था। अनेक प्रकार के अशोक वृक्ष वहाँ थे। यह अशोक वाटिका इन्द्र के नन्दन कानन और कुबेर के चैत्ररथ नामक उद्यान से अधिक रमणीय तथा सुन्दर थी। इसके सौन्दर्य की कल्पना सरल नहीं है, और वट जैसे पुष्प रूपी तारागण से युक्त दूसरे आकाश के समान थी’।^३

३. वहा, वहा, स० १५, १-१२। इस कांड के अठारहवें सर्ग में रावण के प्रवेश के माथ इस वाटिका का सक्षिप्त उल्लेख हुआ है। सर्ग सोलह में चन्द्र-किरणों से उद्भासित फूलों के भार से झुके हुए अशोक की सीता के शोक को उद्दीप्त करने वाला कहा गया है—

§ ३—वन के वर्णन के लिए इस महाप्रबन्ध काव्य में सबसे अधिक अवसर मिला है। इनमें अनेक वर्णन पात्रों द्वारा उल्लेख हैं जिनमें वन के भयावह रूप आदि को प्रकट करने का प्रयास वन उल्लेख है। कौशल्या अपने आशीर्वाद में वन्य-प्रकृति से रक्षा करने की प्रार्थना करती हैं—‘हे नरोत्तम, समिध-कुश की बनी पवित्री, वेदियाँ, देव-मन्दिर, पर्वत, छोटे-बड़े वृक्ष, जलाशय, पत्नी, सर्प और सिंह तुम्हारी रक्षा करे। विश्वदेव, पवन, महर्षि तुम्हारा कल्याण करे। ऋतुएँ, पक्ष, मास, सवत्सर, रात-दिन तथा मुहूर्त्त तुम्हारी रक्षा करे। सब पर्वत, सब समुद्र, वरुण, आकाश, अन्तर्गिह, पृथ्वी, सब नदी, सब नक्षत्र, देवताओं सहित सब ग्रह, दिन-रात तथा दोनों संध्याएँ तुम्हारी रक्षा करे।.... राक्षस, पिशाच तथा अन्य भयकर एव क्रूर मौस मन्त्री जावो से तुम्हें वन में भय न लगे। वानर, बीछी, डॉस, मच्छर, पहाड़ी सर्प, कीड़े ये भी तुम्हें वन में दुःखदायी न हों। मतवाले हाथी, सिंह, बाघ, रीछ आदि तुमसे द्रोह न करें’।^४ इस प्रकार यहाँ वन्य प्रकृति की भयानकता का आभास मिलता है। अन्यत्र राम सीता को वन की भयकरता का आभास कराते हैं—‘पर्वतो से निकली हुई नदियों को पार करना महाकष्टदायी है। फिर पहाड़ों की गुफाओं में रहने वाले सिंह की दहाड़ को सुनने में बड़ा कष्ट होता है। वन में अनेक निडर जाव-जन्तु मनुष्य को देखते ही मारने के लिए आक्रमण करते हैं। वनों के मार्ग लिपट जाने वाली लताओं और पैर में चुभ जाने वाले काँटों से ढके रहते हैं। वहाँ वनकुक्कुट बोला करता है। थके मादे पथिक कां सूख कर गिरी हुई पत्तियाँ बिछा कर सपेना होता है। सायं प्रातः वृक्षों से गिरे हुए फलों पर ही सन्तोष करना होता है। वन में

अस्या हि पुष्पावनताग्रशर । शोकं वृढं नै जनयत्यशोका ।

हिमव्यपापेन च शीतरश्मिरभ्युत्थितो नैकसहस्ररश्मिः ॥३१॥

४. वही , अयो० , स० २५ ; ७-२० ।

आँधी चलती है, आँधेरा छा जाता है। वन में बड़े मोटे अजगर घूमा करते हैं। वहाँ टेढ़ी चाल वाले सर्प मार्ग रोकेंगे। वन काँटों, कुशा घाम, तरह तरह के पत्तों से भरा हुआ, तथा महसों वृक्षा से भरा होता है^५। इस समस्त वर्णन में वन का भयकरता को व्यापक रूप से प्रत्यक्ष किया गया है।

१४—राम जब विश्वामित्र के साथ जा रहे थे, उस समय मार्ग में वन का वर्णन इस प्रकार है—‘यह तो बड़ा भयानक दीख पड़ता है। विश्वामित्र के साथ भ्रातृभक्त रहे हैं और बड़े बड़े भयंकर जीवों के नाद से यह परिपूर्ण है। राज पत्नी दारुण शब्द बोल रहे हैं। इन वनों में सिंह, व्याघ्र, वराह और हाथी भी बहुत देख पड़ते हैं। धवा, असंगध (अश्वकर्ण), अर्जुन, बेल, तेंदुआ, पाड़री तथा बेरियों के वृक्षों से यह वन कैसा सघन और भयंकर हो गया है’^६।

क—नील-वन के मार्ग से चित्रकूट का रास्ता है, ‘इस वन में सान जामुन और बेर के अनेक वृक्ष हैं’। ‘जैसे हाथियों के बीच हथिनी चले, चित्रकूट का मार्ग इस प्रकार मार्ग में जाती हुई सीता, प्रत्येक गुल्म और पुष्पित लताओं के विषय में पँछनी जाती थीं जिन्हें उन्होंने पहले नहीं देखा था। वहाँ अनेक प्रकार के रमणीय वृक्षों में फूल लगे थे, उनमें से सीता जिसे पसन्द करती, लक्ष्मण उसे ला देते थे। उस वन में वालुकामय तट वाली तथा निर्मल जल वाली नदी को देख कर सीता को प्रसन्नता हुई, उसके तट पर हंस-सारस मधुर स्वर कर रहे थे। इस प्रकार दोनों भाईयों ने सीता सहित उस मनोहर वन में जहाँ मोरों के झुंड के बोल रहे थे तथा हाथी और बन्दर घूम रहे थे, विहार कर नदी के तट पर एक सुन्दर समथल स्थल पर वास किया’^७।

५. वही, वही, म० २०, ८-२२।

६. वही, बाल, स० २४, १३-१६।

७. वही; अयो०, स० ५५, ९, ३०-३२, ३४।

इसी के आगे सर्ग ५६ में चित्रकूट समीपवर्ती वन का वर्णन है (प्रथम भाग में)। अनन्तर भरत सेना से आक्रान्त उस वन का वर्णन है— 'उस महासेना के वन में प्रस्थान करने से वहाँ के मतवाले यूथपति हाथी पीड़ित हो अपने अपने यूथों को साथ ले चारों ओर भागने लगे। रीछ, चित्तल आदि वनैले जन्तु पर्वतों के शिखरों पर तथा नदियों के तटों पर विकल होकर इधर-उधर भागते हुए देख पड़े, भरत शत्रुघ्न से कहते हैं—'देखो, यह भयानक वन पहले कैसा सौंय सौंय कर रहा था, किन्तु इस समय मेरी सेना की भीड़-भाड़ से यह अयोध्या जैसा दीख पड़ता है'।^८

ख—सुतीक्ष्ण राम को दण्डकारण्य जाने के लिए कहता है। इस प्रसंग में वन का उल्लेख किया गया है—'आप उन वनों को देखिए, जिनमें विविध प्रकार के कन्द मूल फलों वाले फूले हुए वृक्ष भरे हुए हैं। इनमें श्रेष्ठ वन्य पशु तथा शान्त पक्षी रहते हैं और जहाँ स्वच्छ जल कमलों से युक्त ताल हैं और जिनमें कारण्डवादि पक्षी कुलेलें किया करते हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ देखने में सुन्दर पहाड़ी भ्रमने तथा मोरों से कूजित वन हैं'।^९ मार्ग का उल्लेख प्रथम भाग में किया गया है। अन्यत्र मार्ग में वन का रूप इस प्रकार बिलखरा हुआ है—'जैसा सुना गया था, वैसे ही मार्ग से इस वन में आते आते फल-फूलों के बोझ से झुके हुए हजारों वृक्ष देख पड़ते थे। यहाँ पकी हुई पीपलों की कड़वी बू वन के पवन से उड़ी हुई आ रही है। जगह जगह इकट्ठे हुए लकड़ी के ढेर दिखाई देते हैं। हरी मणि अर्थात् पन्ने की तरह कटे हुए ये हरे हरे रंग के कुश रास्ते में दिखाई पड़ते हैं। वन में काले मेघ के शृंग की तरह आश्रम की अग्नि का धुआँ दिखाई देता है'। दूसरे दिन 'राम बताये हुए मार्ग पर चलते हुए

८ वही ; वही ; स० ९३ ; १, २, १४।

९. वही ; अ० ; स० ८ ; १३, १४,, १५

उस वन की शोभा निहागते जाते थे । उस वन में नीवार, पनस, साल, वज्रुल, तिनिश, तथा प्रचीन बिल्व, मधुक तथा तिटुक के वृक्ष स्वयं झुके हुए थे और जिनमें फूली हुई लताएँ लिपटी हुई थीं । इस प्रकार सहस्रों वृक्षों से भरा वह जगल था । इन वृक्षों में कितने ही हाथियों की सूड़ों से दूटे हुए थे और कितनों ही पर बंदर बैठे हुए शोभा बढ़ा रहा थे । इन पर सैकड़ों पक्षी मतवाले हो बोल रहे थे^{१०} ।

ग—पंचवटी नामक वन का प्रथम उल्लेख राम से अगस्त्य करते हैं—‘वह प्रदेश निकट ही है और गोदावरी के तट पर है । वहाँ कन्द-
 पंचवटी मूलों की अधिकता है, तरह तरह के पक्षियों से भरा हुआ है । हे महाबाहो, वह स्थान एकान्त पवित्र तथा रम्य है । यहाँ से मधुक-वन जो दिग्वाइ देता है, उसी के उत्तर में वट वृक्ष है । उसी के आगे पर्वत के समीप समतल भूमि में पहुँचने पर पुष्पों से लदा सुशोभित पंचवटी नाम का विस्तृत वन मिलेगा’^{११} पंचवटी में राम लक्ष्मण से उसका वर्णन करते हैं—‘(प्रथम भाग) पास ही गोदावरी नदी हम कारडंब तथा चक्रवाक पक्षियों से शोभित है । जानवरों के झुंड भी न तो बहुत दूर और न अति पास फैले हुए हैं । पास ही कन्दराओं में मयूरों का सुन्दर नाद प्रतिध्वनित हो रहा है । पुष्पित वृक्षों से आच्छादित पर्वत सुन्दर लगते हैं । सारा वन साल, तमाल, ताल, खर्जूर, पनस, नीवार, तिनिश, पुन्नाग वृक्षों से शोभित है । आम, अशोक, तिलक, केतकी, चंपा आदि पुष्प-वृक्ष लताओं से आवृत गुल्म के रूप में लगते हैं । और भी स्पद, चंदन, नीप, पनस, लकुच, धवा, अश्वकर्ण, शमी, किंशुक तथा पाटल आदि वृक्षों से यह वन शोभित है और अनेक पशुओं से भरा हुआ

१०. वही, वही, सं० ११; ५०-५४, ७५-७८ ।

११. वही; वही, सं० १३; १८-२२ ।

हैं।^{१२} पंचवटी का वणन हेमन्त ऋतु के प्रभाव में भी किया गया है। आगे सीता-हरण के बाद राम पंचवटी के अनेक वृक्षों को सम्बोधित करते हैं—‘यह ककुभ का पेड़, ककुभ के समान जाग्रो वाली सीता को निश्चय ही जानता होगा, क्योंकि यह वनस्वति लता-पत्ते और पुष्पों से कैसा खदा हुआ है। यह तिलक वृक्ष प्रिय सीता का पता अवश्य जानता होगा, देखो इन श्रेष्ठ वृक्ष पर भौरे कैसे गुज रहे हैं।^{१३} हे कर्णिकार, आज तो तुम पुष्पों से पुष्पित हो अत्यंत शोभित हो रहे हो। यदि तुमने मेरी पतिव्रता सीता को देखा हो तो मुझे बतला दो’।^{१३}

इ—पंचवटी से चन कर राम लक्ष्मण के मार्ग में कौच-वन पड़ता है—‘यह वन मेघों की घटा की तरह गम्भीर था। इसमें जिधर

पम्पा का मार्ग

देखो उधर झूले हुए पुष्पों के कारण तथा भौंति भौंति के पक्षियों से भरा-पुरा और तरह तरह के अजगरों और अन्य वन-जन्तुओं से परिपूर्ण होने के कारण वह हँसता सा जान पड़ता था।’ इस वन के पूर्व तीन कोस पर मतगाश्रम का घोर वन पड़ा—‘नाना प्रकार के विशाल वृक्षों से घनघोर उस वन में अनेक प्रकार के भीषण पशु थे। पताल के समान गम्भीर तमसा जहाँ नित्य प्रवाहित होती है, उन गिरि कन्दराओं को उन्होंने देखा’।^{१४} कब्रन्ध राम को पम्पा का मार्ग बताता हुआ वन का उल्लेख करता है—‘जबू, प्रियाल, पनस, न्यग्रोध, लक्ष्म, तिटुका, अश्वत्थ, कर्णिकार, चूत आदि अनेक पादप तथा धन्वा, नाग, तिलक, नक्तमाल, नील अशोक, कदम्ब, करवीर आदि पुष्पों से फूला हुआ वन मार्ग में पड़ेगा। इसमें अग्निमुख (अरुसा), लाल चन्दन (सुरक्ता) तथा पारिभद्रका (मदार) नामक वृक्ष हैं। हें का कुक्ष, उस पुष्पित वृक्षों से युक्त वन के नाँवने पर

१२. वही वही, स० १५; १३-१९।

१३. वही, वही, स० ६०, १५, १६, २०।

१४. वही, वही; स० ६८; ६-१०।

तुम को रक्त-वन मिलेगा । इस वन के वृक्षां में सदा फल-फूल रहते हैं, जो मीठे और सरस होते हैं । उस वन में चैत्ररथ वन की तरह वृक्षां में सब ऋतुओं में फल-फूल लगे रहते हैं । अपनी बड़ी शाखाओं के कारण वे पर्वतकार मेघों की भाँति शोभित रहते हैं । इस प्रकार कितने ही सुन्दर देशों, पर्वतों और वनों में घूमते फिरते तुम दोनों पम्पा नामक सरोवर पहुँचोगे । अगले सर्ग में शबरी मतंग वन का उल्लेख करती है—‘रघुनन्दन, मृगों और पक्षियों में भरा-पूरा और काले बादल की तरह श्याम रंग का यह वन देखिये । यह मतंग वन के नाम से प्रसिद्ध है’ ।^{१५}

च—किष्किन्धा के मार्गस्थ प्रकृति का वर्णन कवि इसी प्रकार करता है—‘अनेक सागरों सागर की ओर प्रवाहित हो गयीं थीं । पर्वतों में भीषण कन्दराएँ थीं । शिखर तथा घाटियाँ दिखाई दे गयीं थीं । मार्ग में वैदूर्य के समान स्वच्छ जलवाले सरोवर थे जिनमें कनक खिले हुए थे । आगे उनके किनारे कारडंब, सारम, हस, वज्रुल, जलकुवट, चक्रवाक आदि अनेक पक्षी कूज रहे थे । वनस्थलियों में हरिण मृदुल अकुर चरते हुए दिखाई दे रहे थे । अनेक श्वेत दाँत वाले मत्त हाथी विचर रहे थे । अन्य विशालकाय अनेक पशुओं से वह वन भरा हुआ था’ ।^{१६} अन्यत्र वन के अनेक उल्लेख सीता की खोज प्रसंग में आये हैं, परन्तु वे सक्षिप्त हैं तथा उनमें कोई विशेषता भी नहीं है ।

आश्रम का जीवन

§ ५—प्राचीन काल में प्रकृति प्रदेश के साथ आश्रम का जीवन महत्त्वपूर्ण था । और वन की प्रकृति के साथ आश्रम का उल्लेख करना

१५. वही ; वही , स० ७३ , २-११ । स० ७५ ; २२ ।

१६. वही ; किष्कि० ; स० १३ , ५-११ ।

आवश्यक हो जाता है। वसिष्ठका आश्रम इस प्रकार है—‘वह आश्रम भोंति
 वसिष्ठ का भोंति के पक्षिया और तालाबो से भरा पुरा और नान
 जीवो से शोभायमान हो रहा था और उसमे सिद्ध
 चारण निवास करते थे। देव, दानव, गन्धर्व तथा किन्नर भी उसकी
 शोभा बढ़ाते थे। वह हरिणों से भरा हुआ था। उनमे ब्रह्मर्षि
 और देवर्षि निवास करते थे जो तपश्चर्या से अग्नि के समान दे-
 दीप्यमान थे’।^{१७}

क—चित्रकूट पर राम ने आश्रम बनाया है, और राम का यह
 जीवन प्रकृतिमय है—‘भरत जी ने देखा उस पर्याशाला के सामने ही
 राम की कुटी टूटी हुई लकड़ियों और पूजन के लिए फूल चुन-चुन
 कर रखे हुए हैं। आश्रम की पहिचान के लिए
 आश्रमवासी राम-लक्ष्मण ने कही-कही वृक्षों में कुश तथा चीर बाँधकर
 चिह्न कर दिये हैं। भरत ने देखा शीत से बचने के लिए मृगों और
 भैसों के गोबर के सूखे कडे के ढेर लगे हैं। वह पर्याकुटी साखू, ताल
 और अश्वकर्ण नाम के वृक्षों के पत्तों से छायी गयी सुन्दर लम्बी-चौड़ी
 ऐसी जान पडती थी मानो यज्ञ-वेदी कुशों से ढकी हुई है। इसमे जहाँ-
 तहाँ इन्द्र के वज्र के समान युद्ध में बड़े-बड़े काम करने वाले धनुष
 टंगे हुए शोभायमान हो रहे थे’।^{१८}

ख—तपस्वियों के आश्रम दण्डकारण्य में इस प्रकार फैले हुए
 हैं—‘उनमे स्थान-स्थान पर कुशों के ढेर लगे हुए हैं। आश्रम वासियों
 के चीर जगह-जगह सूखने के लिए फैलाये हुए थे।
 दण्डक वन का आश्रम वेदाध्ययन और वैदिक कर्मानुष्ठान के कारण इन
 आश्रमों में एक प्रकार का ऐसा तेज व्याप्त था जिसे
 राक्षसादि किसी प्रकार सहन नहीं कर पाते थे, जिस प्रकार आकाशस्थ

१७. वही ; बाल० ; स० ५१ ; २२-२५।

१८. वही ; अयो० ; स० ९९ , ५-७, १९, २०।

सूर्य का तेज सहन नहीं किया जा सकता। ये आश्रम प्राणि-मात्र के लिये आश्रय स्थल और स्वच्छ स्थानों से सुशोभित थे। इन आश्रमों में बहुत से हरिन निर्भय घूमा करते थे और पक्षियों के झुंड आश्रम के वृक्षों पर रहा करते थे। इन आश्रमों में सम्मान-पूर्वक अप्सराएँ नृत्य किया करती थीं। यहाँ बड़ी लम्बी-चोड़ी यज्ञ-शालाएँ बनी थीं, जिनमें अग्नि कुण्ड के समीप सुवा, यज्ञ-पात्र, मृग-चर्म और कुश रखे हुए थे। इन आश्रमों में समिधाएँ, जल से भरे हुए घड़े और कन्द-मूल फल रखे थे। बनैले बड़े-बड़े वृक्षों में स्वादिष्ट और खाने योग्य पवित्र फल लगे हुए थे। इन सब आश्रमों में निरन्तर ही बलि-वैश्वदेव होता और पवित्र वेद ध्वनि हुआ करती थी। वहाँ देवताओं पर चढ़े हुए बनैले फूल बिखरे हुए थे और खिले फूलों से परिपूर्ण तलैयाँ से ये सब आश्रम सुशोभित थे। इन सब आश्रमों में कन्द-मूल-फल खाने वाले, चार और मृग-चर्म धारण करने वाले जितेन्द्रिय सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी और वृद्ध मुनिगण वास करते थे'।^{१९}

ग—'वहाँ बहुत से पुष्पों और फूलों के वृक्ष हैं, तरह-तरह के पक्षी बोलते हैं। स्वच्छ और पवित्र जल से भरे अनेक जलाशय हैं जिनमें अनेक प्रकार के कमलों के फूल फूले हैं'। राम अगस्त्य का आश्रम लक्ष्मण से आश्रम का उल्लेख करते हैं—'पथिकों के श्रम को दूर करने वाला आश्रम दिखाई पड़ता है। देखो, अग्निहोत्र का धुआँ वन में छाया हुआ है। जहाँ-तहाँ वृक्षों की डालियों पर चीर-बख सुखाने को फैलाए हुए हैं। पुष्प मालाएँ लटका कर आश्रम की सजावट की गई है। देखो, स्वाभाविक वैर-विरोध छोड़कर वन-जन्तु कैसे शान्त बैठे हुए हैं। तरह-तरह के पक्षी शब्द कर रहे हैं। आश्रम में शान्त स्वभाव हरिन चारों ओर बैठे हैं'।^{२०}

१९. वही ; अ० ; १ ; १-७।

२०. वही ; वही ; स० ११ : ४०, =८-२०।

घ—सीता-दरश के पश्चात् राम-लक्ष्मण अपनी कुटी को सूना पाते हैं—‘पर्णशाला सीता जी के बिना उसी प्रकार शोभाहीन थी जैसे हीमन्त ऋतु में कमलनी ध्वस्त होने के कारण शोभाहीन सीता विहीन आश्रम हो जाती है। उस समय आश्रम के वृक्ष मानो रो रहे थे, फूल कुम्हलाए हुए थे, मृग तथा पक्षी उदास हो रहे थे। वन देवता उस आश्रम को ध्वस्त और श्री विहीन देख उसे त्याग कर चल दिए थे। उस आश्रम में मृग-चर्म और कुश इधर-उधर पड़े हुए थे, आसन और चटाई इधर-उधर फेंकी हुई पड़ी हुई थी। अपने आश्रम को सूना देख राम बार बार विलाप कर रहे थे’।^{२१} यहाँ प्रकृति मानवीय संवेदना से अविभूत चित्रित हुई है।

पर्वतीय प्रदेश

§ ६—राम के वनवास के जीवन में वन के साथ पर्वतों का भी स्थान रहा है। इस कारण रामायण में मध्य देश के पर्वतों के वर्णन भी हैं। भरद्वाज राम को चित्रकूट जाने के लिए चित्रकूट कहते हैं—‘हे बत्स, यहाँ में दस कोस पर तुम्हारे रहने योग्य एक पर्वत है, जो महर्षिभ के रहने के कारण पवित्र है और उसके चारों ओर नयनाभिराम दृश्य हैं। उस पर्वत पर लगूर वन्दर तथा रीछ घूमा करते हैं। उसका नाम चित्रकूट है तथा उसकी शोभा गन्धमादन की तरह है’। उस पर्वत पर टिटिहरी (कायष्टिभ) तथा कोयले प्रसन्न होकर बोलती हैं। अनेक मृग तथा बहुत से मत गज उस पर घूमा करते हैं। इस प्रकार के उस बड़े तथा रमणीय पर्वत पर आप जाकर वास करें’।^{२२} भरद्वाज-ऋषि भरत को चित्रकूट का पता इसी प्रकार बताते हैं—‘उस पर्वत के उत्तर की तरफ मन्दाकिनी नदी बहती है। इस नदी के उभय तट पर पुष्पित वृक्ष लगे हुए हैं और वह नदी रमणीय

२१. वही, वही; स० ६०; ५७।

२२. वही; अयो०; स० ५४, २८, २९, ३९, ४३।

पुष्पित वन में होकर बढ़ती है। हे तात, उसी में मिला हुआ चित्रकूट पर्वत है'। भरत चित्रकूट की शोभा का वर्णन करते हैं—'पर्वत के रमणीय शिखर मेरे पर्वत के समान हाथियों से मर्दित हो रहे हैं। जिस प्रकार वर्षा-काल में सजल श्यामल मद्य मण्डल जल बरसाता है वैसे ही चित्रकूट के वृक्ष हाथियों की सूडों से हिलकर पर्वत के शिखरों पर फूलों की वर्षा करते हैं। हे शत्रुघ्न, किन्नरों से मेवित स्थान की तरह इस चित्रकूट को देखो। जिस प्रकार समुद्र में मगर घूमा करते हैं वैसे ही इस पर जिधर देखो मृग-समूह शोभायमान हो रहा है'।^{२३}

क—कवच राम लक्ष्मण को ऋष्यमूक पर्वत का पता बताता है—'पपा सरोवर के सामने नाना पक्षियों से भरा हुआ तथा पुष्पित वृक्षों से युक्त यह पर्वत है। इस दुरारोह पर्वत की ऋष्यमूक रखवाली छोटे-छोटे हाथी के बच्चे किया करते हैं। इसको उदार-मना ब्रह्मा जो ने स्वयं बनाया था।.....वहाँ छोटे-छोटे हाथियों का चिघाड़ना बहुत सुनाई पड़ता है। पम्पा के जल में अपनी प्यास बुझा कर व वन में प्रवेश कर बिचरा करते हैं। हे राम, पीछ, बाघ और नीलम जैसी प्रभा वाले रू मृगों को देखने से तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा। वहाँ एक पहाड़ी गुफा है जिसका द्वार एक शिला से बन्द रहता है, उसके भीतर जाना बड़ा कष्टदायक है। उस गुफा के द्वार के सामने ही शीतल जल का एक सरोवर है, वहाँ अनेक फल और मूल हैं। भोंति-भोंति के बनैले पशु चारों ओर घूमा करते हैं। उसी में सुग्रीव अपने साथी चार बानरों के साथ रहता है'।^{२४} इसका अन्यत्र उल्लेख ऋतु-वर्षणों में है।

ख—हनुमान महेन्द्र पर्वत की तलहटी में पहुँचते हैं—'नीली, लाल, मजीठी, कमल के रंग की, सफेद तथा काली रंग-विरंगी स्वभाव

२३. वही : वही ; स० ९२ : ११, १२, स० ९३, ९-११।

२४. वही ; अर० ; स० ७३ ; ३३-३५, ३५-४१।

सिद्ध धातुओं में भूषित विविध भाँति के आभूषणों तथा वस्त्रों को पहने हुए अपने-अपने परिवारों सहित देवताओं की तरह काम रूपी, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और सर्पों से सेवित तथा उत्तम जाति के हाथियों से व्याप्त उस पर्वत की तलहटी में वह सरोवर स्थित हाथी की भाँति शोभायमान हुआ। वृद्धों से झुके हुए सुगन्ध युक्त फूलों के ढेर से वह पर्वत ढक गया और ऐसा जान पड़ने लगा मानों समस्त पहाड़ फूलों का ही हो। जब वीर्यमान् कम्बिर हनुमान ने उसे ढकाया तब उससे अनेक जल की धाराएँ निकल पड़ीं। वे धागाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानों किसी मतवाले हाथी के शरीर से मद बहता हो। बलवान् हनुमान के ढकाने से उस महेन्द्रान्नल पर्वत के चारों ओर धातुओं के वह निकलने से ऐसा जान पड़ता था मानों पिघलाए हुए सोने चाँदी की रेखाएँ खिंची हों अथवा काली, पीली और सफेद रेखाएँ खिंच रही हों। वह पर्वत बड़ी बड़ी शिलाएँ गिराने लगा, और इस प्रकार वह ऐसा जान पड़ता था मानों तीचे आग लगी हो और चारों ओर से धुआँ निकल रहा हो। स्वस्तिक लक्षणों से चिह्नित मणिधारी उस पर्वत में रहने वाले विशाल सर्प क्रुद्ध हुए और मुख से भयंकर आग उगलते हुए शिलाओं को अपने दाँतों से काटने लगे। क्रुद्ध हुए विषधरों द्वारा काटी हुई वे बड़ी बड़ी शिलाएँ जलने लगीं और उनके हज़ारों टुकड़े हो गये।^{२५} यह वर्णन आदर्श कल्पनाओं से पूर्ण है।

ग—सागर के बीच हनुमान के मार्ग में मैनाक पर्वत की स्थिति भी है—‘वह बड़े बड़े वृद्धों और लताओं से युक्त जल के ऊपर तुरन्त निकल आया। उस समय वह सागर के जल को चीर कर मैनाक जैसे ही ऊपर को उठा जैसे मेघों को चीर कर चमकता हुआ सूर्य निकल आता है। इस प्रकार महात्मा मैनाक ने

सागर का कहा मान कर सागर से निकली हुई अपनी चोटियों को दिखाने लगा। (प्र० भा०)। बिना विलम्ब किये समुद्र से निकल कर खड़े हुए तथा खारी समुद्र के बीच स्थित मैनाक पर्वत को देख हनुमान जी ने अपने मन में यह निश्चय किया कि यह एक विश्व आ उपस्थित हुआ है, तब उस अत्यन्त ऊँचे उठे हुए मैनाक को हनुमान जी ने बड़े जोर से अपनी छाती की ठोकर से हटा दिया जैसे पवनदेव बादलों को हटा देते हैं।^{२६} यहाँ प्रकृति को सप्राण पात्रों के रूप में उपस्थित किया गया है। सुन्दरकांड के दूसरे सर्ग में लका पर्वत का उल्लेख भी है, पर उसमें वन, सरिता आदि का वर्णन प्रमुख है।

घ—हनुमान लौटते समय अरिष्ट नामक पर्वत पर चढ़ कर सागर लाँघते हैं। 'यह पर्वत ऊँचा वृद्धराजि से हरिताभ था और उस पर
अरिष्ट पद्मक (भोजपत्र) के वृद्ध शोभित थे। उसके शिखर पर लटकते हुए मेघ उत्तरीय की तरह जान पड़ते थे। उस पर सूर्य की किरणें गिर कर मानों प्रम-पूर्वक उनको नींद से बगा रहीं थीं। विविध भौति की धातुओं से मंडित मानों वह पर्वत अपने नेत्र खोले देख रहा था। भ्रान्तों की जलधार गिरने से ऐसा शब्द होता था, मानों पर्वत अध्ययन कर रहा हो। उसके ऊपर जो देवदारु के पेड़ थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों पर्वत ऊपर के भुजा उठा कर खड़ा हो। सर्वत्र जलप्रपात का शब्द होने से ऐसा जान पड़ता था मानों पर्वत पुकार रहा है। वायु से डोलते हुए शरत्कालीन हरे हरे वृक्षों द्वारा वह पर्वत काँपता हुआ सा जान पड़ता था। पोले बाँसों में जब वायु भरता था, तब उससे ऐसा शब्द निकलता था मानों पर्वत बाँसुरी बजा रहा हो। क्रोध में फुफकारते हुए हुए बड़े बड़े जहरीले साँप ऐसे जान पड़ते थे, मानों पर्वत साँस ले रहा हो। अत्यन्त घने अन्धकारमय कोहरे से गहरी हुई गुफाओं से जान पड़ता था मानों पर्वत ध्यानावस्थित

है। मेघ-खंड की तरह खंड-पर्वत रूरी अपने पैरों से ऐसा जान पड़ता था मानों पर्वत चलना चाहता हो। अपने आकाश-रश्मीं टेढ़े-मेढ़े शिखरों से जैसे वह पर्वत अपने शरीर को जमा रहा हो। बड़ी बड़ी कन्दराएँ और बड़े बड़े शिखर थे। साल, ताल, कर्ण तथा वश से तथा फूली हुई लताओं से वह पर्वत विभूषित था। अनेक प्रकार के पशु उस पर वास करते थे तथा धातुमय भरने थे। भरनों के पास शिलाओं की चट्टानें पड़ी थीं। वह पर्वत लता वृक्षों से परिपूर्ण था तथा उसकी कन्दराओं में सिंह रहते थे। व्याघ्रों के झुंड के झुंड वहाँ भर पड़े थे, तथा उस पर के फल-फूल और जल बहुत स्वादिष्ट थे।^{२७} इस पर्वत का रूप मानवीय जीवन से अनुप्राणित उपस्थित किया गया है जो प्रकृति-वर्णन की विकसित शैली है। इसके आधार पर इस वर्णन को वाद का माना जा सकता है।

सरिता, सर और सागर

§ ७—बालकांड में विश्वामित्र राम को गगावतरण का प्रसंग सुनाते हैं—‘निर्मल मेघशून्य आकाश ऐसा सुशोभित जान पड़ता था मानों आकाश में सहस्रों सूर्य निकल रहे हों।
सरिता
बीच बीच में मूसों और चंचल मछलियों के झुंड जो जल के वेग से उछाळे जाते थे, ऐसे जान पड़ते थे मानों आकाश में बिजली चमकती हो। जल में उठे हुए सफेद सफेद फेन जो इधर उधर छितरा गया था, ऐसी शोभा दे रहा था मानों हंसों के झुंडों से युक्त इधर उधर बिखरे हुए शरत्कालीन मेघ आकाश को सुशोभित कर रहे हों। गंगा की धार का जल कहीं ऊँचा, कहीं टेढ़ा, कहीं फैला हुआ और कहीं ठोकर खा कर उछलता हुआ धीरे धीरे बह रहा था। कहीं जल जल से ही टकरा कर बार बार ऊपर उछलता और फिर ज़मीन पर

गिरता हुआ शोभित हो रहा था' ।^{२८}

क—चित्रकूट में राम सीता से मन्दाकिनी का वर्णन सहज सुख के लक्षणों में करते हैं—'हे वैदेही, फल-फूल वाले अनेक वृक्षा से परिपूर्ण तटों वाली इम नदी को देखो । इम नदी की शोभा मन्दाकिनी कुवेर की मौगन्धिका नामक नदी के समान है ।

इम नदी के सब घाट बड़े रमणीय हैं और मेरे मन में स्नान की इच्छा पैदा करते हैं । अभी मृगों के झुंड इन घाटों का जल पी कर आये हैं अतः वहाँ का जल गँडला हो रहा है । हे प्रिये देखो, जटा और मृग चर्म और वृक्षों की छाल पहने हुए ऋषि लोग इम नदी में यथा समय स्नान करते हैं । प्र० भा० । हे भद्रे देखो, मन्दाकिनी का जल मणि की तरह उज्ज्वल है, कहीं रेत शोभा दे रहा है और कहीं सिद्ध लोगों की भीड़ लगी है । प्र० भा० । हे शोभने, तुम जैसे अपनी सन्धियों के साथ निशंक जलक्रीड़ा करती थीं, वैसे ही मेरे साथ मन्दाकिनी में लाल सफेद कमल के फूलों को डुबाती हुई जलक्रीड़ा करो । जो गजों के यूथा से युक्त हैं और जिमका जल हाथी, मिह और बन्दर पिया करते हैं, उस रमणीय एवं सुन्दर पुण्य से युक्त वृक्षों द्वारा शोभित मन्दाकिनी का सेवन कर कौन सुखी नहीं होता' ।^{२९}

ख—वन मार्ग में नदियाँ पड़ती हैं—'उनमें मगर और घड़ियाल रहते हैं और उनमें दलदल रहने से उनको पार करना भी कठिन है ।

अन्य फल जाने पर इन दलदलों से हाथी का निकलना असम्भव है ।' यमुना का वर्णन उल्लोच में आता है—'आम शीघ्र बहने वाली गंगा में मिलने वाली यमुना के किनारे किनारे चल कर एक घाट देखोगे जो पुराने होने से टूटा-फूटा है । वहाँ घननई बना कर यमुना पार करना । तदन्तर पार करने पर

२८. वहाँ, अथो० : म० ४३, २१-२५ ।

२९. वहाँ, अथो०, म० ९५ ; २, ४-७, ९, ११, १४, १८ ।

तुमको उस पार एक बड़ा बरगद का वृक्ष मिलेगा जिसके हरे हरे पत्ते हैं' । पचवटी में गोदावरी का वर्णन-प्रसंग है, पर यह हेमत ऋतु के साथ अधिक सम्मिलित है । राम कहते हैं—'अगस्त्य ने जैसा बतलाया था वैसा ही यहाँ गोदावरी का दृश्य है । देखो, गोदावरी नदी फूले हुए वृक्षों से घिरी हुई है । प्र० भा० । हंस, कारंडव तथा चक्रवाकों से शोभित यह नदी न यहाँ से अधिक दूर है न अति निकट । यहाँ पर वन्यपशु जल पीने आते हैं' ।^{३०} लंका में हनुमान एक नदी को इस प्रकार देखते हैं—'इस पर्वत से निकल कर एक नदी बह रही थी मानो कोई प्रियतमा कामिनी क्रुपित होकर अपने प्रियतम को त्याग भूमि पर गिर पड़ी हो । नदी का जल कुछ दूर जाकर पुनः पीछे आ रहा है, मानो वह रूठी हुई प्रिया प्रमत्त होकर प्रियतम के पास वापस आ रही है' । इसी प्रकार उन्नग-कांड में नर्मदा का वर्णन है—'मन मोहने वाली नर्मदा ने मानो सुन्दरी की तरह कान्ति धारण कर ली थी । पुष्पित वृक्ष उसके आभूषण, चक्रवाक उसके कुच, विशाल तट उसके नितम्ब और हंस-पंक्ति मानो उसकी करघनी थी । पुष्पपराग उसका अंगराग, जल-फेन उसका सफेद पट, स्नान मुख उसका स्पर्श-मुख तथा पुष्पित कमल उसके नेत्र थे । मगर-मच्छ और पक्षियों से युक्त यह मनोहारिणी नर्मदा तरंगों से व्यात होने पर भी डरो हुई ललना के समान जान पड़ती है' ।^{३१} इन आरोपों के शारीरिक तथा मधु-क्रीड़ा सम्बंधी सकेतो से जान पड़ता है ये वर्णन अपेक्षाकृत बाद के हैं ।

§ ८—आरण्य-कांड के ग्यारहवें सर्ग में पंचाप्सर नामक सरोवर का उल्लेख है—'प्र० भा० । उस निर्मल और रमणीय जलवाली भील में गाने-बजाने का शब्द सुनाई पड़ता था, परन्तु वहाँ गाने-बजाने वाला

३०. वहाँ, वही, स० २८, ११ स० ५५, ५, ६ । अर०, स० १५, ९, १३ ।

३१. वही : सुन्द०, स० १४ ; २९-३१ । उक्त० ; स० ३१, २२, २३, ३०

कोई न था'। यह माडकणि नामक ऋषि द्वारा बनाया हुआ सर राम के मार्ग में पड़ता है। भावारोप के रूप में सीता-हरण के अवसर पर सरोवर का इस प्रकार वर्णन किया गया है—'सरो में विकसित कमल ध्वस्त हो गये थे और मछली आदि जीव-जन्तु भयभीत हो गये थे, मानों वे सीता के वियोग से उस प्रकार दुःख कर रहे हों जैसे कोई स्त्री अपनी सहेली के लिए दुःख करती है'।^{३२} आगे कबन्ध राम-लक्ष्मण को मार्ग बतलाता हुआ पम्पा का वर्णन करता है—'अनन्तर तुम दोनों पम्पा सरोवर पर पहुँचोगे। इस सरोवर के भीतर न तो सिवार है और न ककड़ियाँ हैं। इसके तट की भूमि पर बिछनाइट भी नहीं है। इसके मत्र घाट एक से बने हैं। उसके तल में अच्छी रेती है और कमलों से वह मुशोभित है। हे राघव, वहाँ हंस, गजहंस, कौच और कुग्ग रहते हैं और सतृण करने हुए मुन्द्रर बोलियाँ बोला करते हैं। आदमियों को देख कर वे डरते नहीं, क्योंकि वध क्या होता है वे जानते नहीं। पम्पा सरोवर का मुर्शातल स्वच्छ स्फटिक तथा रजत जैसा जल लक्ष्मण कमल के पत्तों में लाकर तुम्हें पिलावेंगे। पर्वत की गुफाओं में सोने वाले तथा वन में विचरण करने वाले पीवर शरीर वाले पशु सरोवर के तट पर बैल की भाँति बोलते हुए जल पीने आये हुए दिखाई देंगे। हे राम, मन्थ्या समय जब तुम वहाँ घूमा करोगे, तब बड़ी-बड़ी शाखाओं वाले और फूले हुए वृक्षां तथा पम्पा सरोवर के शीतल जल को देख कर तुम्हारा शोक दूर हो जायगा'।^{३३} फिर जब राम-लक्ष्मण पम्पासर पहुँचते हैं, उस समय पम्पा का वर्णन है—

'प्र० भा०। किन्नर, उरग, गधर्व, यक्ष, राक्षस आदि से सेवित वह सर अनेक वृक्ष तथा लताओं से घिरा हुआ था। अरविन्द, उत्पल के पद्म, मोगधिक, ताम्र-शुक्ल कुमुद समूह तथा नील कुवलय आदि अनेक

३२. वही, अर०, स० ११, ७ : स० ५२, ३५।

३३. वही, वही, स० ७३, ११-१३, १७-२१।

प्रकार के कमल उसमें लगे थे । वह सगेवर फूले हुए करवीर, पुत्राग, तिलक, बीजपुर वट, मालती तथा कुन्द के गुल्मों और भडार-निचुल से पूर्ण उरवनों से घिरा हुआ है' । हनुमान को लका में जलाशय दृष्टिगत हुए—'इनमें हस और कारडव क्रीडा कर रहे थे, कमल तथा कमुद खिले हुए थे । वह राजाओं के विहार के लिए अनेक प्रकार की वाटिकाएँ थीं जिनके भीतर विविध आकार के जल-कुण्ड बने हुए थे' ।^{३६}

५६—हनुमान के समुद्र-लघन प्रसंग में सागर का वर्णन है—'हनुमान समुद्र के जिस भाग में पहुँचते थे, वह भाग खलबलाता सा जान पड़ता था । वह पर्वत के समान अपने वक्ष-स्थल से समुद्र की लहरों को टकेलते हुए चले जाते थे । उसके वेग के घर्षण से जल पर उठते हुए मेघों से जान पडा मानों शरन्कालीन आकाश में बादल शोभित हो । उसमें तिमि, नक्र, भ्रूष (मछली) आदि जन्तु दिखाई दिये, जैसे वस्त्र के खींचने से आदमी का शरीर दिखाई देने लगता है' । राम की सेना जब समुद्र-तट पर आ जाती है, उम सन्ध समुद्र का चित्र सामने आता है—'समस्त सेना ने पवन से आन्दोलित महासागर को देखा । समुद्री विशाल जन्तुओं के कारण वह भयानक लगता था । सन्ध्या के समय जब उसमें फेन आता था, तब ऐसा जान पड़ता था मानो वह हँस रहा हो । और अपनी तरंगों में नृत्य करता जान पड़ता था । समुद्र चन्द्रमा के उदय होने पर बढ़ता और उसके प्रतिबिम्बों से भरा जान पड़ता था । उसकी लहरे घड़ियाल तथा सपों के चलने-फिरने से तथा वायु के वेग से ऊपर की ओर उछलतीं और बढ़े जोर से शब्द करती हुई नीचे गिरती थीं । रत्नों से और विविध प्रकार के जल-जन्तुओं से पूर्ण समुद्र का जल वायु के झोके से ऐसा उछल रहा था मानों क्रोध में ऊपर उछल रहा हो' ।^{३५}

३६. वही, वही ; म० ७५, '९-७४ । लका०, म० ७, १२, १३,

३५. वही ; मुन्द, स० १, ६९-७२ । लका०, स० ४ ; ११४, ११८, १२४ ।

काल और ऋतु

§ १०—विश्वामित्र राम से सन्ध्या के साथ धिगती हुई रात्रि का वखन करते हैं—‘हे रघुनन्दन, अन्धकार समस्त दिशाओं में व्याप्त हो रहा है। वृक्षों का पत्ता तक नहीं हिलता और पशु-पक्षी सभी चुपचाप उममें लीन हो गये हैं। धीरे-धीरे सन्ध्या का समय बीत गया। अब आकाश तारों से देदीप्यमान हो शोभित हो रहा है, जान पड़ता है मानों आकाश सहस्रों नेत्रों से देख रहा हो। समस्त ससार के अन्धकार को नष्ट करने वाला और शीतल किरणों वाला चन्द्रमा प्राणियों के मन को दर्षित करता हुआ ऊपर को उठा चला आता है’।^{३६} अनुसूया सीता को उपदेश देने के बाद सन्ध्या की ओर उनका ध्यान आकर्षित करती है—‘प्र० भा०। चारों ओर निशाचर विचरण करने लगे हैं। वेदी और तीर्थों में आश्रम के मृग मो गये हैं। चारों ओर से रात्रि तारों से अलकृत हो गई है। चाँदनी फैलाता हुआ दूसरी ओर से चाँद उदित हो रहा है’।^{३७}

क—लंका में हनुमान के सामने चन्द्रोदय का चित्र इस प्रकार है—‘उस समय मानों वायु पुत्र की सहायता करने के लिये अनेक किरणों वाला चन्द्रमा ताराओं के साथ चाँदनी चन्द्रोदय छिटकाता हुआ आकाश में आ विराजा। सरोवर में जिस प्रकार कमल संतरण करता है, उसी प्रकार दूध अथवा मृणालवर्ण या शख की भाँति चन्द्रमा भी आकाश में उदित होकर ऊपर उठ रहा है’।^{३८} आगे पाँचवें सर्ग में हनुमान के सम्मुख चन्द्रोदय का दृश्य फिर आता है—‘आकाश के मध्य में प्रकाशमान तेजधारी चन्द्रमा चाँदनी फैला रहा था मानो अत्यन्त दीपित मत्त वर्षभ मण्डल में घूमता हुआ

३६. वही, बाल०, स० ३४, १५-१७।

३७. वही, अयो, स० ११९, ८, ९।

३८ वही, सुन्द०, स० २; ५४, ५५।

शोभित हुआ है। लोगों के पाप फल का नाश करनेवाला, ममुद्र को बढ़ाने वाला सब जीवों को प्रकाशित करने वाला चन्द्रमा आकाश-मध्य आता हुआ दिखाई दिया। जो शोभा सूर्योदय के समय पृथ्वी की होती है अथवा जो छत्रि सायंकाल सागर धारण करता है और जो शोभा कमलों के फूलने से सरोवर की होती है, वही शोभा रात्रि की चन्द्रमा से हुई। जिस प्रकार राजा के पिंजरे में हंस मन्दराचल की कन्दरा में सिंह तथा वीर हाथी पर शोभित होता है, उसी प्रकार चन्द्र आकाश में शोभायमान है'।^{३९} हनुमान ने जब सीता को देखा, उस समय भी 'कुमुद पुष्पो की भौति निर्मल चन्द्र निर्मल आकाश में कुछ चढ कर वैसे ही शोभित हुआ जैसे नील जलवाली भील में हंस शोभित होता है'।^{४०}

§ २१—पम्पासर के निकट राम-लक्ष्मण चारों ओर वसत की शोभा विकसित पाते हैं। पपा सरोवर के साथ वसत का वन में उल्लाम
 इस प्रकार वर्णित है—'नीले और पीले घास के
 वसत ऋतु
 मैदान की शोभा बढ़ गई है। वृक्ष नाना प्रकार के पुष्प बिखेर रहे हैं। चारों ओर पुष्पों के भार से समृद्ध हुए वृक्ष शिखर दिखाई देते हैं। फूली हुई लताओं से चतुर्दिक् घिरा हुआ है। हे मौमित्र, सुख देने वाले पवन वाला यह कामदेव का समय (वसत) है। फूल और फूलों से वृक्ष सुगन्धित हो उठे हैं। देखो, यह वृक्ष मेघ की तरह फूलों की वर्षा कर रहा है। शिखरों पर अनेक प्रकार के वन-खड हैं जिनमें पवन से कम्पित वृक्षों से फूल गिर रहे हैं। सौम्य, कुछ फल नीचे पड़े हैं, कुछ गिरने को हैं और कुछ वृक्ष ही में लगे हैं। उनके द्वारा जैसे वसन्त वायु-क्रीड़ा कर रहा है। पुष्पों से लदी हुई वृक्षों की शाखाओं को यह पवन हिला कर भौरो के गुंजार के रूप में गीत सुना

३९. वही ; वही , म० ५ , १—५ ।

४० वही ; वही , म० १७ ; १ ।

गहा है। पर्वत की कन्दराओं से निकल कर वायु वृक्षों को नचाता हुआ, कोयलो के मधुर स्वर द्वारा मानो गान करता है। चारों ओर हिलने से शाखाएँ परस्पर सट जाती हैं, इससे ये वृक्ष गुँथे से जान पड़ते हैं। यह पवन सुख-स्पर्श, चन्दन के तुल्य शीतल और पवित्र गंध से भरा हुआ है और भ्रम को दूर कर रहा है। इन मधुगन्ध युक्त वनों में हवा के झोंकों से हिलते हुए वृक्ष भ्रमरों की झनकार द्वारा मानो नाद कर रहे हैं। इन पर्वत-शिखरों पर जो पुष्पित महावृक्ष लगे हैं, उनसे जान पड़ता है उन्होंने पगड़ी धारण की है। फूले हुए कर्णिकार ऐसे जान पड़ते हैं मानो बाजार के लिए पीताम्बर पहने हुए लोग हों। इस प्रकृति के रूप में मानवीय जीवन का विस्तृत आरोप है। आगे माना-विरह में प्रकृति दुःख को बढ़ाती है—‘वसन्त नाना पक्षियों के शब्दों से नादित होकर सीता-वियोग के शोक को उद्दीप्त कर रहा है। हर्ष से उन्मत्त कोयल का आवाहन करता हुआ स्वर मुझ शोक में पड़े हुए के सताप को बढ़ाता है। यह प्रसन्न हुआ दास्यूहक (जलकुम्कुट) वन के रमणीय झरने पर बैठा अपने शब्द में मुझे और भी अधिक शोकाकुल करना है। विचित्र पक्षी विभिन्न प्रकार के शब्द करते हैं और वृक्षों पर चारों ओर से आकर बैठते हैं। कीर या भ्रमर तथा अनेक प्रकार के पक्षियों के जोड़े बड़ी प्रसन्नता से झुंड के झुंड चिचरते हैं। दास्यूह पक्षी के गति-शब्द तथा नर कोयल के स्वरों में पक्षियों के झुंड कैसा विहार करते हैं। पक्षियों के शब्द से गुंजता हुआ वृक्ष और भ्रमर की गुंजन वाला अशोक के फूलों का गुच्छा मुझे जलाता है’। ‘इधर-उधर मयूर नाचते दिखाई देते हैं। मयूर अपनी मयूरी के साथ है। वन पुष्पों से समृद्ध है। यह पूष्प गन्ध वाला वायु सुखस्पर्श होकर मुझे जलाता है। कामियों को दुःख देने वाला यह अशोक के फूलों का गुच्छा पवन से हिलता हुआ जैसे मुझे वर्जित करता है। आम के बौराए हुए पेड़ अंगराग लगाये हुए प्रेमी नागरिकों के समान हैं। पत्र-विहीन किशुक जैसे चारों ओर प्रदीप्त हो उठा है। वसन्त में, मालती, मल्लिका, पद्म, करवीर, केतकी,

मिठुवार, मातुलिग, कुद (गुल्म मे), चिरबिल्व, मधूक, बजुला, बकुल, चपक, तिलक और नाग सभी फूल गये। और अनेक नीप, वरणा, खजूर, पद्मका, कुरटा, चूर्णका, पारिभद्रक, चूत, पाटल, कोविदार, मुचुकुद, अजुन के वृक्ष फूले हुए पहाड़ी चोटियों पर दिखाई देते हैं। केतक, उदालक, शिरीष, शिशपा, धवा, शाल्मली, किशुक, रक्त कुरवक, तिनिशा, नन्माल, चदन, हिताल, तिलक सभी चारो ओर फूल उठे हैं। और इनके साथ लताएँ भी वृक्षों पर वन वन और चोटी-चोटी पर फैली है, जैसे मत्त स्त्रियाँ पुरुषों का अनुमरण करती हैं। कुछ वृक्ष पर्याप्त फूलों से मधु और गंध से युक्त है। और कुछ कलियों से युक्त श्याम-वर्ण के (हरे) हैं। मधुकर उनपर लग्न है। वे एक से दूसरे पुष्प पर रस लेकर जाते हैं। भ्रमरों से गुंजारित पर्वत एक दूसरे से बातचीत से करते हैं। जल में कारडव पक्षी विहार करता है। पम्पा सर चक्रवाक, कारडव से सेवित है और उसमें कौच पक्षी भी भरे हुए है। इनसे कूजत हुआ सरोवर सुशोभित है'।^{४१}

§ १२—दशम्य अपनी मृगया प्रसंग का उल्लेख करते समय वर्षा का वर्णन इस प्रकार करते हैं—'गरमी एकदम दूर हो गई, शीतल बादल दिखाई देने लगे। उनको देखकर मेढक वर्षा ऋतु चातक और मयूर हर्षित हो गये। बरसाती हवा से हिलते हुए वृक्षों पर उन पक्षियों ने जिनके पर भोग जाने से स्नान किये हुए से जान पडते थे, कष्ट से बसेरा लिया। बरसे हुए और बरसते हुए जल से आच्छादित मत्त हाथी उस समय उसी प्रकार जान पडे जिस प्रकार महासागर में पर्वत खडा हो'।^{४२} ऋष्यमूक पर्वत पर राम लक्ष्मण से वर्षा का वर्णन करते हैं—यह आज वर्षा का समय आ गया है। हे लक्ष्मण ! देखो, पर्वत के समान मेघ आकाश में छा रहे हैं। सूर्य

४१. वही, किष्कि०, १ स० से यत्र-तत्र छोड कर जिया गया है।

४२. वही, अयो०; म० ६२; १६-१८।

का क्रिगणो से समुद्र का रस पीकर नव मास तक गर्भ धारण कर आकाश गमायन (जल-वर्षा) उत्पन्न करता है। मेघ की संपान-पक्ति से आकाश में चढकर सूर्य को कुटज तथा अर्जुन के फूलों से अर्नंकृत किया जा सकता है। सन्ध्या के राग से लाल आकाश धुंधला होता हुआ जान पडता है मानों घाव पर रेशमी कपडे की पट्टी बँधी हो। मंड पवन रूपी निःश्वास तथा सन्ध्या की लाली रूपी चन्दन से युक्त मेघ कामातुग के समान जान पडता है। प्र० भा०। मेघों के जल से कपूर की भाँति शीतल तथा केवडे की गन्ध से मुगन्धित वायु अजलियों से पिया जा सकता है। यह पर्वत जिस पर अर्जुन के वृक्ष फूल रहे हैं और जो केतकी की गन्ध से वासित है, मुग्रीव का नाई शत्रुहीन होकर जलधाराओं में अभिसिक्त हो रहा है। वायु से पूर्ण हो रही हैं कन्दराएँ जिनकी ऐसे पर्वत मेघ रूपी कृष्ण-चर्म धारण कर तथा जल-धागाओं रूपी यज्ञोपवीत धारण कर विद्यार्थी के समान जान पडते हैं। प्र० भा०। सभी दिशाएँ पवन के चारों ओर के प्रतारण से बादलों से घिरती जाती हैं जिससे ग्रह-नक्षत्र-चन्द्रमा सभी लुप्त ही गये हैं। पर्वत शिखरों पर खिले हुए कुटज (करैया) के वृक्ष पृथ्वी की वाष्प से अवरुद्ध होकर वर्षा के प्रति उन्सुक हो गये हैं। धूल शात हो गई, गर्म पवन शीतल हो गई है। राजाओं ने यात्रा स्थगित कर दी और प्रवासी घर लौट पडे। चक्रवाक अपनी चक्रवाकियों के साथ मानसरोवर चल पडे। अब वर्षा के जल के काण्ण यान नहीं चलते। आकाश में फैले हुए मेघों में कहीं प्रकाश आंग कहीं अन्धकार है और कहीं कहीं जान पडता है मानों सागर में पर्वत दिखाई देते हों। प्र० भा०। मध्याह्न के अनन्तर वन की शोभा देखते ही बनती है, एक ओर वर्षा में हरा-हरी घास की हगियाली देव पडती है और दूसरी ओर मोरों ने नृत्योत्सव प्रारम्भ किया है। बगलों की पक्तियों से शोभित और जल के भार से बोभिल मेघ पर्वतों के ऊँचे शिखरों पर विश्राम कर आगे बढ़ते हैं। गर्भ धारण की इच्छा से मेघों के मध्य में गमन करती हुई हर्षित बलाकाओं की पंक्ति, वायु द्वारा

बनाई हुई आकाश की श्वेत-कमल की माला के समान शोभित हुई । बीच नीच में छोटी छोटी वीरबहूटियों से भरी हुई हरी घास से पृथ्वी की शोभा ऐसी जान पड़ती है, जैसे किसी स्त्री ने बूटेदार दुपट्टा ओढ़ लिया हो । केशव को शनैः शनैः नींद आने लगी, नदी सागर की ओर जाने लगी, प्रसन्न हुई बलाका बादलों की ओर जाती है और काता काम ने प्रिय के पास जाती है । वन के भागों में मयूर नृत्य कर रहे हैं और कदम्ब की शाखाओं पर फूल लद गये हैं । गाय तथा बैल समान मत्त हो गये हैं और वन की पृथ्वी हरी-भरी मनोहर हो गई है । नदी प्रवाहित है, बादल बरसते हैं, मत्त हाथी गरजते हैं, वन-भाग शोभित है, वियोगी सोच करते हैं, मयूर नाचते हैं और वानर मन को समझा रहा है । केतकी पुष्प की गन्ध सूँघ कर मत्त हुआ हर्षित गजेन्द्र वन के निर्भर के गिरने के शब्द को सुन कर मयूरों के साथ मद के साथ नाद करते हैं ।^{४३} वर्षा की जल-धारा से भीगे हुए तथा कदम्ब की शाखा पर गँजने वाले भ्रमर फूलों के रस का गाढा मद छोड़ रहे हैं । जामुन वृक्ष पर बुझे हुए अगार के समान रस से भरे हुए फल इस प्रकार लगे हैं मानो शाखाओं पर भ्रमर छाये हुए हैं । विजली पताका है, और बादलों की गर्जन रण का नाद है, लगता है बलाहकों के रूप में युद्ध के लिए उत्सुक वानर हो । कहीं भ्रमर गाते हैं, कहीं मोर नाचते हैं । कहीं वन के किसी भाग में मत्त हाथी शोभित है । कदम्ब, सर्ज, अर्जुन तथा कदली आदि से वनान्त की भूमि मधु से आपूरित है । इस सबसे वह गान-भूमि लगती है । पत्तों पर पड़ा हुआ जल मुक्ता के समान आभा वाला जान पड़ता है । नाना प्रकार के प्यासे पक्षी प्रसन्न होकर वर्षा का जल पीते हैं । भ्रमरों की मधुर तंत्री, वानरों के कठस्वर की ताल तथा मेघ के मृदगनाद से वन संगीत में लीन है । इस संगीत में मयूर कूजता तथा नाचता हुआ भाग ले रहा है । बादल की गर्जन से निद्रा

छोड़कर सजग हो गये हैं, अनेक रूपवाले मेघ नाद करते हैं। चक्रवाको मे पूरित तटों वाली नदी वर्षा के नवीन जल से भरी हुई अपने प्रियतम के पाम जा रही है। वाग्निपूर्ण नील मेघ आपस में मिले हुए शोभित हैं। दावाग्नि से जले हुए पर्वत पाम-पास चले गये हैं। कमलो का केसर पानो की धार से धुल रहा है, कदम्ब के केसर युक्त नवीन फूलों पर प्रसन्न भ्रमर गम ले रहे हैं। मिह ने उन को आतंकित किया है और इन्द्र मेघों से क्रीड़ा करता है। वादलों से ऐसी गर्जन हो रही है मानों आकाश में ठहरे हुए किमी महासमुद्र का नाद हो। नदी, सगोवर, वार्धी और ममस्त पृथ्वी जलमग्न हो गई है। तेज वर्षा होती है, पवन वेग से बहता है। जिसके तट नष्ट हो गये हैं ऐसी नदी रास्ता को जलमग्न करती हुई तेज बह रही है। पर्वतों का गजाओं के समान इन्द्र तथा पवन द्वारा लाये हुए वादल रूपा घडों में सुन्दर अभिषेक हो रहा है। मघन आकाश में न सूर्य, न चन्द्र और तारे ही दिखाई देते हैं। जल से पृथ्वी और अन्धकार से दिशाएँ छाई हुई हैं। ऊँचे ऊँचे शिखर जल-धागाओं के गिरने से अधिक शोभित हैं, उनपर बड़े बड़े प्रपात जान पड़ता है मुक्ता की माला पड़ी हो। पर्वत के ये विपुल प्रपात अपने वेग से पत्थर के टुकड़ों को बहाते और साथ ही गुफाओं में मोरों के नाद में जान पड़ता है कि हार टूट कर फैल गया है। प्र० भा०। पत्तियों के छिप जाने, कमलों के जलमग्न हो जाने तथा मालती पुष्पित होने से जान पड़ता है सूर्यास्त हो गया है। ४०

‡ १३—ऋध्यमूक पर्वत पर राम शब्द की शोभा से उद्वेलित होते हैं—‘गगन पादुर हो गया था, चन्द्रमंडल विमल था। शारदी रजनी में ज्योत्स्ना बिखर रही थी। आकाश में अब बिजली और बलाहक नहीं दिखाई देते थे। सारस का करुण

शरद ऋतु

स्वर मुखर हों गया था' ।^{१०} ऐसे समय लक्ष्मण के वचनो से स्वस्थ होकर राम शरत्काल का वर्णन, उन का ध्यान आकर्षित करते हुए करते हैं—'इन्द्र ने जल से पृथ्वी को तृप्त कर शस्य (धान्य) की व्यवस्था कर दी है । अत्र धीर गम्भीर निर्घोष करने वाले बादल जल वर्मा कर शान्त हो गये हैं । नील कमलो से सभी दिशाएँ श्याममयी हो गई हैं । हाथियो का मट शात हो गया है और बादलों का वेग भी शात हो गया है । वर्षा का कुटज-अर्जुन की गन्ध से युक्त पवन मेघो को छिन्न-भिन्न कर शात हो गये हैं । प्रसवण के मेघ, हाथी तथा मयूरो का नाद सहसा शात हो गया है । महामेघो की वर्षा से विचित्र चोटियाँ स्पष्ट हो गई हैं और ये पर्वत चन्द्र-किरणो से अनुलित से शोभित हैं । शरत्काल ने अपनी शोभा को मानो सतच्छद की शाखाओं में, सूर्य-चन्द्र तथा तारागणो की प्रभा में और उत्तम गजा की लीला में विभाजित कर दिया है । इस काल अनेक गुणो से सम्पन्न शरत्काल की लक्ष्मी अनेक आश्रयो से शाभित होती हुई भी सूर्य किरणो से जगाये हुए कमलो से अधिक सौन्दर्य प्राप्त करती है । विशाल पत्र वाले, कमल की रज से धूसरित, कामदेव के प्रिय, नदियो के तट पर आये हुए चक्रवाको के साथ हंस क्रीडा कर रहे हैं । मट से प्रगल्भ हाथियो से, दर्शित गायो के समूह से तथा स्वच्छ जल वाली नदियो से शरद् लक्ष्मी की शोभा बँट गयी है । आकाश से मेघ विलीन हो गये हैं, मयूर के पंखो से वन विमुक्त हो गये हैं और उनका नृत्योत्सव भी समाप्त हो गया है । सुन्दर मुगन्धित पुष्पो से आच्छादित वृक्षो से वन के प्रान्त-भाग सुनहले और नयनो को अभिराम लगते हुए शोभित हैं । आकाश स्वच्छ नील है, नदी का प्रवाह पतला है । कलार में शीतल पवन बहता है, दिशाएँ प्रकाशित हैं । सूर्य के ताप से कीचड़ सूख गया है, भूमि पर पर्वतीय मिट्टी बिछ गई है ।^{११} अपने सुन्दर आभूषण को

छोड़कर नदी के तीर पर आया हुआ मोर सारस के समूह से भर्त्सना किया हुआ सा उदाम होकर जाता है। हाथी कारंडव तथा चक्रवाकों को अपने घोर नाद से सनस्र करके, कमल रूमी आभूषण धारण करने वाली नदी को विशुद्ध कर कंगे जल पी रहे हैं। परुहीन, बालुका के पुलिन वाली, स्वच्छ जल वाली, जिनके तट पर पशु-समूह है और जो सारस समूह से निनादित है ऐसी नदी पर हर्षित हम उतर रहे हैं। प्रसवण में बहने वाली नदिया, पवन से उत्तेजित मयूंगे और वानगों का नाद अब दूर हो गया है। बादलों के नष्ट हो जाने से अनेक वर्षा के घोग विष वाले क्षुधित सर्प अपनी बिलों से निकल रहे हैं। चंचल चन्द्रकिरणों के स्पर्श के र्प से निकल आये हैं तारे जिसमें ऐसी रागवती सन्ध्या स्वयं आकाश में हँस रही है। उदित होता हुआ चन्द्रमा जिसका मुख है, निकलते हुए तारा समूह जिसके नेत्र हैं और चंद्रिका त्रिपका बारीक कण्डों का घँघट है ऐसी यह रात्रि श्वेत घँघट वाली नारी के समान है। पके हुए धान को खाकर प्रसन्न हुई सारसों की सुन्दर पक्षि वेग से आकाश को पार करती हुई पवन से हिलती हुई माला लगती है। सरोवर के जल में कुमदों से घिरा हुआ हंस सो रहा है, निर्मल आकाश वाली रात्रि में तारा-गणों के साथ पूर्ण चन्द्र शोभित है। हंसों के समूह की मेखला वाली, खिले हुए कमलों की माला धारण किये हुए उत्तम वारी की शोभा विभूषित स्त्री के समान है। सरिता के तट नये कुसुमों के खिलने से तथा पवन से हिलते हुए श्वेत फूले हुए कोंस से उज्ज्वल वन के समान शोभित हैं। मधुपान से मत्त भ्रमरिया के साथ उल्लसित भ्रमर वन में पवन को कमल के रेणु से गौर कर रहे हैं। जल निर्मल है, कुसुम फैले हुए हैं, क्राँच का स्वर सुनाई देता है, धान पक गया है। पवन मन्द है, चन्द्र विमल है। प्र० भा०। लोक में भली भाँति वर्षा करके, नदियों को जल-पूरित करके तथा पृथ्वी को धान से भर कर मेष आकाश से नष्ट हो गया है। नदियों के पुलिन धीरे धीरे दिखाई देने लगे हैं, जैसे समागम के समय

द्वितीय प्रकरण

कालिदास

§ १—कालिदास संस्कृत साहित्य के महाकवि हैं। इनके महाकाव्यों और नाटकों में सौन्दर्य का चरम है। हम पिछले भाग की विवेचनाओं में यह देख चुके हैं कि क्या शैली की दृष्टि से और क्या प्रयोगों की दृष्टि से कालिदास प्रकृति के क्षेत्र में अद्वितीय हैं। आदि कवि में प्रकृति के वर्णनों में यथार्थ का रूप गन्तव्य है, यद्यपि विस्तृत वर्णनों में (जो सम्भवतः वाद के हैं) सौन्दर्य-व्यञ्जना भी सन्निहित है। कालिदास की प्रकृति-वर्णना में सौन्दर्य-विधान अधिक है, इस कारण आदर्श कल्पनाओं का अधिक अवसर मिला है। परन्तु प्रकृति की इस आदर्श उद्भावना में प्रकृति का महज रूप गन्तव्य है, साथ ही सौन्दर्य की कलात्मकता भी बनी रहती है। यद्यपि संस्कृत साहित्य की व्यापक प्रवृत्ति के रूप में प्रकृति-वर्णनों को महाकाव्यों में जुटाने का प्रयत्न कालिदास में भी दृष्टिगत होता है, परन्तु कथा और इन वर्णनों में एक सामंजस्य बना हुआ है।

देश के संकेत

§ २—कालिदास ने प्रदेश गत प्रकृति के उल्लेख द्वारा देश का

चित्र नामने उपास्थान क्रिया है। रघु को दिग्विजय के प्रसंग में इस प्रकार का प्रयोग किया है—“विजयी राजा रघु पूर्वा सिन्धु की दिग्विजय राज्यों को जीतते हुए उम समुद्र के किनारे पहुँचे, जो तट पर खड़े हुए ताड़ के वृक्षों की छाया से काला जान पड़ता था। जैसे व्रत की शान्वाँ धारा में झुक कर खड़ी रह जाती है, वैसे ही मुन्न दश के राजाओं ने अभिमानियों को उखाड़ फकनेवाले रघु की आधीनता स्वीकार की। पूव दिशा को जीत कर विजयी रघु समुद्र के उस तट पर होते हुए पकी सुगरियों के वृक्षोंवाली दक्षिण दिशा को गये। वहाँ से चलते-चलते वे बहुत दूर निकल गये और रघु के मेनिक मलयाचल की तराई में उतरे जहाँ काली मिर्च की झाड़ियों में हरे-हरे सुग्गे इधर-उधर उड रहे थे। मलय और दुर्दर नाम की पहाड़ियों पर चन्दन के पेड़ छाये हुए ऐसे जान पड़ते थे मानो दक्षिण दिशा के दो स्तन हों। मुरला नदी की ओर से आनेवाले पवन से केवड़े के फूल की रज उड रही थी। बड़े-बड़े ताड़ के पेड़ों से वायु के चलने से स्वर निकल रहा था। नागकेसर के फूलों पर बैठे हुए भौरे खजू के पेड़ में बँधे हुए हाथियों के कपोलों से टपकते हुए मद की गन्ध पर टूट पड़े। त्रिकूट पर्वत पर रघु के हाथियों ने दाँतों की चोटे कीं। पच्छिम में सैनिकों ने अगूर की लताओं से घिरी भूमि में मटिरा पी। सिन्धु के तट पर घोड़ों ने रेती में लोट कर थकावट दूर की। कंबोज में हाथियों के बाँधने से अखरोट की डालियाँ झुक गईं। हिमालय पर घोड़ों की टापों से गेरू आदि धातुओं की लाल-लाल धूल ऊँची होकर उड़ी। गुफाओं में लेटे हुए भिँह कोलाहल से शंकित नहीं हुए। प्र० भा०। वहाँ देवदारु के पेड़ों में बँधे हुए हाथियों के गले में जो साँकलें पड़ी थीं वे रात को चमकनेवाली बूटियों के प्रकाश से चमचमा उठती थीं और इस प्रकार उन बूटियों ने रघु के लिए बिना तेल के ही दीपक जला दिये। लौहित्य नदी को पार कर रघु प्राग्ज्योतिष पहुँचे, वहाँ हाथियों के बाँधने से

कालागुरु के पेड़ कोंते थे' ।^१ इस प्रकार वर्णनों के बीच में देशगत विशेषता को सन्निविष्ट करने में कवि ने विशेष प्रतिभा का परिचय दिया है । परन्तु ये वर्णन आदर्श रूप में हैं ।

§३—इन्दुमती के स्वयंवर में मुनन्दा राजाओं का परिचय इसी प्रकार देशगत विशेषता के साथ बताती है । 'अवन्ती के उद्यानों में शिप्रा नदी का शीतल पवन बहता रहता है । अनूप देश में नगाड़े मुनन्दा द्वारा की ध्वनि के समान मसुद्र गजना है और तटों पर विहार करते समय ताड़ के जगलो की तड़तडाहट सुनाई पड़ती है । वहाँ लौंग के फूलों से बसा हुआ शीतल पवन द्वीपों से आकर पसीना सुखाता है (महेन्द्र देश) । पाण्ड्य देश में मलय पर्वत की घाटियाँ हैं जिनमें पान की बेलों से ढके हुए सुपारी के पेड़ हैं, इलायची की बेलों से आच्छादित चन्दन के वृक्ष हैं और स्थान-स्थान पर ताड़ के पत्ते त्रिवरे हैं । मथुरा में वृन्दावन में कोमल पत्तों तथा फूलों की शैया बिछी रहती है और वर्षा के दिनों में गोवर्धन पर्वत की सुहावनी गुफाओं में पानी के फुहारों से भीगी हुई शिलाजीव की गन्धवाली पत्थर की घाटियों पर बैठकर मोर का नृत्य देखा जाता है' ।

§४—समस्त मेघदूत प्रसंग में अनेक देशों का उल्लेख किया गया है । 'रामगिरि पर अनेक कुण्ड, तालाब तथा बावलियाँ थीं जहाँ घनी छायावाले वृक्ष लहलहा रहे थे ।' इस पर विरही मेघदूत में यक्ष मेघ को मार्ग बताते हुए अनेक देशों का वर्णन करता है—'दशार्ण देश में फूले हुए उपवनो के बाड़े, फूले हुए केवड़ों के कारण उजले दिखाई देंगे; गाँव के मन्दिर, कौओं आदि पक्षियों के घोसलों से भरे मिलेंगे और कुछ दिनों के लिए वहाँ हंस भी आ जाते हैं । वहाँ 'नीच' नाम की पहाड़ी पर कदब के वृक्ष लगे होंगे मानो उसके

१. रघु०, सं० ४; ३४, ३५, ४४, ४६ ; ५१, ५५, ५६, ५७, ५९, ६५, ६७, ६९-७२ ; ७५, ८१ ।

रोम-रोम फरफरा उठे हों । उसके आगे नदियों के तट पर जुही से खिले हुए उपवन हैं । उज्जयिनी के मार्ग में निर्विन्धा नदी पड़ती है (प्र० भा०) । फिर अवंती शिप्रा के तट पर है (प्र० भा०) । इसमें ताड़ के पेड़ों का सुनहरा उपवन होगा और जिसमें नलगिरि नामक हाथी मदमत्त होकर घूमता फिरता है । आगे देवगिरि पर्वत पर फूल बरसाने वाले मेघ के रूप में आकाश-गंगा के जल से भीगे फूलों को स्कन्ध पर बरसाने का आग्रह है । मेघ की गर्जन से गुफाएँ भर जायगीं और उसे सुनकर स्वामी कार्तिकेय का मोर नाच उठेगा । चर्मण्वती नदी की धारा के मध्य में मेघ हार के बीच में इन्द्रनील मणि के समान लगेगा । '.....कनखल में हिमालय की घाटियों से उतरती हुई गंगा फेन की हँसी से पार्वती का मानो निरादर कर रही होगी' । अन्त में मेघ हिमालय को पार कर—'कैलास पर्वत की गोद में प्यारे की गोद में प्रेमिका के समान अलका को देखेगा । ऊँचे-ऊँचे भवनों वाली अलका को वर्षा के दिनों में कामिनियों के सिर पर गुँथे जूड़े के समान बादलों से आच्छादित देखकर पहचानना कठिन न होगा ।' आगे यक्ष अपनी अलकापुरी के प्राकृतिक रूप का उल्लेख भी करता है—'वहाँ सदा फूलनेवाले ऐसे वृक्ष मिलेंगे जिन पर मतवाले भौरे गुनगुनाते होंगे । सदा विकसित रहनेवाले कमल-कमलिनियों को हंसों की पाँते घेरे रहती हैं । वहाँ सदा चमकीले पंखोंवाले पालतू मोर ऊँचा सिर किये रात-दिन बोलते हैं और रातें चाँदनी से सदा उजली और मनभावनी होती हैं । वहाँ वैभ्राज नामक उपवन में लोग विहार करते होंगे' । आगे यक्ष अपने भवन के 'सामने फूलों के गुच्छों के भार से झुके हुए कल्पवृक्ष' का उल्लेख करता है, 'जिसके नीचे खड़े होकर गुच्छा तोड़ा जा सकता है' ।^३

२. वही, स० ६ ; ३५, ५७, ६४, ५०, ५१ ।

३. मेघ ; पूर्व ; १, २६, २७, २८, ३५, ४७, ४८, ५०, ५४, ६७ : उत्त० ;

उपवन और वन

१५—रघुवंश में अयोध्या के ध्वस्त उपवन का उल्लेख है—‘पहले उद्यान की जिन लताओं को धीरे से झुकाकर सुन्दरी खियाँ फूल उतारा करती थीं, उन प्यारी लताओं को जंगली शबरोँ के समान

उपवन

उत्पाती बन्दर झकझोर डालते हैं’।^४ इसी प्रकार के विध्वस्त नन्दनवन का संकेत कुमारसम्भव में भी है—‘स्वामी कार्तिकेय ने इन्द्र के विलास के इस वन को ध्वस्त देखा जिसके साल के वृक्ष या तो तोड़ डाले गये थे, या जड़ से ही उखाड़ दिए गये थे’।^५

क—यक्ष अपने घर के उद्यान का वर्णन इस प्रकार करता है—‘घर के भीतर प्रवेश करने पर नीलम की सीढ़ियों वाली बावली मिलेगी

यक्ष का उपवन

जिसमें चिकने वैदूर्य मणि की डंठल वाले बहुत से सुनहले कमल खिले होंगे, उसके जल में हस हतने सुखी हैं कि पास ही मानसरोवर में नहीं जाना चाहते। इसके तीर पर क्रीडाशैल है, जिसकी नीलमणि की चोटी सोने के केलों से घिरी है। उस पर कुरबक के वृक्षों से घिरे माधवी-मंडप के पास ही एक तो चंचल पत्तों वाला अशोक का वृक्ष है और मौलश्री का पेड़ है। मेरे समान अशोक फूलने के मिस मेरी पत्नी के बाएँ पैर की ठोकर खाने के लिये तरस रहा है और दूसरा मौलश्री का पेड़ उसके मुँह से निकले हुए मदिरा के छींटे पाना चाहता है’।^६

ख—शाकुन्तल का छूटा अंक प्रमदवन में अभिनीत है। इस समय वसन्त का समय होने से आम में मंजरी आ चुकी है। ‘लताओं

प्रमदवन

से घिरा हुआ एक ओर माधवी-मंडप है। फूलों से सजी हुई मणिशिला की सुन्दर चौकी माधवी कुंज

४. रघु० ; सं० १६ ; १९ ।

५. कुमा० ; सं० १३ ; ३३ ।

६. मेघ ; उत्त० ; १६-१८ ।

मे पड़ी है। और उसी मे मेघ-प्रतिच्छन्द भवन है'।^७ इससे अधिक यहाँ उपवन का कोई रूप सामने नहीं आया है। विक्रमोर्वशीय के हम दूसरे अंक मे प्रमदवन का रूप अधिक व्यक्त है—'उद्यान की ओर से आता हुआ दक्षिण पवन जैसे राजा का स्वागत करता है। माधवी-लता को खींचता हुआ और कुन्दलता को नचाता हुआ, यह पवन मुझे ऐसा जान पड़ता है, मानों सब से प्रेम करनेवाला और सबके साथ प्रसन्न रहनेवाला कोई कामी हो। उद्यान के आम के पेड़ों के पीले पत्ते मलय-पवन ने भाड़ कर गिरा दिये हैं और कोपले फूट आई हैं। स्त्री के नख के समान लाल और सौवले रंग के छोर वाला कुरबक का यह फूल है। अपनी ललाई से सुन्दर लगनेवाला यह लाल अशोक का फूल है, ऐसा जान पड़ता है कि बस अब खिलने वाला ही है। कुछ-कुछ प्रकट पराग के कारण पीला सा लगने वाला आम का बौर फूट रहा है। यह वसन्त की शोभा बचपन और जवानी के बीच की है। यहाँ अतिमुक्त लता-मंडप के नीचे रतन जड़ी चौकी पर भौरों के उड़ने से बिखरे हुए फूल लगते हैं मानो मंडप स्वागत कर रहे हों'।^८ मालविकाग्निमित्र के तीसरे अंक मे प्रमदवन की भूमिका है, जिसमे मालविका अशोक को पुष्पित करने आती है। वसन्त के प्रभाव मे यह उपवन भी है 'कुरबक के पराग मे बसा हुआ और खिली हुई कोपलों से जल की बूँदें उड़ा ले जानेवाला मलय का पवन मन को चाह से भर रहा है। मालविका ने कानों पर सजाने के लिये जो अशोक से पत्ते लिये तो उसके बदले मे इसने अपने पत्तों जैसा चरण उसे भेट में दे दिया। और अब कमल-कोमल बिछुओं से अलंकृत चरण से आदर पाकर भी यदि अशोक की कलियाँ न फूटी तो उसे सुन्दरी की लात से फूल

७. अभि० ; अ० ६।

८. विक० ; अ० २; ४-७।

उठने की चाह ही व्यर्थ उत्पन्न हुई' ।^९

सर, सरिता और सागर

१५—विक्रमोर्वशीय का समस्त चौथा अंक प्रकृति का विस्तार है । राजा पुरुरवा अपनी प्रेयसी उर्वशी के वियोग में कुमारवन में घूम रहा है,

और प्रकृति वैसी ही त्रिखरी हुई है—'अपनी प्यारी सखी

सर

के छिड़ोह से अनमनी और घबराई हुई हंसी सरोवर के

जल में अपनी सखी के लिये रो रही है जिसमें के कमल सूर्य की किरणों के छूने से खिल उठे हैं । चिन्ता से अनमनी और अपनी सखी से मिलने को अधीर हंसी खिले हुए कमलों से लुभावने लगनेवाले तालाब में विहार कर रही है ।^{१०} रघुवंश में कालिदास ने लंका से लौटते समय राम द्वारा विमान पर से पम्पा तथा पंचाप सरोवरों का वर्णन करवाया है । वाल्मीकि ने इनका विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है, यह हम देख चुके हैं । राम सीता का ध्यान आकर्षित करते हुए कहते हैं—'देखो, बहुत ऊँचे से देखने के कारण और वेत के वनों से आच्छादित होने से पम्पा सरोवर का जल ठाक-ठीक दिखाई नहीं पड़ता, पर जल पर तैरते हुए सारस धुंधले से दिखाई पड़ जाते हैं । हे भामिनि, आगे यह शातकण्ठी ऋषि का पंचापसर नाम का क्रीड़ा सर चारों ओर श्यामल वनों से घिरा हुआ दूर से ऐसा दिखाई पड़ रहा है मानों बादलों के बीच में कुछ-कुछ दिखाई देने वाला चन्द्रमा हो' ।^{११} रघुवंश में अयोध्या की ध्वस्त बावली का सन्निहत रूप इस प्रकार है—'नगर की जिन बावलियों का जल पहले जल-क्रीड़ा करनेवाली सुन्दरियों के हाथ के थपेड़ों से मृदंग के समान गम्भीर शब्द करता था, वह आजकल जंगली भैंसों के सींगों की चोट से कान फोड़ता है' । उन्नीसवें सर्ग में राजा अग्निवर्ण की बावली में जल-क्रीड़ा

९ साल० ; अ० ३ ; ९, १६, १७ ।

१०. विक्र० ; अ० ४ ; १, ४ ।

११. रघु० , स० १३ ; ३०, ३८ ।

का उल्लेख मात्र है। कुमारसम्भव में नन्दन वन की बावली का रूप वैसा ही ध्वस्त है—‘स्कन्ध आदि ने देखा देवताओं के विलास-घरों में बनी हुई बावलियों में से सोने के कमल उखाड़ डाले गये हैं। दिग्गजों के मद से उनका जल गँदला ही था, पत्तों की बड़ी-बड़ी पाटियाँ भी टूट-फूट गई हैं और चारों ओर घास छाई हुई है’।^{१२}

§६—राजा रघु की दिग्विजय के प्रसंग में कावेरी, मुरला सिन्धु तथा लौहित्य नदियों का उल्लेख है। ‘कावेरी के तट पर पहुँच कर।

सरिता सैनिक जी भर कर नदी में नहाये और जल को मथ डाला। हाथियों के नहाने से मद की कैसेली गंध

जल में आने लगी। इस प्रकार मथी हुई कावेरी के प्रति सरिता-पति सन्देहशील किया गया। मुरला नदी की ओर से आने वाले पवन के कारण उड़ी हुई केवड़े की रज ने सैनिकों के कवचों पर पड़ कर सुगन्धित चूर्ण का काम किया। सिन्धु नदी के तट पर पहुँच कर, थकावट उतारने के लिये उसकी रेती में लोट कर रघु के घोड़ों ने उठ-उठ कर अपने शरीर में लगी हुई केसर को हिला कर झाड़ दिया’।^{१३} अज की विद्रुर्भ-यात्रा में नर्मदा नदी का वर्णन है। (प्र० भा०)। विमान से राम सीता को सरयू दिखाते हैं—‘आदरणीय महाराज दशरथ से वियुक्त मेरी माँ के समान यह सरयू अपने ठड़े पवन वाले तरंग रूपी हाथ उठा कर मानों इतने ऊँचे से ही मुझे गले लगाना चाहती हो’। कुश की जल-क्रीडा के प्रसंग में भी सरयू नदी का उल्लेख है, इसमें विलास-लीला अधिक है, दृश्य नहीं के बराबर—‘स्नान करने से रानियों के अंगराग के शरीर से धुल कर पानी में मिल जाने से सरयू की धारा बादलों से भरी सन्ध्या जैसी रंग-विरंगी जान पड़ती है। पानी में उतरती हुई रानियों के कपड़ों की रगड़ की ध्वनि से और बिछुओं के स्वर से सरयू के हंस

१२. वही ; स० १६ ; १३ ; कुमा० ; स० १३ ; ३९, ४०।

१३. ख०, स० ४ ; ४५, ५५, ६७।

मचलने लगे' ।^{१४} कुमारसम्भव मे स्कन्ध की युद्ध-यात्रा के प्रसंग में आकाश-गंगा का वर्णन है—'नगाड़ों की ध्वनि सुन आकाश-गंगा में बाढ़ आ गई। दैन्यगज की सेना के हल्ला से आकाश-गंगा गुँज उठी और उसमें से उछली हुई सुन्दर कमलों वाली सहस्रां लहरों ने वहाँ के भवन धो डाले' । शत्रुघ्न अपनी विजय यात्रा में मथुरा में यमुना को देखते हैं—'जिमके जल प्रवाह में अनेक चकवे चहचहा रहे थे ऐसी यमुना पृथ्वी की सुनहरी बेणी के समान सुन्दर जान पड़ती थी' ।^{१५}

क—लक्ष्मण सीता को वन में छोड़ने जा रहे हैं, उस समय मार्ग में गंगा पड़ती है—'गंगा में उठती हुई लहरें, बड़े भाई की आज्ञा से गंगा और नगम पतिव्रता सीता को वन में छोड़ने लिये जाते हुए लक्ष्मण से हाथ हिला हिला कर ऐसा न करो, ऐसा न करो कह रही थीं' । कुमारसम्भव में शंकर-वीर्य विसर्जन के प्रसंग में गंगा का पुनः प्रसंग आया है। जिस समय अग्नि गंगा के पास पहुँचे—'उस समय उठती हुई तरंगों से ऐसा जान पड़ा मानो दूर से आते हुए अग्नि को देख कर उनका काम साधने के लिये गंगा उन्हें दूर से ही बुझा रही हों। वहाँ बहुत से राजहंस एक साथ मिलकर मतवाले बने हुए जो कल कूजन कर रहे थे, उससे जान पड़ता था मानो गंगा कह रही है कि मैं सबका भला करती हूँ, सबका दुःख हर लेती हूँ। ऊँची उठती हुई तथा बढ़ती हुई ढलने तट पर आगे तरंगों से ऐसा जान पड़ता है मानो गंगा कुछ आगे बढ़ कर स्वागत करने चली आ रही हों' ।^{१६} कालिदास का प्रसिद्ध सगम-वर्णन राम द्वारा सीता से किया गया है। विमान से राम सीता को दिखाते हैं—'देखो, यमुना की सौवली लहरों से मिली हुई उजली लहरों वाली गंगा जी कैसी सुन्दर लग रही है।

१४. वही ; स० १३ ; ६७ ; स० १६ ; ५८ ।

१५. कुमा० ; स० १६ ; ११ ; १२ ; रघु० ; स० १५ ; ३० ।

१६. रघु० ; स० १४ ; ५१ । कुमा० ; स० १० ; ३२-३४ ।

कही तो ये चमकने वाली इन्द्रनील मणियों से गुँथी हुई माला जैसी लगती है और कही नील-श्वेत कमलों की मिली हुई माला जैसी। कहीं श्याम रंगों के हंसों से मिले हुए श्वेत राज-हंसों की पाँति के समान और कहीं श्वेत चंदन से चींठी हुई पृथ्वी पर कालागुरु के चित्रण के समान लग रही है। कहीं-कहीं ये वृक्ष के नीचे की बीच-बीच में पत्तों की छाया पड़ने वाली चाँदनी के समान और कहीं नीलाकाश भाँकने वाले शरद् के उजले बादलों के समान जान पड़ती हैं। फिर कहीं काले सर्प लिपट हुए भस्म रंजित शिव के शरीर के समान जान पड़ती हैं'।^{१७}

ख—कालिदास ने मेघदूत में वेन्नवती निर्विन्ध्या, शिप्रा, गम्भीरा तथा गंगा इन पाँच नदियों का उल्लेख किया है। यद्य मेघ से कहता है कि 'दशार्णव देश की विदिशा नाम की राजधानी मे सुहावनी, मनभावनी, नृत्यशील लहरोवाली वेन्नवती के तट पर, कटीली भौंहों वाली कामिनी के ओठों के रस के समान तुम उसके जल को पीना'। आगे निर्विन्ध्या नदी का वर्णन है (प्र० भा०)। अवनति की राजधानी के प्रसंग में शिप्रा का उल्लेख है (प्र० भा०)—'वहाँ जल-बिहार करने वाली युवतियों के स्नान करने से महकती हुई गधवती नदी की ओर से आने वाला पवन, शिव मन्दिर के उपवन को बार-बार झुला रहा होगा'। गम्भीरा नदी का उल्लेख पिछले भाग हो गया है। कनखल में मेघ को गंगा मिलेगी—'वहाँ तुम्हें हिमालय की घाटियों से उतरती हुई गंगा जी का सफ़ेद फेन ऐसा जान पड़ेगा मानो वे फेन की हंसों के मिस पार्वती की खिल्ली उड़ाती हैं। (प्र० भा०)।^{१८}

१७—कालिदास को सागर वर्णन का एक ही अवसर मिला है। लंका से लौटते समय राम सीता को सागर दिखलाते हैं—'समुद्र नदियों

१७. रघु, स० १३; ५४-५७।

१८. मेघ०; पूर्व०; २६, ३७, ५४।

का अधर पान करता है और अपने तरंग रूपी अधर उन्हे पिलाता भी है। यह देखो, ये बड़े-बड़े मगरमच्छ अपना मुँह खोल कर मछलियों के साथ समुद्र का जाल पी जाते हैं और फिर मुँह बन्द करके अपने सिर के छेदों से पानी की जल-धाराओं को छोड़ते हैं। इन मगरमच्छों के सहसा उठने से फटा हुआ समुद्र का फन तो देखो, इनके गालों पर क्षण भर लगा हुआ फन ऐसा जान पड़ता है मानो इनके कानों पर चवर टंगे हो। वे जो तट पर बड़ी बड़ी लहरों जैसे दिखाई दे रहे हैं ये मौँव हैं जो पानी के बाहर निकल आये हैं, पर जब सूर्य की किरणें उनकी मणि पर पड़ती हैं तब उनकी चमक से वे जाने जाते हैं। देखो, लहरों की भोंक में तुम्हारे अधरों के समान लाल लाल मँगे की चट्टान से टकरा जाने से जीविन शखाँ के मुँह छिद्र गये हैं और उस पीडा मे वे कठिनाई से अधर उधर चल पा रहे हैं। काले घन समुद्र का पानी लेने आए हैं और समुद्र की भँवर के साथ-साथ अति तीव्र गति से चक्कर काट रहे हैं और लगता है समुद्र को मन्दगचल फिर मथ रहा है। और देखो, दूर पटिए की हाल के समान बहुत पतवा और ताड़-तमाल आदि वृक्षा के कारण नीला दिखाई देनेवाला समुद्र तट ऐसा जान पड़ता है जैसे चक्र की धार पर मुर्चा जम गया हो। 'हम विमान की तीव्र गति से क्षण भर मे समुद्र के उम तट पर पहुँच गये हैं जहाँ बालू पर सीपों के फँस जाने से मोती बिखरे पडे हैं और फलों के भार से सुगरी के पेड़ झुके खडे हैं। अब किंचित पीछे तो देखो, पाम के जगलों से भरी भूमि जान पड़ती है अभी समुद्र से अचानक निकल पड़ी है'।^{१९}

पर्वत प्रदेश

§ ८—यह ने 'रामगिरि पर घिरते हुए बादलों को गिरि की चोटी पर लिपटे हुए देखा। उनसे वह ऐसा जान पड़ रहा था मानों कोई

हाथी अपने माथे की टक्कर से मिट्टी के टीले को ढहाने का खेल कर रहा हो' । वह मेघ से आगे कह रहा है— 'हे मेघ, जिस शिखर पर तुम लिपटे हुए हो, इसकी ढाल पर भगवान् राम की जगत् पूज्य पैरो की छाप पड़ी है; और जत्र-जत्र तुम इससे मिलने आते हो, तत्र-तत्र यह भी बहुत दिनों पर मिलने के कारण तुम्हारे साथ अपने गरम आँसू बहा कर अपना प्रेम व्यक्त करता है। इसलिये अपने इस मित्र शिखर से तुम विदा ले लो' । अनन्तर 'हे मेघ, तुम पके हुए फलों से लदे आम के वृक्षों से घिरे हुए पीले से आम्रकूट पर्वत पहुँचोगे । थके हुए तुमको वह प्रशंसनीय पर्वत अपनी चोटी पर ठहरावेगा और तुम भी जल बरसा कर उसके जंगलों में लगी हुई गर्मी की आग बुझा देना । आम्रकूट के वन के वृक्षों के विचरने के कुंजों में कुछ समय ठहरकर फिर आगे चल देना । आगे रेवा की अनेक धाराओं से भभूत से चीते हुए हाथी के समान विन्ध्याचल का ऊँचा-नीचा पठार मिलेगा' ।^{२१} दशार्णव देश की राजधानी विदिशा में पहुँचने पर 'हे मेघ, तुम नीच नामक पहाड़ी पर थकावट मिटाने के लिये उतर जाना । वहाँ फूले हुए कदम्ब के वृक्षों को देख कर ऐसा जान पड़ेगा मानो तुमसे भेंट करने के कारण उसके रोम-रोम फरफरा उठे हो' ।^{२२} देवगिरि का उल्लेख प्रथम भाग में हो चुका है । हिमालय तथा कैलास के अतिरिक्त जिनका वर्णन बाद में किया जायगा मेघदूत में यक्ष की वाटिका के क्रीडा-शैल का उल्लेख है— 'उस बावली के तीर पर एक बनावटी क्रीडा-शैल है जिसकी चोटी नीलमणि की बनी है और जो सोने के केलों से घिरा है । उस पर कुरवक के वृक्षों से घिरे हुए माधवी-मंडप के पास एक चंचल पत्तों वाला अशोक का वृक्ष है और दूसरी ओर मौलश्री का पेड़ है' ।^{२३}

२०. मेघ०, पूर्व०, २, १२ ।

२१. वही, वही; १८-२० ।

२२. वही; वही; २७ ।

२३. वही, उत्त०, १७, १८ ।

क—हिमालय-वर्णन में कवि ने अपनी पूर्ण सौन्दर्य-सृष्टि का परिचय दिया है। इसमें यथार्थ और कल्पना का विचित्र सौन्दर्य-लोक

हिमानथ और कैलास कवि ने उत्पन्न किया है। मेघदूत में यक्ष हिमालय का विस्तार से वर्णन करता है—‘आगे चल कर तुम हिमालय की उस हिम से ढकी हुई चोटी पर बैठ कर

यकावट मिटाना जहाँ से गंगा निकलती है और जिसकी शिलाएँ कस्तूरी हरिणों के निरन्तर बैठने से सुगन्धित हो गई हैं। उस समय चोटी पर बैठे हुए मेघ, तुम ऐसे जान पड़ोगे जैसे महादेव के धवल साँड के सींगों पर मिट्टी के ढीलों पर टक्कर मारने से कीचड़ जम गया हो। वहाँ यदि अंधड़ चलने पर देवदार के वृक्षों के आपस में रगड़ने से आग लग जाय और उसके उड़ते हुए अंगारे सुरागायों के लम्बे लम्बे रोएँ जलाने लगें तो तुम मूमलाधार पानी बरसा कर उसे बुझा देना। देखो, हिमवान् पर जब शरभ नाम के हरिण तुम्हारे दूर होने पर भी, बिगड़ कर हाथ पैर तुड़वाने के लिये तुम पर सींग चलाने के लिये मचलें और ऊपटें, तब तुम उनके ऊपर धुआँधार आले बरसाकर उन्हें तितर बितर कर देना। हिमालय पर्वत की एक शिला पर सिद्धों द्वारा सदा पूजित शिव के चरणों की छाप है। हे मेघ, वहाँ पोले बाँसों के वायु से भरने से निकलते हुए मोठे स्वरो के साथ म्बर मिलाकर जब किन्नरों की स्त्रियों त्रिपुर-विजय का गीत गाती हो, तब उस समय तुम अपनी गरज से पहाड़ों की खोहों को गुंजाकर मृदंग का काम कर शिव के संगीत के अंगों की पूर्ति करना। वहाँ से क्रौचरंध्र होकर तुम कैलास पर्वत पर पहुँच जाओगे जिसकी कुमुद जैसी उजली चोटियाँ आकाश में इस प्रकार फैली हैं मानों शिवजी का अट्टहास एकत्र है! मेघ, तुम घुटे आँजन जैसे श्याम हो और कैलास हाथीदाँत जैसा गोरा, इसलिये तुम कैलास पर बलराम के कंधों पर पड़े हुए वस्त्र के समान मनोहर लगोगे।^{२४}

कुमारसम्भव के प्रारम्भ में हिमालय का वर्णन पीठिका के रूप में कवि ने किया है—‘पूर्व’ से पश्चिम के समुद्र तक फैला हुआ पृथ्वी की माप-दण्ड के समान विशाल यह पर्वत है। असंख्य रत्नों को उत्पन्न करनेवाले हिमालय की शोभा हिम भी से कम नहीं हुई। (प्र० भा०)। हाथियों को मारकर जाते हुए सिंहों के रक्त से लाल पंजों की छाप हिम से धुल जाता है, पर उनके नखों से गिरी हुई गज मुक्ताओं को देखकर किरात उनका अनुसरण करते हैं। इस पर उत्पन्न होनेवाले भोज-पत्रों पर लिखे हुए अक्षर हाथी के सूँड़ पर बनी हुई लाल बुँदकियों जैसे दिखाई पड़ते हैं। प्र० भा०। जब यहाँ के हाथी अपनी कनपटी खुजलाने के लिये देवदार के पेड़ों से रगड़ते हैं तब उनसे निकलने हुए सुगन्धित दूध से पर्वत की सभी चोटियाँ गमक जाती हैं। यहाँ की गुफाओं में रात में चमकने वाली जड़ी-बूटियाँ गुफाओं में किरातों की काम-क्रीड़ा में बिना तेल के दीपक का काम करती हैं। वहाँ के हिम-भागों पर किन्नरियों की उँगलियों और एड़ियाँ ऐंठ जाती हैं। हिमालय की लम्बी गुफाओं में दिन में भी अंधेरा छाया रहता है। ऐसा लगता है मानों अंधेरा भी दिन में डरकर उल्लू के समान गहरी गुफाओं में जाकर छिप जाता है। जिन हरिणियों की पूँछों के चँवर बनते हैं वे चमरी हरिणियाँ चन्द्रमा के समान धौली अपनी पूँछों से पर्वत-राज पर चँवर डुलाती जान पड़ती हैं। गंगाजी की फुहारों से लदा हुआ बार-बार देवदारु के वृक्ष को कँपाने वाला यहाँ का शीतल मन्द-सुगन्ध पवन किरातों की थकावट, उनकी कमर में बँधे हुए मोर पंखों को फरफराता हुआ मिटाता है, जो हिमालय पर मृगों की खोज करते घूमते हैं। उसकी ऊँची चोटियों के सरोवरों में खिलने वाले कमलो को स्वयं सप्तर्षिगण पूजा के लिये आकर तोड़ ले जाते हैं। बचे हुए कमलो को नीचे उदय होनेवाला सूर्य अपनी किरणों को ऊँची करके खिलाता है’।^{२५} रघुवश में रघु

की विजय यात्रा के प्रसंग में हिमालय का वर्णन है। प्रारम्भ में भी हिमालय की उपत्यका का वर्णन नन्दनी के चरणों के प्रसंग में हुआ है (प्र० भा०)। कुमारसम्भव में कैलास का वर्णन शंकर-पार्वती के लीला-प्रसंग में हुआ है। चलते-चलते भगवान् शंकर कैलास पर पहुँचते हैं—
 'आर यह कैलास शोभा में शंकर के समान ही है। वह आकाश में चारों ओर व्याप्त है, उसमें चन्द्रमा से शोभित शंकर का निवास है। इस पर्वत पर विभूति (रत्नादि) पाई जाती है। जब इस स्फटिक के बने हुए कैलास पर चन्द्रमा की परछाईं पड़ती है, तब चन्द्रमा के कंक की छाया तो दिखाई देती है पर चन्द्र की छाया उमी में मिल जाती है। वह कलक की छाया ऐसी जान पड़ती है मानो पार्वती ने कम्तूगी पीम कर उसको पिंडी बनाकर वहाँ छोप दी हो। पर्वत की भीतों पर अपने अंगों की परछाईं देखकर मतवाले हाथी उसे दूसरा मस्त हाथी मानकर क्रोध से भर अपने दाँतों से उनपर करारी टक्करें लेने लगते हैं। यहाँ के स्फटिक के भवनों पर जब तारों की परछाईं पड़ती है तो मिट्टियों की स्त्रियों को संभोग के समय छूट कर गिरे हुए मोतियों के दाने का धोखा होता है। अप्सराओं के दर्पण के समान सुन्दर लगनेवाला चन्द्रमा जब इस कैलास की चोटी पर आ पहुँचता है तब यह उम हिमालय का अनमोल चूडा-मणि सा लगने लगता है जिसपर शंकर निवास करते हैं'।^{२६}

§ १०—शंकर-पार्वती लीला-प्रसंग में मलय पर्वत का उल्लेख आया है (प्र० भा०)। रघुवश में सुनन्दा द्वारा भी मलय पर्वत की घाटियों का संकेत किया गया है। कुमारसम्भव के अन्य पर्वत आठवें सर्ग में गन्धमादन पर्वत का चित्रण है, पर वह सन्ध्या के अन्तर्गत आता है। इसी के चौदहवें सर्ग में स्कन्द की सेना की यात्रा के वर्णन-प्रसंग में सुमेरु पर्वत का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है—'रथ खींचने वाले ब्रह्मिणा घोड़ों के खुरों से पिस कर सुमेरु की

तलहटी से उठी हुई सुनहली धूल हरहराते पवन के सहारे सभी दिशाओं में फैलकर चमक उठी। पवन की सहायता से सेना के ऊपर-नीचे, आगे-पीछे और चारों ओर फैली हुई वह सुनहली धूल सूर्य की सुनहली धूप से भी अधिक शोभित जान पड़ती थी। सेना के चलने से उड़ी हुई वह धूल सभी दिशाओं और आकाश में भरकर ऐसी सुन्दर दिखाई पड़ने लगी मानो सन्ध्या हुए त्रिना ही सुनहले बादलों के झुंड आकाश में घिर आये हैं। सेना के हाथियों को वहाँ की सुनहली धरती में अपनी प्रतिछाया देखकर यह भ्रम हुआ कि ये पाताल से निकले हुए बड़े-बड़े हाथी हैं और वे उन परछाहियों पर अपने-अपने बड़े-बड़े दाँतों से टक्कर लेने लगे। सुन्दर सिन्दूर से रंजित हाथियों को सुमेरु गिरि की चमकदार सोने की धरती पर परछाईं ठीक-ठीक नहीं पड़ती थी क्योंकि दोनों का रंग समान था। इस प्रकार देवराज की सेना अपने शोर से सुमेरु की गुफाओं को गुंजाती हुई वेग से नीचे उतरी। पर इस समस्त शोर और हल्ला से सुमेरु पर्वत की लंबी-लंबी गुफाओं में सोने वाले सिंहों ने अपनी नींद के सपनों का सुख नहीं त्यागा। गुफाओं में गुंजते हुए नगाडों की गभीर और भयंकर ध्वनि और बड़े बड़े रथों के पहियों की घड़घड़ाहट गुफाओं से टकरा कर दूनी होकर गुंज रही थी, फिर भी वहाँ सिंह निश्चल रहे और उन्होंने सिद्ध कर दिया कि हम मृगों के सचमुच राजा हैं। वहाँ जितने हरिण थे वे सब तो इस डर से चौकड़ी भरकर दूर भाग गये थे कहीं सेना हमें मार न डाले, पर सिंह गुफाओं के बाहर निकल-निकल कर खड़े हो गये।^{२७} इस वर्णन में पर्वत का रूप प्रत्यक्ष नहीं होता, वरन् केवल एक स्थिति का चित्र भर है।

क—विमान द्वारा लंका से वापस आते समय राम सीता को माल्यवान तथा चित्रकूट पर्वत भी दिखाते हैं। राम संकेत करते हुए कहते हैं—‘यह जो आगे माल्यवान पर्वत की ऊँची चोटी दिखाई देती है,

यहाँ जब बादलों ने नया जल बरसाना आरम्भ किया, उस समय तुम्हारे वियोग में मेरी आँखें भी बरसने लगी थीं।
 मात्स्यवान नया चित्रकूट
 इस पर उस समय वर्षा के कारण पोखरो में से उठी हुई सौंधी गन्ध, अधखिन्नी मंजरियों वाले कदम्व के फूल और मोरो के मनोहर स्वर तुम्हारे विना मुझे बहुत अखरे। जब वहाँ बादल गरजते थे और गुफाओं में उसकी प्रतिध्वनि होनी थी, तब तुम्हारे स्मरण से दिन बहुत कष्ट में बीतते थे।^{१२८} इसके वर्णन में स्मृति का विषाद छिया हुआ है। हमी सर्ग के श्लो० ४७ में चित्रकूट का उल्लेख राम ने किया है (प्र० भा०)।

आश्रम-जीवन

§ ११—रघुवंश के प्रथम सर्ग में वशिष्ठ के आश्रम का वर्णन है—‘वहाँ पहुँच कर वे (राजा-रानी) देखते हैं कि सन्ध्या के शकुन्तल में अग्निहोत्र के लिये बहुत से तपस्वी हाथ में समिधा, कुशा और फल लेकर वनों से आश्रम लौट रहे हैं। प्र० भा०। धूप में सुखाने के लिये जो तिन्नी का अन्न फैलाया हुआ था, वह दिन छिपते ही समेट कर कुटिया के आँगन में ढेर लगाया गया था और वहीं बहुत से हरिण सुख से बैठ कर जुगाली कर रहे थे। हवन-सामग्री की गंध से भरे हुए अग्निहोत्र का धुआँ पवन से चारों ओर फैल गया था और उस धुएँ ने आश्रम की ओर आते हुए इन अतिथियों को भी पवित्र कर दिया’।^{१२९} आश्रम जीवन में कालिदास ने प्रकृति को बहुत ही कोमल आत्मीय सम्बंध में उपस्थित किया है। शकुंतल के प्रारम्भिक अंकों का सारा वातावरण आश्रमजीवन की इसी भावना से ओत-प्रोत है। शकुंतला पादों को सींचती हुई सामने आती है, और वह प्रकृति से अपनी आत्मीयता स्थापित करती हुई उपस्थित हुई है—

२८ रघु०, स० १३; २६-२८।

२९. रघु०, स० १, ४९, ५२, ५३।

‘सखी, यह केसर का पेड़ पवन के भोको से हिलती हुई पत्तियों को उँगलियों से मुझे बुला रहा है। जाऊँ इसका जी रख लूँ’। केसर के के नीचे शकुंतला ‘जान पडती है जैसे कोई लता लपटी हो’। उसी समय अनसूया शकुंतला का ध्यान ‘उस नई चमेली की ओर आकर्षित करती है जिसका नाम उसने वनज्योत्स्ना रख छोड़ा था’। पर शकुंतला अपने को भूल सकती है, अपनी इन प्रकृति सहचरियों को नहीं। वह लता के प्रति अपना स्नेह इस प्रकार व्यक्त करती है—‘सखी, सचमुच हम लता और वृक्ष का मेल बड़े अच्छे दिनों में हुआ है। इधर यह वनज्योत्स्ना खिले हुए फूल लेकर नवयौवना हुई है, उधर फल से लदी हुई शाखाओं वाला आम का वृक्ष भी उभार पर आया हुआ है’।^{३०} इसके बाद चतुर्थ अंक में आश्रम में प्रकृति और जीवन की आत्मीयता का चित्र फिर प्रगाढ़ रंगों में उपस्थित हुआ है। इस अवसर पर ‘फूल-पत्ते मॉगने पर वृक्षों ने शुभ मांगलिक वस्त्र दिये, किसी ने पैरों में लगाने की महावर दी, और वनदेवियों ने कोयलो से होड़ करके वृक्षों से कलाई तक अपने हाथ निकाल-निकाल कर अनेक आभूषण प्रदान किये’। कण्व के इन वचनों से प्रकृति के समीप इसी निकट सहातुभूति की स्थापना है—‘हे वनदेवताओं से भरे हुए तपोवन के वृक्षों ! जो पहले तुम्हें गिलाए बिना पानी नहीं पीती थी, जो आभूषणों के लिये तुम्हारे कोमल पत्तों में स्नेह के कारण हाथ नहीं लगाती थी, जो तुम्हारी नई कलियों को देखकर फूली नहीं समाती थी, वही शकुंतला आज अपने पति के घर जा रही है। तुम सब प्रेम से उसे विदा दो। (कूकती हुई कोकिल की ओर संकेत करके) शकुंतला के वन के साथी वृक्षों ने कोयल के शब्दों में उसे जाने की आज्ञा दे दी है’। विदा के समय प्रकृति दुःखित भी है (प्रा० भा०)। शकुंतला अपनी सखियों के समान प्रकृति-सहचरी से भेटती-मिलती है। शकुंतला की

इस उक्ति में सघन स्नेह भङ्कृत है—‘तात, आश्रम में चारों ओर गर्भ के भार से अलसाती हुई चलनेवाली इस हरिणी के जब सुख से ब्रजा हो जाय, तब किसी के हाथ यह प्यारा समाचार मेरे पास भेजवा दीजिएगा’ । कैसी आत्मीय चाहना है । आगे एक महज मर्मग्राही चित्र है—‘वत्से ! कुशा के काँटे से छिदे हुए जिसके मुँह को अच्छा करने के लिये तू उम पर हिंगोर का तेल लगाया करती थी, वही तेरी मुट्टी के साँवे के दानों पर पला हुआ तेरा पुत्र के समान प्याग मृग छाना रोके खड़ा है ।’ शकुतला को इस मानवना में ओर भी मार्मिकता है—‘बन्धु, सुभ माथ छोड़कर जानेवाली के पीछे-पीछे तू कर्ण जा रहा है ? तेरी माँ जब तुझे जन्म देकर मर गई थी उम समय मैंने तुझे पाल-पोस कर बड़ा किया था । अब पिताजी तेरी देख-भाल रखेंगे, जा लौट जा ।’^{३९} इस प्रकार यह प्रसंग मानवीय भावशीलता की दृष्टि से ही नहीं वरन् प्रकृति और जीवन के तादात्म्य की दृष्टि से भी अद्वितीय है ।

आखेट-प्रसंग

§ १२—आखेट-प्रसंग में वास्तव में वन का वर्णन होता है । वन की घटना-स्थिति का यह एक रूप है, इस कारण इसको प्रकृति-वर्णन के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है । दशरथ की मृगया दशरथ का मृगया का चित्र रघुवंश में उपस्थित हुआ है—‘तब राजा उस वन में पहुँचे जहाँ पहले से ही जालों को और शिकारी कुत्तों को लेकर उनके सेवक पहुँच चुके थे । वहाँ अग्नि और चारों का भय नहीं था, तथा घोड़ों के लिये पृथ्वी पक्की थी । वहाँ अनेक सरोवर थे जिनके चारों ओर बहुत से हरिण, पक्षी और बनैली गायें घूमा करती थीं । राजा ने अपना धनुष उठाया जिसकी टंकार से सिंह गरज उठे । उस मध्य मोने के रंग की पीली बिजली की डोरी वाला इन्द्रधनुष धारण किये हुए भादों-मास के समान राजा विदित हुए । उन्होंने देखा कि आगे एक

हरिणों का भुंड जा रहा है जिनमे बहुत सी हरिणियों भी हैं जो कुशा चबाते चबाते अपनी मा के स्तनों से दूध पीने के लिये बीच में खड़े होने वाले छौनों के कारण रुक-रुक जाती हैं। इस भुंड के आगे एक गर्वीला काला हरिण भी चला जा रहा था। राजा ने ज्यों ही अपने वेगगामी घोड़े पर चढ़कर और अपने तूणीर से बाण निकाल कर उनका पीछा किया कि वह भुंड तितर-बितर हो गया और उनकी घबराई हुई आँखों से भरा हुआ सारा वन ऐसा लगा मानों पवन ने नीले कमलों की पंखुडियाँ लाकर वहाँ बिखेर दी हो। प्र० भा०। वे हरिणों पर बाण चलाना चाहते थे और उन्होंने बाण की चुटकी कान तक खोच भी ली थी, पर जब उन्होंने उन हरिणों की डरी हुई आँखों को देखा तो उन्हें अपनी युवती प्रियतमा के चंचल नेत्रों का स्मरण हो आया और उनके हाथ ढीले पड़ गये। प्र० भा०। ज्यों ही उन्होंने घोड़े पर चढ़े हुए अपने शरीर को आगे झुकाकर सुअरों पर बाण चलाए त्यों ही वे भी अपने बाल खड़े कर राजा पर झपटे। किन्तु उन्होंने तत्काल ऐसे कस कर बाण मारे कि सुअरों को पता भी नहीं चला कि कब वे उन वृद्धों में बाण के साथ चिपक गये जिनके सहारे वे खड़े थे। इतने ही में उन्होंने देखा कि एक जगली भैसा उनकी ओर झपटा आ रहा है। उन्होंने उसकी आँख में एक बाण मारा कि वह भैसे के शरीर में से इतनी फुर्ती से पार हो गया कि बाण के पंख में तनिक सा भी रक्त नहीं लगा और विशेषता यह थी कि बाण तो देर से गिरा किन्तु भैसा पहले ही पृथ्वी पर गिर पड़ा। इतने में उन्हें बारहसिंगों का भुंड दिखाई दिया। राजा ने अर्द्धचन्द्र बाणों से उनके सींग काट कर उनके सिर का बोझ हलका कर दिया। जब सिंह अपनी माँदों में से निकल कर उनकी ओर झपटे तब निर्भय राजा दशरथ ने इतनी शीघ्रता से उन पर बाण चलाए कि उन सिंहों के खुले हुए मुँह उनके बाणों के तूणार बन गये और वे ऐसे जान पड़ने लगे जैसे आँधी से उखड़े हुए फूले आसन के पेड़ की आगे की टहनियाँ हों। झाड़ियों में

लेते हुए सिंहों को मारने के लिये पहले उन्होंने आँधी के समान भयंकर धनुष की टंकार का शब्द किया। उसे सुन कर सिंह भड़क उठे। सिंह जीवों के राजा कहलाते हैं, इस बात से राजा को चिढ़ थी। उन्होंने हाथियों से बेर रखने वाले उन सिंहों को मार डाला जिनके नोकीले पंजों में अब तक गज-मुक्ताएँ उलझी थीं। इस प्रकार ककुत्स्थ-वशी राजा दशरथ ने मानों अपने बाणों से उन हाथियों का ऋण चुका लिया जो युद्ध में उनकी सेना में काम आ रहे थे। पामर मृगों के चारों ओर अपना घोड़ा दौड़ाते हुए भाले की नोक वाले बाण बरसा कर उन्होंने उन मृगों की चँवर वाली पूँछें काट डालीं। इससे उन्हें ऐसा सन्तोष हुआ मानों चँवरधारी राजाओं के चँवर ही उन्होंने छीन लिये हों। कभी-कभी उनके पास से सुन्दर चमकीली पूँछों वाले मोर उड़ जाते थे, पर वे उन पर बाण नहीं चलाते थे। उन्हें देखकर राजा का रग-विरगी मालाओं में गुँथे हुए और सभोग के कारण खुले हुए अपनी प्रिया के केशों का स्मरण हो आता था। कठिन परिश्रम से उनके मुँह पर जो पसीना छा गया था उसे वन के उस वायु ने सुखा दिया जो जल के कणों से शीतल होकर पत्तों और कलियों को गिराता चल रहा था।^{३२} कालिदास का यह वर्णन सजीव और गतिशील है।

काल-स्थिति

§ १३—अज को जगाते समय सूत-पुत्रों द्वारा प्रातःकाल का उल्लेख किया गया है—‘हे परम बुद्धिमान जागो ! देखो, तुम्हारी सौन्दर्य-लक्ष्मी ने जब यह देखा कि तुम निद्रा-रूमी दूसरी स्त्री के प्रातःकाल वश में हो तब वह तुम्हें चाहते रहने पर भी रुष्ट होकर तुम्हारे सुख के समान चन्द्रमा के पास चली गई थी, पर अब चन्द्रमा भी मलीन हो गया जान वह बेचारी निराधार हो गई है। अब तुम जाग कर उसे संभालो। इस समय तुम्हारी बन्द आँखों में पुतलियों

घूम रही हैं और तालों में कमलों के भीतर भौरे गूँज रहे हैं। इस समय उठो तो सूर्य के निकलने पर तुम्हारे नेत्र और कमल एक साथ खिल कर समान सुन्दर लगने लगे। प्र० भा०। तुम्हारे सेना के हाथी, दोनों ओर करवटे बदल कर खनखनाती हुई साँकलों को खींचते हुए उठ खड़े हुए हैं। लाल सूर्य-किरणों से उनके दाँत ऐसे जान पड़ते हैं माना वे अभी गेरू के पहाड़ को खोद कर चले आ रहे हो। हे कमलनेत्र, पट-मंडपो में बंधे हुए तुम्हारे घोड़े नींद छोड़ कर सँधा नमक के उन टुकड़ों को अपने मुँह की भाप से मैला कर रहे हैं जो उनके चाटने के लिये उनके आगे रखे हुए हैं। रात की सजावट के फूल सुरक्षा कर टूक टूक हो गये हैं। प्रकाश हो जाने से दीपक का प्रकाश भी अपनी लौ से अब बाहर नहीं जाता और पींजरे में बैठा हुआ मीठी बोलो बोलने वाला तुम्हारा तोता भी हमारी बातों को ही दुहरा रहा है।³³ इस वर्णन में प्रकृति का दृश्य सामने नहीं आता है वरन् काल की व्यापार-योजना को उपस्थित किया गया है। मध्याह्न का एक संक्षिप्त चित्र मालविकाग्नि मित्र में आया है (प्र० भा०)।

§१४—कुमारसम्भव के आठवें सर्ग में —‘शंकर पार्वती के साथ गन्धमादन पर्वत पर पहुँच कर सोने की चट्टान पर बैठते हैं। उस समय सूर्य का तेज इतना कम हो गया था कि सन्ध्याकाल उसकी ओर भली भाँति देखा जा सकता था’। उस काल को देख कर शंकर पार्वती से उसका वर्णन करते हैं—‘देखो प्रिय, इस समय सूर्य ऐसा जान पड़ता है मानों यह तुम्हारी तिहाई लाल आँखों के समान सुन्दर कमलों की शोभा को लजा कर उसी प्रकार दिन को समेट रहा है जैसे प्रलय के समय ब्रह्मा सारे संसार को समेट लेते हैं। प्र० भा०। पुष्पित कमलों की केसर चोंच में उठा कर ये चकवी-चकवे एक दूसरे के कंठ से अलग होकर चिल्लाने लगे हैं और

सगेवर का छोटा पाट भी इनके लिये बहुत विस्तृत हो गया है। सहस्रकी के वृक्षां के टूटने से जहाँ गंव फैल गई है और जहाँ हाथी दिन में रहा करते थे उन स्थानों को अगले दिन तक के लिये छोड़ कर ये हाथी उम ताल की ओर बढ़े चले जा रहे हैं, जहाँ कमलों में भारे बन्द पड़े हैं। प्र० भा०। मरोवरां को मथ कर उनके गाढे कीचड़ में लोट कर दिन भर की गर्मी बिताने वाले ये बड़े-बड़े दाँत वाले लवे-चौड़े जगली सुन्नर निकले चले आ रहे हैं, इनके दाँत ऐसे दिग्बाई देते हैं मानों इनके जबड़ों में खाए हुए कमलों के डटल अटके हुए हैं। प्र० भा०। हे प्रिये, बहुत दूर पर सूर्य की हल्की सी झलक गोचर होने से पश्चिम दिशा उस कन्या के समान जान पड़ती है जिसने अपने माथे पर केसर से भरे बन्धुजीव के फूल का तिलक लगाया हो। किरणों की गर्मी पी जानेवाले और सहस्रों के झुंड में रहनेवाले बालग्विल्य आदि ऋषि इस समय सूर्य के रथ के घोड़ों को भला लगने वाला सामवेद गाकर उस सूर्य की स्तुति कर रहे हैं जिन्होंने अपना तेज अग्नि को सौंप दिया है। दिन को समुद्र में डुबो कर सूर्य अस्ताचल की ओर अपने उन घोड़ों को लिये चले जा रहे हैं जिनके नीचे की ओर उतरने के कारण सिर झुके हुए हैं, जिनके कानों की चौरियाँ रह रह कर आँखों पर झूल पड़ती हैं और जिनके केसर कंधे पर रखे हुए जुए से लग-लग कर छितरा गये हैं। सूर्य के छिपते ही साग आकाश सोया सा जान पड़ता है। तेजस्वियों की बात ऐसी ही होती है कि वे जहाँ निकलते हैं वहाँ प्रकाश हो जाता है और जहाँ वे छिपते हैं वहाँ अंधेरा छा जाता है। प्र० भा०।^{३४} सन्ध्या करने के बाद फिर शंकर अन्धकार का वर्णन करते हैं—। 'प्र० भा०। अंधेरा फैल जाने से न तो इस समय ऊपर दिखाई दे रहा है न नीचे, न आस पास, न आगे पीछे। इस रात के समय सारा संसार इस प्रकार अंधेरे में घिर गया है जैसे गर्भ भिहड़ी में

लिपटा हुआ बालक पडा हो । इस समय अंधेरे में, उजले और मैले, खडे और चलते, सीधे और टेढे सब एक समान हो गये हैं । ऐसे दुष्टों के शासन को धिक्कार है' ।^{३५}

§ १५—इसी प्रसंग मे चन्द्रोदय तथा ज्योत्स्ना कर वर्णन भी शकर पार्वती से करते हैं—प्र० भा० । 'देखो, यह उदय होता हुआ चन्द्रमा

चन्द्रोदय इस समय पके हुए प्रियंगु के फल के समान लाल दिखाई पड रहा है । इस समय आकाश का चन्द्रमा

तथा सर मे पडी हुई उसकी छाया दोनो ऐसे जान पडते हैं मानो रात होने से चकवी-चकवे का जोडा बिछुड गया हो । । प्र० भा० । इस समय कमल रूपी नेत्र मुँद कर बैठी हुई रात रूपी नायिका के मुँह पर फैले हुए अंधेरे रूपों बालो को अपनी किरण रूपी अँगुलियो से हटा कर मानों चन्द्रमा उसका मुँह चूम रहा है । हे पार्वती, उठे हुए चन्द्र की किरणों से घना अंधेरा मिट जाने पर आकाश ऐसा जान पड रहा है मानों हाथियों की जल-क्रीडा से गँदला मानसरोवर निर्मल हो चला है । अब चन्द्रमा का मण्डल लालिमा छोड कर धीरे-धीरे उज्ज्वल होने लगा है । जो निर्मल स्वभाव वाले होते हैं उनमे समय के फेर से आया हुआ दोष अधिक दिनों तक टिक नहीं पाता । पर्वत की चोटियों पर चाँदनी फैली है, पर घाटियों और खड्डों में अभी अंधेरा बना हुआ है । ब्रह्मा ने गुण-दोष की चाल ही ऐसी बनाई है कि गुण तो ऊँचे पर रहता है और दोष नीचे को चला जाता है । चन्द्रमा की किरण पडने से इस पर्वत की चन्द्रकान्त-मणि की चट्टानों से जल की बूँदें टपक रही हैं । और पर्वत के ढाल पर वृक्षों की छाया में सोए हुए मोर, उन बूँदों को वर्षा की बूँदें समझ कर बिना वर्षा आये जाग पडे हैं । हे सुन्दरी ! देखो, इस समय कल्पवृक्ष की फुनगियो पर चमकती हुई किरणों को देख कर जान पडता है मानों चन्द्रमा अपनी किरणों से कल्पवृक्ष मे चन्द्रहार बनाने आ गया है ।

प्र० भा० । हे चण्डिके, कल्पवृक्ष में लटकते हुए कपड़ों और चन्द्रमा की निर्मल किरणों के एक समान होने से उनमें घोखा हो जाता है, पर पवन के चलने पर जब कपड़े हिलने लगते हैं तब पता चलता है कि यह कपड़ा ही है । पत्तों के बीच से छन कर धरती पर पड़नेवाली चाँदनी ऐसी सुन्दर और सुहावनी जान पड़ती है जैसे वृक्षों से झड़े हुए फूल हों । यदि तुमको रुचिकर हो तो फूलों के समान दिखाई देने वाले इन चाँदनी के फूलों से ही तुम्हारे केश गूँथ दिए जाँय । प्र० भा० । हे सुन्दरी ! तुम जो चन्द्रमा की ओर एकटक लगा कर देख रही हो तो पके हुए सगकेडे के समान गोरे और अपनी स्वाभाविक प्रसन्नता में खिले हुए तुम्हारे गाल ऐसे लग रहे हैं मानों उन पर चाँदनी चढ़ती आ रही हो' ।^{३६} इस चन्द्रिका के वर्णन में कवि ने सौन्दर्य को कल्पना का सर्जन किया है ।

ऋतु-वर्णन

§ १६—कालिदास के ऋतुसंहार में सभी ऋतुओं का वर्णन क्रम से है, परन्तु उसमें विलास—ऐश्वर्य का प्रसार भी अधिक है । यहाँ केवल प्रकृति-वर्णन के अश प्रस्तुत किये जायेंगे

श्रीम
तथा अन्य काव्यों के ऋतु-वर्णनों को भी साथ ही उपस्थित किया जायगा । 'रात के समय उजले भवन में मुख से सोई हुई युवती के मुख को देखने को उतावला रहनेवाला चन्द्रमा जब बहुत दूर तक उसका मुख देख चुकता है तो लाज के मारे रात के पिछले पहर उदास हो जाता है । अपनी प्रेमिकाओं के विछोह की तपन से झुनसे हुए हृदय वाले परदेसी प्रेमियों से आँधी के भोंकों से उठी हुई धूल के बवडों वाली और कड़ी धूप से तपी हुई धरती की ओर देखे देखा नहीं जाता । जलते हुए सूर्य का किरणों से झुलसे हुए तथा प्यास से सूखी जीभ वाले जगती पशु आँजन के समान नीले आकाश को पानी समझ कर जंगलों की ओर

दौड रहे हैं। देखो, धूप से एकदम तपा हुआ और मार्ग की गर्म धूल से झुलसा हुआ यह सर्प अपना मुँह नीचे छिपा कर वार-वार फुफकारता हुआ मोर की छाया में कुडल मारे बैठा है और गर्मी के मारे मोर भी कुछ नहीं बोलता। प्र० भा०। प्यास से बेचैन अपने सूखे मुँह से भाग फेकते हुए पानी की खोज में इधर उधर घूमते हुए हाथी इस समय मिंह से भी नहीं डर रहे हैं। हवन की अग्नि के समान जलते हुए सूर्य की किरणों से शरीर तथा मन दोनों से अतसित मोर कुंडल मारकर अपने पास बैठे हुए साँपो को नहीं मारते, वरन् उलटे धूप से अपना मुँह बचाने के लिये अपना गला उनकी पूँछ की कुडल में डाले बैठे हैं। प्र० भा०। धूप से तपे हुए मेटक, गँदले जल वाले पोखर से बाहर निकल-निकल कर प्यासे साँपो की फन की छतरी के नीचे आ आकर बैठ रहे हैं। यहाँ इस सरोवर के सब कमल हाथियों ने इकट्ठे होकर आपस में लड-भिड़कर उखाड़ डाले, मछलियों को रौंद डाला और सब सारसों को डराकर भगा दिया। प्र० भा०। आजकल वन और भी भयानक लगने लगे हैं, क्योंकि आग की लपटों से सब वृक्षों की टहनियाँ झुलस गई हैं, अंधड़ में पडकर सूखे पत्ते ऊपर उड़े जा रहे हैं और सूर्य के ताप से चारों ओर का जल सूख गया है। जिन वृक्षों के पत्ते झड़ गये हैं उनपर बैठी हुई सभी चिड़ियाँ हॉफ रही हैं, उदास बन्दरों के झुंड पहाड़ की गुफाओं में जा घुसे हैं, पशु-समूह चारों ओर पानी की खोज में घूम रहे हैं और शरभों के झुंड एक कुएँ से गटागट पानी पी रहे हैं। नवविकसित कुसुम्भी फूल के समान और स्वच्छ सिन्दूर के समान लाल-लाल चमकनेवाली, आँधी से और भी घघक उठनेवाली और तीर पर खड़े हुए, वृक्षों और लताओं की फुनगियों को चूमने वाली जंगल की आग से जहाँ-तहाँ धरती जल गई है। वन में उठती हुई और पवन से प्रज्वलित आग की लपट पहाड़ की घाटियों में फैलती हुई सभी पशुओं को जलाए डाल रही है, सूखे बॉस की झाड़ियों में चटचटा रही है और क्षण मात्र में आगे फैल कर

घाम को पकड़े ले रही है। पवन से प्रज्वलित और सेमर के कुजों में फैलती हुई आग वृक्ष के कोटरों में अपना सुनहला पीला प्रकाश फैलाती हुई, जिनकी डालियों के पत्ते अधिक गर्मों के कारण पक-पक कर झड़ते जा रहे हैं उन ऊँचे वृक्षों पर उछलती हुई वन में चांगे और घूम रही है। आग से बचराए और भुनसे हुए हाथी, सिंह, बैल मित्र बनकर साथ-साथ घाम के वन से झटपट निकल आये हैं और नदी के चाड़े बलुए तीर पर विश्राम कर रहे हैं।^{३७} ग्रीष्म के इस वर्णन में कालिदास ने यथार्थ तथा कल्पना का सुन्दर कलात्मक प्रयोग किया है। इस चित्रण में सजीवता और भावशीलता प्रत्यक्ष हो उठती है।

क—रघुवंश के सोलहवें सर्ग में कुश की क्रीड़ा की पृष्ठभूमि के रूप में ग्रीष्म का वर्णन किया गया है—‘गर्मी में गलता हुआ हिम ऐसा लगा मानो दक्षिण दिशा में सूर्य के लौट आने की प्रसन्नता में उत्तर दिशा में आनन्द के ठंडे अश्रु के समान पानी की ठंडी धारा हिमालय से बहाई हो। प्र० भा०। दनों में चमेली खिल गई है और उसकी सुगन्ध चारों ओर फैलने लगी है। सन्ध्या को गुनगुनाने हुए भौरे उसके एक एक फूल पर बैठ कर मानो फूलों की गिनती कर रहे हों। प्र० भा०। मनोहर गन्ध वाला आम का बौर, पुरानी मदिरा और नये पाटल के फूल लाकर ग्रीष्म ऋतु ने कामी पुरुषों को प्रसन्न कर दिया। उस कठिन ग्रीष्म के समय उदित होकर दो ही प्रजा के बहुत प्यारे हुए। एक तो सेवा से प्रसन्न होकर निर्धनता आदि सन्तानों को दूर करने वाले राजा और दूसरे शीतल किरणों से गर्मी का ताप दूर करने वाले चन्द्रमा’।^{३८}

§१७—ऋतुसंहार कर दूसरा सर्ग वर्षा-वर्णन प्रस्तुत करता है। इसमें

३७. ऋतु० ; स० १ ; १, ३—१३, १५, १६, १८, १९, २२—२७।

३८. रघु० ; स० १६ ; ४६, ४७, ५२, ५३।

भी जैसे कोई अपनी प्रेमिका से वर्णन कर रहा हो—‘देखो प्रिये, जल
 वर्षा की धाराओं से भरे हुए बादलों के मतवाले हाथी पर
 चढ कर बिजलियों की पताकाओं को फहराता हुआ,
 गर्जन के नगाड़े बजाता हुआ यह पावसराज आ पहुँचा है। कहीं नीले
 कमल की पखुड़ी जैसे नीले, कहीं गर्भिणी स्त्री के स्तन के समान पीले
 और कहीं घुटे हुए आजन की ढेरी के समान काले-काले मेघ आकाश
 में घिरते जा रहे हैं। और देखो, जिन बादलों से पपीहा पिउ-पिउ कह
 कर पानी की याचना करता है, वे पानी के भार से झुके हुए, अनेक
 धाराओं में बरसने वाले मेघ मन्द-मन्द गर्जना करते घिरते आ रहे हैं।
 प्र० भा०। ये नदियाँ कुलटा स्त्रियों की भोंति मटमैले पानी की बाढ से
 किनारे के वृक्षों को उखाड़ती हुई वेग से समुद्र की ओर जा रही हैं।
 फिर यह हरिणियों से कुतरी हुई हरी घास वाले और नवीन पल्लवों से
 आच्छादित वृक्षों वाले विन्ध्याचल के जगल किसका मन आकर्षित नहीं
 कर लेते। कमल के समान सुन्दर आँखों वाले भयभीत हरिणों से भरा
 हुआ वन बरबस अपनी ओर आकर्षित करता है। प्र० भा०। बादलों
 की घोर कड़क सुन कर और बिजली की तडप से चौकती हुई स्त्रियाँ
 सोते समय अपने दोषी प्रेमियों से भी लिपटी जाती हैं। छोटे छोटे कीड़ों,
 धूल और घास का बहाता हुआ, सोंप के समान टेढा मेढा घूमता हुआ
 मटमैला बरसाती पानी ढाल पर बहा जा रहा है और बेचारे मेढक उसे
 सोंप समझ कर भयभीत हो रहे हैं। कानों को मधुर लगाने वाली तानें
 लेकर गूँजते हुए भौरे, उस कमल को छोड़ कर चले जा रहे हैं जिसके
 पत्ते और फूल झड़ गये हैं, आर वे हड़बड़ी में भूल से नाचते हुए मोरों
 के खुले पंखों को नये कमल समझ कर उन्हीं पर टूटे पड़ रहे हैं। नवीन
 बादलों की गर्जन से जब जंगली हाथी मस्त हो जाते हैं और उनके
 माथे से बहते हुए मद पर भौरे आकर लिपट जाते हैं, उस समय उन
 के माथे स्वच्छ नीले कमल जैसे दिखाई देने लगते हैं। श्वेत कमल जैसे
 उजले बादल जिन पहाड़ी चट्टानों को चूमते जाते हैं और जिन पर

मोर नाच रहे हैं उन चट्टानों पर बहने वाले झरनों को देख कर प्रेमी-जन विह्वल हो जाते हैं। प्र० भा० । वर्षा ऋतु में नदियाँ प्रवाहित होती हैं, बादल बरसते हैं, मस्त हाथी घोर ग्व करते हैं, वन हरे हो जाते हैं, वियोगिनी स्त्रियाँ विकल हो जाती हैं, मोर नाचते और वियोगिनी स्त्रियाँ चुप हो जाती हैं। एक ओर इन्द्रधनुष और विजली के चमकते हुए पतले धागों से सजी हुई और पानी के भार से झुकी हुई काली काली घटाएँ और दूसरी ओर करधनी और रत्न-जटित कुंडला से सजित घोषित, ये दोनों ही परदेसी लोगों के मन को एक साथ हर लेती हैं। प्र० भा० । वर्षा-काल मानो प्रेमी के समान जुही की कलियों तथा मालती और मोलश्री के फूलों की माला गूँथ रहा है और कदम्ब के फूलों का कर्णफूल बना रहा है। प्र० भा० ।^{३९} कालिदास के इस वर्णन में सहज चित्रमयता है, साथ ही ऋतु सम्बंधी उल्लास तथा उद्दीपन की भावना भी स्पष्ट है।

§१८—ऋतुसंहार का तीसरा सर्ग शरत्काल के वर्णन से सम्बंधित है। उद्दीपन और आरोप की प्रवृत्ति इसमें कुछ अधिक है। 'फूले हुए शरद् कोंस के वस्त्र धारण किये हुए, मस्त हंसों की बोली के मधुर नूपुर पहने, पके धान के मनोहर शरीर वाली और खिले कमल के समान सुन्दर मुख वाली शरद् ऋतु नववधू के समान आ गई है। कोंस ने पृथ्वी को, चन्द्रमा ने रात को, हंसों ने नदियों के जल को, कमलों ने तालाबों को, फूलों के बोझ से झुके हुए छितवन के वृक्षों ने जंगलों को और मालती के फूलों ने फुलवारियों को प्रकाशित कर दिया है। रजत, शंख तथा कमल के समान श्वेत सहस्रों बादल पानी बरसने से हलके होकर पवन के सहारे इधर-उधर घूम रहे हैं, उनसे भरा हुआ आकाश कभी ऐसा लगने लगता है मानों किसी राजा पर सैकड़ों चमर डुलाए जा रहे हैं। प्र० भा० । जिसकी शाखाओं

की सुन्दर फुनगियों को पवन मन्द-मन्द झुना रहा है, जिस पर बहुत से फूल खिले हुए हैं, जिसकी पत्तियाँ बहुत कोमल हैं और जिसमें से बहते हुए मधु की धार को मस्त भ्रमर धीरे-धीरे चूस रहे हैं, ऐसा कविदार किसके हृदय को विदीर्ण नहीं करता। बादल हटे हुए चन्द्रमा के मुँह वाली आज-कल की रात, तारों के सुहावने गहने पहने हुए और चाँदनी की उजली साड़ी पहने हुए प्रमदा युवती के समान दिन-दिन बढ़ती चली जा रही है। प्र० भा०। अब से पूर्ण बालियों से झुके धान के पोंधों को कँपाता हुआ, पुष्पो से लदे हुए सुन्दर वृक्षों को नचाता हुआ और खिले हुए कमलों से भरे सरोवरों की कमलिनियों को हिलाता हुआ शीतल पवन, युवकों के मन को चंचल करता है। प्र० भा०। आजकल न तो बादलों में इन्द्रधनुष हैं, न बगुले ही अपने पंख हिला कर आकाश को पंखा कर रहे हैं और न मोरों के झुंड मुख उठा कर आकाश की ओर देख रहे हैं। नृत्य रहित मोरों को छोड़ कर कामदेव मधुर बोली वाले हंसों के पाम पहुँच गया है, और फूलों की सुन्दरता भी कदम्ब, कुटज, अर्जुन, सर्ज और अशोक के वृक्षों को छोड़ कर सप्तछद्र पर जा बसी है। प्र० भा०। जहाँ प्रातःकाल पत्रों पर पड़ी हुई ओस की बूँदें गिगता हुआ आर कोकबेल (कह्लार), कमल तथा कुमुद को स्पर्श कर शीत हुआ मन्द मन्द बहता हुआ पवन किसे उत्कण्ठित नहीं करता। प्र० भा०। इन दिनों हंसों ने सुन्दरियों की मनभावनी चाल को, कमलिनियों ने उनके चन्द्रमुख की चमक को, नीले कमलों ने उनकी मदभरी आँखों को और छोटी लहरियों ने उनकी भौहों की सुन्दर मटक को हरा दिया है। फूलों के बोझ से झुकी हुई हरी बेलों की टहनियों ने स्त्रियों की गहनों से सजी हुई बाहों की सुन्दरता छीन ली है तथा ककेलि और नवमालती के सुन्दर फूलों ने दाँतों की चमक से खिल उठने वाली स्त्रियों की मुस्कराहट की आभा को लज्जित कर दिया है। प्र० भा०। १४०

क—रघु के पथ-वर्णन के साथ रघुवंश में शरद् का वर्णन है। —
 'जब रघु ने अपने राज्य में शान्ति स्थापित कर ली और उनका मन
 निश्चित हुआ, उस समय शरद् ऋतु आ गई और
 रघुवंश चारों ओर सुन्दर कमल खिल गये। प्र० भा०। इन्द्र
 ने अपना इन्द्र-धनुष हटाया तब रघु ने अपना विजयी धनुष धारण
 किया, क्योंकि ये दोनों क्रम में प्रजा की भलाई करते हैं। प्र० भा०।
 शरद् ऋतु में रघु के खिले हुए मुख और प्रकाशित चन्द्रमा दोनों
 को देख कर दर्शकों को एक सा आनन्द मिलता था। प्र० भा०। धान
 के खेतों की रखवाली करनेवाली किसानों की स्त्रियाँ ईश्वर की ह्याया में
 बैठ कर रघु के वचन से लेकर तब तक की कथाओं के गीत गाती थीं,
 वे प्रजा को ऐसे ही प्रिय थे। इधर उज्ज्वल अगत्य तारे के निकलने
 से जल निर्मल हो गया, उधर शत्रुओं के मन में रघु की चढ़ाई के भय
 से खलबली मच गई। ऊँचे ऊँचे कंधे वाले मस्त साँड़ नदियों के
 किनारे दाते हुए ऐसे लगते थे मानो वे रघु के लडकपन के खेलवाड़ों
 का अनुकरण कर रहे हों। शरद् ऋतु में चारों ओर छितवन फूला
 हुआ था। उनकी मतवाली गन्ध से रघु के हाथियों ने समझा कि
 ये उनसे होड़ करने वाले हाथी हैं और इस कारण क्रोध के मारे उनके
 नथनों से, दोनों कपोलों से, कमर से और कानों आँखों से मद बहने
 लगा। नदियों का पानी भी उतर गया, मार्ग का कीचड़ सूख गया,
 मानों शरद् ने रघु के सोचने के पहले ही उन्हें दिग्विजय करने को
 उकसा दिया'।^{४१} इस वर्णन में उल्लेख मात्र है, पूर्व जैमी चित्रमयता
 नहीं है।

§१६—हेमन्त-ऋतु का वर्णन ऋतुसंहार के चौथे सर्ग में है—
 'जिसमें गेहूँ, जौ आदि के नये अंकुर निकल आने से चारों ओर
 सुहावना लगता है, लोध के वृक्ष फूलों से लद गये हैं, धान पक चले

हैं और कमल दिखाई नहीं देने ऐसी पाला गिराती हुई हेमन्त ऋतु आ गई है' । इसमें संभोग आदि का वर्णन तथा आरोप

हेमन्त

अधिक है—'प्रातःकाल घास पर पड़ी हुई ओस की बूंदों को देख कर ऐसा लगता है मानों पीन स्तनों को देख कर सुखी होने वाला हेमन्त उनको प्रेमियों द्वारा मले जाते देख कर अश्रुपात कर रहा है । गाँव के बाहर जिन खेतों में भरपूर धान लहलहा रहा है, हरिणियों के भुंड के भुंड चौकड़ियाँ भर रहे हैं और सारस बोल रहे हैं, उनको देख कर मन उत्सुक हो जाता है । प्र० भा० । पाले से शीतल पवन से हिलती हुई प्रियंगु लता पीली हो गई जैसे पति से अलग होकर युवती पीली पड़ जाती है' । इस ऋतु की कवि चित्रमय योजना नहीं कर सका, इसमें संभोग शृंगार की अधिकता है । इस काव्य का प्रयोजन भी जान पड़ता है सामन्त-वर्ग के विलास के अनुरूप प्रकृति को उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत प्रस्तुत करना है । कवि कहता है—'यह अपने गुणों से मन को मृग्य करने वाली, स्त्रियों के चित्त को लुभाने वाली तथा जिसमें गाँव के आस-पास पके हुए धानों के खेत लहलहाते हैं, पाला गिरता है और सारस बोलते हैं, ऐसी यह ऋतु आपको सुख दे' ।^{४२} इस अन्तिम उल्लेख से यह बात स्पष्ट हो जाती है ।

§ २०—ऋतुसंहार का पाँचवाँ सर्ग शिशिर-वर्णन से सम्बन्धित है ।—'हे सुन्दर जाँघों वाली ! सुनो, धान और ईख के खेतों से भरी हुई, कभी-कभी सारस की बोली से गूँजती हुई और जिसमें काम बढ़ जाता है ऐसी स्त्रियों की प्यारी शिशिर ऋतु आ पहुँची है । इन दिनों घने पाले से कड़कडाती शीत वाली, चन्द्रमा की किरणों से और भी ठंडी बनी हुई और पीले-पीले तारों वाली रातों में कोई भी बाहर नहीं निकलता ।'^{४३} इसके अतिरिक्त समस्त सर्ग

४२. ऋतु० ; स० ४ ; १, ७, ८, १०, १९ ।

४३. ऋतु० ; स० ५ ; १, ४ ।

में संभोग-विलास का वर्णन है। वास्तव में इस ऋतु में प्रकृति में विशेष सौंदर्य नहीं रहता है, हम कारण भी इस ऋतु का वर्णन साहित्य में बहुत कम मिलता है।

§ २१—अन्तिम सर्ग वसन्त के वर्णन में समाप्त होता है। इसमें अधिक विस्तार है—‘प्रिये, पुष्पित आम की मंजरियों के पौने वाण लेकर तथा धनुष पर भौरों की पाता की डोगी चढा कर वीर वसन्त संभोग करने वाले रमिकों को बंधने आ पहुँचा है। और प्रिये, वसन्त के आते ही सब वृक्ष फूलों में ढक गये हैं, सर्गवरो में कमल खिल गये हैं, स्त्रियों कामयुक्त हो गई हैं, पवन सुगंधित हो गया है, सन्ध्याएँ रम्य हो गई हैं और दिन मनोहर हो गये हैं। सुन्दर वसन्त में सभी सुहावना जान पड़ता है। वसन्त के आने से बालियों के जल, मणियों से जड़ी करधनियों, चाँदनी, मंजरी से लदी डालें सब और भी सुहावना लगने लगा है। स्त्रियों के कानों में लटके हुए मर्जाले कनैर के फूल बड़े सुहावने जान पड़ते हैं और उनकी चंचल, काली, घुँघराली लटों में अशोक के फूल और नवमल्लिका की खिली कनियों बड़ी सुहावनी लगती हैं’। रति-विलास का वर्णन इसमें भी अधिक है, बीच में प्रकृति का रूप सामने आ जाता है—‘प्र० भा०। अशोक के जिन वृक्षों में कोपलें फूट निकली हैं और जिनमें मूँगे जैसे लाल लाल फूल नीचे से ऊपर तक खिल गये हैं उनको देख कर नवयुवतियों के हृदय में शोक होने लगता है। प्र० भा०। वसन्त काल में पवन के झोंकों से हिलती हुई पलाश की फूली हुई शाखाएँ जलती हुई आग की लपटों के समान दिखाई देती हैं, ऐसे वृक्षों से ढकी हुई पृथ्वी जान पड़ती है मानों लाल साड़ी पहने कोई नववधू हो। और अपनी प्रेमिका के मुख पर सुगंध प्रेमियों के हृदय को सुगों की चोंच के समान लाल टेसू के फूलों ने क्या कुछ कम बेधा था, या कनैर के फूलों ने कुछ कम जला रखा था जो कि कोयल अपनी मधुर कूक से उनको मारने पर उतारू हो गई है। प्र० भा०। आजकल मंजरियों से लदी हुई आम

की डालियों को हिलाता हुआ, कोयल के सन्देश को चारों ओर फैलाने वाले पाले के पड़ने से सुखद वमन्ती पवन लोगो के मन को हरता हुआ बह रहा है। युवतियों की मस्त हँसी के समान उजले कुन्द के फूलों से चमकते हुए मनोहर उपवन जब माया-मोह से विरक्त मुनियों के मन को हरता है, तब नवयुवकों के प्रेमी मन की बात ही क्या ! जब मधुमास में कोयल कूकने लगता है और भौरे गूँजने लगते हैं, उम समय कमर में सोने की करधनी बाँधे, स्तनों पर मोती के हार लटकाए और काम की उत्तेजना से शिथिल अंगवाली स्त्रियाँ बरबस लोगो का मन आकर्षित करती हैं। सुन्दर फूल वाले वृक्ष के आच्छादित शिखर वाले, कोकिल की कूक और भौरो की गुंजार से निनादित तथा त्रिखरी गुई चट्टानों वाले पथरीले पहाड़ों को देख कर सब आनन्दित होते हैं। अपनी स्त्रियों से बिछड़े हुए पथिक मंजरियों से लदे हुए आम को देखकर आँख बन्द कर रोते हैं, पछुताते हैं और नाक बन्द कर लेते हैं कि कहीं उनकी भीनी महक नाक में पहुँच कर पत्नी की याद न दिला दे। कोकिल और मदमाते भौरों के स्वरों से गूँजते हुए बौरे हुए आम के वृक्षों से भरा और मनोहर कनैर फूलों के पैने बाणों से यह वसन्त प्रेम जगाने के लिए मानिनी स्त्रियों के मन बेधता है। आम के बौर जिसके बाण हैं, टेसू ही धनुष है, भौरों की पाँत ही डोर है, मलयाचल से आया हुआ पवन मतवाला हाथी है, कोयल गायक है और जिसने बिना शरीर के ससार जीत लिया है, वह कामदेव वसन्त के साथ आपका मंगल करे'।^{४४}

क—रघुवंश में दशरथ की विजय के बाद उनके विलास के साथ वसन्त ऋतु का वर्णन किया गया है—‘प्र० भा०। वसन्त में फूले हुए अशोक के फूलों से ही कामोद्दीपन नहीं होता था
रघुवंश
वरन् जो कोमल कोपल के गुच्छे स्त्रियों ने अपने कानों पर रख लिये थे कामियों का मन उन्हें देखकर भी हाथ से निकल

जाता था । वन में कुरवक के वृक्ष ऐसे जान पड़ते हैं मानों वसन्त ने वन-श्री के शरीर पर बेलबूटे चीत कर उसका शृंगार किया हो । उन वृक्षों के बहते हुए मधु पर भाँरे मस्त होकर गुंजार कर रहे थे । स्त्रियों के समान ही गुण वाले सुन्दरियों के मदिरा के कुल्ले से फूले हुए वक्रुल के वृक्षों को मधु के लोभी भ्रमरों ने झुंड बना कर उड़ते हुए आन्दोलित कर डाला । वसन्त के आगमन से पलाश की कलियाँ फूट उठीं मानों काम के आवेश में लाज छोड़ कर मिमी कामिनी ने अपने प्रियतम के शरीर पर नखचूत कर दिये हा । नवमंजरित आम के वृक्षों की डालियाँ मलय पवन से झूम उठीं मानों उन्होंने अभिनय सोखना आगम किया है, जिन्हे देखकर योगियों का मन भी विचलित हो जाता है । घरों के भीतर की बावलियों में जो कमल खिले हुए थे और मधुर शब्द करते हुए जो जल-पक्षी तैर रहे थे उनमें ये बावलियाँ, मुस्कगती हुई सुन्दर मुख वाली आर बजती हुई ढीली तगड़ी वाली विहार करती हुई स्त्रियाँ जान पड़ती थीं । प्रियतम से समागम होने से खंडिता नायिका सूखती जाती है, वैसी रात्रि रूपी नायिका वसन्त के आने में छोटी होती जाती है और उसका चन्द्र-मुख भी पीला पड़ता जाता है । प्र० भा० । हवन की अग्नि के समान दीप्त कनैर के फूल वनलक्ष्मी के कानों में कर्ण-फूल जैसे जान पड़ते थे । प्रातःकाल लालिमा से अधिक लाल-वस्त्रों ने, कान पर रखे हुए जौ के अंकुरों ने आर कोयल की कूकों की सेना लेकर कामदेव ने विलासियों को युवती स्त्रियों के प्रेम के वश में कर दिया । उजले पराग से पूरित तिलक के फूलों के गुच्छों पर मड़राते हुए भौरों के झुंड ऐसे सुन्दर लगते थे जैसे किसी स्त्री ने अपने गिर पर मोतियों की माला पहन ली हो । प्र० भा० । उन दिनों कोयल की कूक मानो मनमथ का आदेश सुना रही थी कि स्त्रियों रुठना छोड़ दो, विग्रह त्याग दो, चीता हुआ यौवन फिर लौटता नहीं । ४५

§ ख—शंकर की समाधि भंग करने लिये वसन्त कामदेव की सहायता के लिये अपना प्रसार करता है—‘यह कामदेव की सहायता का अभिमान करने वाला वसन्त अपना पूरा रूप खोल कर चारों ओर फैल गया। उसके छाते ही असमय में ही सूर्य्य दक्षिणायन से उत्तरायण चला गया। उस समय दक्षिण से बहने वाला मलय पवन जान पड़ता था मानों अपने पति सूर्य्य के चले जाने पर दक्षिण दिशा लम्बी उसीसे ले रही है। प्र० भा०। वहाँ फूले हुए कर्णिकार देखने में सुन्दर थे पर गन्ध न होने कारण मन को भाते न थे। प्र० भा०। प्रियाल के फूल के पगग के उड-उड़ कर आँखों में पड़ने से मतवाले हरिण भली भाँति न देख सकने के कारण सूखे पत्तों की मर्मर करती हुई वनभूमि पर इधर-उधर भाग रहे थे। प्र० भा०’।^{४६} यह वसन्त-वर्णन अलौकिक पीठिका में उपस्थित हुआ है।

ग—मालविकाग्निमित्र में कालिदास ने वसन्तोत्सव का अवसर अपनी कथावस्तु के लिये चुना है। वास्तव में यह मदनोत्सव के रूप में मनाया जाता है। इसमें महारानी इरावती सुन्दर लाल कुरवक के फूलों को राजा के पास भेजकर वसन्त आने का उल्लेख करती है। प्रमदवन में राजा अपने मित्र विदूषक के साथ जाता है और वहाँ देखता है वसन्त उल्लसित हो उठा है। (प्र० भा०)। उधर मालविका देवी धारणी के पैर में चोट आ जाने से उसके द्वारा सुनहले अशोक को पुष्पित करने भेजी गई है। मालविका अशोक वृक्ष को अपने समान ही फूलों रूपी मन की साध से वंचित पाती है। राजा उसकी बातें सुनकर कहता है कि कुरवक के पराग में बसा हुआ और खिली हुई कोंगलों से जल की बूँदें उठा ले जाने वाला मलय का पवन बिना कारण ही मेरे मन में चाह भर रहा

है। मालविका की सखी वकुलवलिका उसके पैर में महावर लगा कर विछुआ पहनाती है। दूसरी ओर से मद में भूमती इरावती भी प्रमदवन में प्रवेश करती है। इस प्रकार इस अंक में प्रेम का अदृश्य व्यापार चलता है और साथ ही मदनोत्सव का दृश्य भी प्रस्तुत होता है। मालविका ने कानों को अशोक के पत्तों के गुच्छे से सजाया है और फिर अशोक पर लात भी जमाती है। राजा अशोक वृक्ष से ईष्या करता है। इस तीसरे अंक में अशोक को पुष्पित होते नहीं दिखाया गया है पर पाँचवें अंक में पुष्पित अशोक को देखकर जब विदूषक कहता है—‘फूलों के गुच्छों से लदा हुआ यह मुनहरा अशोक ऐसा जान पड़ता है मानों किसी ने इसका शृंगार किया हो’ तब राजा उत्तर देता है—‘इसका देर से फूलना अच्छा ही हुआ क्योंकि इसके आगे सब वृक्षों की शोभा फीकी पड़ गई। ऐसा जान पड़ता है कि जिन अशोक के वृक्षों ने पहले फूल कर वसन्त के आने की सूचना दी थी, उन सब ने अपने अपने फूल जिसके फूलने का थोड़े दिन हुए उपाय किया गया था इस अशोक को दे दिया है’। इस प्रकार कवि ने कविप्रसिद्धि और स्वाभाविकता का सुन्दर निर्वाह किया है।^{४७}

हैं। इस रूप में सेतुबन्ध में प्रकृति का स्थान संस्कृत के अन्य महाकाव्यों से भिन्न है। अन्य महाकाव्यों में प्रकृति गौण है, वह प्रकृति का प्रयोग केवल आधार और पृष्ठभूमि के लिये प्रयुक्त हुई है। पर इस महाकाव्य में प्रकृति घटना के रूप में उपस्थित हुई है। सेतुबन्ध का प्रधान घटना प्रकृति की एक योजना मात्र है, और कवि ने इस घटना को उपस्थित करने में अपनी समस्त प्रतिभा का प्रयोग किया है। इस कारण इस प्रकरण में हम प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों को उस प्रकार अलग-अलग नहीं रख सकेंगे जैसे पिछले प्रकरणों में किया गया है। यहाँ कथा-क्रम के साथ प्रकृति का चित्रण रखा जायगा।

प्रस्थान

§ २—वर्षाकाल में राम का विरह अधिक तीव्र हो गया। इसके उपरान्त शरत्काल आ जाता है। यह सभी प्रकार से शुभ है।—‘शरद् शरद्-वर्षण ऋतु का आकाश भगवान् विष्णु की नाभि से निकले हुए उस अपार विस्तृत कमल के समान लग रहा था जिससे ब्रह्मा का उत्पत्ति हुई है, सूर्य की किरणें ही जिममें केसर हैं और सफेद बादलों के सहस्रों खण्ड जिसके दल हैं। भास्कर की किरणों से चमकने वाला मेघ-श्री का रत्नजटित काचीदाम (तगड़ी), वर्षा रूमी कामदेव के अर्धचन्द्राकार बाण-पात्र (तुण्डी) तथा आकाश रूमी पाणिजात वृक्ष के फूल के केसर जैसा इन्द्र-वनुष अब लुप्त हो गया है। शरद् ऋतु में, जिनके बादल रूमी भौंरे उड़ गये हैं, और जो आकाश वृक्ष की डालियों के समान वर्षा में झुक गई थी और अब मुक्त हो गई हैं ऐसी दिशाएँ पूर्ववत् हो गई हैं। सूर्य के आलोक से स्निग्ध, किसी भाग में वृष्टि हो जाने से आर्द्र तथा स्नान किये हुए से शरत्काल के दिन किंचित बूदों से युक्त धुले हुए शंखों जैसे शोभित हैं। सुग्न मात्र के लिये निद्रा करनेवाले, विरह से आकुल समुद्र को उत्कण्ठित करने वाले, नींद त्याग कर प्रथम ही उठी हुई लक्ष्मी से सेवित भगवान् विष्णु ने न सोये हुये भी निद्रा का त्याग किया। प्र० भा०। अब सप्तच्छद्

(छित्तौन) का गन्ध सुखावह लगता है, कदम्बों के गन्ध से जी भर सा गया है । कलहंशों का मधुर निनाद कर्ण प्रिय लगता है और मोरों की बोली अच्छी नहीं लगती । प्र० भा० । छित्तौन के फल के श्वेत पराग से चित्रित, चक्कर लगा कर गिरनेवाले चँवर जैसे भासित होनेवाले भौरे हाथी की कनपटी पर चूनेवाले मद को पोंछ से रहे हैं ।^१

‡ ३—मार्ग मे प्रस्थान करने पर ‘चन्दन-भूमि को कॅपाने वाले वानर मेघाच्छादित होने के कारण ग्रीष्म के प्रभाव से मुक्त, सघन वृक्षों को छाया मे निद्रा लाने वाले तथा निरन्तर बादलों से छाये होने के कारण श्यामता को प्राप्त मलय पर्वत के समीप पहुँचे । जिनसे लताएँ अलग कर ली गई हैं और आवेष्टन चिह्न शेष है जिनमें ऐसे चन्दन के वृक्षों मे उन्होने विशाल सर्पों के लयटने के चिह्नों को केचुल से युक्त देखा । भार से जल-तल पर लटकी चन्दन वृक्षों की डालो के स्पर्श से सुगन्धित, हरी घास के बीच में होने के कारण दूर से ही प्रतीत होने वाले और बनैले हाथियों की मदधार से कसैले पहाड़ी नदियों के प्रवाह का सेवन वे करते हैं ।^२

क—समस्त मार्ग पार करने के बाद वानर-सेना समुद्र तट पर पहुँचती है ।—‘वे फूटी सीपियों में जहाँ जल-स्थित मुक्त स्तम्भक है, सघन पत्तों वाले बकुल वृक्षों से शोभित तथा हाथियों के मद तट पर आगमन के समान सुगन्धित एला की लताओं से युक्त दक्षिण समुद्र के तट पर पहुँचे । यह भूमि विकसित तमाल वृक्षों से नीली नीली, समुद्र के चञ्चल कल्लोल रूपी हाथो से स्पृष्ट हाथियों के मद की समता करने वाले एला वन से सुगन्धित थी । प्र० भा० । वह भूमि लता-कुंजों में परिवर्धित थी, सीपी के रूप में उसके मुकलित नेत्र थे और वह अनुराग पूर्वक किन्नरों के गान को सुन रही थी’ ।^३

१. सेतु० , आ० १ , १७-२१, २३, ३३ ।

२. वही , वही , ५९—६१ ।

३. वही , वही ; ६२, ६३, ३५ ।

सागर-दर्शन

§ ४—समुद्र तट पर वानर-सेना के साथ राम सागर को देखते हैं।—‘वह सागर में भँवर के रूप में पविर्भित होने वाली विगट तरंगों तथा ऐरावत की सुँड़ की तरह विस्तीर्ण किरण समूह से चारों ओर बिखरने वाली जलराशि है जो चन्द्रमा से क्षुब्ध हो उठती है। प्रवालों से आच्छादित, इधर-उधर चलित फिर भी स्थिर में और जिनमें गाढा रक्त लगा है ऐसे मन्दराचल के आघातों के समान जल-तरंगों को नागर धारण किये हुए हैं। प्र० भा०। प्रलय काल में संसार के समूचे जल का शोषण करने वाले, गत और प्रत्यागत पवन के वेग से युक्त अपने शरीर में चुभे हुए बाण की तरह सागर वड़वानल की ज्वाला को धारण कर रहा है। स्थान होने पर भी मर्यादा वश सीमित, प्रलय काल में समूची पृथ्वी को समान करने वाले, बलि से याचना कर अपने तीन डगों में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को व्याप्त करने वाले विष्णु के समान यह सागर है। यह लोकोत्तर गुणों वाला भी है। प्र० भा०। सागर में सुखद आलोक से युक्त, निर्मल जल में स्थित, कुछ खिंचे हुए से और जिसकी किरणें सूर्य-किरणों पर आधारित हैं ऐसे रत्न-समूह हैं। मथन के आघात से त्यक्त, उछले हुए अमृत-कणों से छिटका हुआ अनल समूह, वासुकी के मुख से निकलने वाले जाज्वल्यमान विषमय द्रव के समान वडवामुख के कुहर में पुजीभूत अग्निशिखा को वह धारण कर रहा है। उसमें धैर्य के समान असोम जलराशि है, पंख वाले पर्वतों के समान तिमि समूह है। नदियों की धाराओं के समान तरंगे हैं। वह पाताल तक गहरा है, शून्य के समान विस्तीर्ण, आकाश के शून्य में विष्णु के समान व्याप्त है। प्र० भा०। जिनके भीतर अपार रत्न भरे पड़े हैं, जिनपर आकाश रूपी की कोंपलों जैसी चन्द्र की किरण बिखरती हैं ऐसे उदरवर्ती पर्वतों को सागर इन्द्र के डर से निधियों के समान सँजोये हैं। यह सागर प्रिय का समागम जिसमें सुलभ है ऐसे यौवन में कामदेव के समान चन्द्रमा के उदित होने पर बढ़ता है और अस्त होने

पर शान्त होता है। प्र० भा०। मनियारे सॉपो (या यत्) के गृह तीरवर्ती लंता-मंडपो मे राजभवनों की शोभा तुच्छ करने वाले हैं। ऐसी जल लेने के लिये मंडराते हुए मेघो से आकुल वेला के आलिगन से चपल सागर पृथ्वी द्वारा अपने आलिगन को रोकता है। इसकी जल-राशि चन्द्र-किरणों से प्रक्षुब्ध होती है, यह चलायमान पर्वतों से आन्दोलित है। गर्जते बादल इसका जल सदा पीते हैं। तरंगों में यह चंचल है, वड़वानल से प्रतापित है और साक्षात् धैर्य रूप है। प्र० भा० नदियों से अभिगत, लक्ष्मी के समान ऐश्वर्य युक्त वंश वाला, पृथ्वी से लालित नदियों के मुहानों से प्रस्थापित और तरंगो द्वारा फिर निवर्तित वेला का जल उसके साथ स्त्री के समान व्यवहार करता है। सहस्रों नदियों के जल के स्वाद से जो, क्षार की अपेक्षा अन्य रस से भी परिचित है ऐश प्रलय-पयादो की तरह भीषण ध्वनि करने वाला सागर मन्द पवन से मद-सेवी की तरह लहरा रहा है। तरंग युक्त सागर में सूर्य के अरुणिम किरण जाल से रजित पृथ्वी तल के समान प्रवाल-जाल से चारो ओर निरन्तर लाली छायी रहती है। और मन्दराचल से मथित होते समय जिसका जल-समूह सशब्द दूर तक उछला था, जो मोतियों का आकर है, देवताओं के सुखप्रद अमृत का जन्म-स्थान है ऐना उद्भट और विस्तीर्ण मागर प्रलय-काल मे वेला को आक्रान्त कर बड़े हुए जल के प्लावन से मृदित पृथ्वी से पंकिल-पंकिल सा हो गया था। बहुत दिनों से सेवार जिन पर उगा है ऐसी शिलाओं से हरिताम्यमान, पवन के क्षोभ से उत्पन्न भीषण कडक से युक्त, मधुमथ को निद्रा के समय विश्राम देने वाला सागर प्रलय में दग्ध होने के बाद शान्त पृथ्वी के क्रोड में श्याम-श्याम सा भासित होता है। हरिण्यात् आदि असुरों के ऋषट्टे से दो भागों मे विभाजित जल-समूह के बीच के विवर-मार्ग से निकलने वाली रसातल की गर्मी जिसमे विद्यमान है ऐसे सागर में मथन के समय आवर्त्त मे चकर खाकर मन्दराचल के टूटे शिला-खण्ड द्वीपों के समान द्वीपान्तरों में जा लगे हैं। अमृत का उत्पत्ति स्थान है, इस

विचार से, नीलिमा और विस्तार के कारण आकाश से लग गया है और अन्वकार के समान भूमण्डल में व्याप्त हो गया है ऐसा सागर अनन्त रत्नों से पूर्ण पृथ्वी की रक्षा के लिये उमी प्रकार तार है जैसे राजा सगर ने अपने यश रूपी धन के लिये कोश बनाया हो। जिसके तटवर्ती वन पर्वतों से उच्छ्रिता जनसमूह से आहत होकर शब्दायमान हैं और जिसके पुलिन-प्रदेश, चन्द्रमा रूपी पर्वत के किरण समूह रूपी निर्भर के प्रवाहों से परिवर्धित जल-राशि में मृदित हैं। सागर के जन में मन्द्राचल रूपी मेघ के दर्शन से चन्द्रमा रूपी हस ने निवाम करना छोड़ दिया है और जिसके निम्नतल में मरकत रूपी शैवाल पर चुपचाप मीनयुगल रूपी चक्रवाक बैठे हैं।^४

§ ५—अन्त में राम ने बाण से सागर को विक्षुब्ध कर दिया। सागर के इस रूप को वर्णन कवि करता है—‘राम के बाण से आहत होकर बडवानल रूपी केशर सटा को फुनाकर, जैसे बाण से विक्षुब्ध होकर सोया हुआ सिंह बाण की चोट से अपना केशर सटा को फुना कर तड़पता है वैसे ही चीत्कार करता हुआ समुद्र उछलने लगा। दूर तक उछल कर फिर लौटे हुए बाण के तीव्र आघात से उत्खण्डित समुद्र कुल्हाड़ी से विंधे काठ की तरह आकाश को दो भागों में बाँट सा रहा था। प्र० भा०। बाणों के आघात से उत्पन्न अग्नि-ताप से फूट कर खोल से बाहर निकला हुआ, भूसी से युक्त लावा के समान किंचित पीताभ मध्यभाग वाला और किंचित् अरुणिम बाल-सूर्य का किरणों के स्पर्श से ईषद् विक्रान्त कमल की आभा वाला शंख-समूह इधर-उधर भ्रमित हो रहा है। जिनके आवर्त में पड़कर मत्स्य चक्कर खा रहे हैं, बाणों के आघात से उत्खण्डित मकरों के दाढ़ों से उछाले जाने पर धवल से जल-समूह कम्पित हो रहे हैं, जिनमें

४. वही, आ० २, ३, ४, ७, ९, —१५, १९, २०, २३, २४, २, २७,

मणियों के भार से तिरछे, बाणों से कटे सोंपों के फन भ्रमित हैं । प्र० भा० । समुद्र के आर्वात, बाण के आघात से उत्पन्न उच्छ्वलन से प्लावित और उसके हटने पर मुक्त; फिर प्लावित होने से लुत और अप्लावित दशा में अपरिमेय विस्तार युक्त, अक्षुब्ध—क्षुब्ध, कन्दराकार गर्तों में इतर जल भरने के कारण मूक और फिर वायु प्रवेश से मुखर हो रहे हैं । बाण के आघात से संक्षुब्ध होकर समुद्र का जलस्तर ऊपर नीचे हो गया है, ऐसा लगता है जैसे चिरकाल से पीड़ित एक पार्श्व को सुर्खा बनाने के लिये समुद्र दूसरे पार्श्व से पाताल में शयन का उपक्रम कर रहा है' ।^५

‘बाण के वेग से गलहस्त हुआ, सुवेल-तट से अवरुद्ध, आघे सागर में ठहरा हुआ तथा दक्षिण दिशा को अपने ज्ञान से अपसारित कर देने वाला, समुद्र के एक भाग का जल, काटकर पृथ्वी पर ढाहे आकाश के पार्श्व की तरह प्रतीत हो रहा है । पाताल पर्यन्त गहरे समुद्र के भयानक प्रदेश, जिन्हें आदि वराह ने नहीं देखा और जिन्हें मन्दराचल ने स्पर्श नहीं किया, बाणों से क्षुब्ध हो उठे । बाण से पृथ्वी तल के एक एक विवर में वक्र होकर चीत्कार के साथ प्रवेश करता हुआ समुद्र, आकाश की भोंति आधारहीन होकर लगता है जैसे प्रलयकाल की अग्नि से भीत होकर रसातल में घुन रहा है । सागर-मन्थन को निर्भीक होकर देखने वाले तथा अमृत पीने से अमर हुए जिन तिमि मछलियों की सुहृद पीठों पर मन्दराचल रगड़ा गया है, बाणों के आघात से मूर्च्छित हो रहे हैं । पाताल से उठनेवाले, बड़े-बड़े आवतों को उठाने वाले, विष की भीषण ज्वाला से किंचित जले तथा झुलसे हुए प्रवालों की रज से धूसरित बड़े-बड़े अजगरों के श्वासों के रास्ते दिलाई दे रहे हैं । स्नेह की चेड़ी से आवद्ध, एक ही बाण से विद्ध होने के कारण चिर अभिलषित आजिगन से सुखी, प्राण-पण से एक-दूसरे की रक्षा में प्रयत्नशील एक

दूमरे को आवेष्टित करते हुए कॉप रहे हैं। प्रवाल-जाल को छिन्न कर मणिशिलाओं से टकराने से तीव्र हुए, सीपियों के बेघने से मोती के गुच्छों से युक्त बाण समुद्र पर दौड़ रहे हैं। विष-व्रग से फैलता हुआ, समुद्र के रुधिर सा, बाणों के आघात की ज्वाला से उठा हुआ जल-राशि का अपार धुआँ जिस-जिस प्रवाल-मण्डल में लगता है उसको काला बना देता है। क्षुब्ध समुद्र से उड़कर, बाण से एक पार्श्व के पंख के कट जाने से, भार की अधिकता से टेढ़े और झुके पर्वत आकाश के आधे मार्ग से ही फिर गिर रहे हैं। बाणों से शरीर के कट कर बिखर जाने पर केवल फण मात्र में प्राणों को धारण करने वाले सर्प अपनी अपनी आँखों की ज्वाला से बाण समूह को जलाते हुए प्राण छोड़ रहे हैं। चोट खाये हुए समुद्र से उठी हुई आग की ज्वाला, बाणों के अगले भाग से उखाड़े हुए पहाड़ों की, चीत्कार करते कटे सपों से छोड़ी कन्दराओं को जलराशी के अपेक्षा पहले ही भर रही है। अपनी नोकों में विद्ध जल-जन्तुओं सहित ऊपर को उछाले हुए तथा उससे उठी हुई बड़ी तरंगों से पहाड़ी तटों को टकरानेवाले, बाण से कटकर गिरे जल-हस्तियों के दाँत ऊपर ही फूट रहे हैं। समुद्र से आई हुई ज्वाला से विमुग्ध जल तरंगों से दूसरे स्थानों को फेके गये मत्स्य, जिनकी आँखें धुँआ लगने से लाल ही गई हैं, प्रवाल-पुंज को ज्वाला का समूह समझ कर उससे बच रहे हैं।^६

‘उदर ऊपर होने से घबल, दग्ध होने के कारण कुछ कुछ जीभ निकाले हुए समुद्र के ऊपरी भागों में तैरते हुए सॉप ऊँची-ऊँची तरंगों के अन्तराल को अपने शरीर से भर रहे हैं। समुद्र की उठी हुई आग के ताप से जिनके मट सूख गये हैं, भीतरी स्तर से कुछ बाहर निकले हुए जल-हस्ती जल-सिंहों के अंकुश जैसे नाखों से आक्रान्त मस्तकों वाले दिखाई देते हैं। ज्वाला से पानी के सूख जाने पर तेज जलन से बिह्वल

होकर तट की ओर आने के लिये उत्सुक शंख-समूह ऊँची-नीची मणि-शिलाओं पर दुलकता हुआ इधर-उधर भटक रहा है। ज्वाला से व्याकुल समुद्र-तल को छोड़ कर आकाश में उड़े हुए पर्वत अपने पाँखों के चालन से उठी हुई पवन से अपने ऊपर लगी हुई आग को और भी ज्वालित कर रहे हैं। बाणों से विदीर्ण पाताल की विवरों से विह्वल होकर निकले हुए सर्प हैं जिनमें, विष्णु द्वारा काटे हुए असुरों के सिरों से भयानक लगने वाले जल-समूह, मूल-भाग से रत्नों को उछालते हुए भीषण शब्द करते हुए बाहर निकल रहे हैं। बाण के आघात से उछले हुए फेनवाले जल कल्लोल वायु द्वारा बिखर कर कणों में बदल कर आकाश में ही सूख जाते हैं। बाण से उठाई हुई ऊँची-ऊँची तरंगों से टकरा कर तट पर आये हुए, क्रोध के कारण विष को उगल कर टेढ़े और उत्तम सर्प पेट के बल चलने में उत्साह हीन होकर वक्र चलने का प्रयास कर रहे हैं। मुक्त-कंठ से रोती सी नदियों का, शंख रूमी कटे हुए वलय वाला हाथों जैसा तरंग समूह समुद्र के रक्षा में फैला हुआ कॉप रहा है। जिनके निचले भाग ज्वाला-समूह से आक्रान्त हैं और जिनके पंखों में आग से बचने के लिए जल चरों ने आश्रय लिया है ऐसे पर्वत बहुत दिनों से उड़ने का अभ्यास शिथिल होने से बहुत कष्ट से आकाश में उड़ रहे हैं। समुद्र का जल जलते हुए जलचरो के रूप में जल रहा है, भ्रमित होने वाली विद्रुमलता जालों के रूप में भ्रमित हो रहा है, शब्दायमान आवर्तों के रूप में शब्द कर रहा है और फूटते हुए पर्वतों के रूप में फूट रहा है। आवर्तों पर घूमता हुआ, मलय पर्वत के मणिशिला युक्त तटों से टकरा कर रुक रुक जाने वाला, तरंगों के उत्थान-पतन के साथ ऊपर-नीचे होता हुआ ज्वाला समूह समुद्र की तरह ही लहरा रहा है।^७

‘ज्वलित होकर उछला हुआ सागर जिन तटवर्ती वनों को जलाता

है, बुझकर लौटने के समय उन्हें पुनः अपने जल से बुझा देता है। समुद्र को उछालने वाली, मकरों के मास और चर्चों से दीप्त शिखाओं वाली तथा पर्वत समूह को ध्वस्त करने वाली अग्नि पर्वत शिखरों की तरह बढ रही है। ज्वाला से उठाये गए मूल वाले, बाण से उछाले जाकर चक्कर काटते हुए नीचे गिरने वाले जल-समूह घूमने से भँवर के रूप में आकाश से गिरते हैं। रत्नाकर धुंधुआता है, जलता है, छिन्न-भिन्न होता है, आधार छोड़ कर उछलता है और मलय पर्वत के तटों से टकराता है। फिर भी विस्तार रूपी धैर्य नहीं छोड़ता। गम के बाण की अग्नि में आहत होकर सागर के सर्पों तथा तिमित्रों की आँखों के फूटने से जो शब्द हो रहा है, वह प्रलय पयोदाँ की गर्जन की तरह तीनों लोकों को प्रतिध्वनित कर रहा है। शीघ्र में जिनके बतुलीभूत आग है, धूम शिखा की तरह दण्डायमान तथा जिनका जल-समूह ग्वींचा गया है ऐसा उछलता हुआ नदियों का प्रवाह प्रलय के उल्कादण्ड की तरह आकाश से गिर रहा है। जिसका पानी सूख रहा है और जिनने थोड़ा थोड़ा तट छोड़ दिया है ऐसा समुद्र पैर पैर (भयभीत भा) पीछे खिसक रहा है। आग की ज्वाला में जल विला रहा है, आग से व्याप्त जल-समूह में आकाश समाया जा रहा है और जल-समूह से व्याप्त आकाश में दिशाएँ लीन हो रही हैं। जल में स्थित अग्नि द्वारा चक्कर ग्वाते हुए और विस्तृत होने पर ग्रीष्म काल से विलम्बित गति, सूर्य के रथ के चक्करों की भाँति समुद्र के भँवर अब शिथिल हो रहे हैं।^८

‘धूम समूह से हीन फैलता हुआ, मरकत मणियों की आभा से मिलित शिखाआ वाला अग्नि समूह विस्तीर्ण समुद्र में शेवाल की तरह फैल रहा है। बाण से आहत समुद्र वड़वानल की तरह जलता है, पहाड़ों की तरह फट रहा है, मेघ की भाँति गरज रहा है और क्षुब्ध पवन की तरह आकाशतल को आक्रान्त कर रहा है। अग्निपुंज जल-राशि के स्तब्ध

होने पर स्तब्ध, आवातार्ताकार होने पर आवातार्ताकार, खण्ड-खण्ड होन पर खण्ड-खण्ड, क्षीण होने पर स्वतः भी क्षीण हो रहा है। राम-बाण से तप्त होकर समुद्र के क्षीण हो जाने पर जिनके तट-विभाग स्पष्ट दिखाई देने लगे हैं ऐसे कतार में स्थित द्वीपसमूह वहीं और वैसे होने पर भी ऊँचे-ऊँचे दिखाई दे रहे हैं। जिसमें पाताल दिखाई दे रहा है, जिसका जल समूह आग की लपटों से जल रहा है, जिसमें पर्वत ध्वस्त हो गये हैं और सर्प नष्ट हो गये हैं ऐसे समुद्र को राम नष्ट कर रहे हैं। सागर में जल पर लुढ़कते हुए शखों ने विह्वल होकर क्रन्दन छोड़ दिया है, वड़वानल से प्रदीप्त तथा पहले से ही कुछ जले हुए सर्पसमूह ठंडे स्थानों की खोज में घूम रहे हैं। इसमें क्षीण होते जल में क्रिणों के आलोक से रत्न-पर्वतों के शिखर व्यक्त हो रहे हैं और जिसमें दिशा रूपी लता से बादल रूपी पत्ते गिरा दिये गये हैं। अनल बाण से आहत होकर मकरसिंह का कन्धा जल रहा है और जल-हस्तियों के धवल दाँत रूपी परिधों पर आग से डरे सॉप लिपटे हुए हैं। सागर में विद्रुम वन पर्वत की चोटियों से फिसली मणिशिलाओं से भग्न हैं और जल के हाथी क्वचित जले हुए सर्पों के उगले हुए विष-पंक में मग्न होकर विह्वल हो रहे हैं। बड़े-बड़े भँवरों में चक्कर खा-खा कर तट पर लगे हुए पर्वत एक दूसरे से टकरा कर ध्वस्त हो रहे हैं, तथा आकाश रूपी वृक्ष को धुआँ रूपी चंचल लता आच्छादित कर दिशाओं को व्याप्त कर रही है। सागर में अग्नि से अपने पंखों की रक्षा के लिए आकाश में उड़ने वाले पर्वतों के टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं और जिनमें भयानक विवर, बाण से उखाड़े पर्वतों के रन्ध्रयुक्त जल-समूह के मध्य भाग से उठी हुई रत्नों की ज्योति से पूर्ण हैं। जिसमें जलती अग्नि की गर्मी से नेत्र मूँद कर बड़े-बड़े घड़ियाल घूम रहे हैं और जिसमें बाणाघात से विच्छिन्न हुए पंखों का परस्पर अनुराग बढ़ रहा है, ऐसे सागर को राम नष्ट कर रहे हैं' ।^९

§ ६—हमके बाद समुद्र मानव रूप में राम सम्मुख आता है—
 'प्र० भा० । सागर, मंथन के समय मन्दराचल से धिसे हुए तथा प्रलय
 मानवीकरण काल में पृथ्वी के उद्धार के लिये नत उन्नत होने
 वाली आदि वराह की दाढ़ों से खरोचे, बाण से पीड़ित
 हृदय को धारण किये हुआ था । अत्यन्त लम्बे, गहरे घावों के विस्तार
 युक्त देह के समान विस्तीर्ण नवचन्दन की गन्ध से युक्त, निर्दोष तथा
 पीड़ा के कारण मलय से निकली हुई दो नदियों के रूप में दो बाहों को
 धारण कर रहा था । कौस्तुभ के विरह को हल्का करने वाला, जो
 मन्दर से मथे जाने पर नहीं मिला था, ऐमा चन्द्रमा, मटिरा तथा अमृत
 के सहोदर जैसा एकावली रत्न वह धारण किये था । रुधिर श्राव के
 कारण अरुण रोमावली वाले ब्रह्म के कारण भारी-भारी तथा दाहिने
 हाथ के स्पर्श से घाव के विष की विकलता दूर की है जिसकी ऐसे बायें
 हाथ को सागर ने कोंपती हुई गङ्गा पर स्थापित कर रखा था । अपनी
 नीलिम कान्ति से मलय पर्वत की मणिमय शिलाओं में व्याप्त से, आश्रित
 बनों से सेव्य तथा जानकी रूपी लता से विहित वृद्ध के समान राम से
 सागर इस रूप में मिला । प्र० भा० । अनन्तर कोंपते हृदय से, दूसरी ओर
 देखती हुई जिन चक्रों से आविर्भूत हुई हैं उन्हीं राम के कमल जैसे
 अरुण तलवों वाले चरणों में गंगा भी जा गिरी' । १०

पर्वतोत्पाटन

§ ७—वानर सेतु-निर्माण के लिए पर्वत लाने के लिये जब प्रस्थान
 करते हैं, उस समय चारों ओर हलचल मच जाती है—'प्र० भा० ।
 संक्षोभ महेन्द्र पर्वत कोंपता है, पृथ्वी मंडल दलित होता है,
 केवल मदैव मेघाच्छादित होने के कारण मलय पर्वत
 की तटी के फूलों की गीली धूल नहीं उड़ती । इसके बाद पर्वतों को

हिलाने वाली, देवयोग से एक ही साथ स्पन्दित होने वाली, नखों में लगी है मिट्टी जिसके ऐसे वानरो की सेना सुदूर आकाश में उड़ी। उनके उछलने से ब्रूमिल पृथ्वी के झुक जाने के कारण, उलट कर वहने वाली नदियों के धारा-पथ से प्लावित हुआ समुद्र अपनी जलराशि से पर्वतों के मूल भाग को ढीला करके वानरो के उखाड़ने योग्य बना रहा है। प्रज्वलित आग के समान कपिश वानरो की सेना द्वारा उठाया जाता हुआ सा आकाश जिधर देखो उधर ही धूमपुज सा जान पड़ता है। सुदूर आकाश में मुख को नीचा किए हुए उडती हुई सेना की समुद्र-तल पर चलती हुई सी छाया ऐसी जान पड़ती है मानो सेना ने पातालवर्ती पहाड़ों को उखाड़ने के लिये प्रस्थान किया हो। वानर सेना से आलोक रुद्ध हो जाने के कारण दिशाओं का ज्ञान नहीं हो रहा है और सूर्योदय के समय भी धूप के श्रभाव के कारण श्याम-श्याम सा भासित होने वाला आकाश सूझम अस्तकालीन सा जान पड़ता है। जिनकी पीठ पर तिरछी होकर सूर्य की किरणें पड़ रही हैं ऐसे वानर बड़े वेग से अपनी कल-कल ध्वनि से गुंजित गुफाओं वाले पर्वतों पर उतरे। शेषनाग द्वारा किसी-किसी प्रकार धारण किया हुआ पर्वत-समूह, भाराक्रान्त पृथ्वीतल के सन्धि-बन्धन से मुक्त होकर वेग से गिरे वानरो के लिये उखाड़े जाने योग्य हो गया'।^{११}

§ ८—'वद्ध-स्थल के बल गिरने से जिनकी चट्टानें चूर हो गई हैं और जिनसे कुपित सिंहों द्वारा पीड़ित होकर संक्षोभ से अपनी रक्षा के लिये वन गज बाहर निकल गये हैं ऐसे पर्वतों को उत्पाटन कार्य वानरों ने उखाड़ना शुरू किया। वानर सैनिकों के वद्ध से उठाये गये मध्य-भाग वाले पर्वत तथा पर्वतों के मध्य भाग पर धारण किये गये पहाड़ से वानर, दोनों एक दूसरे से तुलित हो रहे थे। वानरों की भुजाओं से उखाड़ कर उठाये हुए पर्वतों के नत और उन्नत होने के

कारण पर्वत के अधोभाग का जो असम तल है उसको प्लावित कर समुद्र भर-भर देता है। वज्र के प्रहारों से आहत, प्रलयकालीन पवनो से टक्कर लेने वाले, कल्प कल्प में अनेक आदि बराहो ने जिनमें अपना खुजनाहट दूर की हैं और प्रलय की प्लावित अपार जलराशि को जो रोकने में समर्थ हैं, ऐसे पर्वत वानरों से उखाड़े जा रहे हैं। प्र० भा०। ये चकित होकर पृथ्वी को चलित, टेढ़े किये जा कर टेढ़ी, नमित होकर नमित और और उद्विग्न होकर उद्विग्न करते हैं। प्र० भा०। वानरों द्वारा उखाड़े जाकर नवीन पल्लवों के कारण सुन्दर छाया वाले तथा बादलों के बीच के शीतल पवन से वीजित चन्दन के वृक्ष उसी क्षण सूख रहे हैं। प्र० भा०। और पाताल में भीत हुए निश्चेष्ट जलचर स्थित हैं, अपने ही भार से टूटे पंखों वाले पर्वत गिर रहे हैं, जलराशि आघात से फट गई है और क्रुद्ध होकर सर्प दौड़ रहे हैं। जगली हाथी, पहाड़ों के गिरने से विचलित, समुद्र की ओर मुख किये हुए तिरछे पर्वतों से हट कर समुद्र में फिललते हुए, जल-हस्तियों पर आक्रमण कर उनसे प्रत्याक्रान्त होते हुए समुद्र में गिर रहे हैं। उखाड़े हुए पर्वतों के भीतर धूमता हुआ और ऊपर की ओर उछलता हुआ नदी का पानी वानरों के विशाल वक्षस्थलों से अवरोध होकर जोर का नाद कर रहा है। अर्धभाग के उखाड़े लेने पर भूमितल से जिनका सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया है ऐसे पर्वतों को जिनके शेष भाग को अधःस्थित सप खाँच रहे हैं, वानर उखाड़ रहे हैं। वानरों से पर्वतों के पार्श्व की ओर ले जाने पर शिखरों से मुक्त आकाश प्रत्यक्ष हो जाता है और उनके उठाये जाने पर टक जाता है। कन्धों पर रख कर उठाने के लिये पकड़े हुए पर्वतों के गिरने के भय से टेढ़े किये मुँहों वाले वानर पर्वतों को उखाड़ रहे हैं। वानरों के हाथा से नीची जाने पर खुली हुई साँपों की कुंडली में अवलम्बित चन्दन वृक्ष की डालें टूटी होने पर भी आकाश में लटक रही हैं, पृथ्वी पर गिरने नहीं पातीं। जल-भरित मेघ की ध्वनि की तरह गम्भीर, वानरों के ब्राह्मण की सूचक सी उखाड़े जाते पर्वतों के अनपेक्षित भाग तोड़ने की भीषण ध्वनि आकाश

मे उठकर बहुत देर में शान्त होती है' ।^{१२}

'वानरो की भुजाओं से उठाये गये पर्वत जिधर को टेढ़े होते हैं, धुलते हुए गैरिको के कारण कुछ ताम्रवर्ण सी पर्वतस्थ नदियों की धारें भी उधर झुक जाती हैं । वानरो द्वारा उखाड़ने के लिए धुमाये गये पर्वत अपनी नदियों के प्रवाहित जल रूपी बलियों के बीच में समुद्र के भँवरों में गिरते हुए दिखाई दे रहे हैं । मकरन्द के कारण भारी पाँखों वाले भ्रमरों के जोड़े, वानरो के उखाड़ने से टेढ़े हुए पर्वतों की वनलताओं के वृन्तो से मुक्त और रसहीन कुसुम स्तवकों को भी नहीं छोड़ रहे हैं । सूर्य-किरणों के स्पर्श से पर्याप्त विकसित, सुगन्ध फैलाने वाले मकरन्द से रंगे से, संचोभ के कारण बैठी हुई चंचल लीयमान भ्रमरों की अजन रेखा युक्त कमल समूह, पहाड़ी सरोवरों के जल के उछलने पर स्वयं भी आकाश में उछल रहे हैं । रोष के कारण उद्विग्न सर्पों को विकट और ऊपर उठे हुए फनों से प्रेरित पर्वत, जिनकी दृढ़ता के साथ पृथ्वी तल में घुसी हुई जड़ों को उखाड़ने के अभिप्राय से वानरो ने शिखर पकड़ रखे हैं, टेढ़े होकर गिर रहे हैं । एक दूसरे के प्रवाह में तिरछी होकर गिरती, चलित प्रवाहों वाली क्षुब्ध होने के कारण मटमैली, पर्वतों के तिग्छे होने से टेढ़ी हुई नदियाँ क्षण भर लिए के बढ़ जाती हैं । जिनके शरीर के नीचे के भाग हिल डुल रहे हैं ऐसे पहाड़ों की पेदी में लगे तिरछे, बिलकुल सफ़ेद और काले-काले साँप वानरों द्वारा ऊपर खींचे जा रहे हैं । पर्वतों के आवेग से उगवाड़े जाने के भय से वन देवियों जिनसे भाग गई हैं ऐसी लताओं के सरस फूल भी गिर रहे हैं और पवन से बिना झुए भी वृन्तों से पल्लव झड़ रहे हैं । जिधर पर्वत उखाड़े जाते हैं, उस ओर की पृथ्वी उस क्षण ध्वस्त दिखाई देती है और जिधर आकाश तल में वानरों द्वारा पर्वत उठाये जाते हैं, उधर दिशा रूपी लता के मेघ रूपी शिखर बढ़ते से दिखाई देते हैं । दोनो हाथों से उखाड़ कर पर्वत को

हाथ में लिये वानर ने आधे आकाश को टक दिया है और आधे पृथ्वीतल को उघाड़ सा दिया है' ।^{१३}

“पर्वतों के अधस्तल में लगे हुए, तल के प्रवाह से अलग होने से क्षीण नदी प्रवाहों के कारण जिनके तट स्पष्ट दिखाई देते हैं ऐसे सर्पराज के फनों से धारण किये हुए पृथ्वी के भाग आकाश में चले जा रहे हैं । कन्दराओं सहित पर्वत चलायमान हो रहे हैं; भय के कारण बिना जल पिये ही हाथी भुंड छोड़ कर तितर बितर हो रहे हैं; गीले और हगितालों से पंकिल तथा वानर समूह से आक्रान्त पर्वत के शिखर कभी टेढ़े और कभी सीधे हो रहे हैं । मलय पर्वत से उठे हुए पवन के वेग से विस्तृत, सूर्य की किरणों को आच्छादित करनेवाली, पहाड़ों के संचलन के कारण वृक्षों की चोटियों से उठी हुई फूलों की धूल सन्ध्या की लालों की तरह आकाश में फैल रही है । पर्वतों की जड़े खींचने के कारण उनके अधस्तलों से उठी हुई जलराशि और मिट्टी के मेल से बने कीचड़ के लगातार ऊपर उठने के कारण उखड़े पर्वत पृथ्वीतल छोड़ते से नहीं अपितु बढ़ते से प्रतीत होते हैं । वानर दर्प से ऊँचे उठ गये से, विन्ध्य के मध्यभागीय और कम्पित हैं पुत्राग वृक्ष जिनमें, ऐसे सह्याद्रि के तटीय शिला-खण्डों से लद से गये, अतः उन्होंने महेन्द्र से लब्ध शिलाखण्डों को आकाश में डाल दिया और मलय से प्राप्त शिलाखण्डों को पृथ्वी पर डाल दिया । वानरों ने अपने बाहुशीर्षों को पर्वत शिखरों, वक्षस्थलों को उनके मध्य भाग और शरीर के घावों को कन्दरा के समान मापा और पर्वतों को अपने समान समझ कर अपने हाथ के अग्रभागों में उठा लिया । कानों का संचलन जिनका बन्द है ऐसे इधर उधर भटकने से श्रान्त हाथी मुख को तिरछा कर खेद से अपनी सूड़ को फैलाते हुए आँख मूँदे हैं मानो अपने बिड्बुड़े हुए साथी और साथिनियों का ध्यान सा कर रहे हैं । तलवर्ती भूमि

के फट जाने से टेढ़े हुए महेन्द्राचल के पेड़ तिरछे हो अपने भार से बोझिल हो गिर कर चूर चूर हो रहे हैं और अधित्यका की वनलताएँ उलट कर गिर रही हैं और उसके फटने के शब्द से भीत मेघ घूम रहे हैं। वानरों की बाहुओं से उखाड़े जाते हुए पर्वतों के शब्द के साथ टूटने का, उनकी मूल में अकुश की तरह फनों को लगाये हुए सर्पों को भान न हुआ। जिसमें कुछ-कुछ पाताल दिखाई दे रहा है, ऊपर खींचने से त्रस्त होकर जिसके अधोभाग में सर्प घुम रहे हैं और थोड़ा सा पर्वत उठाया गया है जिससे, पर्वतों की अपेक्षा वानरों द्वारा ऐसा पृथ्वीतल ही उखाड़ा जाता सा प्रतीत होता है। पर्वतों के संक्षुब्ध होने पर, नेत्रों के विस्तार में जिनकी उपमा दी जाती है ऐसे भीतमत्स्य प्राणियों को छोड़ रहे हैं किन्तु पर्वतीय नदी तट के विवरों को नहीं छोड़ रहे हैं। चाँद से नष्ट हुए तिमिर पटल की तरह, फिसली हुई स्फुटिक मणि की शिलाओं से खदेड़े गये से मलय पर्वत के चन्दन वन में विचरण करने वाले भैसों का कहीं अवशेष भी नहीं रह गया। बीच से फट और उनमें से उखाड़ने के लिये फिर पतित अर्ध भागों वाले पर्वत आधे आधे होकर गिर रहे हैं।^{१४}

‘जिस पर्वत का शिखर गिर कर टूट जाता है या बोझिल होकर विदीर्ण हो जाता है उसको उखाड़ कर भी वानर छोड़ देते हैं। प्रा० भा०। पर्वत के उखाड़ने से कुछ क्रोधित नागराज के उठे फनों पर स्थित पृथ्वी ज्यों ज्यों आन्दोलित होती है त्यों त्यों वानरों के देह के भार को सहन करने में समर्थ होती जाती है। बाहों के धक्के से उखड़े तथा कंधे पर लादने की सुगमता के लिये जिनकी ऊँची-नीची चढ़ाने तोड़ दी गई हैं, ऐसे संचालित होते हुए भी स्थिर पर्वत अपने अनावश्यक ऊपर नीचे के भागों से रहित किये जा रहे हैं। वानरों द्वारा उखाड़े गये पर्वतों के नीचे की विवरों से ऊपर को उठा नागराज के

पृथ्वी-स्थित मणियों का प्रभाजाल प्रातःकालीन भास्कर के किंचित् अरुणिम तथा शुभ्र प्रकाश की तरह जान पड़ रहा है। पर्वतों को उखाड़ते हुए वानरो द्वाग लगता है आकाश ऊपर उठाया गया है, दिशाओं को विस्तार सीमित किया जा रहा है, और पर्वतों के हटाने से भूमितल प्रसागित ना हो रहा है। उखाड़े पहाड़ों के नीचे स्थित विवरों के मार्ग से पैठा सूर्य का प्रकाश समूह निविड अन्धकार से मिल कर सघन अंधेरे पाताल को किंचित् धवलित धूम की भाँति धूसर बना रहा है। केवल पर्वत के भाव से वानरों ने कलाश को उखाड़ते हुए, स्वामी के काय की सिद्धि की और अपने को अयश से बचा कर यशी भी बनाया। वेगपूर्वक दौड़ने से उत्पन्न पवन से भर गये हैं निर्भर जिनके और जिनका मूल भाग वानरों के अग्रहस्तों पर ले जाया जा रहा है, ऐसे पहाड़ भारयुक्त होने पर भी हल्के हो रहे हैं। पहाड़ उखाड़ने के लिये आकाश से उतरने की अपेक्षा कहीं अधिक शीघ्रता से वानर कलकल ध्वनि के साथ सम्पूर्ण पहाड़ों को लेकर आकाश में उड़ रहे हैं। चंचल तथा उखाड़ने में अभ्यस्त वानरों के द्वाग एक बाग के प्रयत्न से ही पर्वत मुदूर आकाश में पॉखो से युक्त दुर से पहुँच जाने हैं। कपिदल द्वारा पर्वतों के उखाड़े जाने से बना हुआ बृहदाकार विवर वाला भूमिभाग ऊपर जाकर ऊँचे-नीचे होते पर्वत तल से टूट कर अलग होकर गिरती और पहाड़ी भरने के पानी से गीली मिट्टी से पहले की तरह भर सा गया है। उखाड़ कर ले जाये जाने वाले पहाड़ों पर स्थित वनों की हरिणियाँ आकस्मिक उत्पात से भीत हो कुछ दूर जाकर फिर मुड़ कर ऊपर देखती हैं; उनकी हम चेष्टा से वन शोभित हो रहा है। उन्मीलित पहाड़ों की नदियाँ अपने आधार से विच्छिन्न हो पर्वतों के उठाये जाने के साथ सीधी गिरनी हैं और जब वे आकाश माग से ले जाये जाते हैं तब उन्हीं की तरह नदियाँ भी विस्तीर्ण सी प्रतीत होती हैं। पर्वत की श्रेणियाँ आकाश में छाई हुई हैं; उनकी घाटियों में हरिण आकस्मिक उत्पात से त्रस्त कान उठाये चकित से खड़े ऊपर की ओर देख रहे हैं; उनके शिखरों से मेघ

मृदित हो रहे हैं, भयभीत होकर पक्षी वन्दराश्रमों में लीन हैं और शिखरों पर सूर्य के घोड़े दौड़ रहे हैं' ।^{१५}

§ ६—आगे प्रवरसेन अपनी चित्रों को उद्भासित करने की विचित्र शैली में वानरो के पर्वत लेकर लौटने का वर्णन करते हैं ।—‘कन्धों पर पहाड़ों को लादे हुए, दाहिने हाथ से शिखरों को थामे हुए और बाँये हाथ से उसका निचला हिस्सा पकड़े हुए कपि समूह सागर की ओर लौट रहा है । प्रस्थान के समय जिनकी भुजाओं से आकाश भर सा गया था, वही आकाश पहाड़ उठाये हुए वानरो के लिये कैसे पर्याप्त हो सकता था । वानर सेना जिन पहाड़ों को ढो रही है, उनके मूल भाग एक साथ उठाये जाने से टकरा रहे हैं और शिखरों के एक क्रम से उद्गत होने से नदियों का प्रवाह परस्पर के टकराने से नीचे नहीं गिरने पा रहे हैं । महीधरो के भाग से बोझिल वानर, सागर जैसे उखाड़े पर्वतों के विकट गर्तों को आश्चर्य के साथ देख कर तीव्र गति होने पर भी विलम्ब से लॉघ्र पाते हैं । क्षण भर के लिये मेघ जिनके तट प्रतीत होते हैं, वेग से उठाये पर्वतों के द्वारा विस्तारित तथा बढती हुई महानदियों की धाराएँ आकाश में प्रवाहित सी जान पड़ती हैं । कपियों द्वारा पर्वतों के कम्पित होने पर भी पहाड़ जैसे आकार वाले हाथी आकाश में लीन होते पहाड़ों में अपने विशाल दाँतों को लगाये हुए उनसे अलग नहीं होते । पर्वतों के आघात से जिनके पयोधर कम्पित हैं, आर उनके अन्तराल में जिनके कुश मध्य भाग दिखायी देते हैं ऐसी दिशा नाथिकाएँ कुसुमों के सुरभित परागों को सूँघ कर निमीलित नेत्रों वाली हो रही हैं । हथेली पर रखे हुए पर्वतों को वानर दूसरे हाथ से स्थिर कर रहे हैं और उन पर नखों से विदीर्ण साँप काँप रहे हैं तथा वेग के कारण उनके शिखर अलग हो रहे हैं । नभ में वेग से उडते वानरों द्वारा ले जाये जाते हुए पर्वत के शिखर से स्वलित महानदियों की

धाराएँ क्रमशः पीछे आने वाले शैल शिखरों पर प्रवाहित होती हुईं उन पर निर्भरी सी लगती हैं। पर्वतों को लेकर वानर उढ़े जा रहे हैं; गति की तेजी से उनके वृद्ध उखड़ गये हैं, जिनसे तट-खंडों जैसे बृहत् आकार वाले मेघखण्ड गिर रहे हैं और जिनकी कन्दराआ में घाटी में रहने वाले हाथियों ने, सूर्य की प्रखर ताप से पीड़ित होकर आश्रय लिया है। आकाश में वेग से उड़ते वानरों से ले जाये जाते पहाड़ों से टके होने के कारण जिसका आतप दूर हो गया है, ऐसे मलय पर्वत का ऊपरी तल पर्वतों के छाया-मार्ग के पीछे लगा शीघ्रता के साथ दौड़ता सा जान पड़ता है। वानर सेना कार्य में इस प्रकार व्यस्त है कि मुदूर आकाश से जिन पर्वतों को जिन वानरों ने देखा, वे उन्हें स्थान पर नहीं मिले, जिनको उखाड़ने का विचार किया उन्हें व नहीं उखाड़ सके, और जिन्हें जिन वानरों ने उखाड़ा उन्हें वे समुद्र तट पर नहीं ले जा सके। समुद्र से लगा हुआ वानरों का गति-पथ सक्षोभ के कारण टूटे वृक्षां के खण्डों से व्याप्त और ऊबड़-खाभड दूसरे सेतुबन्ध के समान प्रतीत होता है। वेग के कारण तट से सागर की ओर कुछ दूर निकल कर फिर लोटें, तट-भूमि पर उतरे, पर्वत लिये हुए प्रसन्नता से विकसित नेत्रों वाले वानर राम के सामने उपस्थित हुए।^{१६}

सेतु-निर्माण का उपक्रम

११०—अनन्तर वानर सागर में पहाड़ों को छोड़ कर सेतु-निर्माण का उपक्रम करते हैं।—‘उन्होंने तट पर कुछ क्षणों के लिये रख कर’
 शैलक्षेपण फिर आदि वराह की भुजाओं द्वारा प्रलय काल में उठाये हुए पृथ्वी के टूटे खण्डों के से पहाड़ों को समुद्र में छोड़ना आरम्भ किया। दूर से दृश्यों होने के समय कम्पित, गिरने के समय क्षण मात्र के लिये विलुलित तथा डूब जाने पर तट को ज्ञावित करता हुआ सागर पर्वतों के पात के समय उनसे आच्छादित सा

दिखाई दे रहा है। आघात से मृत होकर उत्तान पड़े हैं जलचर जिसमें और कल्लोल के अघात से जिसमें खिंचे हुए बन चक्कर खा रहे हैं, ऐसा उछलता हुआ अपनी परिधि में आया सागर का जल मलिन हो गया है। पहले गिरे हुए पहाड़ों से उछाले हुए जल में अदृश्य होकर गिर रहे हैं पर्वत जिसमें, इस प्रकार का आकाश और समुद्र का अन्तराल प्रदेश, पुनः जिनके गिरने का भान नहीं होता ऐसे पर्वतों से युक्त होने के कारण पहले के पर्वत से बोझिल सा जान पड़ता है। वानरों ने पर्वतों को अजमाया और फिर उनको गिरा कर सागर को कम्पित किया, जिससे शंभु के हृदय में भय उत्पन्न हुआ। जो पर्वत सागर के बाहर पड़े हैं उनसे जान पड़ता है सेतु बन जायगा, किन्तु उसमें गिरते पहाड़ों का पता भी नहीं चलता ! पृथ्वी मण्डल के समान विकट अपने सहस्रों शिखरों से सूर्य के रथ के मार्ग को अवरुद्ध करने वाला तुंग पर्वत भी तिमिगिल के मुख में पड़ कर तृण की तरह खो जाता है। पर्वतों के शिखरों से विविध रत्नों सहित उच्छलित सागर का जल, पात के समय गिरते हुए नक्षत्र मण्डल जैसा दिखाई देता है। वानरों द्वारा वेग से डाले, अपने वलित निर्भरों से धिरे पर्वत सागर में बिना गिरे ही भँवर में चक्कर खाते जान पड़ते हैं। वानरों से रिक्त शिखर वाले, क्षणमात्र के लिये योजित फिर समुद्र तल पर फेंके गये पर्वत सागर में बाद में गिरते हैं, पहले समुद्र और आकाश के अन्तराल में दूसरे वानरों द्वारा फेंके पहाड़ों से उनका मिलन होता है। पाताल तक गहरे, लम्बे और सीधे, पहाड़ों के ऊपर नीचे के भागों की विषमता से विषम और विकट, तथा वायु से भरे हुए समुद्र के नीचे पर्वतों के प्रवेश-मार्ग में भीषण शब्द हो रहा है। आकाश में निरन्तर एक पर दूसरों के गिरने के कारण टूटे, समुद्र को लक्ष्य कर वानरों द्वारा अंदाज कर फेंके गए और वज्र के भय से उद्विग्न से सहस्रों पर्वत दक्षिण समुद्र में गिर रहे हैं। जिनकी शिलाएँ टूट गई हैं और जो अपने वृद्धों से भरते फूलों के पराग से धूसरित हैं ऐसे पर्वत समुद्र में पहले गिरते हैं; वायु के

आघात से उछलती हुई उन पहाड़ों की महानदियों की धाराएँ वाद में गिरती हैं। निर्माण सभिल में जिनकी गति अलग-अलग तिरछी जान पड़ती हैं ऐसे निश्चय भाव से स्थित, वानरा से देखे जाते हुए पवन बहुत देर बाद जल में विलीन होते हैं। फेन रूची फूलों के भीतर से निकले हुए केसर जैसे आकार के चञ्चल किरणों वाले तैंगते हुए रत्न पर्वतों के आघात से समुद्र के मूल के क्षुभित होने की सूचना दे रहे हैं। सागर वेला की तरह पृथ्वी को कँपाता है, समय जान कर पर्वत समूह को चूर चूर कर रहा है, भय की भाँति आकाश को ग्रहण कर रहा है और क्षुब्ध न होने के स्वभाव की भाँति पाताल छोड़ रहा है। सागर में पर्वत तिगड़े होकर गिर रहे हैं और उन पर वृद्धों की जटाएँ शाखाआ के बीच लटक रही हैं, शिखरों पर लटके मेघ उनके अवनत होने से मूल की ओर से आकाश की ओर उड़ रहे हैं तथा उनके निर्भर अधोमुख होने से आन्दोलित हो रहे हैं।^{१७}

‘अव्यवस्थित रूप में गिरते हुए पर्वतों से उछले हुए जल में उत्पन्न अवकार में तिरोहित होकर गिरते पर्वतों का पता समुद्र की भीषण प्रतिध्वनि से मिल रहा है। उछलते जल में जिनके कंधे के बाल कुछ-कुछ धुल गये हैं और जिनके मुख पर लगी हुई पर्वतीय गैंगिक आदि धातु पाताल से उठी हुई उमम से निकले हुए पसीना में पंक्ति हो गई है तथा जो पर्वतों के फेंकने से उच्छ्वसित हो रहे हैं ऐसे वानर पीछे हट रहे हैं। भरनो के भर जाने से हल्के हुए परन्तु वायु में कम्पित वृद्धों से बोझिल शिरोभाग वाले पर्वत उसी ओर से समुद्र में गिर रहे हैं। डूबे हुए पर्वतों के मार्ग में जलगाशि के फट कर मिन जाने से फूल एकत्र हो रहे हैं, मद से सुगन्धित हाथियों द्वारा तोड़े वृद्धों के खंड तैर रहे हैं और वह हरिताल से पीला पीला हो गया है। पर्वत शिखर से अलग हुए जल में किंचित डूब कर चक्कर खाते हुए क्रोध से लाल हुई आँखों को इधर-

उधर फेरते हुए जंगली भैंसे डूब रहे हैं। प्र० भा०। अपनी दाढ़ों में समुद्री हाथियों के मस्तक फोड़, मुक्ता मिश्रित रक्त से मुख रूपी कन्दराओं को जिन्होंने भर लिया है ऐसे पहाड़ी सिंह उनकी सूँड़ों से दृढ़ता से खिचते हुए विवश गरज रहे हैं। गिर रहे पहाड़ों के संभ्रम से क्रुद्ध होकर उलट दिया है जल के हाथियों को जिन्होंने ऐसे अनैले हाथी, बीच में आ गये घड़ियालों के द्वारा निर्दयता के साथ अगों के विदीर्ण किये जाने पर गिर कर डूब रहे हैं। डूबे पर्वत की कन्दरा के मुख में घुसती हुई आवेष्टन में समर्थ लहरें, प्रवाल रूपी पल्लवों के कम्पन के साथ, वन-लताओं के समान वृक्षों पर फैल गईं। उखाड़े जाकर भूमि भाग से समुद्र के जल में गिरते हुए पर्वत व्यवधान रहित और शब्दायमान पाताल को गिरने के साथ ही उखाड़ सा देते हैं। वेग से गिरने के कारण चक्कर काटते हुए, कल-कल ध्वनि के साथ घूमती हुई निर्भरावली से आवेष्टित, चंचल मेघों से आच्छादित और वक्र लताओं से आलिङ्गित पहाड़ फिर रहे हैं। अपनी भुजाओं द्वारा फेक कर पर्वत की शिलाओं को जिन्होंने तोड़ दिया है, आकाश में उच्छलित जल से ढँके से और अपने कंधे के बालों को कँपाने वाले वानर क्रमशः आ आ कर निकल जाते हैं। बार-बार पर्वतों के आघात से उत्क्षिप्त समुद्र-जल से खाली और भरा हुआ पताल नभस्तल की तरह और नभस्तल विकट उदर वाले पाताल की तरह प्रतीत होता है। सन्तोभ से भूमि के विदीर्ण होने से जल बह जाने के कारण, जिनकी घाटियों के कमल-वन सूख रहे हैं और जिनके व्याकुल हाथियों द्वारा अबलम्बित शिखर टूट रहे हैं, ऐसे पर्वत सागर में गिर रहे हैं।^{१८}

‘सागर गिरि आघात से आहत होकर भीषण ध्वनि करता है, तट को ह्लावित करता है, फिर ऊँचे नीचे भागों में गिर कर चक्कर लगाता है, इस प्रकार वह अमृत निकलने के अन्तर को छोड़ कर मंथन के समय

का हो रहा है। उखाड़ कर जिसमें पर्वत गिराये गये हैं, जिसके विषय में हम प्रकार की शंका है कि बाँधा जा सकेगा या नहीं, ऐसा समुद्र गरज रहा है, जिसमें इस प्रकार का लंका जाने का उपाय भी दारुण है फिर जैसे जाने की क्या बात ? पतन के वेग से चूर हुए, आकाश में चक्कर काटते, चमचमाती सुवर्ण शिलाओं से आवेष्टित और फूँकों के पराग से ढँके हुए, वानरां द्वारा उवाड़े पर्वत सागर में लीन हो रहे हैं। पवन से बढ़ा दिये गये हैं वृक्ष जिनके, कन्दराओं से उत्थित पवन के वेग से जिनके निर्भङ्ग उत्त्थित हैं ऐसे पर्वत समुद्र में गिर रहे हैं और गिरने के समय कणियों का कल-कल बढ़ रहा है तथा बढ़ते हुए वडवानल में सागर भी नत उन्नत हो रहा है। नदियों के जल में रहने वाले मत्स्य सुदूर आकाश से समुद्र में गिर कर अपरिचित जल के कारण तट की ओर लौटते हैं, वहाँ मृदित हरिचन्दन से युक्त जल पीकर प्रसन्न हो चतुर्दिक् पैल जाते हैं, पर अच्छा जल न पाकर अनिच्छा से प्रमत्त जल का पान करते हैं। पर्वत समुद्र में गिर कर नष्ट हो रहे हैं, वे सभी के फनों की मणियों की प्रभा से किंचित ताम्रवर्ण के हैं, संघर्ष के कारण उनके विकट अधोभाग टूट रहे हैं, वृक्ष समूह से वे हरे लगते हैं और उनकी कन्दराएँ सूर्य प्रकाश से रहित हैं। पर्वतों के पतन वेग में समुद्र के जल के उछलने पर हठात् खसकना आरम्भ करने वाले तथा अकस्मात् असंतुलित हुए पृथ्वीतल को, शेषनाग तिरछे होकर धारण कर रहे हैं। पर्वतों ने वज्र के भय का, वसुमती ने आदिबराह के खुर से प्रेरित होने तथा समुद्र ने मथन की आकुलता का साथ ही साथ स्मरण और साथ ही साथ विस्मरण किया। मलय पर्वत के लता कुंजों को धारण करता हुआ, अपने मथित होने के दुःख का स्मरण करता हुआ सा सागर, जिसको रावण के अपराध के कारण आपत्ति का सामना करना पडा है, पर्वतों के शिखरों से आहत होकर कराह रहा है। पहाड़ों के पानी में डूबने पर, आघात से चूर प्रवालों से लाल-लाल सा हो उठा, गिर कर चूर्ण होने पर उठा हुआ धातु-रज की तरह शीकर रूपी

रज का समूह ऊपर फैल रहा है। गिरि-शिखरों से संक्षुब्ध कल्लोल युक्त तट वाला, गलित धातु से शोभित ताम्र सा कान्तिमान्, पिसे चन्दन तथा मनसिल आदि के रस से स्वाभाविक जलराशि का अपेक्षा कुछ भिन्न रंग का, पर्वतों की कन्दरा आदि गहरे स्थानों में प्रवेश करता हुआ समुद्र का जल घोष कर रहा है। गिरते पहाड़ों से खिसक कर सागर जल में गिरते, जिनकी डालों की पत्तियाँ आघात से उछाले पानी में मिली हुई हैं, ऐसे हल्के वृक्ष बिना खींचे ही तरंगों द्वारा उछाले जाकर आकाश तल में लग रहे हैं। राम के अनुराग से रावण के प्रति क्रुद्ध, जिन्होंने अपने उज्ज्वल दाँतों से अपने ओठों को काट लिया है, आकाश में अपने गमन वेग से मेघों को फैला कर जिन्होंने छिन्न भिन्न कर दिया है, और जिनसे अप्सराएँ भयभीत हो गई हैं ऐसे पर्वतधारी कपियों से सागर का जल छिन्न किया जा रहा है। वायु से जिसकी कन्दराएँ पूरित हैं, जिसका शिला निवेश पवनसुत से आक्रान्त होकर ढीला हो गया है और जिसकी चोटियों के निर्भरो में इन्द्रचाप बन गये हैं ऐसा महेन्द्र पर्वत का खंड समुद्र में गिर रहा है।^{१९}

‘गगन में शैलाघात से उछाले जल से पूरित, बादलों की गर्जन से व्याप्त, कन्दल नामक वृक्षों से युक्त, लता गृहों को धारण करता हुआ शिखर गिर कर क्या अनेक टुकड़ों में बट नहीं जाता ? गिरि के आघात से जल के ऊपर आये हुए मकरों से विषम रूप से काटे गये, फेन में मिले हुए चमरी गायों की पूँछ के निचले बाल धारों से बहते रक्त के काण्ड विभक्त जान पड़ते हैं। सिद्ध लोग भय से संभोग-प्रक्रिया से गीले अधोभाग वाले लतागृहों को छोड़ रहे हैं, पहाड़ी नदियों का जल इधर-उधर बिखर रहा है और पहाड़ों के गिरने से समुद्र का पानी चारों ओर फैल रहा है। जिसमें यूथपति ने जल-सिंह का आक्रमण रोका है और विकल कलभ उठाये जा रहे हैं, सँडों को ऊपर उठाये ऐसे हाथियों के यूथ

विकट भँवर के मुँह में पड़ा चक्कर खा रहा है। सामने गिरे गिरी शिखरों के आघात से आन्दोलित, पवन द्वारा तरंगों में चंचल बनाई गईं नदियों को देख कर ही, राम विग्रह से पीड़ित होते हैं। जिसके विद्रुम जाल कुछ झुलस गये हैं, जिसमें बाण के घात की ज्वाला से शंख काले-काले हो गये हैं और जो पाताल तल में लगे राम के बाणों की पॉखों को ऊपर ले आया है ऐसा जल-समूह सागर के तल से ऊपर उठ रहा है। जिसमें भयभीत जलचर निश्चेष्ट होकर पड़े हैं, अपने ही भार में टूटे पंखों वाले पर्वत हैं तथा क्रुद्ध होकर साँप दौड़ रहे हैं और जिसकी जलराशि पहाड़ों के आघात से फट गई है ऐसा पाताल साफ दिखाई दे रहा है। गिरि-रात से आन्दोलित समुद्र की ओर मुख किये हुए, फिर तिरछे पर्वत से बिछल कर फिसले हाथी जल हस्तियों पर टूटते हुए और उनसे प्रत्याक्रान्त होते हुए जल में गिर रहे हैं। वानरो द्वारा वेग से फेंके गये विशाल पर्वत उतनी जल्दी रसातल के मूल में नहीं पहुँचते, जितनी शीघ्रता के साथ अपने गिरने से उछाले गये सुदूर आकाश में पहुँच कर नीचे गिरे जल के भार से प्रेरित होकर। पर्वत के आघात से उछल कर, जिनमें उत्तान और मूर्च्छित महामत्स्य हैं ऐसे तटवर्ती पर्वतों से प्रतिहत होकर उन्हीं के वृक्षों को उखाड़ने वाले, समुद्र के जल-कल्लोल आकाश में बड़ी दूर तक ऊपर उठते हैं। जल में आधे डूब चुके अस्थिर हाथियों के झुंड के भार से बोझिल शिखर के कारण विह्वल, पर्वत की कन्दरा से निकल कर आकाश मार्ग से ऊपर को जाते हुए सुर-मिथुन, उस डूबते पर्वत के जीव जैसे लगते हैं। वानरों की भुजाओं ने पर्वतों को, पर्वतों ने वृक्षों को और वृक्षों ने मेघों को धारण कर रखा है, यह दृश्य देख कर सन्देह होता है कि ये वानर समुद्र में सेतु बाँध रहे हैं या आकाश को माप रहे हैं।^{२०}

‘वेग के साथ गिर रहा है एक-एक पर्वत जिनमें और जिनसे

मणियों की शिलाएँ तिरछी तथा कम्पित होकर गिर रही हैं, ऐसे पर्वत समूह सागर में गिर रहे हैं। उनसे उछाले जल के टटाघात से कम्पित पृथ्वी के आघात, पृथ्वी के भार से बोझिल महामर्प के टूटे फनो की संपुट जिसमें खुल गया है ऐसे रसातल को पीड़ित कर रहे हैं। मृदित मैनसिल से युक्त तट वाले पर्वत के स्पन्दन से अरुणिम सागर का जल जो नष्ट हो रहा है, वह अभिमानी रावण द्वारा बल पूर्वक ले जायी जाती हुई जानकी के अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखने का दारुण फल है। गिराये पर्वतों से आहत रत्नों में श्रेष्ठ मणियों समुद्र के अधस्तल में चूर-चूर हो रही हैं, और बादलों के घेरे से हीन आकाश तल पर्वतीय वनराजि के कांचीदाम जैसी हंस-पंक्तियों से भर रहा है। पाताल शब्दायमान हो रहा है, पर्वतों के आघात से पृथ्वी फट रही है; चोट खाकर बादल छिन्न भिन्न हो रहे हैं; वानर दूसरे वानरों से गिराये हुए पर्वतों के ऊपर गिरने के भय से दूर हट रहे हैं, पर्वत गिराये जा रहे हैं; समुद्र गिरते पहाड़ों की चोट खाकर पीड़ा से देर तक चक्कर सा खाता है; आघात से फूटी सीपियों के मोती विद्रुम जालों में लग कर समुद्र में गिरे वृक्षों की शाखाओं में लगे पल्लव युक्त फूल जैसे जान पड़ते हैं। क्रोधित हाथियों से मर्दित, निरन्तर मधुर गन्ध रूपी यौवन जिन्से निकलता है, ऐसे अप्सराओं सहित डूबे पर्वतों के वनों की, कुसुम-पराग समूह रूपी ध्वज सूचना सी देता है। वानर लाते हैं, आकाश प्रसारण में समर्थता दिखाता है, समुद्र अपने हाथों अर्पित करता है और पृथ्वी भी देने में मुक्तहस्त है, फिर भी पाताल का विकट उदर पर्वतों से भरता नहीं। वानर सागर को क्षुब्ध कर रहे हैं, उसमें थोड़े डूबे गिरि-शिखरों की बावलियों के कीचड़ में जंगली भैसे आनन्दित हैं, वहाँ वृक्षों से प्रवाल जाल मिल रहे हैं, स्थल जीवों से जल-जीव मिल रहे हैं और वह डरावने घड़ियालों का घर है। सागर में बनैले हाथी की गन्ध पाकर जल-सिंह क्रुद्ध होकर जँभाई लेता हुआ उठ रहा है और सामने गिरते पर्वत के भय से त्रस्त होकर हटने भुजगेन्द्र के वेग से भँवर उठ रहे हैं। सागर में

डूबते हुए वन के सूखे पीले-पीले पत्ते बिखरे पड़े हैं और भंग किये हुए मदन वृक्ष से निकले कसैले रस से मत्स्य मतवाले और व्याकुल होकर हृष-उधर उलट-पुनट रहे हैं। वानरो से क्षुब्ध सागर में पर्वतों के भार से प्रेरित, पल्लवों के दलन से अल्पकाय चपल लता-जाल है और वृक्षों के फूल विषधर रूपी नवीन आतप से मुर्झा कर काले हो रहे हैं। ऐसे सागर में भँवगों में चक्कर खाते हुए गिरि-शिखरों के निर्भरों के जल के उछलने से आकाश में अन्धकार फैल गया है और पर्वतीय वनों की औषधियों की गन्ध से पीड़ित होकर व्याकुल सर्प पाताल से उछल कर ऊपर आ रहे हैं। आवतों में चक्कर काटते पर्वतों के मध्य भागों की प्रभा से घूमते हुए से, किन्तु पाताल से निकले सर्पों की फणियों की प्रभा से पृथक् प्रतीत होते समुद्र को वानर क्षुब्ध कर रहे हैं। निरन्तर गिरते हुए, अन्तरहीन आयास से घटित सेतुपथ आकाश में तो निर्मित सा परन्तु सागर में पड़ कर विलीन सा हो रहा है'।^{२१}

सेतु-पथ निर्माण

§ ११— आठवें आश्वास के प्रारम्भ में प्रवरसेन सागर को शांत होते चित्रित करते हैं। 'पर्वत के गिरने से छिन्न-भिन्न तथा क्षुब्ध सागर, जिसके आवतों में पर्वत खण्ड-खण्ड होकर घूम रहे सागर का शांत भाव है, उछलते हुए जल के पुनः वापम आने से फिर लौट कर पूर्वावस्था को प्राप्त कर रहा है। प्रशान्त कल-कल वाले, गिरि-पात के शान्त हो जाने पर, छोटे पर्वतों वाले तथा क्षण मात्र के लिये भीषण आकार धारण करने वाले समुद्र के जल में स्थिर पहले जैसी स्थिरता है। इस प्रकार शांत होते जल में मुक्तास्त्रकों से धवल फूल मिल रहे हैं, मरकत मणियाँ और टूटे पत्ते साथ-साथ घूम रहे हैं और आवृत्तों वाले जल में विद्रुम के साथ पल्लव और धवल शंखों जैसे कमल मिल रहे हैं। क्षोभ के समय नीचे गये किन्तु शान्त होने पर ऊपर तल पर

उतराते हुए फूलों से युक्त, डूबते सूर्य की तरह किंचित लाल समुद्र तल पर प्रसृत गैरिक पंक की आभा धीरे धीरे विलीन होती सी दिखाई दे रही है। बनैले हाथियों की गन्ध पाकर ऊपर को उठे हुए जल हाथी, आतप से पीड़ित हो, अपने सूडों से उठाये जल-कणों में आर्द्र कर मुख-मंडल को शीतल कर रहे हैं। गिरि तरुओं की शाखाओं आदि से आकुल और उनके कसैले रस से अलग रंग वाले, नदियों के मुहाने ऊपर को प्लावित और पुनः समुद्र में प्रविष्ट जल-राशि से मलीन हो रहे हैं। गिरे हुए पहाड़ों से आन्दोलित सागर द्वारा इधर-उधर फेके गये मलय खंड, महेन्द्र के तटों में और हाथियों को कुचलने वाले महेन्द्र पर्वत के खंड, मलय के तटों में जा लगे हैं। विस्तृत और धवल, जिनके ऊपरी भाग शात तथा ठहर ठहर कर तट प्रदेश की ओर से लौटती जल तरंगों से नत-उन्नत हो रहे हैं और जहाँ अविगल रूप से मोती आ लगे हैं, ऐसे समुद्र तट वासुकि नाग के वेचुल जैसे भासित हो रहे हैं। पर्वत के आघात से उछला हुआ, आश्चर्य से देखा जाता हुआ, आकाश मार्ग से नीचे गिरता हुआ जलसमूह आन्दोलित होकर शान्त हुए समुद्र को क्षुब्ध कर रहा है'।^{२०}

§ १२—अनन्तर प्रवरसेन सेतु-निर्माण के समय की विचित्र परिस्थिति की उद्भावना अपनी कल्पना शक्ति के विचित्र संयोगों द्वारा करते हैं। चित्र को परिस्थिति के अनेक छायाताप में प्रस्तुत करने में प्रवरसेन की प्रतिभा अद्वितीय है। और इन स्थितियों में विचित्र सजीवता और गतिशीलता है।—‘वानर सेना देख रही है कि नल द्वारा समुद्र तट पर स्थापित किये पर्वत मानो लंका के अनर्थ के लिये सेतु का मुख हो। नल द्वारा डाले हुए पहाड़ों की चोट से उछलते हुए जल वाला सागर, इस प्रकार भ्रमित हुआ कि उखाड़े पर्वतों की धूल से मलिन दिशाओं के मुख एक साथ धुल उठे। पानी से

गाले होकर जुटते हुए और जिनके जोड़ का पता नहीं लगता, ऐसे पर्वत समुद्र की आड़ोलित जल राशि से आहत होकर भाँट डटता सँजुटे होने के कारण एक दूसरे से अलग नहीं होते। उनमें जन की धार उलट कर बह रही है और वेला तट पर पड़े पहाड़ों से अचरुद्ध नदियों के मुहाने उनके बाहर निकलने के मार्ग बन गये। वानरों द्वारा शिखरों को नीचे करके छोड़ने पर भी, मूल भाग भारी के होने कारण, पर्वत उग्वाने की पूर्व स्थिति में होकर नल के मार्ग में गिरते हैं। मुख में पूर्ण दृढ़ता के साथ ग्रसित कुम्भ-स्थलों पर जिनके कैमर विन्वर रहें हैं और जिनके नखा के अग्र भाग प्रहृत कुम्भ-स्थलों में ही गढ़े हैं ऐसे पहाड़ी मिह जल के हाथियों की सूड़ों से प्रहृत हकर उनपर प्रहार कर रहें हैं। जल-हाथियों के मद की गन्ध पाकर उनकी ओर सँड फँनाते हुए बनेले हाथियों के सूड़ा को जल-हस्तिन काट लेते हैं और वे गिर पड़ते हैं, फिर भी क्रोधोन्मत्त होने के कारण उन्हें उनके कटक गिरने का भान धारों पर समुद्र के खारी जल के पड़ने पर होता है। सेतु के कुछ बन जान पर वानर उडकर भागने की चेष्टा करने वाले पर्वतों को उनके पखों को दोनों हाथों से पकड कर खींच रहे हैं। उस समय ऊँचे-नीचे उछलते हुए कन्धे के कैमर वाले, पार्श्व भाग से कन्धे के समीप प्रसरित हाथ से वानरों द्वारा गिराये हुए पर्वतों को ले-ले कर नल शीघ्रता और तल्लीनता से सेतु को बाँध रहे हैं। गिरते हुए अनेक पहाड़ों से क्षुब्ध सागर में प्रकट हुए पृथ्वीतल के भीषण विवर को एक सम्यक् स्थिति पर्वत ही विस्तार की अधिकता से मूँद देता है। वानर जिन-जिन पर्वतों को सागर के तल में स्थापित करते हैं, नल उन पर चरण रख कर आगे सेतुपथ को बाँधते जाते हैं। वानरों द्वारा एक साथ अनुपयुक्त स्थानों पर गिराये हुए पहाड़ों को ले-लेकर नल उपयुक्त स्थानों पर रखते जाते हैं और जोड़ते जाते हैं। नल द्वारा जोड़े हुए पर्वतों को सागर स्थिर करता है तथा वानरों द्वारा अनुपयुक्त स्थानों पर डाले गये पर्वतों को अपनी तरफ से उचित स्थानों में जोड़ देता है और बने हुए सेतु के आगे उछलता हुआ

बढ़ जाता है। सूर्य के रथ के चक्के से धिमी हुई ऊँची चोटी वाले जिन पर्वतों को हनुमान ले आते हैं, नल उन-उन पहाड़ों को बायें हाथ से ले-ले कर सेतुपथ में जोड़ते जाते हैं। समुद्र की सेवा में लगे शैवाल युक्त शिखरों वाले पाताल के पर्वत किंचित निर्मित सेतुपथ से सम्बद्ध और जिनके ऊपर के भाग विकसित कमलों वाले सोंवरो से शोभित हैं ऐसे पर्वतों को धारण कर रहे हैं। जाकर लोटी हुई जल-राशि के वेग से कम्पित, समुद्र तट की तरंगों के आने-जाने से फैलती और सिमटती शाखाओं वाली वन श्रेणी आन्दोलित हो रही है।^{२३} प्रवरसेन के के समस्त वर्णानों में सजीव चित्र उपस्थित करने की अद्भुत शक्ति है।

कवि स्थितियों की अद्भुत पर साथ ही सजीव कल्पनाएँ करता है।—‘सागर के क्षोभ से उद्विग्न जंगली हाथियों की मूडों से उछाले गये, जल हाथियों के दाँतों में लोहे के कड़ों के समान लगे हुए विशाल-काय समुद्री सर्प गिर रहे हैं। पहाड़ों के गिरने से प्रेरित सागर का जो कल्लोल पहले लौटना है, वही दूसरी ओर के टेढ़े हुए सेतुपथ में जोड़े पर्वत को अपने आघात से सीधा कर देता है। क्षुब्ध सागर में द्रवते हुए, अखंडित मद-धारा वाले, पहाड़ी जंगलों के मतवाले हाथी पैरों में उलभे समुद्री सोंवों को बंधन की तरह तोड़ रहे हैं। मिले हुए रत्नों की आभा से उज्ज्वल, वृद्धों के रस से हरित और किंचित स्फुटित मरकत शिलाओं से युक्त, शाखों के चूर्ण से श्वेत हुआ फेन इधर उधर चालित हो रहा है। सेतु में जोड़े जाते पर्वतों से समुद्र जितना क्षीण होता है, नीचे से निकलती हुई जलराशि से पूर्ण होकर उतना ही उछलता है। भूकम्पों ने नदियों के मुहाने को छिन्न भिन्न कर दिया है, शिथिल हुई मूलों वाले पर्वतों के शेष भाग अपने स्थान से उनसे खिसक रहे हैं और उन्होंने दक्षिण समुद्र की भाँति अन्य समुद्रों को भी आन्दोलित कर दिया है। वानर सेना को क्षण भर के लिये सुखी करने वाला सेतुपथ एक और

समुद्र के जल में उठा हुआ है; एक ओर पर्वत गिराये जा रहे हैं और दूसरी ओर रसातल भर रहा है। पहाड़ों के गिरने से सागर का जल दो भागों में विभक्त होता है, और उससे सेतुपथ निर्मित हुआ सा जान पड़ता है, फिर समुद्र के जल के लौट आने पर वही थोड़ा सा बना प्रतीत होता है। पाताल भर गया, किन्तु कुपित दिग्गजों के गमन में बाधा उपस्थित करने वाले तथा सागर को विश्राम देने वाले अत्यन्त गहरे महाबराह के चरणों के खुर पड़ने से बने विकराल अवकाश (गड्ढे) अब भी नहीं भर सके। गौरिक तटों के पतन से सुन्दर पल्लव जैसी लाली वाला, भँवरों में भ्रमित होकर टूटे हुए वृक्षों के खंडों से कसैला और सुगन्धित, पहाड़ों से मथा जाता सागर का जल समूह ऐसा लगता है मानां उनसे मदिरा निकल रही हो। समुद्र इधर-उधर पहाड़ों को ज्यों ज्यों अपना तरंगों से चालित करता है त्यों-त्यों शिखरों के चूर्ण से विवरों के भर जाने से सेतुपथ स्थिर होकर दृढ़ हो रहा है। वानरों की शीघ्रता तथा नल के रचना कौशल से कुछ पता नहीं चलता—सेतुपथ कहीं आकाश से बनकर तो नहीं गिर रहा है? मलय से पहले बना तो नहीं खींचा जा रहा है? समुद्र के जल पर तो उत्पन्न नहीं हो रहा है? और रसातल से बना बनाया तो नहीं निकल रहा है? आकाश में सागर का उछला हुआ पानी और रसातल के जल में नभ दिखाई दे रहा है, परन्तु आकाश, जल और रसातल में सर्वत्र पर्वत सामन रूप से दिखाई दे रहे हैं। वेला रूपी अलान से बंधा हुआ समुद्र रसातल स्थित सेतु को इस प्रकार चालित कर रहा है जिस प्रकार हाथी अपने खूँटे को हिला देता है। कपियों से दृढ़ता के साथ जैसे जैसे पर्वत प्रेरित होते हैं, वैसे वैसे क्षुब्ध जल-राशि से आर्द्र होकर विस्तारहीन हो एक एक से जुटते से जाते हैं।^{१२४}

§१३—‘लवणों के हाथों से पर्वत सागर में गिर रहे हैं, उनसे रत्न भिखर रहे हैं और किन्नरगण भय से व्याकुल हो कर खिसक रहे हैं।

क्षुब्ध सागर नदियों को तीव्र भय से मुक्त कर दैन्य के साथ नहीं वरन्
 कार्य की पूर्णता ज़ोरों से गर्ज रहा है। सागर आकाश में उछलता
 हुआ पर्वतीय मणि शिलाओं की आभा से भास
 रहा है, गिरते हुए पंकिल पहाड़ों को जैसे धो रहा है और लौट कर
 रुद्ध सा, वह गिराये हुए पर्वतों के अन्तर्निविष्ट हो जाने पर दलित
 होकर जुटता हुआ सा जान पड़ता है। सेतुपथ के समीप गिरने वाले
 पहाड़ों से व्याकुल, क्षुब्ध सागर के जल में निवास करने वाले जल
 के हाथियों तथा पर्वत पर रहने वाले मद की गंध से क्रुद्ध वन गजों
 के समूह एक दूसरे पर आक्रमण कर रहे हैं। टक्करों से वृक्षों को
 उखाड़ने वाली, देर तक सेतुपथ के पार्श्वों को परिघृष्ट करने वाली,
 घातुओं के सम्पर्क के रूपान्तर को प्राप्त सागर की तरंगें समुद्रतल से
 ऊँची उठकर (पथ के नीचे) त्रिलान हो जाती हैं। सेतुपथ पर गिरने
 के भय से कातर नेत्रों वाले हरिण, नल और सागर को एक हा भाव
 से देखत हैं। अभिघात से खलित सागर का जल पर्वतीय नदियों
 के प्रवाह का अतिक्रमण करता हुआ मानों वानरो की कल कल ध्वनि को
 पाकर उमड़ रहा है। नल रचित सेतुपथ को वानर दृढ़ कर रहे हैं।
 इसकी उच्चता सम्पूर्ण पृथ्वी तल से पहाड़ों को उखाड़ कर निमित्त
 की गई है और अपनी छाया से इमने समुद्र की उज्ज्वल जलराशि को
 श्यामल कर दिया है। इसके शिलातलों के टेढ़े होकर लगे दृढ़ आघातों
 से महामत्स्यों की पूँछें कट गई हैं और इसकी शिलाएँ बीच से कटे
 साँपों के आभोगो से ज़ोरों से कस जाने से विदीर्ण हो गई हैं। सेतुपथ
 में पहाड़ों के उखाड़ने के उत्थात के समय पकड़ कर छूटे हुए वनराजों
 के पीछे सिंह लगे हैं और यह पथ गिरि शिखर पर स्थित, ले आये हुए
 अन्य पर्वतों से प्रेरित शब्दायमान मेघों से झुल रहा है। यहाँ क्षोभ के
 कारण उलट कर गिरे बनैले हाथियों से रुद्ध निर्भर का जल दो धाराओं
 में होकर बह रहा है और पर्वतों के बीच में चन्दन वन के कारण
 मलय के शिखर खण्ड की स्थिति का अनुमान होता है। नल द्वारा

बनाये जाते सेतुपथ में सागर की तरंगों से आहत होकर काँपती हुई लताएँ वृद्धों पर लटक रही हैं और शिखरों के बीच में समुद्र का जल चपल हा रहा है। सेतुपथ अपने आप विस्तृत हो रहा है, पर्वतों के आघात से सागर काँप रहा है, कल-कल ध्वनि से दिशाओं का प्रतिध्वनित करते हुए वानर, सेतु-मार्ग पर सुबेल के ऊपरी भाग को देख कर हर्षातिरेक से शोर मचा रहे हैं। समुद्र का द्विधा विभाजित जल-राशि में सेतुबन्ध से आक्रान्त, घबराहट के साथ खींचने के कारण खडित, भय से उद्विग्न हो भागने ही वाले पर्वतों के पक्ष दिग्वाई दे रहे हैं। महीधरों के आघात से क्षोभित जल से क्षत और विघटित मूल वाले पर्वतों के थोड़ा-थोड़ा बिसक जाने पर लवंग उन्हें फिर मजबूत कर रहे हैं। उदधि को आक्रान्त कर सेतुपथ ज्यों-ज्यों दूसरे तट के समीप होता जाता है, त्यो-त्यो पानी कम होने से अधिक उछल रहा है। महीधरों के प्रहार से जो जल-समूह सेतुपथ पर गिरते हैं, वे उस पर स्थित वृद्धादि से टकरा कर टेढ़े-मेढ़े हो महानदियों के प्रवाह जैसे बन जाते हैं, १२५ कवि के ये वर्णन संश्लेष प्रत्यक्ष और सजीव हैं।

§ १४—'एक ओर से दूसरी ओर दौड़ने तिमियो से पूरा हो गया है शेष भाग जिसका, ऐमा सुबेल पर्वत के तट में लगा हुआ सेतुपथ पूर्ण होने को शोभा को प्राप्त हुआ। अव्यवस्थित रूप से लगे विशाल पर्वतों को जब नल सेतुपथ में उचित रीति से न्यस्त करने के लिए आवश्यकता अनुसार इधर उधर उठाने लगे तब समुद्र समूची पृथ्वी को स्थावित करके अपने स्थान को लौटाता है। सेतु के निर्माण कार्य को समाप्तप्राय जान हर्षित वानरा द्वारा डाले गये पर्वतों के आघात से ऊँचा-नीचा होता हुआ समुद्र, सेतुपथ और सुबेल के उमड़े हुए नदी प्रवाह की तरह जान पड़ता है। वानर जिस-जिस प्रकार सेतुपथ के अग्रभाग को बनाते

जा रहे हैं, वैसे समुद्र की जलराशि की भौंति रावण का हृदय फटता सा जा रहा है। पाताल में जिसका मूल स्थित है तथा अविरल रूप से पूर्ववत् जिसके निर्भर प्रवाहित हो रहे हैं ऐसा सुवेल पर्वत बिना स्थानान्तरित हुए भी सेतुपथ के मुख में पड़ गया। सेतुपथ के आरम्भ होने पर पूर्ण, किञ्चित् निर्मित होने पर अवशिष्ट भाग भय के कारण विसदृश तथा समाप्त होने पर दो भागों में विभाजित समुद्र, कई रूपों में भासित हुआ। मलय के तट से प्रारम्भ, चलते वानरो के भार से नत, समुद्र की तरंगों से अन्दोलित विस्तृत सेतुपथ वृक्ष द्वारा धारित वृक्ष की भौंति त्रिकूट द्वारा स्थिर हो रहा है। सेतु महापथ से जिसके पूर्वी और पश्चिमी दो भाग अलग कर दिये गये हैं और जिनके दोनों पार्श्व नत हो रहे हैं, इस प्रकार बीच में उठा हुआ सा आकाश नमित सा हो रहा है। आकाश के समान विस्तृत, मलय और सुवेल के तटों से लगा हुआ समुद्र की जलराशि पर सेतुपथ उदयाचल से लेकर अस्ताचल तक विस्तृत सूर्य के रथ के मार्ग की भौंति लग रहा है। पवन से अन्दोलित होते हुए सागर के उद्गर में सम्यक् स्थित हैं महान शिखर जिसके, ऐसा सेतुपथ अपने विकट पत्ता को फैला कर उड़ने का उपक्रम करने वाले पर्वत की तरह प्रतीत होता है। अनन्तर स्थूल, तुंग, विकट तथा सागर को दो भागों में विभक्त करने वाले सेतुपथ, रावण कुच को नाश करने वाले यम के स्थूल, तुंग और विकट हाथ की भौंति भासित हुआ। कठोर पर्वतों का बना होने के कारण भारवान् और दूर स्थित भी विकराल त्रिशूल जैसे सेतुपथ ने कठोर, साहसी और गौरव प्राप्त रावण के हृदय को छेद सा दिया। सेतुपथ के अधोभाग में वृक्ष दिखाई दे रहे हैं, जिनके सागर से गीले फूलों पर भौरे लगे हैं और भौरों के बोझ से पल्लव झुके हुए हैं।^{२६}

जिस प्रकार प्रवरसेन घटना की योजना में अपनी विराट कल्पना के

सहारे यथार्थ सजीवता प्रभुत्व करते हैं, उमी प्रकार वस्तुस्थिति को बड़े ही सूक्ष्म विवरणों में चित्रित करते हैं। 'कहीं शात समुद्र की सी आभा वाले स्फटिक शिलाआ से निर्मित पर्वतों के बीच में पड़े सेतुबन्ध के भाग, बीच में कटे से जान पड़ते हैं। हिमपात से छिन्न तथा मृदित चन्दन वृक्षों से सुगन्धित श्रेष्ठ मलय के शिखर सेतुपथ में लगे हुए भी स्फुट रूप से पृथक् प्रतीत हो रहे हैं। जाकर लाटे हुए जल समूह से आन्दोलित, ध्वनि से गुंजित सागर के कल्लोल, तट की तरह सेतुपथ को भी प्रावित कर रहे हैं। पर्वतों के वर्षण में समुद्र में गिरे, जल से भीगे कन्धे के बालों के भार से आक्रान्त कुछ उतारते हुए वनसिंह सेतुपथ के किनारे लगे दिखाई दे रहे हैं। पूर्व और पश्चिम के समुद्र भाग में उत्पन्न जलजीव सेतुपथ द्वारा अवरोद्ध गति होकर अपने स्थानों के पुनः दर्शन से वंचित हो रहे हैं। उतग शिखरों वाले, गैरिक के कारण ताम्रवर्ण के तथा स्वच्छ वस्त्र से भासित आन्दोलित निर्भङ्गे वाले, सेतुपथ के दोनों किनारों पर स्थिर मलय और सुवेल, मगलध्वजा की भाँति जान पड़ते हैं'। २७

§ १५—अनन्तर सेतुपथ से वानर सेना चल पड़ती है। 'सेतुमार्ग से पार करते हुए वानर सागर को देख रहे हैं—दो भागों में विभाजित होने से उसका विस्तार संमित सा हो गया है। और एक प्रस्थान और बड़वामुख से जलराशि शोषित कर ला गई है। शंख समूह से मिलित श्वेत कमल, मरकत मणियों से मिलित हरित पत्र-समूह और विद्रम जाल से मिले हुए जिसमें एकसंनय हैं ऐसे समुद्र के उत्तर तट से दक्षिण तट तक नल द्वारा बाँधे हुए सेतुपथ से, वानर सेना प्रस्थान कर रही है। पाताल में जिसका मून स्थित है ऐसे सब प्रकार से गौरव युक्त सेतुपथ को सागर धारण कर रहा है और उस पर प्रस्थान करती हुई सेना के भार से उनमें लगे पर्वत चूर्ण हो रहे हैं। खम्भे में बाँधे बनैले हाथी की तरह सेतुपथ में बँधा समुद्र उसके मध्य भाग को

चालित करता है और तरंग रूपी सूँडों को उस पर डालता है। पहाड़ों को ढोने से जिनके शरीर में पसीना के बूँद भूलकर रहे हैं ऐसे वानर धातुग्रो से मलीन अपने हाथों को सेतुपथ के पार्श्ववर्ती पहाड़ों के निर्माणों में धोते हुए दक्षिणी समुद्र को पार कर रहे हैं। और फिर वे रावण द्वारा ले आये गये सुवेल पर्वत के ऊपरी भाग में पहुँचे, यह नन्दन वन के योग्य वृक्षों का वन प्रदेश है तथा यहाँ पानी के भार से मन्थर और स्थित जलधर समूह से नमित लता समूह है' ।^{२८}

सुवेल पर्वत

§ १६—कवि उसी कल्पना के आधार पर इस पर्वत का चित्रण भी करता है। यहाँ भी स्थितियों की वैसी ही चित्रमयता है और घटनाओं में वैसी ही सजीवता है। प्रवरसेन ने सर्वत्र कल्पना के रूप-दर्शन रगों में ऐसा ही गतिशील स्पन्दन मिलता है। 'वानरों ने सुवेल पर्वत को सामने देखा। वह जैसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आक्रान्त करने के लिये अपने ऊँचे-ऊँचे शिखरों को बढ़ाये हुए है और ससार की शेष दिशाओं को व्याप्त करने के लिए दौड़ सा रहा है। वह ब्रह्माण्ड का विष्णु की भाँति, संसार के रक्षण के भार से व्यस्त विष्णु का शेष की तरह, शेष का सागर की तरह, समुद्र के विश्राम को सहने वाला है। वह पृथ्वी के धारण करने की शक्ति के साथ समुद्र को भरने के लिए प्रबल नदी प्रवाहों से युक्त, आकाश के विस्तार तथा उच्चता मापने तथा प्रलय काल के पवन के वेग को रोकने में समर्थ है। दिशाओं में दूर तक फैला हुआ, आकाश-तल को सुदूर तक ऊपर उठाये और पाताल को दूर तक झुकाए हुए सुवेल समीप में पायी जाने योग्य फूलों और वृक्षों से ढका है। पाताल तल तक जिसकी जड़ें सागर में गई हैं और जिस पर सरिताएँ प्रवाहित हो रही हैं, इस प्रकार आदि वराह के उछलने के समय ऊपर को स्थित

पृथ्वीमण्डल की तरह पर्वत को वानरो ने देखा । वह अपने अधोभाग में पाताल तल को भर रहा है, वज्र की नोक से खोद कर अटल रूप में स्थापित किया गया है और ऐरावत के कन्धों के खुजलाने में घिसे पाश्वों वाले आलान के खम्भे के समान है । पाताल तक फैले होने पर भी उसके मूल भाग को सर्पराज ने नहीं देखा है और उसके शिखर दोनों लोकों को मापने के लिये चढ़े हुए त्रिविक्रम द्वारा भी छुआ नहीं गया है । उसके तट-प्रदेश से टकरा कर सागर का जल उछल रहा है और मध्य भाग में सर्प लिपट रहे हैं । विष्णु द्वारा आश्लिष्ट मन्दराचल की भाँति उसको सूर्य की किरणों स्पर्श कर रही हैं । वह शेष के मिर को मणियों से घिरे अपने मून भागों से पाताल तल के अन्धकार को दूर करता है तथा अपने ऊँचे शिखरों में सूर्य के भटक जाने पर गगन में अंधेरा करता है । निकटवर्ती चन्द्र-मण्डल की रगड़ से उनको काली-काली चट्टानों पर अमृत की रेखा बनी हुई है और वहाँ चोंदनी के जल-कणों से ज्वालित होकर उठती हुई भाप से सूर्य के मार्ग का अनुमान लगता है । उस पर चोंदनी रातों में जब कभी विगल जल-भार वाले मेघ शिखर से आ लगते हैं, सँड़ से उखाड़ कर उठाये हुए कमल तथा किञ्चित् कीचड़ लपेटे हुए ऐरावत की भाँति चन्द्रमा शोभता है । सुवेल पर शिखरस्थ नदियाँ की घाराएँ हरे वनों के कारण दूर से दिखाई दे रही हैं और वहाँ पवन से छिन्न होने के कारण मुरझाये किन्तु चन्द्रमा के पृष्ठ भाग पर गिरने के कारण किसलय सफेद जान पड़ते हैं । बहुत बोझिल होने के कारण उसके अधोभाग को शेषनाग बड़े प्रयत्न से उठाये हुए हैं और प्रलयकाल के पवन द्वारा उखाड़ कर लाये पहाड़ उसके तट से टकरा कर चूर्ण हो गये हैं । वहाँ जल भरे मेघों से प्रेरित हो सुखी हुए बड़े-बड़े भैम आनन्द के साथ विश्राम का रहे हैं और मिहो द्वारा मारे हाथियों के रक्त से रजित शिला-तलों पर मोती के गुच्छे सूख कर चपक गये हैं ।^{१०९} कवि की इन कल्पनाओं में यथार्थ

चंचल समुद्र शीकर उसे छू नहीं पाते हैं। तीक्ष्ण कंटकों जैसे मणियों से तट बने हैं। यहाँ नग्न में जिनके मोती का गुच्छा लगा है ऐसे सिंह हाथियों के सिर पर चढ़े गरज रहे हैं। मेघों से विमर्दिन होकर छोड़े गये, वर्षा के कारण कोमल, कल्पलताओं पर सुखे तथा पवन द्वारा उड़ाये वस्त्र जिन पर हैं ऐसे वन इस पर्वत पर हैं। इसके तट पर आधे उखाड़े हुए हरे-भरे टेढ़े मेढ़े वृक्ष हैं और यह समुद्र की जलराशि पर आरूढ़ सा है। इसमें कुसुमगशि से पूर्ण एवं स्फटिकमय तट वाली नदियाँ बह रही हैं। इसके शिखरों के पवन से उछाले हुए भ्रान्तों से, कुछ गीली लगामों वाले तथा लार के फेन कणों से युक्त, सूर्य के रथ के घोड़ों के मुख धुल रहे हैं। रात में प्रज्ज्वलित शीषधियों की शिवाओं से आहत, मृग-चिह्न को प्रकट करता हुआ कानर पागे दिये के समान चन्द्रमा को, यह अपने गगन-गत तीन शिखरों पर धारण किये हैं। पृथ्वी को निष्कामन देने के कारण भीमाकार शून्यता ने युक्त, आदि वगह के द्वारा पंकगशि के निकल जाने से अत्यन्त गहग तथा प्रलय काल के सूर्य के ताप से शोषित समुद्र को इसकी नदियाँ भर रही हैं। इसकी कन्दराओं में मिहों का नाद गूँज रहा है। पता नहीं चलता यह किम दिशा से आ रहा है, इससे भयभीत होकर मृग लौट पड़े हैं और जंगली हाथियों ने कान खड़े कर लिये हैं। सुवेल समुद्र-तट के पवन से उड़ाये जलकणों से गीले बनों से हरा है, वन कमलों के परिमल में कुछ कुछ लाल है, हंस सरोवरों को मधुर निनाद से गुँजार रहे हैं और सिहनी ने मान ग्रहण किया है। समुद्र के एक भाग को निविष्ट किये हुए, भीमाकार शून्यता से युक्त और जिनकी ऊँचाई तथा पार्श्व भाग सभी विस्तृत हैं ऐसी भुवनत्रयी जैसी कन्दगाओं में सूर्य उदय भी होता और अस्त भी। पर्वत पर शिखरों से निकल कर थोड़े जल वाले और आगे बढ़ कर समुद्र के उछलने हुए जल से मिन कर बड़े जल वाले निर्भर उद्गम प्रदेश में मधुर हैं पर आगे चल कर खारे हो गये हैं।^{३०}

‘सुबेल पर्वत के सरोवरों में रत्नों की प्रभा से धोये जाते हुए, शेष के नत-उन्नत होने से कम्पित और भार से बोझिल कमल खिले हुए हैं; और मध्य प्रदेश में उगी हुई लताओं पर सूर्य के रथ की धूल पड़ी हुई है। आकाश की तरह नीले और पार्श्वों में जिनकी किरणें फैल रही हैं ऐसे मृग-मरीचिका से आवेष्टित सरोवरों के समान उसके मणिमय तट हैं जिनमें उमस से व्याकुल भैसे नीचे उतरने का रास्ता ढूँढ रहे हैं। वन के जीव अनुरूप स्थानों में अपना क्रोध प्रकट कर रहे हैं—कहीं हाथी तमाल वन रौद रहे हैं, कहीं रजत शिखर के खडो को सिंह अपने मुख से काट रहे हैं और कहीं काली चट्टानों से जगली भैसे भिड़ रहे हैं। वहाँ सिंहों के थपेड़ों से घायल हाथियों के मस्तक से निकले गज-मुक्ताओं के गुच्छे बिखरे हुए हैं और वन में लगी आग से डर कर भगे हाथियों के द्वारा नदियों के पार करने से तृणराशि कुचल गई है। इसके मध्य भाग पर सूर्य का रथ हिलता डुलता प्रयाण करता है, ताल के वनों में मार्ग न पाकर तारे उलझ पड़ते हैं और इस प्रकार यह समीप के भुवः लोक के ऊपर स्थित है। यह पर्वत विचित्र शिखरों से युक्त है जिनके आधे भाग तक ही सूर्य की किरणें पहुँचती हैं, चन्द्र किरणें तो कुछ भाग तक पहुँच पाती हैं तथा ऊपरी शिखर तक न पहुँच कर लौटा हुआ गरुड़ बीच के शिखर पर विश्राम लेता है। इस पर देव सुन्दरियों के वक्षस्थल पर धारण किये जाने योग्य रत्न हैं, और उनसे दक्षिण समुद्र का रत्नों की बाजार जान पड़ता है। यहाँ कमलानियों के दलों के सम्पर्क से सरोवरों को जल मधुर तथा श्याम है और घाटियों में बकुल वन के परिमल का गन्ध फैल रहा है। मध्याह्न के तीव्र ताप से तप्त हरिताल गन्ध से हरिण मूर्च्छित हैं और ताप से घनाभूत समुद्र के जल के लवण-रस के स्वाद के लिये यहाँ भैसे तटीय शिलाओं को चाट रहे हैं। वह अपने ऊँचे रजत शिखरों से नक्षत्रों को छू रहा है। पड़ा हुआ मुक्तास्तवक सिंहों से मारे गये हाथियों के रुधिर से अरुणाम हो रहा है। असीम धैर्य के कारण इसने कितने प्रलयों को सहा है और

इसके सागर से लगे हुए मरोवरों में शङ्ख प्रवेश कर रहे हैं। मणिमय विवरो में प्रवेश किया हुआ जल श्याम-श्याम सा जान पड़ता है। यक्षों के सुन्दर क्रीड़ागृह हैं। काम के वाणों से परिचित गन्धर्वों को निद्रा आ रही है। और यहाँ के सौगभपूर्ण मजल वनों में दावाग्नि नहीं लगती। इसकी कन्दराओं में जल त्रिफला में श्यामल है, इसका मध्य भाग स्वच्छ रजत प्रभा से भासमान है। यहाँ विषवृक्षों की उग्र प्रभा से जीवों का नाश हो रहा है। ऐसा यह पर्वत रावण को आनन्द देने वाला है। पुगनी विषनाशक लताओं के लिपटने से चन्दन वृक्षों की शाखाओं को विषधरो ने छोड़ दिया है और दूमरी ओर जाते हुए सपों की मणियों की प्रभा से वृक्षों को छायाएँ उद्भासित हैं। स्फटिक मणियों से पृथ्वीतल घवलित हो गया है। सुर-सुन्दरियों का मधुर आलाप सुनाई दे रहा है। यह प्रलयकाल की उमड़ी जलगाशि से भी पूर्णतया धुल नहीं पाता। इसके विवरो से चन्द्रमा की भाँति रजत की शिलाएँ निकलती हैं।^{३१} प्रवरसेन का यह सारा वर्णन उनकी कल्पना के अलौकिक सौन्दर्य से उद्भासित है। यहाँ प्रत्येक स्थिति कल्पना के आदर्श से अपना आकार-प्रकार ही नहीं रंग-रूप भी ग्रहण करती है।

‘रमणीय चन्द्र-ज्योत्स्ना इस सुवेल पर्वत का आवरण पट है। निकटवर्ती वृक्षों से कन्दराएँ रम्य हैं। श्रेष्ठ नक्षत्रों से इसके श्याम शिखर उज्ज्वल हैं। वहाँ जंगली बावलियों के कीचड़ से निकले हुए सुअर आक्रान्त होकर फिर उसी में घुस जाते हैं, इस प्रकार विफल प्रयास सिंह ताड़ित से जान पड़ते हैं। सुवर्णमय वृक्षों के गुच्छे मरोवर के जल पर गिर कर डूब रहे हैं। सजल नील मेघ जैसी लावण्यमयी, नक्षत्रों के ग्रंथन से जिसकी मेखला की रचना हुई है ऐसी नभश्री को अपने शिखर रूपी बाहुओं से ढाँकता हुआ सुवेल, पीछे आती हुई दिशा रूपी प्रतिनायिका के क्रोध को दूर करता है। यह दिशाओं को धारण

करने वाला राक्षस रमणियों के लिये सुखद है। सूर्यकान्त मणि जैसा सूर्य को छूता हुआ सा, अन्धकार रूपी नरपति के राजभवन के समान है। बलि की पृथ्वी का हरण करते हुए विष्णु, मेघ तथा प्रलयकाल के समुद्र भी जिसे नहीं भर सके, उस भुवन को यह सुवेल अपने आकार से भर रहा है। समीपवर्ती शिखर की वनाग्नि से आक्रान्त, ज्वालमाल के भीतर से निकलती हुई किञ्चित लाली लिये हुए किण्वो वाले, अस्त होने से सूर्य को यह पर्वत धारण किये हुए है। जिन्होंने अपने घर को छोड़ना स्वीकार नहीं किया है ऐसी नदी रूरी पुत्रियों के लिये, बड़वानल के सन्ताप से तटों को विदीर्ण करने वाले सागर के भारी तरंग प्रवाह को यह सहन कर रहा है। रात के समय पद्मराग मणि की शिलाओं पर पड़ती दुइज के चोंद को छाया, इस पर जान पड़ती है मानों सूर्य के घोड़ों की टापों से चिह्नित मार्ग है। टेढ़ी-लताओं के जाल से आच्छादित, आतप के खंड के समूह के समान ऊँची-नीची सोने की शिलाएँ पड़ी हैं। आतप के भय से अधःप्रदेश से उद्विग्न हुए सोंपों ने सूर्य के आलोक ताप से रहित ऊपर स्थित भागों में बसेरा लिया है। सूर्य के नीचे स्थिर रहने से मध्य प्रदेश के वनों की छाया ऊपर को फैलती है। इसका ऊँचाई में पर्याप्त तट प्रदेश, दाँतों के विस्तीर्ण मध्य भाग से मुख के विस्तार के सूचक, ऐरावतादि हाथियों के परिघ जैसे दाँतों से चिह्नित है। कल्पवृक्ष की डालें इकट्ठा होकर फिर बिखर जाती हैं ; इसके मध्य भाग में घूमने वाले देव-हाथियों के कनपटी खुजलाने से छाल छिल जाने से ये पीली-पीली हो गई हैं और इनके पल्लवों की लाली भी उनके सूँड़ की निश्वाम की उष्णता से हल्की हो गई है। उस पर स्थित चन्द्रमा का मृग रूरी कालिम चिह्न, मणिमय मध्य भाग की आभा से धवलित हो गया है और पार्श्व भाग में आने पर पिछले भाग पर गिर रहे निर्भर से उसका मण्डल उलट गया है। इस पर स्थित वनराजि समुद्र के समीप होने से श्यामल हो गई है, समुद्र के उछले हुए जल से उसके फूल धुल गये हैं और सूर्य से आलोकित हो गई

हैं।^{३०} सेतु-निर्माण के प्रसंग में चित्रों में तीव्र गति और आन्दोलन था, और इसमें स्थिति का विचित्र तथा रगीन दृश्य है। अलौकिक योजना तो प्रवरसेन का सामान्य गुण है।

‘इम पर स्थित मार्ग पर जब सुग-गज नीचे उतरते हैं तब भ्रमर साथ होते हैं और जब ऊपर चढ़ते हैं तब नहीं रहते, क्योंकि दूर ममभ ऊँचे भाग से वे लाट आते हैं। ढकी हुई अग्नि के समान स्थानों में रत्न छिपे हैं, जिनके निकलते हुए थोड़े-थोड़े प्रकाश में अन्धकार किंचित दूर हो रहा है। इस पर बनैले हाथियों का युद्ध हो रहा है, जिसे मुड़ कर वृद्ध मुवा दिये गये हैं, उलभ कर लिपटने के कारण लताएँ पुजीभूत हो गई हैं और आपस के प्रहारा से परिघ जेमे उनके दाँत टूट गये हैं। मन्द्राचल के चालन से उछला हुआ सागर का अमृतमय जल अब भी इसके विस्तृत मणिमय विवरों में निहित है। विषम रूप में लगी पूछों वाले राम के बाण वज्र की नोकों से खडित पत्त के शेष भाग के समान समुद्र के संचोभ से उसके तटों में लगे हैं। वहाँ पर कुम्भों पर आक्रमण किये सिहों के कन्धों के बाल जंगला हाथी अपनी मँड़ों से उखाड़ रहे हैं और सहचरी की गुंजार मुन कर उधर ही को मूड़े हुए भौंगों में आश्रित लता-पुष्प चंचल हो रहे हैं। वहाँ दिवस के आगमन से अचमत्कृत सी, कुछ-कुछ सूखी हुई तथा हिम की तरह शीतल चन्द्रकान्त मणि-शिलाओं पर पवन के समर्क से किंचित शैवाल कोंप रहा है। जिससे अद्भुत गंध उठ रही है तथा नलिनी दलों पर ढलने वाले जलकणों जैसी कांति वाला पारद रस मरकत की शिलाओं पर लुटक रहा है। प्रातःकाल ऊर्ध्वगामी मण्डल के भार से आकुल से षोड़ों वाले सूर्य इस पर आरूढ से होते हैं और सन्ध्या समय ऊपर के समतल पर सम मण्डल से चल कर इसपर से उतरते से हैं। इस पर्वत पर, उसके मध्य भाग के विषम प्रदेशों से बचने के लिये चक्कर काटते

हुए वनचर, सामने आकाश में चलती तारिकाओं से प्रकाश पाकर अपने रास्ते को पार करते हैं। सुवेल पर्वत के शिखर मार्ग से मिल कर चलता हुआ चन्द्र-बिम्ब पुष्पो की अंजलियों से अग्र भाग में ताड़ित होता है और प्रियतम से विरहित किरात युवतियों के उच्छ्वास से मलिन किया गया है। यह आकाश की भाँति ही ग्रह-नक्षत्रों से शोभित है और सीमा रहित है। अपने शिखरों से प्रलय पवन के वेग को रुद्ध कर व्यर्थ बनाने वाला है। अपने रत्नमय शिखरों की लाली से बादलों को लाल-लाल सा बनाने वाला है और इसकी कन्दराओं के मुख में सिंहा की भीम गर्जना फैल रही है। इसमें दिशाएँ समाप्त सी, पृथ्वी क्षीण सी, आकाश लीन सा, समुद्र अस्त सा, रसातल नष्ट सा और समार स्थित सा है। जूये के टेढ़े होने से टेढ़े हुए कन्वो वाले, भीत अरुण से लौटाये जाने के कारण जिनके कन्धों के बाल नाक पर आ गये हैं ऐसे रवि के तुरग इस पर वक्र होकर चलते हैं। सुवेल पर्वत पर रात में नक्षत्र लोक वन के समीप पुष्प समूह के समान जान पड़ता है, पर प्रातः-काल प्रकाश से तारों के नष्ट हो जाने से जान पड़ता है वन के पुष्प तोड़ लिये गये हैं।^{३३} इन वर्णानों की सूक्ष्म और विशद योजनाओं से कवि की कल्पना के साथ ही उसकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का भी पता चलता है। प्रवरसेन की कल्पना यथार्थ के सूक्ष्म और व्यक्तिगत पर्यावेक्षण पर आधारित है।

‘वहाँ रात में चन्द्र के स्पर्श से प्रकट चन्द्रकान्त मणि के जल के निर्भरो में ज्वालित जंगली भैसे अपने निःश्वास से कोमल मेघों को उड़ाते हुए अपनी निद्रा को पूर्ण करते हैं। सामने के मार्ग के अवरुद्ध होने से शिला मिट्टी पर तिरछे होकर चलने वाला चन्द्र-बिम्ब इस पर्वत के शिखरों पर चक्कर काटता है और उसकी किरणें कभी महासर्प की फणि मणि की ज्योति के आघात से नष्ट सी हो जाती हैं।

गताल तल को छोड कर ऊपर उमड़ा हुआ, प्रलय के समान उत्पात से कम्पित और अन्दोलित दक्षिण समुद्र इसके तट को लावित करता है, पर आगे बढ़ कर दूसरे समुद्रों में नहीं मिल पाता। वहाँ अकुंश जैसे नखाग्रों से विद्ध कर शब्द करते हुए बादलों को नीचने वाले सिंह घूमते हैं। जिनके कन्धों के बाल सुव पग पड़े विद्युत् बलय से कुछ-कुछ जल गये हैं। निर्भर में स्नान करने में सुखी। फिर भी धूप से व्याकुल हो जगली हाथी अपने कन्धे में गड़े हुए हरिचन्दन के वृक्षों की छाया में खड़े हैं। यहाँ सूर्य के शीघ्रगामी घोड़ों का मार्ग दिखाई देता है, जिसके मध्य भाग की वनलताओं पर गेँगे गिरे हुए हैं, भ्रमर भ्रमणशील हैं, और उच्छ्रवाम के पवन से फूलों का पराग आर्द्र हो गया है। शोषित होकर टले हुए वृक्ष-मसूह वाला, दक्षिणायन और उत्तरायण दोनों कालों में आकाश में आने जाने से घिसा सूर्य का मार्ग इसके एक ही शिखर पर समाप्त हो जाता है। इसने अपने पूरे विस्तार से पृथ्वी को पूर्ण कर दिया है, समाप्त को आक्रान्त कर लिया है और आकाश को व्याप्त कर चांगों और फैला हुआ है। यहाँ अपने गन्ध में भौरों को आकृष्ट करने वाले सुन्दर सजे, परस्पर विरुद्ध भी ऋतु, एक ही विशालकाय स्तम्भ में बंधे सुरगजों की तरह निवास करते हैं। निकटवर्ती गवण के भय में उद्विग्न, शिखरों के अन्तराल में लगे तिरछे मण्डल वाले सूर्य छुड़ा कर भागते जान पड़ते हैं। यहाँ जुगाली को भुले हुए, किन्नरों के मन भावने गीतों से सुखी होकर खिलती भी अँखों वाले हरियों का गोमांच बहुत देर बाद पूर्वास्था को प्राप्त होता है।^{१०४}

प्रवरसेन के इन वर्णनों में कहीं कल्पना अपनी कोमलता में मजीब हो उठती है और कहीं स्पन्दनों में गतिशील हो जाती है। जहाँ कवि को वैचित्र्य की रेखाओं और रंगों में ही प्रस्तुत करता है, वहाँ भी

कलात्मक सौन्दर्य रक्षित है।—‘यहाँ तीर पर विचरने वाले शोभित और जिनमे क्रुद्ध वनगज लडाई कर रहे हैं ऐसे सरोवरों में सूर्य की किरणों के दर्शन होने पर भी चन्द्र-मण्डल के समीप कुमुद वनो का विकास बन्द नहीं होता है। मधुमथ के करवट बदलने के समय विपुल भार से बोझिल शेषनाग, पास के पर्वतों को अपनी मणिप्रभा से उद्रासित करनेवाले अपने विकट फण को इस पर्वत में लगाकर सहारा लेते हैं। विवर के समान मृग की छाया वाला तथा दोनो ओर किरणों को फैलाने वाला चन्द्रमा शिखर के निर्भरो को छूकर भिन्न मण्डलों वाला जान पड़ता है। जिसके मध्य में समान रूप से बिना अन्तर के मिले हुए तीनों भूमण्डल, त्रिक्रम के स्थूल और उन्नत भुजाओं में तीन वलय जैसे जान पड़ते हैं। वहाँ सूखे हुए वृक्षों से सूर्य का, नवीन शीतल वनपक्ति से चन्द्रमा का मार्ग जान पड़ता है, पर वनो के बीच में तारको के मार्ग का पता नहीं चलता। यहाँ सुखते हुए, सुरभित तथा शिला-तल पर बिखरे और कुचले हुए तमाल के किसलयों को जिनकी गन्ध अलकों में भी लगी है पवन सुरसुन्दरियों के कानों से अलग करता है। विपरीत मार्ग से आये हुए, ऊपर मुख करके ऋनों के जल को पीये हुए तथा कन्दराओं के जल को पीने के लिये तत्पर जलधर पर्वत के विकट उदरस्थ पवन से आहत होकर पुनः आकाश में जा लगते हैं।’ प्रवरसेन के इन विस्तृत वर्णनों में उद्दीपन की श्रृंगारिक सामग्री ही आई है—‘छिपे हुए जगली हाथियों से ढहाए गये तट के आघात से मूर्च्छित सिंहों के जागने के बाद की गर्जना से व्याकुल होकर किन्नर के मिथुन आलिगन में बँध गये। और ऊँचे तट से गिरते निर्भरों से मुखरित कृष्ण मणि-शैलो में विहार करनेवाली मुर-युवतियों का अनुराग यहाँ शिथिल नहीं होता।’^{१३५}

काल-वर्णन

§ १७—दसवेँ आशवास मे कवि सायंकाल और रात्रि का वर्णन करता है। 'कमलिनी को खींचते हुए ऐरावत की कमल के बेसगे मे
 नृत्यास्त धूसरित सँड़ (कर) के समान दिवस की कान्ति को
 खींचते हुए सूर्य का हरिताल का मा पीला-रीला
 किरण-समूह संकुचित हो रहा है। अम्यष्ट दशों वाली, क्षीण होते हुए
 आतप मे दीर्घाकार हुई तथा खींचकर चढाई हुई सी वृत्तों की छाया
 क्षीण सी हो रही है। हाथी के मेन्दूर लगे मस्तक की सी कान्ति
 वाला, समुद्र मन्थन के समय मन्दार पर्वत के गैरिक से रंग उठ
 नागगज वासुकि के मण्डल की तरह गोल सूर्य का मण्डल विद्रुम की
 तरह किंचित लाल सा दिखाई दे रहा। दिन की एक हल्की आभा
 शेष रह गई है, दिशाओं के विस्तार क्षीण से हो रहे हैं महीतल छाया
 मे श्यामलित हो रहा है। और पर्वतों की चोटियों पर थोड़ी-थोड़ी धूप
 शेष रह गई है। धूलि रहित ऐरावत का रजकरण से रहित दिवस
 अस्ताचल पर जा पहुँचा है, और वहाँ से जैसे किसी पर्वत से गैरिक
 शिखर गिरता हो इस प्रकार दिनकर का विम्ब गिरता सा दिखाई पडता
 है। प्र० भा०। वानरो के पैरों से उठी धूल से समाक्रान्त अस्त होता
 सूर्य और प्रतापहीन रावण समान दिग्वाँ पड़ते हैं। सूर्य का आधा
 मण्डल पच्छिम सागर मे डूब सा रहा है, शिखा आदि उच्च स्थानों पर
 धूप बची है; पृथ्वीतल को छोड़ता हुआ दिवस आकाश में बहता हुआ
 सा क्षीण होकर पीडित सा हो रहा है। ननैले हाथी द्वारा उखाड़े पड़े
 वृत्त की भाँति दिन से उखाड़े और आँवे पड़े सूर्य के किरण समूह
 शिखा समूह की तरह ऊपर दिखाई पड़ता है। दिन का अवसान
 होने पर रुधिरमय पंक सी सन्ध्या लाली मे सूर्य इस तरह डूब गया
 जैसे अपने रुधिर के पंक मे रावण का शिर-मण्डल डूब रहा हो।
 भ्रमरों के भार से झुके हुए तथा पके केशरों के गिरते हुए परिमल कणों
 से भार-युक्त से कमल, सूर्यास्त होने पर, एक दूसरे से मिले हुए भी

दूर-दूर हैं। पश्चिम दिशा में फैला हुआ दीर्घ किरणों का प्रभा-समूह धूलि से पूर्ण काल के मुख के द्वारा दिवस के घसीटे जाने का मार्ग सा जान पड़ता है। ऊपर से जिसका मण्डल खिसक पड़ा है ऐसे सूर्य के पृथ्वीतल पर गिरा हुआ सा हो जाने पर उछलते हुए आतप में लाल-लाल सी सन्ध्या की लाली में छुट-पुट बादलों के टुकड़े निहित हो गये हैं। अस्ताचल के शिखर पर सन्ध्या का राग, मेरु के तट में लगे कनकमय पंक के कारण कुछ-कुछ लाल, टेढ़े होकर घूमने सूर्य के रथ से गिरकर फहराये हुए ध्वज की तरह जान पड़ती है। धवल और किंचित लाल, हाथी के रक्त से भीगे सिंह के कन्धों के बालों की सी कान्ति वाला सन्ध्या की अरुणिमा से रंजित कुमुद-समूह पवन के आन्दोलन से चपल हो विकसित हो रहा है^{३६}। पिछले वर्णों में कवि का सूक्ष्म पर्यावेक्षण का उल्लेख किया गया है, परन्तु उसका उपयोग उनमें कल्पनाओं की आदर्श योजना में किया गया था। परन्तु यहाँ कवि प्रकृति के यथार्थ रंग-रूप का कलात्मक चित्र प्रस्तुत करता है। स्थितियों की योजना और रंगों के छायातप प्रस्तुत करने में प्रवरसेन के साथ केवल बाण का नाम लिया जा सकता है।

§ १८—आगे के चित्रों में रंगा के साथ यथार्थ प्रकृति कितनी सुन्दर उपस्थित हुई है। 'कहीं-कहीं जिसमें सन्ध्या राग लगा सा है, दस अन्धकार का प्रवेश दिशाओं को धूसरित करनेवाली अन्धकार से मुक्त दिन डूबने के समय की छाया अस्पष्ट सी लग्नी होती जाती है। सन्ध्या समय की आतप से मुक्त, जलकर बुझे हुए अग्नि के स्थान की तरह डूबे हुए सूर्य वाला आकाश तल प्रलय-काल का रूप धारण कर रहा है। दिन के बचे हुए आकाश के समाप्त हो जाने पर, जिसका प्रकाश सन्ध्या राग से अब तक रुका हुआ था ऐसे दीप अन्धकार से शोभित होकर प्रकाश बिखेर रहे हैं। चकवा चकवी या जोड़ा

त्रिछुड गया है, वे अपने राग रूपी बन्धन को टूट से रहें हैं, उनका सुख नदी के दोनों तटों से दृष्टि मिलाना मात्र रह गया है और उनका जीवन हुकार मात्र पर निर्भर रह गया है। तभी सन्ध्या के विपुल राग को नष्ट कर तमाल-गुल्म की भौंति काला-काला अन्धकार फैल गया, जैसे काचन तट-खंड को गिरा का कीचड़ लपेटे ऐरावत हाथी के देह खुजलाने का स्थान हो। सर्वत्र समान रूप से फैला हुआ अन्धकार आंखों के प्रसार का अवरोध करता हुआ निकट में विरल, थोड़ी दूर में अधिक और दूर में और भी घना सा प्रतीत हो रहा है। वृक्षों की स्थिति का भान उनके फूलों की गन्ध मात्र से हो रहा है, क्योंकि उनकी विस्तृत शाखाओं में अविरल अन्धकार व्याप्त है, अंधकार से व्याप्त होकर मनोहर पल्लव मलिन हो गये हैं और फूल पल्लवों में स्थित भर हैं। सूर्यास्त के अनन्तर घोर अन्धकार फैल रहा है, उसमें दिशाओं की भिन्नता दूर हो गई है, समीप में भी आँख का प्रकाश व्यर्थ सा है, और स्मृति अथवा दीपालोक आदि के द्वारा पृथ्वीतल का अनुमान अथवा साक्षात्कार किया जा रहा है। यह अन्धकार जड़ जमाये हुए वृक्ष आदि की तरह उन्मीलित न होने योग्य जान पड़ता है, पृथ्वी आदि की भौंति खने जाने योग्य अर्थात् प्रकाश द्वारा दूर किये जाने योग्य होने पर भी ऊबड़-खावड़ सा है और एकत्र होने पर भी चन्द्रमा द्वारा भेद्य है। पृथ्वीतल में सघन होकर व्याप्त अन्धकार-समूह वस्तु-समूह को बहन सा कर रहा है, पीछे से प्रेरित सा कर रहा है, आगे रोक सा रहा है, पार्श्व में स्थित होकर यन्त्रित सा कर रहा है और ऊपर स्थित होकर जगत् को बोझिल सा कर रहा है^{३७} फैलते हुए अन्धकार का कितना यथार्थ और स्वाभाविक चित्र यहाँ उपस्थित किया गया है। आदर्श और वैचित्र्य के मूलक सौन्दर्य के सृष्टा प्रवरसेन अपनी सहज तुलिका से प्रकृति को इतने कोमल रंगों में उतार सके हैं यह आश्चर्य की वस्तु है।

§ १६—मिटते हुए अन्धकार के साथ फैलती हुई चाँदनी के वर्णन में कवि इसी प्रकार के पर्यावेक्षण का परिचय देता है—‘महीतल के एक चन्द्रोदय भाग में शशि किरणों से मिटते हुए अन्धकारों वाली पूर्व दिशा प्रलय काल में धूम रहित अग्नि में जलते हुए सागर की भोंति प्रत्यक्ष हो रही है। बाल चन्द्रमा के कारण परिपाण्डुर पूर्व दिशा में चन्द्र के क्षीण आलोक के पश्चात् उदयाचल पर ज्योत्स्ना बिखर रही है और अन्धकार को दूर कर स्वच्छ प्रकाश फैल रहा है। चन्द्र-बिम्ब नवीन कमल के भीतरी भाग की तरह किंचित ताम्रवर्ण और केसर की तरह सुकुमार किरणों को फैला रहा है, लेकिन वह निकटस्थ अन्धकार को विरल ही करता है नष्ट नहीं कर पाता। उदित होने के अनन्तर, पश्चिम की ओर मुख करके स्थित ऐरावत के दाँतो के खण्ड की तरह वर्तुल चन्द्रमण्डल उदयगिरि के शिखर पर स्थित हुआ अन्धकार मिटा कर धवल आभा वाला हो गया है। चन्द्र-किरणों द्वारा अन्धकार के नष्ट होकर तिरोहित हो जाने पर आकाश में तारक-समूह मलिन हो गया है। और इस प्रकार आकाश फूलों ने बिछे हुए नीलमणि के शिला-तल की भोंति जान पड़ता है। प्र० भा०। निशाकर ने अपनी सबल हुई किरणों से अन्धकार को उखाड़ फेका है और अपने उदय-कालीन मुग्ध-भाव को छोड़ कर प्रौढ तथा धवल हुए उसने नभ को पार करने की क्षमता प्राप्त कर ली है। शिल्पी की तरह चन्द्रमा ने, पूर्ववत् बिखरे हुए शिखर-समूह, फैले हुए दिशा-मण्डल तथा व्यक्त हुए नदी प्रवाह वाले पृथ्वीतल को मानो अन्धकार में गढ़ कर उन्कीर्ण सा कर दिया है। चन्द्रमा की किरणें अन्धकार समूह के प्रचुर होने पर भी अलग अलग स्थिर की हुई वृक्ष छायाओं का नाश करने में असमर्थ हैं, फिर भी उनके चारों ओर घेरा डाले पड़ी सी हैं। चन्द्र तो कुमुद में केवल छिद्र-मात्र करता है, पर खुजते हुए दलों वाले कुमुद को एक दूसरे की अपेक्षा न करने वाले कर-चरण आदि के आघात से भौंरे ही पूर्ण से विकसित करते हैं। क्या अन्धकार समूह

को चन्द्रमा ने पूरी तरह पोंछ डाला ? या स्थूल कर्णों से एक साथ ही ढकेल दिया ? अथवा खण्ड-खण्ड कर डाला ? या चारों ओर बिखेर दिया ? या निर्दयता से पी डाला है ? घनीभूत कीचड़ के समान, हाथ से पकड़ने योग्य (निविड) तथा दिशाओं को मलिन करने वाले अन्धकार को मानो चन्द्र ने उदित होकर उखाड़ कर आकाश को साफ कर दिया है । कुछ-कुछ स्पष्ट दिखाई देने वाले वनों को चाँद ने व्यक्त सा कर दिया । वृक्षां की शाखाओं के गन्धों में किरणों का पात हो रहा है और इस प्रकार वन का दुर्दिन रूपी अधेरा मिट गया है । वृक्षां के फूलों को मृदित करने वाले, दिग्गजों की मददगार तथा कमल वनों का आस्वादन करने वाले भारे कुमुदों के कोषों पर टूट रहे हैं । मरोवर का पानी पाते समय दिग्गज की सँड़ की तरह दार्ढ्यकाय होकर लटकता सा चन्द्रमा का किरण-समूह गवान् के मार्ग से नीलमार्ग के कर्ण पर गिर रहा ? १२८

‘चन्द्र रूपी धवलसिंह द्वारा अन्धकार-समूह रूपी गज समूह के भगा दिये जाने पर उनके कीचड़ से निकले पंकिल चरण चिह्नों जैसे भवनों के छाया समूह लम्बे-लम्बे दिखाई दे रहे हैं । तिग्छे भाग से ऊपर की ओर बढ़ते हुए बिम्ब वाला चन्द्रमा आकाश में ऊपर चढ़ता जा रहा है । उसकी किरणें भ्रूखों के मार्ग से पूरी तरह घग में प्रविष्ट होकर पुनः बाहर निकल रही हैं तथा वे गुफाओं के अन्धकार को पाड़कर छाया के प्रसार मिटा रही हैं । ऊपर के भ्रूखे से घर के भीतर प्रविष्ट कर ज्योत्स्ना, पुंजीकृत चूर्ण के रंग जैसे पीताशुक् के अन्नक के समान रंग वाले दीप-प्रकाश से मिलकर क्षीण सी हो गई है । प्र० भा० । चन्द्र-किरणों से घिरे वृक्षां की चोटियों पवन से किंचित काँप रही हैं और उनकी छायाएँ डालों के ऊपर-नीचे आने से काँप रही हैं; ऐसे वृक्ष ज्योत्स्ना के प्रवाह में पड़कर बहते से जान पड़ते हैं । दीपों के

प्रकाश से मिली हुई जल में घिसे चन्दन जैसी कान्तिवाली चन्द्रिका शाखादि'के अन्तराल में स्थित अन्धकार को दूर करती हुई विषम सी जान पड़ती हैं। घनीभूत चन्द्रिका से अभिभूत आकाश अपनी नील आभा से रहित है, चन्द्रमा उसमें ज्योत्स्ना में प्लावित हो रहा है और तारक क्षीण से हो गये हैं। आकाश के मध्य में स्थित चन्द्रमा द्वारा स्पष्ट शिखरो और बन्धो वाले पर्वतो का छाया-मण्डल हर लिया गया है और व धवल-धवल से जान पड़ते हैं। जिन स्थलो में वृद्धो की छाया के कारण अन्धकार फैला है वहाँ विवर जानकर कोई नहीं जाता, और ज्योत्स्ना से भरे विवरो में प्राणी विश्वस्त होकर चले जाते हैं'।^{३३} चॉदनी के छाया-प्रकाश के साथ वस्तुओं की धुँधली स्थितियों का चित्रण प्रवरसेन ने जिस सफलता से किया है, अन्यत्र पाना कठिन है।

§ २०—कवि ने बारहवें आश्वास के प्रारम्भ में प्रभात का वर्णन किया है। 'गैरिक से लाल हो उठे पर्वतीय तट की भौंति रात्रि का अन्तिम भाग बीत रहा है। वह अरुण की आभा से प्रातः सन्ध्या आक्रान्त होकर किंचित ताम्र वर्ण का हो गया है और पृथ्वी पर गिरे हुए प्रथम जल की भौंति मलिन चन्द्रिका से पिछला प्रहर आहत भी है। अरुण की शिखा से पृथ्वीतल पर चन्द्रिका हटाई गई है, अतएव क्षीण हुई तथा धूसर वर्ण वाली चलती हुई वृद्धो की छाया का भान भर होता है। इस समय कुमुद वन मुँद रहा है, चन्द्रमा का मण्डल अर्धमलित होकर प्रभाहीन हो रहा है, रात्रि की आभा नष्ट हो गई है और अब अरुण की आभा से पूर्व दिशा के तारे मन्द पड़ रहे हैं। तिमिर से मुक्त, पल्लव की भौंति किंचित ताम्र-वर्ण वाले तरुण अरुण की आभा से युक्त बाल मेघो वाली पूर्व दिशा का आकाश जान पड़ता है खण्ड-खण्ड हुए मैन्सिल के चूर्ण से विचित्र लगने वाला मणि-पर्वत का अर्ध भाग है। हाथी के चरण के पड़ने से बने

हुए गड्ढे में भरे हुए वर्षा के जल के रंग वाला चन्द्रमा अरुण के द्वारा धकिया कर आगे बढ़ाया हुआ आकाश से हटा हुआ अस्ताचल शिखर पर पहुँच गया है। पवन से वन आन्दोलित हो रहा है और पक्षियों के स्फुट और मधुर स्वर से निनादित है। उसमें मधुकर गूँज रहे हैं और वृक्षां के पत्ते किरणों के स्पर्श से तुद्दिन कणों के सूख जाने से हल्के हो गये हैं। अरुण से आक्रान्त होकर स्थान च्युत हुआ, अपने अक्रम में स्थित विपुल ज्योत्स्ना से बोधिन चन्द्रमा अपनी उखाड़ी हुई किरणों का अवलम्ब ग्रहण कर अस्ताचल के तट से गिर गया। रात्रि में किसी किसी तरह प्रियतम के विरह दुःख को सहकर चक्रवाक के शब्द करने पर उसकी ओर बढ़ रही है मानों उसका स्वागत करने जा रही है। चन्द्रमा से सम्बद्ध होकर अस्ताचल का पार्श्व भाग अधिक दीप्त औषधियों की शिखाओं से दन्तुरित हो गया है और उसमें अधिकता से द्रवित होती हुई चन्द्रकान्त-मणि की धाराएँ बह रही हैं'।°°

‘आकाश से नक्षत्र दूर हो गये हैं और ज्योत्स्ना अरुण की शिखाओं से गरदनिया कर टकेन दी गई है। इस प्रकार आकाश चन्द्रमा के साथ अस्त होता है और उदयाचल में उठता हुआ सा जान पड़ता है। स्थान-च्युत हाथी की तरह, सन्ध्या में आतप रूमी कुछ कुछ ताम्र वर्ण के गैरिक पंक से पंकिल मुख वाला दिवस रात्रि भग घूम कर और कमल-सरोवरों का संक्षुब्ध कर लौट आया। विकसित कमल आये हुए सूर्य का अभिनन्दन सा कर रहे हैं और उसकी अगवानी के के लिये अरुण से जगायी दिवस-लक्ष्मी के चरण-चिह्नों की सूचना सी दे रहे हैं। प्रदोष के समय समुद्र के जल में विश्वस्त होकर एक-एक करके अलग हुए शंख शिशु प्रभात काल में कातर हुए से जल में प्रतिबिम्बित चन्द्र प्रतिभा को इस तरह घेरे हैं जैसे उनकी माँ हो। विकसित होते कमलाकरों की मचलित परिमल के कारण मीठी-मीठी

गंध, चिरकाल तक निरोध के कारण मुख मात्र में निकलने का मार्ग पाकर पौल रही है, पर कम नहीं होती'।^{४१} प्रवरसेन में यथार्थ स्वाभाविक और विचित्र आदर्श का अद्भुत संयोग हमको मिलता है।

चतुर्थ प्रकरण

बाणभट्ट

§ १—प्रकृति वर्णन के बाणभट्ट अनुपम चित्रकार हैं। चित्रों की इतनी विस्तृत और क्रमिक योजना अन्य किसी कवि ने प्रस्तुत नहीं की है। जैसा पिछले भाग ने कहा गया है यह गद्य-कथा-चित्रकार काव्य की अपनी विशेषता है। महाकाव्य के कवियों में कालिदास और प्रवरसेन ने एक सीमा तक क्रमिक चित्र उपस्थित किया है, विशेष कर प्रवरसेन के वर्णनों में हम देख चुके हैं। परन्तु प्रकृति के विस्तृत खंड को लेकर उसका रूप पूर्णता के साथ पगठक के सामने चित्रित करने में बाण की प्रतिभा अपने आग में अकेली है। इसके साथ प्रकृति के रूपकार और रंगों की स्थितियों को प्रत्यक्ष करने में भी बाण ने चित्रकार की कुशल तूलिका का प्रयोग किया है जिसमें स्थितियों का सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप और रंगों का हल्का गहरा छायातप बढ़ा ही कलात्मकता में उतर सका है। रंगों के संयोग में और उसके छायातपों को दिखाने में बाण की समानता संस्कृत में अन्य कोई कवि नहीं कर सकता। बाण में अलंकारप्रियता भी पाई जाती है, परन्तु वर्णन-विस्तार की सघनता में वह खो जाती है। बाण में कथानक में प्रकृति का स्थान

स्वाभाविक है, और कभी-कभी प्रकृति घटना-स्थली बन गई है। बाण के दोनो ग्रंथो मे प्रकृति का अत्यधिक विस्तार है, इस कारण यहाँ विस्तार भय से सन्निहित रूप मे सुन्दर वर्णन ही संकलित किये जायेंगे।

ग्राम्य प्रकृति

§ २ — अन्य महाकाव्यो आदि मे गाँवो के जीवन से सबन्धित प्रकृति कर रूप बहुत कम आया है। कहीं कोई उल्लेख मात्र आया है। परन्तु बाण ने अपने हर्षचरित मे दो स्थलो पर विस्तार से श्रीकृष्ण देश इस प्रकार के वर्णन प्रस्तुत किये हैं। 'श्रीकृष्ण देश' मे स्थल-कमलो की अधिकता के कारण खेत जोते जाने के समय हलमुखां से मृणालो के उखडने से मधुकर कोलाहल करते हैं, जान पड़ता है वे हल धरती के गुण गान कर रहे हैं। क्षीरसागर का पय पान कराने वाले मेघो से सींचे गये पुण्ड्र जाति के ऊखो के घेरो से वह देश भरा रहता है। प्रत्येक दिशा मे एक दूसरे के खलिहानों द्वारा विभक्त वहाँ के सामान्य अपूर्व पर्वतो के समान रास्य-पुज से भरे रहते हैं। चारों ओर नहरों से सींचे जाते हुए जीरो के पौधो से वहाँ की भूमि उलझी रहती है। धान के उपजाऊ और उत्तम खेतो के वह देश अलंकृत है। यहाँ की ऊँची भूमि पर गेहूँ के खेत हैं, जो पकने के कारण फूटते हुए से रंग बिरंगे हो जाते हैं और फूटे हुए मँग के छिलके जैसे भूरे हो जाते हैं। भैस की पीठ पर बैठे हुए गोपाल गीत गाते हुए गौश्रो को चराते हैं। उनके पीछे कीटो के लोभी चटक जाते हैं। गले में लगे हुए शुद्ध घंटो के निनाद से वे रमणीय लगती हैं।—वहाँ के स्थान हजारों कृष्ण मृगो मे चित्र विचित्र लगते हैं, मानो विविध यज्ञों के धुएँ से अन्धे होकर इन्द्र द्वारा छोडे गये नक्षत्र हो। वे स्थान धवल-पराग की वर्षा करने वाले केतकी के फूलो की रज से सफेद हो गये हैं, मानो गणो के भस्मलेप से धूसर हुए शिवपुर के प्रवेश मार्ग हो गाँवो के निकट की धरती शाको और केलों से श्याम है। पद-पद पर ऊँटों के झुंड हैं। वहाँ के निकलने के मार्ग दाख के मंडपों तथा अनार के उद्यानों से लुभावने लगते हैं। ये मंडप

पीलू नामक वृक्ष के पत्तों से चमकते रहते हैं, करपुट से टन्नाये गये मातुनिगों के पत्तों के रसों से लिपे रहते हैं, इसकी पुष्पमालायें अपने आप एकत्र कुंकुम-केसर है और वहाँ अभिनव फलों का रस पीकर पथिक सुखपूर्वक सोते हैं। ये मंडप मानों वनसाले हैं जहाँ वन-देवता अमृत-रस पीते हैं। जान पडता है पके हुए अनार के फलों के बीचों में जैने शुक्र-चक्षुओं की लाली लग गई हो और पेड़ों पर चढे हुए कपि-कुल के कपालों से अनार के फूलों का सन्देह होता है। उपवनों में वन-पाल नारियल का रस का मद्य पीते हैं, पथिक खजूर लुप्त करने हैं, बन्दर सुगन्धित खजूर का रस चाटते हैं और चकोर अपनी चांच से आरक के फलों को विदीर्ण करते हैं। वहाँ का जगली जलाशय ऊँचे अर्जुन वृक्षों की पत्तियों से घिरे हैं, उनके किनारे का जल गौओं के उतरने में क्लुषित हो जाता है। ऐसे जलाशयों से वनों के भीतरी भाग सफल हैं। स्वच्छन्द चारिणी वात-हरिणियों की भौंति बढबाएँ दिशा-दिशा में विचरण करती हैं, मानो वे रवि-रथ तुरगों को लुभाने के लिए लोट-पेट करने से मर्दित कुकुमों के रस लित हो जाती है, नासापुटों और मुग्ध को ऊपर उठा कर वे मानों गर्भस्थ किशोरों की उत्पत्ति के लिये पवन पाती हैं। यज्ञ के अनवरत धुआँ रूपी अन्धकार से निकले हुए मरकंडों ने मानो हसों के समूहों से पृथ्वी घवल हो जाती है^१।

§ ३—ब्राह्मण का ग्रामीण प्रकृति और जीवन का पर्यावेक्षण बहुत पूर्ण है—‘राजा ने एक गाँव देखा। वन्य भागों में जंगली धान के खलियानों पर सारी के जलते हुए भूसे ढेरों से धुआँ निकल रहा था। विशाल वट-वृक्षों के चारों ओर सुरती शालाओं से गो-बोट बने हुए थे। अधिक आना-जाना न होने से भूमि पद-दलित नहीं हुई थी। खेत छोटे-छोटे और दूर-दूर पर थे, उनकी मिट्टी लोहे की तरह काली और कड़ी थी, स्थान-स्थान पर गन्वे गये

विन्ध्य का मार्ग

स्थाणुओं से मोटे पल्लव निकल आये थे, श्यामक नामक घास पर चलना कठिन हो गया था। अलम्बुस बहुत थे और कोकिलाक्ष की झाड़ियाँ अब तक नहीं काटी गई थी, अतः खेत कठिनाई से जोते जा रहे थे। प्रवेश-मार्ग पर वृद्धों के नीचे वनसाल बने हुए थे। वहाँ पथिकों के पद-क्षेप से उठी धूल से धूसर हुए पल्लव छाया में पड़े थे। हाल ही में कुएँ खोदे गये थे, जो वन सुलभ साल के फूलों के गुच्छों से शोभित थे और जिनके समीप ही नागस्फुट के पौधे लगाये गये थे।... धूले कदम्ब के गुच्छों से, जिनका पराग झड़ गया था, पर्णकुटियाँ पुलकित थीं।... जो सूख सकते थे ऐसे नये आम के पौधों के पल्लव जल-कणों से सिकत होकर सरस और रक्षित थे तथा उनकी डालियों में फलों के घौर लरक रहे थे।^२ इस प्रसंग में निवासियों का जीवन अधिक विस्तार से उपस्थित किया गया है।

वन-प्रदेश

§ ४—शुक-वृत्तान्त के प्रारम्भ में कवि ने विन्ध्याचल की अटवी का वर्णन किया है—‘मध्य-देश के आभूषण तथा पृथ्वी की मेखला के समान यह वन-प्रदेश फैला हुआ है। प्र० भा०। उस विन्ध्याटवी वन में मद के समान सुगन्ध वाली इलायची की लताओं से अंधेरा हो रहा है, जान पड़ता है मानो उन्मत्त हाथियों के गंड-स्थल से झरते हुए मद-जल से सिंचा हुआ हो। हाथियों के कुभ-स्थल से निकले हुए मोतियों के दाने सिंघों के नखों के अग्रभाग में लगे रहते हैं, जिनके लोभ से भील सेनापति वहाँ सिंघों का शिकार करते हैं। सदा निकट रहती हुई मृत्यु से भयंकर और महिष से युक्त वह मानो प्रेत-राज की नगरी है। युद्ध में सजी हुई सेना के समान वन में बाणासनो पर (वृद्धों) शिलीमुख गुंजित हैं और सिंहनाद होता है।.. महा-प्रलय काल की सन्ध्या के समान वन पल्लवों से रक्त वर्ण का है और उसमें

२. वही, उ० ७; प्र० २१५, २१८।

नीलकंठ नाचते हैं। अमृतमन्थन के समान वह (द्रुमो-लक्ष्मी, पारिजात और मदिरा) से शोभित और वरुणी से युक्त है। वर्षाऋतु के समान वह घनश्याम है और अनेक सरोवरो से अलंकृत है।—राज स्थिति के समान वह चमर-मृग के लाल-व्यजन से शोभित है और मद-मत्त गज घटा उसकी रक्षा करती है। वन पार्वती के समान स्थाणु के साथ और मृगपति सेवित है। सीता के समान अटवी ने कुश-लव को जन्म दिया है और निशाचरो से आक्रान्त है। चन्दन और कस्तूरी की गन्ध से युक्त और अग्ररु-तिलक से अलंकृत अटवी सुन्दर कामिनी के समान है। विविधं पल्लव-पवन से शीतल तथा मदन (वृत्त) युक्त वह काम-वश में हुई स्त्री के समान है। बाघ के नख की पक्ति तथा गंडक से शोभित वह बालक की ग्रीवा जैसी है। पान-भूमि के समान वहाँ सैकड़ों मधु कोश दिखाई देते हैं और भौंति-भौंति के पुष्प बिछे हुए हैं। कहीं कहीं महा-वराह की दाढ़ से उखाड़ी भूमि के कारण वह प्रलय-वेला के समान दिखाई देती है और कहीं कूदते हुए बदरों के झुंड से तोड़े गये शिखरो से युक्त शाल (परकोटा) से व्याप्त रावण की नगरी जैसी है। वहाँ हरे दर्भ, समिध, फूल, शमी और बताश कहीं-कहीं इस प्रकार शोभित हैं जैसे अभी विवाह कार्य समाप्त हुआ हो। कटकित हुई अटवी जान पड़ती है मानों उन्मत्त सिंह-नाद से भीति हो। मदमत्त स्त्री की तरह कहीं-कहीं वह कोकिलाकुल प्रलाप करती है। उन्मत्त स्त्री को भौंति कहीं कहीं वह वायु वेग से ताल शब्द करती है। विधवा स्त्री की तरह कहीं वह तरल-पत्र विहीन है। निरन्तर सैकड़ों शरों (घास) से व्याप्त रण-भूमि के समान है। इन्द्र के शरीर के समान कहीं उनके हजार नेत्र हैं, अर्जुन की ध्वजा के समान वानराक्रान्त है। उसमें सैकड़ों वेत्र-लताओं के कारण प्रवेश दुर्लभ है, लगता है राजद्वार की ड्योढ़ी हो। इसमें कीचक नगरी की तरह सैकड़ों कीचक देख पड़ते हैं। अटवी में कहीं तरल तारक (पुतली या मृगशिर) मृग के पीछे व्याध फिरता है और इस प्रकार आकाश की लक्ष्मी को धारण करती है। व्रत करने

वाली स्त्री के समान कही दर्भ, चीर, जटा और बल्कल धारण करती है। असख्य पत्तों वाली होने पर भी वह सप्तपर्णी से शोभित है, क्रूर-सत्व होने पर भी मुनि-जन सेवित है और पुष्पवती होकर भी पवित्र मानी जाती है^३। इस वर्णन में कवि की अलंकारप्रियता का पता चलता है, पर वन के वातावरण निर्माण में बाधा नहीं हुई है।

क—अटवी का वर्णन व्यापक योजना के आधार पर किया गया है, परन्तु क्रमशः घटनास्थली की ओर आते हुए बाण शाल्मली तक का सश्लिष्ट चित्रण करते हैं—‘उस पद्म-सरोवर
जीर्ण शाल्मली के पश्चिमी किनारे राम बाणों से जर्जरित पुराने ताल-वृक्षों के कुंज के पास एक विशाल महाजीर्ण सेमर का वृक्ष है। उसकी जड़ के आस-पास बड़े थावले के रूप में एक बूढ़ा दिग्गज की सूँड़ जैसा—अजगर सदा लिपटा रहता है। ऊँची शाखाओं पर लटकती हुई सॉप की केचुले पवन से हिलती हुई ऐसी जान पड़ती हैं मानों वृक्ष ने दुपट्टा धारण किया है। दिशाओं के मण्डल को मापती सी शाखाएँ अन्तरिक्ष में इस प्रकार फैली हैं मानों प्रलय काल के ताडव नृत्य में फैलाये हुए भुजा वाले चन्द्रशेखर का तिरस्कार कर रही हैं और उसने प्राचीन होने के कारण गिर पड़ने के भय से मानों इस प्रकार आकाश का सहारा लिया है। उसके सारे शरीर पर दूर-दूर तक व्याप्त लताएँ, मानों जीर्णता के कारण उसकी नसे दीखती हैं। बुढ़ापे के काले दागों के समान उसका शरीर कंटकों से भरा है’। आगे कवि वैचित्र्य कल्पना से चित्र को अधिक उद्भासित करता है—‘जल-भार से धीरे चलते बादल उसकी डालियों पर क्षण भर के लिए ठहर जाते हैं और पत्तों को भिगो देते हैं, पर उसकी चोटियों तक नहीं पहुँच पाते। वे मेघ जान पड़ते हैं समुद्र का पानी का आकाश से उतरे पत्नी हो। ऊँचाई के कारण जान पड़ता है वह नन्दन वन की

शोभा देखने की कोशिश कर रहा हो। उसकी चोटियाँ रुई के गालों से सफेद हो गई हैं। उससे सन्देह होता है, मानों उसके पास ही पाम ऊपर चलने वाले, आकाश में चलने से थके सूर्य के रथ के घोड़ों के आँटों के प्रान्त-भाग से निकले हुए भाग हों। बनेले हाथियों के गडस्थल घिसने से उसकी जड़ों में मट चिपका हुआ है, जिन पर मत्त भौरे बैठे हैं। उनसे मानो उसकी जड़ लोहे की जज़ीर बाँधने से निश्चल होकर कल्प-स्थापिनी हो गई है। कोटरों में छिपे भौरो से वह वृक्ष सजीव सा जान पड़ता है। दुर्योधन की तरह उसमें शकुनि (सक्षियों) का पक्षपात देखा जाता है और विष्णु की भक्ति बनमाला से युक्त (धिरा) है। नये मेघ की तरह वह नभ में ऊँचा उठा है। सारे भुवन को देखने के लिए मानो यह वन-देवियों का महल है। दण्डकाण्य का मानो अधिपति है और सब वनस्पतियों का नायक है। मित्र के समान यह सेमर शाखा रूपी भुजाओं से विन्ध्य के वन का आनिगन कर रहा है'।४

ख—इसी प्रकार आगे कवि वृक्ष पर निवास करने वाले शुकों का वर्णन करता है—‘स्थान अधिक होने के कारण

शुक-निवास

इस वृक्ष की डालियों के अग्रभाग पर, कोटरों के भीतर, पत्तों के बीच में देश-देश से आये हुए तोते आदि पक्षियों के झुंड बेखटके घोंसले बना कर रहते थे। दिन-रात उनके वहाँ रहने में वह वृक्ष, जीर्णवस्था के कारण थोड़े पत्ते रह जाने पर भी बहुत से पत्तों से श्याम जान पड़ता था। उसमें बनाये हुए अपने घोंसलों में रात काट कर, प्रतिदिन उठ कर आहार की तलाश में गोल बाँध कर आकाश में उड़ा करते थे और ऐसे जान पड़ते थे मानों उन्मत्त बलराम के हल के अग्रभाग में ऊपर फँकी गई यमुना आकाश में अनेक प्रवाहों में बह रही है, ऐरावत द्वारा उखाड़ी हुई मन्दाकिनी कमलिनियों

हो, सूर्य के रथ के घोड़ों की प्रभा से नभ-मण्डल लीप दिया गया हो। आकाश में उड़ते हुए वे चलती हुई मरकत मणि की भूमि का तिरस्कार करते थे, मानो आकाश रूपी सरोवर में शैवाल के पत्तों का पंक्ति को मानो फैलाते थे। वेले के पत्तों के समान अपने परो को नभ में फैलाए हुए वे ऐसे लगते थे, मानो सूर्य की गरम किरणों से खिन्न हुई दिशाओं के मुख पर पंखा कर रहे हो। वे उड़ते हुए ऐसे जान पड़ते थे मानो आकाश में कोई दूब का खेत उड़ा चला जाता हो और अन्तरिक्ष में मानो इन्द्र-धनुष पड़ रहे हो। उन तोतो की चोच मारे हुए हरिन के रुधिर से लाल सिंह नख के अग्र भाग के समान थी। चुगने के बाद सभी पक्षी लौट लौट कर अपने कोटरों में बैठे हुए शावकों को तरह-तरह के फलों के रम और धान की मंजरियों की किनकी बार बार खिला कर अपत्य-स्नेह से उनको पंखों के नीचे रख उसी वृक्ष में गत काटते थे।...लेकिन वैशम्पायन के पिता के दंभचौर के समान पंख बहुत थोड़े बचे थे और डैने भुक्त जाने के कारण शिथिल हो गये थे और उनमें उड़ने की शक्ति किंचित भी शेष नहीं थी। बहुत वृद्ध होने के कारण उड़ने में मेरे पिता का शरीर काँपने लगता था, मानो वृद्धावस्था ही काँपती हो। उनकी चोच कोमल शेफाली (निर्गुण्डी) के फूल के डंठल के समान पिंजर वर्ण थी और उसका बीच में से घिरा हुआ अग्रभाग धान की मंजरी काटने के कारण चिकना और घिसा हुआ था। वे अपनी चोच से, दूसरे के घोंसलों से गिरी हुई धान की बाली से चावल बीन कर और तोतो के कुतरे हुए वृक्ष की जड़ के आगे पड़े फल के टुकड़ों को इकट्ठा कर उसे खिलाते थे, क्योंकि उनमें आकाश में उड़ने की ताकत नहीं^५। इस समस्त वर्णना में रंग-योजना महत्त्वपूर्ण है। चित्र में सूक्ष्म-निरीक्षण के साथ सजीवता भी है।

§ ५—उज्जैन के मार्ग में एक शून्य पडता है—‘इस वन में अत्यंत ऊँचे तने के वृक्ष लगे हुए थे; वृक्षों की झुरमुटों में मालती-लताओं के मंडप बने थे। हाथियों के गिराये हुए वृक्षों के शून्याटवी पड़े रहने से पगडंडी टेढ़ी हो गई थी। लोगों के द्वारा घास, पत्ते और लकड़ी के ढेर लगे थे। एक विशाल वृक्ष की जड़ में वन-दुर्गा की मूर्ति खुदी थी। प्यासे पथिकों द्वारा गूदा उतार कर फेंके गये आँवले पड़े थे। पुराने कुम्भों के तट पर खिले हुए करज की मंजरी की रज बिखरी हुई थी।.. सूखी हुई गिरि-नदियों से उस वन का मध्य भाग ऊँचा नीचा हो गया था। उनके तीर मधु की बूँदें टपकाते हुए सिधुवार के वन की पक्ति में से उड़ कर आई रज से धूमर हो गये थे। निकुंज नामक लता के जाल उन नदियों की रेती पर छाये थे और पथिकों ने रेती खोद कर जो छोटी-छोटी कुइयाँ खोदी थीं उनमें थोड़ा-थोड़ा मलिन जल मिल जाता था। इस शून्य वन में मुर्गों और कुत्तों के शब्द से अनुमान होता था कि पाम ही झुरमुट के बीच में कोई गाँव होगा। वन के उस प्रदेश में शाखा रहित अनेक कदम्ब, शाल्मली और पलाश के वृक्ष लगे हुए थे जिनमें नई कोपल निकल कर ऊपर चढ़ रही हैं ऐसे स्थूल तनों से वह भरा हुआ था। वहाँ दरताल के समान पीले पके ब्राँस के वृक्षों की बाड़ थी, हरिनो को डराने के लिए घास का आदमी खड़ा किया गया था वन-क्षेत्र पक जाने के कारण पीले दिखाई देते फल-वाले प्रयगु वृक्षों से भरे थे’।^६

§ ६—हर्ष-चरित में प्रकृति के वर्णन अपेक्षाकृत कम चित्रमय हैं दूसरे उच्छ्वास में चण्डिका-कानन का संक्षिप्त उल्लेख है। आठवें उच्छ्वास में विन्ध्य-वन का विस्तृत वर्णन है—‘वहाँ हर्ष-चरित में विन्ध्य-वन भौँति-भौँति के तरु थे, जिनमें कुछ फलों से लदे थे।

कर्णिकारो में कलियाँ आ रही थीं। चम्पक बहुत थे। नमरा फलों के भार से झूके हुए थे। नीले पत्ते वाले नलद और नारिकेल के समूह थे। नागकेसर और सरल (देवदार) की पत्तियाँ थीं। कुरबक कलिकाओं से रोमांचित था और अशोक के लाल पल्लवों की प्रभा से दशों दिशाएँ लिप सी गई थीं। विकसित बकुलों की पराग-राशि से वृक्ष धूसरित होकर मनोहर लगते हैं। तिलक वृक्ष के तल अपनी रज से धूसर था, रामठ के पौधे हिल रहे हैं। पूगफलों की प्रचुरता थी। प्रियंगु के पौधे फूलों से भरे लगते थे। परागपूर्ण मंजरी पर एकत्र भौरों का गुंजन मनोहर और आनन्ददायक था। मदजल से मलिन मुचुकुन्द के तनों से हाथियों के कपोलों के लगातार धिसे जाने की सूचना मिलती थी। हरी-भरी भूमि निर्भय होकर उछलते हुए चपल काले मृग-शावको से सुहावनी लगती थी। अन्धकार के समान काले तमाल पादपों ने प्रकाश रोक रखा था। देवदार अपने फूलों के गुच्छे से दंतुले जान पड़ते थे। जम्बू और जम्बीर के वृक्षों पर तरल ताम्बूली लताओं के जाल बिछे हुए थे। अपने फूलों के पराग से धवल दीखने वाले धूली-कटम्ब आकाश छू रहे हैं। गिरती हुई मधु-धारा से ज़मीन सिंची हुई है। परिमल की गन्ध से घ्राण को तृप्ति देती थी। कुछ दिन की हुई कुक्कुटियों ने कुटज के कोटरों में अपने घोंसले बना लिये थे। मीठी बोली बोलने वाले अपने बच्चों को चटक उड़ना सिखा रहे थे। चकोर चतुराई के साथ अपनी चोंचों से सहचरियों को खिला रहे थे। निडर होकर असंख्य भुरुण्ड पक्षी पके हुए पीलूफल खा रहे थे। निर्दय सुग्गे सदाफल और कायफल के फल काट रहे थे और कच्चे फल नीचे गिरा रहे थे। काई से कोमल शिलातलों पर खरहे बच्चे के सुख-पूर्वक सो रहे थे। शेफालिका की जड़ों के कोटरों में गोह-समूह निडर घूम रहा था। रंकुमृग बिना किसी आतंक के विचर रहे थे। नकुल शांति-पूर्वक खेल रहे थे। मधुर स्वर करने वाली कोकिल कलिकाएँ खा रही थी। आम के वन में भुंड के भुंड चमरु मृग जुगाली कर रहे थे। नीलाण्डज

मृग सुख-पूर्वक बैठे थे। भेड़िया गायों को निर्विकार भाव से देख रहे थे और उनके बच्चे पी रहे थे। पास के पहाड़ी भ्रान्तों के मधुर निनाद सुन कर हाथी सुख की नींद ले रहे थे जिससे उनके कर्ण-तालों का वजना बन्द हो गया था। रुब मृग किन्नरियों की गीत-ध्वनि का रस पान कर रहे थे। हरी हल्दी काटने से निकले हुए रस से जंगली सुन्नरों के बच्चों के मुँह रंग गये थे। गुंजा के कुंजों में गाहक (माजीर) बोल रहे थे और जातीफल वृक्षों पर शालिजातक सोये हुए थे। लाल कीड़ों द्वारा काटे जाने से क्रुद्ध होकर बन्दर के बच्चों ने उनके खोते उजाड़ डाले थे। लकड़ फल के लोभी लंगूर लवली लताओं को लॉच रहे थे। वृक्षों की जड़ों में बालू के थाले बने थे।^७

पर्वतीय देश

§ ७—ब्राह्मण ने पर्वतों का विशेष वर्णन नहीं किया है। कथा वस्तु का सम्बंध विन्ध्यपर्वत और हिमालय से है। परन्तु इन प्रसंगों में वन का रूप अधिक सामने आया है। जल खोजने के कौशाग की घाटों समय चन्द्रापोड कैलास की तलहटी में पहुँच जाता है, परन्तु इस स्थल पर भी कवि ने पर्वत का रूप अधिक प्रस्तुत न कर वन-विस्तार पर अधिक ध्यान दिया है। '—प्र० भा०। दिन-रात पिघलते गूगल रस से उसके पत्थर भीग गये हैं। शिखर से गिरते शिला-जीत के रस से उसकी शिला चिकनी हो गई है। टॉकी के समान कठिन घोंडा का टापों से टूटी हुई हरताल के चूरे से वह मलीन हो गई है। चूड़ों के नखों से खोदे हुए बिलों के भीतर वहाँ स्वर्ण-रज बिछी हुई है। उसकी रेती में चमर और कस्तूरी मृग के पैरों के निशान बन रहे हैं। रक और रल्लक जाति के मृगों के गिरे हुए रोमों से वह भरी हुई है। उसकी ऊँची-नीची शिलाओं पर चक्रों के जोड़े बैठे हैं। गुफाओं में

वनमानुष के जोड़े रहते हैं । गन्ध पाषाण से महक आ रही है और व्रत की बेलों के प्रतान में बाँस उगे हुए हैं । बाद में चन्द्रापीड को आह्लादित करने वाले पवन का वर्णन इस प्रकार है—‘कैलास का पवन स्वच्छ भरने के जल की बूंदों से शीतल था, भोजपत्र के छाल को उसने जर्जरित कर दिया था, महादेव के बैल की जुगाली से पैदा हुए फेन-कणों को लाते थे । वह पवन कार्तिकेय के मोर की चोटी को चूमता था, पार्वती के कर्ण-पल्लव को कँपाता था, उत्तर कुरु की सुन्दरियों के कान में पहने हुए कमलों को हिलाता था । हर की जटा में बँधने से घबराये हुए वासुकी नाग के पीने से बचा हुआ पवन कोष-फल के वृक्ष को हिलाता था, सुरपुत्राग के फूलों से पराग गिरता था ।’^८

क—कैलास की तलहटी में महादेव का एक सिद्ध-मन्दिर चन्द्रापीड देखता है और साथ ही वह प्रदेश एक सुन्दर वन से सुशोभित है—‘प्र०

घाटी का वन

म० । आपस में कुपित हुए कपोतों के पंखों से उसके वृक्षों के फूल झड़ जाते थे । पुष्प-पराग की ढेर की तरह विचित्र मैना उनकी चोटियों पर बैठी थीं । सैकड़ों तोते अपनी चोंच और नाखून से उन वृक्षों के फलों के टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे । मेघ-जल के लोभ में आए हुए—पर बाद में धोखा खाये हुए सुग्ध चातक तमाल वृक्षों की घटा में कोलाहल कर रहे थे । लवली के लता-मडप हाथी के बच्चों द्वारा पत्ते तोड़े जाने से छिल जाते थे । नव यौवन से मत्त हुए कबूतरों के पाँव फड़फड़ा कर बैठने से उनके फूलों के गुच्छे गिर पड़ते थे । पवन की लहर से काँपते कोमल केले के पत्ते वहाँ पखा का काम देते थे । नारियल के वन फूलों के भार से झुक गये थे । उनके आस-पास कोमल पत्ते वाले सुपागी के वृक्ष लगे थे । पक्षी बेरोक पिड-खजूर को कुतर डालते थे । बीच-बीच में मन्द शब्द करती हुई मयूरी का मधुर स्वर सुनाई पड़ता था । असंख्य कलियाँ खिली हुई थीं । वहाँ

रेतीली भूमि पर इधर-उधर कैलास की नदियों की तरंगों के झुकोरे लगते थे। महावर से रंगी हुई वनदेवी की हथेली के समान अत्यंत मुकुमार कलियाँ वहाँ के वृक्षों में आ रही थीं। हरिनियों का झुंड गन्धिपर्ण खाकर उनके नीचे आनन्द में बैठा था। कर्पूर और अग्ररु के वृक्ष वहाँ अधिक थे।^{१३}

सर-सरिता

§ ८—त्राण ने अगस्त्य के आश्रम के निकटवर्ती पम्पामर का विस्तृत और चित्रमय वर्णन किया है—‘समुद्रपान करने के कारण क्रुद्ध वरुण से उत्तेजित ब्रह्मा ने अगस्त्य मुनि के द्वेष के कारण उनके आश्रम की तीर ही मानो विशाल सागर उत्पन्न कर दिया है। प्र० भा०। पानी में निःशंक उतरी हुई और जल-क्रीड़ा में मग्न वन-देवियों के नहाने के समय गिरे हुए केशों के फूलों से वह मुगन्धित है। एक ओर उतरे हुए ऋषियों के कमंडल भरने से होती हुई मधुर-ध्वनि से वह मनोहर जान पड़ता है। झिले हुए कमलों के धन में विचरते और समान रंग के कारण केवल स्वर से पहिचाने जाते कल-हंस वहाँ बहुत हैं। नहाने के लिए उतरी हुई किरातों की मुन्दरियों के स्तनों के चन्दन की रज से उनकी तरंगें सफेद हो गईं हैं। पास ही उगे हुए वृक्षों के पत्तों में होकर आती हुई हवा के कारण उमका जल स्थिर नहीं रह पाता है। उसके तीर पर वृक्षों की कुंजें क्रम से लगी हुई हैं। उनमें तमाल की कतारों से अधेरा छा रहा है। बालि द्वारा निर्वासित होकर घूमते हुए ऋष्यमूकवानी मुग्रीव के प्रतिदिन फल तोड़ने से डालियाँ हल्की हो गई हैं। जल में खड़े होकर तप करते हुए तपस्वी उनके फूलों को पूजा के काम में लाते हैं। प्र० भा०’।^{१०}

§ ९—पानी की खोज करते हुए चन्द्रापीड को मरौवर का पता

९ वही ; वही , पृ० २७२, २७३।

१०. वही , वही ; पृ० ४७-५०।

चलता है—‘इतने में सरोवर के जल में नहा कर थोड़े समय पहले ही
 अच्छोद सर गए हुए बड़े-बड़े पहाड़ी हाथियों के चरणों से चिह्नित
 और कीचड़ से गीला मार्ग उसे देख पड़ा। सूँड से
 तोड़े हुए मृगाल, मूल और नाल सहित कमलो से वह चित्रित हो रहा
 था। अत्यंत गीले शैवान के किसलयों से उसका भाग श्याम हो गया
 था। तोड़ कर डाले हुए कमल, कुमुद, कुवलय और कद्दार के फूलों
 की कलियाँ बीच-बीच में बिखरी हुई थी। तोड़ कर डाले हुए फूलों के
 गुच्छों सहित वन के पत्तों से आच्छादित था। वहाँ मार्ग में उखाड़ कर
 डाले हुए कमलगट्टा कीचड़ में सने पड़े थे। काट कर गिराई हुई वन-
 लताओं के फूलों पर बैठे हुए भौरे वहाँ विलास कर रहे थे और तमाल-
 पल्लव के रस जैसे श्याम फूलों की गन्ध देता मद्-जल वहाँ सर्वात्र
 बिखरा था’।^{११} मार्ग का यह वर्णन अपनी चित्रमयता में भी
 सहज है। कुज में प्रवेश कर चन्द्रापीड को उसके बीच में मनोहर
 अच्छोद सर दिखाई दिया—‘वह त्रिभुवन लक्ष्मी के मणिदर्पण के समान,
 भूमि देव के स्फटिक-मय तहखाने के समान, सब सागरो के निकलने के
 स्थान के समान, दिशाओं के झरने के समान, नभतल के अंशावतार
 के समान था। उसमें मानों कैलाश समा गया हो, हिमालय विलीन हो
 गया हो, चन्द्रमा का प्रकाश रसातल को प्राप्त हुआ हो, पानी के रूप में
 वैदूर्य-मणि के समान, पिघल कर एकत्र हुए शरद् के मेघ-समूह के समान
 और वरुण के दर्पण के समान है। स्वच्छता में वह ऐसा लगता था
 मानों मुनियों के मन का, सज्जनों के सद्गुणों का, हरिणों की नेत्र-प्रभा
 का और मोतियों की किरणों का ही बनाया हुआ हो। पूर्ण रूप से भरे
 होने पर भी उसके भीतर की सब चीजे स्पष्ट दिखाई देती थी, जिससे वह
 खाली सा जान पड़ता था। सब दिशाओं से एकत्र हुए, हवा से उछ-
 लती हुई जल-तरंगों की बूँदों उपर हुए हज़ारों इन्द्रधनुष मानों उसकी

रक्षा करते थे । नारायण की भोंति उसने भी खिले हुए कमल वाले उदर में प्रतिबिम्ब रूप से धुसे—वन, पर्वत नक्षत्र और ग्रहों से युक्त त्रिभुवन को धारण किया था । जल में से धुले हुए पार्वती के गालों से निकले हुए लावण्य-प्रवाह का अनुकरण करने वाला—पास ही कैलास पर से उतर कर महादेव के बार-बार यहाँ नहाने के लोभ से चलायमान हुए चूड़ा-मणि-रूपी चन्द्रखंड से गिरता—अमृत रस उसके जल में मिला था । किनारे के तमाल-वन के प्रतिबिम्ब के कारण जिसका अन्तर अंधकार से व्याप्त है, ऐसे रसातल के द्वार दिखाते सलिल-प्रदेशों से वह अधिक गभीर लगता था । उसके नील-कमल के गहन वन को, दिन में भी रात्रि की शका चक्रवाक युगल छोड़ देते हैं । प्र० भा० । यौवन की तरह वह उत्कलिकाओं (उत्कंठा) से भरा था, प्रेम पीड़ित पुरुष की भोंति वह मृणाल के कंकन से अलंकृत था—आदि^{१२} बाण अग्ने चित्र में रूप की रेखाएँ गहरी उभारते हैं, फिर रगो का छायातप बहुत स्पष्ट तथा तीव्र डालते हैं और बाद में अनेक कल्पनाओं से वातावरण का निर्माण करते हैं ।

§ १०—पर्वत के समान बाण ने सरिता का भी स्वतंत्र वर्णन नहीं किया है । हर्षचरित में सरस्वती के ब्रह्मलोक से पृथ्वी की ओर आते समय

आकाश-गा

दिव्य गंगा का अनुसरण करती हैं । इस प्रसंग में गंगा-

प्रवाह का वह दिव्य रूप प्रस्तुत किया गया है—गभीर गर्जना करते हुए धर्मधेनु के समान नीचे लटकते पयोधरो को धारण कर रही थी । वह शिव के मस्तक की मानती माला सी जान पड़ती थी । उसका तट निश्चल बालखिल्य मुनियों से भरा था और वहाँ अरुन्धती बलकल धोती थी । उसकी ऊँची उठती लहरों को पार करते हुए उजले तारे तरल हो रहे थे । आचमन करके पवित्र हुए इन्द्र के द्वारा अर्पित पूजा के फूलों से वह चित्रित हो रही थी । वह शिवपुर से गिरी हुई

मन्दार फूलों की पूजा विशेष की माला धारण कर रही थी। वह मन्दरा-चल की गुहा की चट्टानों को अनादर के साथ खंड-खंड कर रही थी। अनेक देवागनाओं के स्तन-कलशों से उसका जलमय शरीर तरंगित हो रहा था। घड़ियालों तथा शिलाओं पर गिरने से उसकी धारा मुखरित हो रही थी। सुषुम्णा नामक सूर्य किरण से निकले हुए चन्द्रमा के अमृतमय छींटों से उसके तीर पर मानों तारकाएँ बिछ गई थीं। बृहस्पति के यज्ञ के धुएँ वहाँ सिद्धो द्वारा बालू से बनाये गये लिंगों के लॉघने के भय से विद्याधर भाग रहे थे। आकाश गंगा आकाश-सर्प के द्वारा छोड़ी गई केचुली सी स्वर्ग रूपी विट के ललाट के लीला अलंकार सी, पुण्य रूपी सादा के दूकान की गली सी, नरक-नगर के द्वार को बन्द करने की अर्गला सी, सुमेरु वृष की रेशमी पगड़ी सी, कैलास के जर की पताका सी, मोक्ष-मार्ग सी, कृतयुग रूपी पहिए की नेमिसी और क्षीर सागर की पटरानी सी दिखाई पड़ रही थी।^{१३}

आश्रम-स्थिति

§ ११—कवि ने दण्डकारण्य के अन्तर्गत अगस्त्य के आश्रम का संश्लिष्ट वर्णन प्रस्तुत किया है—प्र० भा० । उस आश्रम के चारों ओर
 अगस्त्य की भूमि सब दिशाओं में फैले हुए तोते के समान
 हरे रंग के केलों से किंचित श्याम हो गई थी।

गोदावरी उसके आस-पास इस प्रकार प्रवाहित होती थी मानों अगस्त्य के आचमन किये गये समुद्र के पीछे-पीछे बेणी बौध कर जा रही हो।^१ आश्रम के वातावरण को कवि राम-वनवास की पूर्व स्मृतियों से जोड़ कर भावशील बना देता है—‘राम सीता के साथ पंचवटी में लक्ष्मण द्वारा बनाई हुई कुटी में कुछ दिन रहे थे। बहुत समय से उजड़े हुए उस प्रदेश में आज भी शाखाओं में चुपचाप घुसे हुए कबूतरों की पंक्तियों से वृद्ध ऐसे दीखते हैं मानों तपस्वियों के अग्निहोत्र के धुएँ की घटा से

आच्छादित हो। वहाँ पूजा के लिये फूल तोड़ती हुई सीता के हाथों में लगा हुआ लाल रंग मानो लता और पत्तों में चमकता है। पीकर निकाला हुआ मसुद्र का ही जल मानो अगस्त्य ने अपने आश्रम के बड़े सरोवरो में बॉट दिया है। वहाँ का वन ऐमा जान पड़ता है राम के नीक्षण बाणों के प्रहार से मरे हुए राक्षसों के गाढ़े रुधिर से जड़ सींची जाने उसमें अब भी किसलय के रूप में उसी रंग के पत्ते निकलते हैं। प्र० भा०। वहाँ बार-बार मृगया में जगल के हरिणों को राम ने त्रिलकुल निर्मूल कर डाला था, मानों इसी से उत्तेजित होकर सोने के हरिन ने सीता को धोखा दिया और राम को दूर ले गया था। रावण के विनाश की सूचना देते हुए तथा सूर्य-चन्द्र की तरह कबन्ध से घिरे, सीता-वियोग में दुःखी राम लक्ष्मण ने तीनों लोकों को भयभीत कर दिया था। राम के बाण से कट कर गिरी हुई योजन-बाहु की लम्बी भुजा को देख कर ऋषियों को ऐसी होता था, मानों अजगर-शरीर धारी नहुष अगस्त्य को प्रमत्त करने आया हो। वहाँ राम ने वियोग के समय मन बहलाने के लिये पर्णकुटी के भीतर सीता का जो चित्र खींच लिया था, उन्ने अब तक बनचर लोग इसी भाँति देखते हैं मानों राम के निवास को देखने की उत्कण्ठा से सीता पृथ्वी से फिर निकल रही हैं।^{११२}

§ २—पिछले आश्रम में त्यक्त आश्रम का रूप था। जाबालि के आश्रम-वर्णन में प्रत्यक्ष प्रकृति और जीवन के सम्पर्क का चित्र है।

जाबालि

हारीत द्वारा ले जाये जाकर वैशम्पायन ने उस आश्रम को देखा—‘वह मानों दूसरा ब्रह्मलोक था। प्र० भा०। सुपागी के लता रूपी हिंडौलो में वनदेवियों भूल रही थीं। अधर्म विनाश की सूचना देने वाले उल्कापात की तरह पवन से हिलाये हुए बहुत से सफेद फूल बार-बार वृक्षों से गिरते थे। दरडकारण्य ऋग्भूमि से आश्रम का पिछला भाग मनोहर लगता था। निर्भय होकर

भागते हुए मेकडों काले हरिनो से वह भूमि विचित्र थी और खिली हुई कमलिनीयो से वह भूमि लाल-लाल थी। राम-लक्ष्मण ने धनुष की नोक से वहाँ कंद उखाड़ा था, इससे भूमि-तल नीचा-ऊँचा हो गया था। कपट-मृग का रूप धर मानो मारीच ने बड़ी-बड़ी लताओं के पत्ते कुतर लिये थे। लकड़ी, कुशा और मट्टी लेकर सब दिशाओं से आते हुए शिष्यों के आगे आगे चलते हुए मुनि पास ही दिखाई देते थे। पानी के कलसे के भरने की ध्वनि को, मेघ-गर्जना समझ वहाँ के मोर गर्दन उठा कर सुनते थे।वहाँ ऊँची चटती हुई धुएँ की लेखा के बहाने मानों मार्ग में सीढियों का पुल स्वर्ग जाने के लिये बँधा हो। आश्रम के पास चारो ओर बावलियाँ थीं, उनकी मलिनता मानों तपस्वियों के साथ से जाती रही थी। तरंग-माला में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ने से ऐसा मालूम होता था मानों मुनियों के दर्शन के लिये आये सप्तऋषि उसमें स्नान करते हों। प्र० भा०। मुनियों के आगमन में सूखने के लिए श्यामाक (साँवा) बिछा हुआ था इमली, लवली, बेर, केले, लकुच, कटहल, आम और ताल के फल इकट्ठे रखे हुए थे। बार-बार सुने हुए वपट्कार शब्द का उच्चारण करते हुए तोते वाचाल थे। प्र० भा०। हवन में अधजले कुश, समिधा और फूल चिडचिड़ाते थे। पत्थर से तोड़े गये नारियल के पानी से शिलातल गीले हो रहे थे। हाल के निचोड़े गये बल्कलो से भूतल लाल हो गया था। लाल चन्दन से चित्रित सूर्य-मण्डल पर कनेर के फूल चढ़े थे। हिले बन्दर बूटे और अर्धे तपस्वियों को हाथ पकड़ कर इधर-उधर ले जाते थे हाथियों के बच्चों से मृणाल के टुकड़े चबाये पड़े थे, वे सरस्वती की भुज-लताओं में से निकले हुए शखों के कंकण के समान लगने थे और आश्रम उससे चित्रित था। हरिन अपने सीनों से ऋषियों के लिये कन्द-मूल खोदते थे। हाथी अपनी सूँड़ में पानी भरकर वृद्धों की क्यारियाँ सींचते थे। जंगली सुअरों के दाँतों के बीज से ऋषि-कुमार कमल-कंद खींच लेते थे और पालतू मोर अपने पंखों की हवा से

मुनियों की होमाग्नि को सुलगाते थे' ।^{१५}

§ १३—हर्षचरित में दिवाकरमित्र के आश्रम का वर्णन भी इसी प्रकार है—'बौद्ध धर्म के प्रभाव से वहाँ हिंसक पशुओं ने अपना स्वभाव छोड़ दिया था । उसके आसन के समीप नौद्ध आश्रम सिंह-शावक निडर होकर बैठे हुए थे । वन के हरिण उसके पाद-पल्लवों को चाट-चाट कर मानो शम पी रहे थे । अपनी वाई हथेली पर बैठे हुए कर्णोत्पल के सदृश कबूतर के बच्चे को नीवार खिलाते हुए वह मैत्री प्रकट कर रहा था । वह उद्ग्रीव मोर को जल-धारा से मरकत मणि से बने कमण्डल की भौंति भर रहा था' ।^{१६} इस आश्रम में प्रभाव का उल्लेख ही विशेष है ।

मृगया-प्रसंग

§ १४—वाण ने समस्त मृगया-प्रसंग का बहुत ही सूक्ष्म विवरण के साथ उपस्थित किया है । प्रत्येक स्थिति को उसके सूक्ष्म विवरण के साथ वाण चित्रित करते हैं और साथ ही उसमें शबर-मृगया (१) को ताहल गति और जीवन की अभिव्यक्ति कलात्मक रूप से सुन्दर है । प्रारम्भ में कवि केवल कोलाहल का वर्णन करता है—'तभी सहसा उस महावन में मृगया का कोलाहल सुनाई पड़ा । उससे सब वनचर सन्नस्त हो गये । वह घबराहट में उड़ते हुए पक्षियों के पंखों के शब्दों से फैल गया, डरे हुए हाथियों के बच्चे की चीत्कार से बढ़ गया, हिलती हुई लताओं पर व्याकुल हुए मत्त भौरों की गुंजार से स्थूल हो गया । वह ध्वनि ऊँची नाक वाले जंगली मुअरों के स्वर से कठोर हो गई, पर्वत की गुफाओं में नींद से जगे हुए सिंहों के नाद से घनी हो गई और वृक्षों को कपाती सी जान

^{१५} वही, वही; पृ० ८७-८६ ।

^{१६} हर्ष०; ८० ८, पृ० ७७७

पडने लगी । वह भगीरथ द्वारा नीचे लाये गगा-प्रवाह के कलकल के समान मालूम होती थी और वनदेवता भी उसे भयभीत होकर मुन रहे थे ।^{१७}

क—आगे कवि शबरो द्वारा वन का वर्णन करता है, जिससे मृगया के पूर्व वन की स्थिति का रूप सामने आता है । इन उल्लेखों में शबरो के आखेट का दृष्टिकोण ही प्रधान है—

वन की स्थिति

प्र० भा० । इधर हरिनो के झुंड है, उधर जगर्ला

हाथियो का झुंड दिखाई देता है, उधर जंगली सुन्नरो का झुंड फिरता है । यहाँ से जंगली भैंसों का झुंड निकल रहा है, इस दिशा से मयूर का शब्द आता है, इस ओर चातक की मधुर कूक हो रही है, इधर कुरुर पक्षियों का गान सुनाई देता है, इस तरफ सिंहों के नखों के विदीर्ण हुए कुंभ वाले हाथियों की गर्जना सुनाई देती है । यह है गीले कीचड़ से मलिन शूकरों का रास्ता, यह रहा टूटी हुई ताजी घास के रस से किंचित श्यामल हुआ हरिनो की जुगाली से गिरे हुए भागों का ढेर । यहाँ सुगंधित मद वाले उन्मत्त हाथियों के गंडस्थल घिसने से निकली हुई गंध पर लट्टू हुए वाचाल भौरों का गुंजार सुनाई दे रहा है । देखो, यह टपकती हुई रक्त से भीगे हुए पत्तों से लाल हुआ रुमृग का मार्ग है । यह रहा, हाथियों के पैरों के नीचे कुचले हुए पेड़ों की पत्तियों का ढेर; इस जगह गैंडों ने क्रीडा की है, यह रहा मृगपति का मार्ग, इसमें नखों के अप्रभाग के विकट चिह्न बन गये हैं और यह गज-मुक्ताओं के टुकड़ों से दन्तुरित तथा रुधिर से लाल है । देखो, यह हाल की व्याई हुई हरिनी के गर्भ में से बहते हुए रुधिर से लाल भूमि । यह रही वन-भूमि की चोटी के समान लगती हुई यूथ से बिछुड़े हुए गजपति की, मद से मलीन हुई पद-पत्ति । हरिनियों के पैरों की रेखा पर चलो, हरिनो की सूखी हुई मेगनी की धूल वाली इस वनस्थली पर जल्दी बैठ

जात्रो, वृत्तो की चोटी पर चढ़ जात्रो, निगाह इस दिशा में ले जात्रो; इस शब्द को मुनो, धनुष लो, सावधान होकर खड़े रहो, कुत्तो को छोड़ दो। इस प्रकार के कोलाहल से वह सक्षुब्ध हो उठा'।^{१८}

ख—इसके बाद बाण ने आखेट का वास्तविक दृश्य सजीव और सशक्त शैली में प्रस्तुत किया है। इस चित्र में प्रत्येक घटना प्रत्यक्ष

सामने आ जाती है—'प्र० भा०। पति-विनाश के आखेट का दृश्य

ताजे शोक से वियोगिनी हथिनियो की चिन्हाड बढ गई थी, ये इधर-उधर घूमती थी, इनके कान खड़े हो गये थे और कोलाहल करते हुए बच्चे इनके पीछे पीछे चले आते थे। गैडों की स्त्रियाँ गद्गद् कठ से करुणा-पूर्वक चीख मारती हुई विलाप सा कर रही थी, और ये डर से घबराये हुए और थोड़े दिनों पहले पैदा हुए अपने बच्चो को ढूँढ रही थीं। वृत्तो की चोटियों से उडकर व्याकुल फिरते पक्षियों का कोलाहल हो रहा था। पशुओ के पीछे दौडते हुए व्याधो के चरणो का शब्द हो रहा था, वह मानो वेग से ताडना की गई भूमि को मानो कँपा रहा था। कानो तक खींची हुई प्रत्यक्षा वाले धनुषों का शब्द हो रहा था। धनुष बाणो की वर्षा कर रहे थे और इनका शब्द मदमत्त कुररी के कंठ-स्वर में मिलता था। पवन की ताडना से खडखडाती धार वाली और भैसो के कठिन कन्धों पर गिरती हुई तलवारो का रणत्कार हो रहा था। जोर से भौकते हुए कुत्तो का नाद सारे वन में व्याप्त हो रहा था और ऐसे शब्दो के कोलाहल से वन मानो थरथरा गया'।^{१९}

अशुभ उत्पात

§ १५—हर्षदेव के पिता की मृत्यु के समय बाण ने प्रकृति में अशुभ का संकेत देने वाले उत्पातो का वर्णन किया है—'सम्पूर्ण कुल-

१८ वही ; वही , पृ० ५९-३१ ।

१९, वही , वही , पृ० ६१-३२

काल-परिवर्तन

§ १६—बाण की प्रतिभा का पूर्ण परिचय उनके काल सम्बन्धी वर्णनो से मिलता है। और सबसे अधिक विस्तार इन्हीं प्रकृति के रूपों को उन्होंने दिया भी है। काल के परिवर्तित होते रूप काज का रूप में रंगों का महत्वपूर्ण स्थान है, और उनको संयोग तथा सामंजस्य स्थापित करने में बाण अद्वितीय हैं। भारतीय भाषा और साहित्य में रंगों की विभिन्न श्रेणियों (छायातपों) और संयोगों के लिये अधिक व्यंजक नहीं हैं। परन्तु कवियों ने उपमानों से इस कमी को पूरा करने का प्रयास किया है। बाण इसमें सबसे अधिक सफल कवि हैं। रंगों के हल्के परिवर्तन के लिये वे बहुत ही व्यंजक और प्रत्यक्ष उपमान प्रस्तुत करते हैं। अपनी प्रतिभा के कारण वे काल-वर्णन के अद्वितीय कलाकार हैं। बाण ने सन्ध्या के चित्र उपस्थित करने में अपनी समस्त कवित्व तथा कल्पना शक्तिलगा दी है। सन्ध्या में बनते-मिटते रंगों का ऐसा दृश्य रहता है जिसके विचार में बाण का मन अधिक रमा है। बाण के साथ उनके पुत्र के वर्णनशैली और प्रकृति के कारण साथ ही स्वीकार कर लिये गये हैं। कादम्बरी का उत्तर भाग बाण के पुत्र द्वारा रचित माना जाता है। मध्याह्न का वर्णन इसी के अन्तर्गत है।

क—दोपहर के इस वर्णन में काव्यात्मक शक्ति और कल्पना बाण के समान ही है—‘सूर्य आकाश के बीच में आ गया, मानो उसने विचारा है कि ऊपर रहकर आठों दिशाओं में एक साथ किरणें फैला कर बिना प्रयत्न के ही अत्यन्त कष्ट दायक संताप उत्पन्न करूँगा। किरण-जाल धूप के बहाने मानो गरम चाँदी का रस डालने लगा। धूप के कण शरीर को भेंटकर भीतर घुसने लगे। इकट्ठे हुए प्राणियों के समूह समेत वृक्षों की छायातल में प्रवेश करके सिकुड़ने लगी। बाहर देखने में दृष्टि समर्थ नहीं हुई, दिशाएँ मानों जलने लगीं। भूमितल का स्पर्श करना कठिन हो गया। रास्ते

मध्याह्न

बन्द हो गये । पथिक भी प्याऊ की सकरी कोठरी के भीतर पानी पीने के लिये एकत्र होने लगे । हॉपने से आतुर हुए पक्षी जब अपने-अपने कोटरों में घुस गये । जैसे पोखर के जल में उतर गये । सरोवर के पंक में हाथियों के झुंड घुसने लगे, उनके स्वेच्छा से हिलाने के कारण उखाड़े हुए मृणाल-दंड के टुकड़ों से ऊँचे नीचे और कमल के पत्तों तथा किंजल्क से सरोवर चितकबरा हो रहा है' । आगे ग्रीष्म व्यतीत करने के लिए बनाई हुई एक नहर का वर्णन किया है—'वहाँ सरोवर के किनारे एक जलमडप था (भरना) । जलधाराओं की निरन्तर हाने के कारण सूर्य का सताप दूर हो गया था । उसके आस-पास एक ही धारा में, वर्षा के वेग से बहती नदी के समान, एक नहर थी । भीतर लटकाए हुए जल-जम्बु के कोमल पत्तों से उसमें अन्धकार हो रहा था । उसके सब खम्भों पर फूलों और पत्तों से युक्त लताएँ लिपटी हुई थीं । सरस मृणाल इधर उधर पड़े थे । समस्त भूतल पर मरकत के समान श्याम कमल के पत्ते बिछे हुए थे । सुगन्धित और सरस फूले हुए कमलों के ढेर वहाँ बिखरे हुए थे । इधर-उधर पानी की बूँदे बरसाती शैवाल की प्रवाल-मंजरियों से वहाँ अकाल मेघ-समय की रचना की गई थी' ।^{२१} इस वर्णन में सामन्ती ऐश्वर्य का रूप मिला हुआ है ।

§ १७—जात्रालि के आश्रम में वैशम्पायन के पहुँचने के बाद कवि कथा-प्रारम्भ होने के पूर्व सन्ध्या का वर्णन करता है—'दिन तत्र तक ढल चला था । स्नान करने के बाद अर्ध्य देते समय मुनियों सन्ध्या : आश्रम में ने जो लाल चन्दन धरती पर डाला था, उसी का आकाश स्थित सूर्य ने मानो अग में साक्षात् लेप किया था । क्षीण ताप वाला सूर्य इस प्रकार दुर्बल हो गया, मानो मुँह ऊँचा करके, सूर्य-बिम्ब के सामने दृष्टि रख कर, ऊष्म पान करने वाले ऋषि उसका तेज पी गये हो । सप्तर्षि मंडल का स्पर्श त्याग करने की इच्छा से,

कबूतर के चरण के समान गुलाबी सूर्य मानो पाट (किरण) समेट कर आकाश में नीचे लटकने लगा। प्र० भा० ।०००० सूर्यास्त होने के बाद मुनियों को बिहार करके वापस आती, रक्त-तारक वाली तपोवन धेनु के समान कपिल सन्ध्या कहीं-कहीं दिखाई दी। थोड़ा ही बीता था कि सूर्य के वियोग से शोकग्रस्त कमलिनी ने व्रत करने वाली स्त्री के समान, कनी रूपी कमडल, मृणाल रूपी जनेऊ, मधुकर रूपी रुद्राक्ष तथा हंस रूपी श्वेत वस्त्र धारण किया। पश्चिम सागर के जल में सूर्य के गिरने के वेग से उछले हुए जल के सीकर-समूह के समान आकाश में तारे निकल आये। उस समय आकाश तारों से इस प्रकार दीखने लगा माना सन्ध्या-पूजन करने में सिद्ध कन्याओं द्वारा फेंके गये फूलों से चित्रित हो। और फिर क्षण भर में सन्ध्या का सब रंग इस प्रकार जाता रहा मानों मुँह ऊपर करके मुनियों द्वारा प्रणाम के समय, ऊपर को फेंके अंजलि के पानी से धुल गया हो।^{२२}

क—चन्द्रापीड के मृगया के लिये जाने के पहले दिन बाण ने सन्ध्या का वर्णन किया किया है—‘इस प्रकार दिन समाप्त हुआ।

अन्धकार प्रवेश
आकाश से उतरती हुई दिवस-श्री के पैरों में से गिरते—अपनी प्रभा भरे हुए छेद वाले—पद्म-राग के नूपुर के समान रविमण्डल, किरणों फैला कर नीचे गिर गया। प्र० भा० । सूर्य-विम्ब ने किरण रूपी सगुट से सार्यकाल तक पिये हुए कमल के मधु-रस को मानो आकाश के बीच में चलने की थकावट के कारण, लाल धूप के आकार में उगल दिया। फिर क्रमशः पश्चिम दिशा का लाल कमल-कुडल, सूर्य-मडल अन्य लोक में चला गया। सन्ध्या गगन सरोवर की विकसित कमलिनी के समान दिखाई पड़ी। काले अग्ररु की पत्र-लता के समान तिमिर रेखाएँ दिशाओं के मुख में फेंकने लगीं। लाल कमलों के सरोवर के समान

सन्ध्या-राग को कतलयवन के समान अन्धकार दूर करने लगा । अन्धकार के पल्लवों के समान भ्रमरो के भुण्ड कमलिनियों के पिघे हुए आतप को निकालने के लिए लाल कमलों के उदर में घुसने लगे । धीरे-धीरे निशा रूपी विलासिनो के मुख का कर्ण-पल्लव रूपी सन्ध्या-राग गिर पडा । मोरो के बैठने के डंडो की चांटियो पर अन्धकार व्याप्त हो जाने से मयूरो के नहीं बैठने पर भी वे उन पर बैठे से जान पड़ने लगे । प्रसाद-लक्ष्मी के कर्णोत्पल के समान कबूतर घोंसलों में चले गये' ।^{२३} कादम्बरी में एक-दो स्थलों पर सन्ध्या का वर्णन कथा-प्रसंग में और हुआ है जिनका अधिक अंश प्रथम भाग में ऊद्धृत किया जा चुका है ।

ख—बाण ने हर्षचरित में अनेक प्रसंगो में सन्ध्या का वर्णन उपस्थित किया है; उनके चित्रमय अशो को यहाँ सकलित किया जाता है ।—'इसी बीच सूर्य मानो सरस्वती के अवतरण की बात कहने के लिये मध्यलोक पर उतरा । धीरे-धीरे दिन का अवसान होने लगा तथा कमलों के बन्द होने के कारण सरोवर दुःखी होने लगे । आसव के मद में मत्त कामिनी के कुटिल कटाक्ष से मानों गिराया जाता हुआ, तरुण वानर के मुख के समान लाल, लोको का एक नेता भगवान सूर्य अस्ताचल के शिखर से तेजी से उतर रहे हैं ।—दिन के तीसरे पहर घूमने के लिए निकला हुआ, चँवर-युक्त ऐरावत गंगा के तट को स्वच्छदता-पूर्वक खोद रहा था तथा सोने के तट पर चोट करने से उसके दाँत बज उठते थे । विद्याधरो की विचरती हुई अनेक अभिसारिकाओं के सहस्र चरणों के महावर से मानो लित हुआ आकाश लाल हो रहा था । आकाश में घूमने वाले सिद्धों के द्वारा सूर्यास्त के अर्घ्य में ढाला गया लाल चन्दन दिशाओं को लाल करता हुआ खवित हो रहा था, मानों पिनाकी की पूजा में

आनन्द-विभोर सन्ध्या के लाल रंग का पसीना आ रहा था !... *...
 ब्रह्मा के वाहन धवलहंसों से गंगा की तरंगें बड़े-बड़े दौंटे दिखाकर
 मानों हँस रही थी। अपने ही मधु के मधुर आमोद से सुगन्धित
 आनन्दप्रद कुसुम समुदाय विकसित होने की अभिलाषा कर रहा था;
 वह देवताओं के आतपत्र और पत्तियों की कामिनियों के प्रामाद स्वरूप
 था। कोमल कमल-नालों से खुजलाने के लिये अपने कन्धों को झुकाये
 हुए और अपने हिलते पैरों से कमलों के व्यजन डुलाता सा, राजहंसों
 का झुंड, दिवस के अन्त में बन्द होते कमलों के मधुर मधु के सहपान
 से प्रसन्न सोने की इच्छा कर रहा था। निशा के निःश्वास के समान
 सायंकालीन मन्द समीर किनारे की लताओं के फूलों के पराग से सरिता
 को धूसर करते हुए बहने लगा। भौंरो का समूह ऊपर उठे ऊँचे किसरों
 से युक्त कमल-कोष की कोटर रूपी कुटी में आराम कर रहा था।
 आकाश तारों के गुच्छों से भर रहा था, मानों नृत्य में हिलती हुई शिव
 की जटाओं के कुटज नामक फूलों की कलियाँ हों।^{२४} 'लागलिका के
 गुच्छे के सदृश ताम्र-वर्ण का, बूढ़े सारस के सिर के समान लाल आभा
 वाला, सविता का त्रयीमय तेजस्वरूप, कमलिनी का प्रिय सूर्य पच्छिम
 की ओर अपना मडल फेकता हुआ डूबने लगा।^{२५}

ख—हर्ष के पिता के मृत्यु के अवसर पर सन्ध्या भावों को प्रति-
 बिम्बित करती उपस्थित हुई है—'मृत्यु से अत्यन्त विरक्त और शात होकर
 शोक से प्रभावित सूर्य ने गिरि-गुफा में प्रवेश किया। आतप मानों
 लोगों के आँसुओं से शात हो गया। ससार मानों
 सभी लोगों के रंने से लाल आँखों की आभा से लाल हो गया।
 दिवस मानों अगणित लोगों की गर्म उसाँसों से जल क नीला हो गया
 कमलों को छोड़ कर मानों श्री राजा के पीछे चली। पतिवियोग से

२४. हर्ष, उ० १; पृ० १४-१५।

२५. वटी; वही, पृ० २८।

मानो पृथ्वी कान्ति-विहीन होकर श्याम हो गई।—दुःखी चक्रवाल जलाशय के तटों का आश्रय लेकर करुण प्रलाप करने लगे। कमलों ने अपने कोमल पत्तों के टूटने के भय से मानों कोषों को संकुचित कर लिया। दिग्बधुओं के फूटे हृदय की रुधिरधार की भौंति लाल प्रभा बह चली। जिसकी केवल लालिमा शेष है ऐसा तेज का स्वामी धीरे-धीरे दूसरे लोक चला गया। प्रेत-पता की तरह लाल सन्ध्या आई और उसकी लाली आकाश में फैल गई। रात्रि का प्रवेश भी इसी प्रकार होता है—‘किसी ने कृष्ण अगुरु की चिता के समान काली दिशाओं वाली रात बनाई। गज-दन्त के समान विमल पत्तों तथा केसरो से युक्त कुमुद खिलने लगे, मानो साथ मरने को उद्यत रानियाँ हँस रही हों, जो हाथी-दाँत के निर्मित कनफूल पहने थी और जिनकी मुड-मालाएँ बकुलो की बनी थीं। पेड़ों के ऊपर घोसलों में चिपटी हुई चिड़ियों की मधुर चहक जान पड़ती थी मानो उतरते देव-विमानों की घटियाँ हो और स्वर्ग में जन्ते हुए राजा की अगवानी करने के लिये आये हुए इन्द्र के आतपत्र के समान चन्द्र पूर्व दिशा में दिखाई पड़ा।’^{२६} प्रकृति का इस प्रकार का प्रयोग वाण ने अनेक अन्य स्थलों पर किया है।

§ १८—जाबालि-आश्रम में, रात्रि होने के बाद चन्द्रोदय होता है, और इसी चाँदनी रात में मुनि कथा का आरम्भ करते हैं।—‘प्र०

रात्रि : चन्द्रोदय
भा०। चन्द्रमा के मंडल से जब उदय होने के समय की सारी ललाई जाती रही, उस समय वह ऐसा दीखने लगा जैसे आकाशगंगा में स्नान करने के बाद धुले सिद्धर वाला ऐरावत का कुंभस्थल हो। धीरे-धीरे चन्द्रमा के ऊपर चढ़ जाने से, अमृत की रज के समान चाँदनी से सारा जगत् सफेद हो गया। ओस की बूंदों के कारण खिले हुए कुमुद-वन की सुगन्ध लाने वाला पवन धीरे चलने लगी और सुख से बैठे हुए जुगाली करते आश्रम के हरिन—जिनकी आँखें

नीद से भारी थीं और पलके बन्द हो रही थी—पवन का अभिनन्दन करने लगे ।^{२७} इसी प्रकार कादम्बरी और चन्द्रापीड के प्रेम-प्रसंग में सन्ध्या-वर्णन के बाद चन्द्रोदय होता है—‘प्र० भा० । कामदेव के साम्राज्य के अद्वितीय छत्र के समान, निशा के विलास के दत्त-पत्र के समान, कुमुदिनी रूपिणी वधू का प्रिय चन्द्रमा उदित हुआ और उसकी चन्द्रिका के धवल जगत् हाथी-दाँतों में से एक उत्कीर्ण किया सा जान पड़ने लगा ।^{२८} हर्ष-चरित में सन्ध्या के साथ चन्द्रोदय का दृश्य सामने आता है—‘तरुण तिमिर पटल को विदीर्ण करने में तीव्र दीप-समूह इस प्रकार जल रहा था, मानो यामिनी रूपी कामिनी के वर्ण-फूल रूप में चम्पक की कलियाँ खिल उठी हो । कुछ-कुछ सूखे तथा नीले जल से मुक्त यमुना-तट के बालुका तट के समान चन्द्रमा की विरल तथा सुन्दर किरणों के आलोक से धवल पूर्व दिशा अन्धकार को दूर कर रही थी । चन्द्रमा के कर्णों से केश पकड़े जाने से दूषित हुआ अन्धकार, निशा रूपी शवरी के कुन्तल-समूह के समान, चाष पक्षी के पख जैसा रंग वाले आकाश को छोड़ता हुआ तथा विकसित कमल-सरोवरों को अधियारा करता हुआ मानिनी के मन की तरह विलीन हो रहा है । उदित हुआ चन्द्रमा रात्रि-रूपी वधू के उदय-राग से युक्त अधर की तरह लाल शरीर धारण कर रहा था, लगता था मानो उदयाचल की चोटी के पास की गुफा के सिंह के तेज पंजा रूपी अस्त्र से मारे अपने ही हरिण के शरीर से निकलती रुधिर-राशि से ढका हुआ था । उदयाचल से बहती हुई चन्द्रकान्त की जल-धारा से धुल कर मानों अन्धकार नष्ट हो गया । जान पड़ता है मानो गो लोक से बहती दुग्ध-धारा से भरा हुआ मकर-मुख के समान हाथीदाँत के बने एक बड़े नल के रूप में चन्द्रमा ने समुद्र को भरना आरम्भ कर दिया है ।^{२९} वाण के । १३

२७. काद० ; पू० भा० ; पृ० १०७-१०९ ।

२८ वही, वही ; पृ० ४२२-४२३ ।

२९. हर्ष०, उ० १, पृ० १५-१६ ।

मे वैचित्र्य-विधान अधिक प्रधान रहता है, केवल उंनकी कल्पना की प्रखरता मे सौन्दर्य-बोध को इससे बाधा नहीं पहुँचती ।

क—कुछ स्थलो पर चन्द्रोदय तथा ज्योत्स्ना का स्वतंत्र वर्णन लिया गया है । बाण ऐसे स्थलो पर प्रकृति को कथा-स्थिति से प्रभावित चित्रित करते हैं—‘पीछे त्रिभुवन रूपी प्रासाद के समान, स्वतंत्र मानो सुधा रूपी धारा नीचे बहाते, चन्दन रस के भरनो को मानो भरते, श्वेत-गंगा के सहस्रो प्रवाहो का मानो उगलते, अमृत सागर के प्रवाहो का मानो वसन करते चन्द्र-मडल थोड़ा-थोड़ा उदित हुआ और अन्तरिक्ष चाँदनी से डूब गया । महीमडल को महावराह के दंष्ट्र-मडल जैसा चन्द्र क्षीरसागर के उदर से निकाल रहा था ।’^{३०} इसी प्रकार अन्यत्र भी—‘उस समय पूर्व दिगन्तर चन्द्र-प्रकाश से, शशि रूपी सिंह कर रूपी नख से छेदे अंधकार रूपी गज के गडस्थल से निकले हुए मोती के चूरे से मानो श्वेत हुआ, उदयाचल की सिद्ध सुन्दरियों के स्तन पर से छूटे हुए चन्दनचूर्ण के पुंज से मानो श्वेत हुआ और चलायमान समुद्र-जल की तरंगो को कँपाती हुई पवन से उडाई हुई रेती के किनारे की धूल के उठने से मानो श्वेत हुआ दिखाई पडा । धीरे-धीरे चन्द्र-दर्शन होने से मद मुस्काती निशा की दंत-प्रभा के समान गिरती चद्रिका उसके मुख को शोभायमान करने लगी । उसके पीछे रसातल को फोड़ कर बाहर आये शेषनाग के फन के समान, चद्र-बिम्ब से रात्रि प्रकाशित होने लगी । अमृतमय चद्रमा के धीरे-धीरे कुछ बाल-भाव छोड़ कर यौवन की ओर बढ़ने से रात्रि रमणीय हो गई’^{३१}।

§ १६—दण्डकाराण्य मे मृगया कोलाहाल के साथ प्रभात होता है, और बाण ने कल्पना के अनेक हल्के गहरे रंगों से इसका चित्रण किया है—‘प्र० भा० । प्रातः होते समय सप्त ऋषियो के प्रभात तारे उत्तर दिशा की ओर जाने हुए ऐसे जान पड़े

३०. काद , पू० भा० , पृ० ३४३ ।

३१. वही ; वही , पृ० ३३९-३४० ।

मानो सन्ध्या करने के लिये मानसरोवर के किनारे उतर रहे हो । सीपियों के चिटक कर फटने से गिरे हुए मोतियों से पच्छिमी सागर-तट सफेद हो गया था, जान पड़ता था कि सूर्य की किरणों की प्रेरणा से तारे नीचे गिर गये हो । प्र० भा० । कमलों के जागने के समय भ्रमर गुँज कर मंगल पाठ कर रहे थे, सकुचित होते हुए कुमुद की पंखुडियों ने उनके पंखों को दाब लिया था और वे हाथियों के कपोलों से बाजे का काम ले रहे थे । वन के हगिनो के नेत्र प्रातःकाल की शीतल पवन से पीडित थे, उनकी पुतलियाँ नींद उचट जाने से कुछ टेढ़ी हो रही थीं, पलक ऐसे जान पड़ते थे मानो तपाई गई लाख से चिपकाये गये हों और उनकी छाती के बाल तृण-रहित भूमि पर सोने के कारण धूसरित हो गई थी और वे धीरे-धीरे इस प्रकार अपनी आँखें खोल रहे थे । वनचर इधर-उधर घूम रहे थे । पम्पा सरोवर में कानो को आकर्षित करने वाला हसो का कोलाहल बढ़ रहा था । हाथियों के कान फटफटाने से उत्पन्न हुए मनोहर ताल शब्द को मेघ गर्जन समझ मयूर नाच रहे थे । मजीठ के समान लाल रंग की सूर्य-किरणें किंचित् दीखने लगी थीं, वे आकाश मार्ग में चलते हुए हाथों के उलटे लटकते हुए चमर के समान मालूम होती थीं । सविता का धीरे-धीरे उदय हो रहा था । रवि से उत्पन्न हुआ तथा तारों का हरण करने वाला गिरि-शिखर पर बसने वाला और पम्पा सरोवर तक के वृक्षों तक की चोटियों पर पहुँचा हुआ बालातप वन में प्रवेश कर रहा था, मानो सुग्रीव ही फिर आया हो । प्रभात स्पष्ट हो चला था । थोड़ी ही देर में एक पहर दिन चढ़ जाने से सूर्य साफ दिखाई देने लगा था । तंतो के झुंड अपनी अपनी दिशाओं में उड़ गये थे । घोंसलों में बेखबर सोये हुए बच्चों के होने पर भी वह वृक्ष शब्द-रहित हो शून्य सा दिखाई देता था ।³² इस वर्णन में प्रातःकाल का सूक्ष्म पर्यवेक्षण है और क्रिया-व्यापारों की

संश्लिष्ट योजना है ।

क—अन्यत्र प्रातःकाल के कुछ सञ्चित वर्णन है, जिनमें कवि ने भावशील वातावरण प्रस्तुत किया है—‘थका हुआ चन्द्रमा जल-तरंगों से शीतल हुई वनराजि में विश्राम करने के लिये धीरे-धीरे उतर गया । प्र० भा० । निरन्तर बाण फेकने से थके हुए अनग के निश्वास सदृश विलास-युक्त प्रभात-पवन लताओं के पुष्पों की सुगन्ध के साथ चलने लगा । अरुणोदय से तेजहीन होते हुए तारे मानों डर-डर कर मदराचन के लता-मडपों की झाड़ी में घुसने लगे और चक्रवाक के हृदय में रहने से लगे हुए अनुराग से मानों लाल हुआ सूर्य-मडल धीरे-धीरे उदय होने लगा ।’^{३३} हर्ष-चरित में राजा की मृत्यु का शोक इस प्रातःकाल के वर्णन में प्रतिघटित है—‘ताम्रचूड मानों शोक से मुक्तकंठ हो चिल्लाने लगे । पालतू मोरों ने क्रीडा-शैलों पर खड़े पेड़ों की चोटियों से अपने को गिराया । पत्नी निवास छोड़ कर वन को चले गये । आत्म-स्नेह मन्द हो जाने से दीप अभाव (निर्वाण) की अभिलाषा करने लगा । चमकीले और लाल बल्कल से अपने को ढक कर आकाश ने मानों सन्यास ले लिया । प्रभात समय चटक के कन्धे के समान तारे धूसर हुए एकत्र थे, मानों राजा के लिए फूल चुन रहे हैं । पर्वत की गेरिक धातुओं आदि से युक्त कपोल वाले वन के हाथी सरोवरो, सरिताओं तथा तीर्थों की ओर चले । प्रेत को अर्पित किये जाने वाले पिंड के समान चन्द्र पच्छिमी सागर के तट पर गिरने लगा, मानों राजा की जलती हुई चिता से उसका तेज धुंधला हो गया हो । उसका शरीर मानों अन्तःपुर की सभी प्रोषित रानियों के मुख-चन्द्र के उद्वेग को देख कर भाग रहा था । इस प्रकार चन्द्रमा पहले ही अस्त हुई रोहिणी की चिन्ता में मानों उदास हो धीरे-धीरे अस्त हो गया ।’^{३४}

३३. वही ; वही , पृ० ४२५-४२६ ।

३४. हर्ष० ; उ० ५ ; पृ० १७१ ।

ख—कादम्बरी के उत्तर भाग में चन्द्रापीड़ के मार्ग में प्रभात का वर्णन है। बाण के पुत्र ने अपनी वर्णन-शैली ही नहीं वरन् कल्पना का स्तर भी अपने पिता के समान अपनाया है।—‘उस मार्ग में प्रातःकाल समय चाँदनी रूपी जल में खूब स्नान करने से अत्यन्त शीतल स्पर्शयुक्त ओस की बूँदों का आकर्षण करने वाली, फूलों की रज से युक्त अनेक प्रकार के वनपल्लवों से आती हुई पवन से प्रेरित, खिली हुई कुमुदिनी की रगड़ से लगी हुई परिमल को लाती, परिमल से जड़ हुई, रात के बीतने की सूचना देती हुई सुखद पवन मानो मार्ग की थकावट मिटाने के लिये चलने लगी। रात्रि के कठिन वियोग की चिन्ता से, आसन्नवर्ती सूर्योदय के दुःख से, प्रदोषसमय से लेकर कुमुद-समूहों के द्वारा ऊँचे मुख करके पिये गये अपने क्षय से और गगन-सरोवर का जल पीने आये हुए मेघों के समान घोंडों की रज के मानों समूह से पश्चिम दिग्बधू के मुख का चुम्बन करता हुआ चद्रबिम्ब क्रमशः फीका पड़ गया और प्रभात होने लगा। चन्द्रमा से लगा हुआ आकाश लक्ष्मी के नये वियोग के संताप से उतारे हुए दुपट्टे के समान, चाँदनी का प्रकाश दूर होने लगा। चाँदनी के जल-प्रवाह के पश्चिम समुद्र में गिरने से उठे हुए भाग के बुद्बुदों की कनार के समान तारों की पंक्तियाँ एक साथ नष्ट होने लगी। गिरते हुए ओस के जल से मानों धुल जाने के कारण दिशाएँ जत्र धीरे-धीरे मोतियों के चूर्ण के समान सफेद चाँदनी के लेप का त्याग करने लगीं। स्वाभाविक श्यामकान्ति फिर दिखाई देने के कारण वृद्ध लता और डालियाँ मानों जत्र से फिर बाहर निकलने लगीं। पूर्व दिशा-बधू के कान में पहने हुए बाज अशोक के पल्लव के समान, गगन सरोवर के लालकमल के समान, प्रभात-रूपी हाथी के गंडस्थल के सेदूर-रेणु के समान तथा सूर्य के रथ की लाल ध्वजा के समान, प्रभात-सन्ध्या का रंग उल्लसित हो उठा। प्रातः सन्ध्या प्रकाश के चारों ओर फैलने से मानों दावानल से छाये हुए निवास-वृद्धों में पक्षियों के झुंड कल कल करते हुए निकलने लगे। प्र० भा०। दिशाएँ आगे बढ़ती गईं,

वन आगे खिसकता गया; ग्राम की सीमाएँ मानो विस्तार पाने लगीं । जलाशय विशाल होने लगे, पर्वत अलग-अलग साफ दिखाई देने लगे और भूमि मानो ऊँची होने लगी । कुसुदिनियाँ अदृश्य होने लगीं । सप्त लोक चक्षु भगवान् सूर्य, छिपाने वाले नीले बुरके के समान अंधकार-माला को करों से हटा कर विरह से पीड़ित हुई कमलिनी को मानों देखने के लिये उदय-गिरि के शिखर पर चढ़ गये । गगन-तल को प्रकाशित कर सारे जगत् में उजेला करने वाली सूर्य की किरणों सब दिशाओं को चमकाने लगीं और आँखों से पदार्थ साफ दिखाई देने लगे ।^{२३५} इसमें प्रातःकालीन प्रकाशित होते दृश्य-जगत् का चित्रमय वर्णन प्रस्तुत किया गया है ।

ऋतु-वर्णन

§ २०—बाण द्वारा वर्णित ऋतुओं में परम्परा के अनुरूप उद्दीपन की प्रवृत्ति लक्षित होती है । परन्तु उनकी वैचित्र्य-प्रधान चित्रमय शैली और सश्लेष योजना इन ऋतु-वर्णनों में भी पूर्ववत् ग्रीष्म मिलेगी । ग्रीष्म काल का वर्णन हर्षचरित में बहुत विस्तार के साथ किया गया है—‘तत्काल जीते गये तथा अस्त हुए वसन्त के जल से सींचे जाने योग्य नये उद्यानों के प्रति वह ग्रीष्म-काल, मानों विजित अस्तगत सामन्त के दुधमुँहे नन्हे बच्चों के समान स्नेहशील और दयालु हुआ । नये मुदिन ग्रीष्म ने पृथ्वी के सभी फूलों के बन्धन खोल दिये ।.....ग्रीष्म ऋतु में नदियों के समान ही चाँदनी रात भी क्षीण हो गई, अतः चक्रवाक के जोड़ों ने उनका अभिनन्दन किया ।.....धीरे-धीरे सूर्य की किरणों प्रखर होने लगी, ऋतु का शैशव बीत चला, सर सूखने लगे, धाराएँ पतली हो गईं और झरने धीमे पड़ गये । कातर कबूतरों के लगातार कूकने से विश्व बहरा हो रहा था और दूसरे पक्षी

निश्वास छोड़ रहे थे। त्रिनौले कंठे हवा से प्रताड़ित हो रहे थे, लताएँ तितर-बितर हो रही थीं। लोहू की इच्छा से शेरों के बच्चे घातकी नामक लता के कठोर फूलों के गुच्छे चाट रहे थे। थके हुए हाथियों की सूँड़ से निकलते पानी के कणों से बड़े-बड़े पहाड़ों के पार्श्वभाग भीग रहे थे। पीड़ित हाथियों के सूखे हुए मद-जल की कुछ काली रेखाओं में मूक भौरे चिपटे थे। लाल होते मन्दार वृक्षों से सीमाएँ सिन्दूर से लिपी जान पड़ती थीं। जल-धारा के भ्रम से बेसुध हुए बड़े-बड़े भैसे अपने सींगों की नोकों से चमकती स्फटिक शिलाओं पर चोट कर रहे थे। गर्मी से सूखी लताएँ मर्मर शब्द कर रही थीं। तभी धूल से भूसी की आग के समान विकर (कुक्कुटादि) पक्षी कातर हो रहे थे। हिंसक प्राणी त्रिलो की शरण में घुस गये थे। किनारे के अर्जुनवृक्षों पर कुरुर पक्षी के कूजन से व्याकुल हो पीठ के बल छूटपटाती मछलियों से पोखरों का जल गँदला हो रहा था। दावानल से मानों समार की आरती उतारी जाती थी और राते क्षयरोग से ग्रस्त हो गई थीं।^{१३६}

क—इस प्रकार प्रौढ होते ग्रीष्म-काल में उन्मत्त पवन बहने लगे। पवन प्रत्येक दिशा में मानों उछल रहे थे। ऊसर स्थानों के पनसालों, बाटों और कुटिया के छप्परो को प्रकट रूप से वे लूट रहे थे। पके कपिकच्छू के गुच्छों की कतारों को फोड़ने की चपलता करने से, खुजलाहट हो जाने के कारण वे कंकरीले और पथरीले स्थानों से रगड़ रहे थे। पवन बड़े-बड़े पत्थरों को फेंक रहे थे। मुचुकुन्द की नई नालों के टुकड़े उनके दाँत थे। उड़ते तथा बोलते हुए भींगुरों के मुँह से निकले जल-कणों से सिक्त हो रहे थे। बाल सूर्य के ताप से तरल तथा तरंगित मृग-तृष्णा के भ्रमपूर्ण जल में पवन मानों तैर रहे थे। सूखे शमी के वृक्षों से मर्मर शब्द करने वाले मरुस्थल के मागों को वे आसानी से लॉधने में वे अति वेगवान थे। वे आरभटी

नट होकर, धूलि के आवर्त-समूह को पृथक करते हुए राम के रस से वेग-पूर्ण नृत्य आरम्भ कर रहे थे। जले हुए स्थलों की राख मलने से वे मलीन हो गये थे। वे जगली मोरो के पर चुन रहे थे, मानो उन्होंने जैनसाधुओं की आदत सीख ली है। करंज वृक्षों के सूखे बीचे के टक-टक शब्द होने से लगना था युद्ध-यात्रा के लिये ढोलों से युक्त हैं। गर्मी से व्याकुल भैंसों नाक-रूरी निकुनों से गहरी साँसे निकल रही थी, पवन मानो अंकुरों से युक्त हो रहे थे। उड़लते हुए हगियों के झुंड से वे सन्तान वाले हो रहे थे। खलिहान पर जलती भूसी के ढेर से उठते हुए धुएँ की टेढ़ी रेखाओं से वे मानो कुटिल मोहो वाले हो रहे थे। सेमल के फटते फलों की रुई से मानो वे लोमश हो रहे थे। घाम की पत्तियों बिखेरने से मानो उनकी धमनियाँ निकल आई थीं। जौ की बाली के टुकड़ों की हिलती नोकों से उन्हे मानो लम्बी दाढ़ी हो गई थी। उठे हुए साही के काँटे उनके मानो दाँत थे, अग्नि की शिखाएँ उनकी जीभ थीं, साँप की उड़ता केतुलें मानो उनकी चूड़ाएँ थीं। कमल के उष्ण मधु से समस्त जगत् के रस को सोखने के लिये वे मानो कौर लेने का अभ्यास कर रहे थे। सूखे बाँसों के फटने से उत्पन्न हुई, समस्त जल-राशि को सोखने वाली गर्मी की घोषणा करने वाले ढोलों के समान तेज़ ध्वनियों से वे (पवन) तीनों लोकों के लिये भय उत्पन्न कर रहे थे। उड़ते हुए चाष पक्षी के पंखों के गिरने से वे रास्तों को चित्रित कर रहे थे। गुंजा फलों की चिंगारियों तथा अंगारों से उनके शरीर चिह्नित थे, मानो सूर्य की किरण रूपी लताओं के अलावों से उनके शरीर जल कर लाल-नीले हो गये थे। वे गुफाओं में भंकार करते हुए भयानक रूप से चल रहे थे। संसार को भस्म करने के लिये उच्चाटन का हविष्य पकाने में निपुण वे पारिभद्र वृक्षों के फूलों (लाल) से, मानो लोहू की आहुतियाँ देकर दावानल को प्रसन्न कर रहे थे। तप्त बालू के कण तारे के समान उनके वेग में पड़ गये थे। तपे पर्वत से पिघलते शिलाजीव के रस से वे जैसे दिशाओं का लेप कर रहे थे। वृक्षों के कांटों के कीड़ों से चटक पक्षी के

दावानल से पकते अंडों के टुकड़े मिलकर, मानों पुटपाक हो गमा और पवन इसकी गंध से कटु थे ।' इस वर्णन में अत्यंत स्वाभाविक परिस्थितियों के दृश्य उपस्थित हुए हैं । कवि की कल्पना ने इनको गति और जीवन से स्पन्दित कर दिया है । ऐसा सूक्ष्म पर्यवेक्षण अन्यत्र मिलना कठिन है ।

ख—जिस संश्लेष से पवन के आतक में ग्रीष्म प्रकृति का रूप उपस्थित किया गया है, उसी व्यापक सूक्ष्म वर्णना से दावानल के प्रकोप

दावानल प्रकोप

का सजीव दृश्य सामने आता है—दावानल दास्य होकर चागे और दिखाई देने लगे । वृद्ध अजगरो के

कंठ-कुहरो से निकली हुई साँसों के समान वे दावानल हजार-हजार भट्टियों के समान उद्दीत हो रहे थे । वे कहीं हरिनो की भौंति मुक्त होकर घास खाते थे, कहीं वृद्धों के नीचे बिलों में नकुलों की तरह लोटते थे, कहीं कपिल मुनि के शिष्यों की भौंति जटा धारण करते थे, कहीं बाजों की तरह चिड़ियों को घोंसलों से गिराते थे, कहीं पिघली लाख के रस से लाल आभा वाले वे दुर्घर्ष और कहीं महावर से लाल आभा वाले ओठों के समान हो गये थे । ज्वाला शांत होने पर कहीं पत्तियों के पख पाकर उनका वेग अधिक हो गया था । जन्म के कारणों (तृणादि) को निःशेष जलाकर कहीं वे निर्वाणवत् हो गये थे । कहीं धुँएँ से वासित आकाश से सुगन्धित हो वे लाल रंग धारण करते थे या कुसुमों से वासित वस्त्र से सुगन्धित प्रेमियों की भौंति जान पड़ते थे । कहीं धुँएँ के निकलने से उनकी आभा-मलिन हो गई थी । समूचे संसार को एक घ्रास के समान निगलने से वे भस्म युक्त हो गये हो गये थे, कहीं-कहीं ब्रौंसों की चोटियों पर धधकने से अत्यन्त बढ गये थे ।.....कहीं जलती जड़ों की आग से फूलों सहित शाखाओं तथा मदन नामक वृद्धों को जलाकर ठूटे वृद्धों पर ठहरे हुए थे, चंचल शिखाओं से नृत्य के आरम्भ में वे भारभटी नट हो गये थे । मूखे तालाबों में फँस कर, फूटने हुए

सूखे जंगली धानो के बीजों के लावे की वृष्टि करने वाली ज्वाला रूपी अजलियो से मानो वे सूर्य की पूजा करते थे। बलपूर्वक हवन में डाले जाते प्रौढ कछुओं की चर्बी की कच्ची गन्ध के लोभी वे दावानल मानो घृणा रहित हो गये थे। अपने धुँएँ को भी मेघ बनने के भय से खा जाते थे। सूखी घास पर छोटे-छोटे कीड़ों के फूटने से जान पड़ता था मानो तिलो की आहुतियाँ पड़ रही थीं। ज्वाला से छाले की भाँति घोघों और सीपो के चिटकने से उज्ज्वल हुए सूखे पोखरो से वे कुष्ठ रोगियों की भाँति जान पड़ते थे। वन में मधुकोष से पिघलते हुए मोम के बरसने से मानो उन्हें पसीना आ रहा था। ऊसरभूमि पर शिखाओं के विरल होने से वे गंजे जान पड़ते थे। वे दावानल शिला-समूहों में सूर्यकान्त मणियों के दीप्त होने से मानो वे शिलाओं का कौर कर रहे थे।^{१३८} दावानल की कल्पना में वैचित्र्य-प्रधान है। पर जिस सूद्धमता और गति से दृश्य उपस्थित किया है, इससे चित्र में सुन्दर सजीवता आ गई है।

§ २१—कादम्बरी में विस्तृत वर्णनो में केवल वर्षा-ऋतु उपस्थित की गई। उत्तर भाग में चन्द्रापीड़ के मार्ग में वर्षा-काल प्रारम्भ हो जाता है। कहा गया है कादम्बरी का यह भाग बाण वर्षा के पुत्र भूषणभट्ट द्वारा रचित है।—‘मेघ-काल शीघ्र जाने में बाधा के समान आ गया। काला सँप जैसे मार्ग रोक ले उसी प्रकार मेघ-काल ने उसे आगे बढने से रोक दिया। यह काल अत्यधिक पंक के समान ग्रीष्म ऋतु को रोक देता है, रात्रि के आसमान के समान सूर्य को छिपा देता है और चन्द्र को राहु के समान ग्रस लेता है। * * * यह काल अमर-समूह और जंगली भैंसों के समान मलिन गर्जती हुई मेघों की घटा के विस्तार से भयंकर जान पड़ता है; विषम नाद करता हुआ गड़गड़ाता है; अधिक विषम विद्युत् गुण से खींचता है,

विकट इन्द्र-धनुषं चढ़ाता है और फिर लगातार धार रूपी बाखों की बौछार की वर्षा से प्रहार करता है। विरुद्ध आचरण वानां हो इस प्रकार मुख पर अन्धकार करके आगे से मार्ग गोक लेता है और एक लाख वज्रो के गिरने के समान देखने की शक्ति हर कर आँखों को चौधिया देता है।' इसके बाद वर्षा के साथ चन्द्रापीड की मनोदशा का वर्णन शामिल किया गया है—'अचेतन करने वाले मून्झा के वेग से दशो दिशाओ में अन्धकार व्याप्त हो गया, फिर हस गये। पहले उमके परिमल युक्त निश्वास निकले, बाद में कदम्ब वायु। पहले उसके नील-कमल जैसे नेत्रों से अश्रुवर्षा हुई, बाद में मेघ समूह बरसा। उसका मन उत्कण्ठित हो उद्वेग से पहले भर गया, नदियों का पाट जल-तरंगों से बाद में। दुस्तर नदी प्रवाहों के साथ उसकी काम-वेदना बढ़ने लगी; वर्षा जल से तितर-बितर हुए कमलाकरो के साथ ही उसकी कादम्बरी से मिलने की आशा भी दूब गई; धारा के वेग को सहन करने में अशक्त कदली के अकुरों के साथ ही उसका हृदय फटने लगा, मेघमाल की पवन से आहत कदम्ब-कली के साथ ही उसका शरीर कटफ़ित हो काँपने लगा, और निरन्तर जन गिरने से जर्जरित पत्तों वाले कल के फूलों के साथ ही उसके दोनों नेत्र लाल हो गये। तीर पर आते हुए जन प्रवाह से कटती हुई कगारों के साथ ही उसके प्राण गिरने लगे; परिमल-मय मालती के फूलों के साथ ही उसकी उत्कंठा बढ़ी। इसी प्रकार आँधी से उसके मनोरथ भग्न हो गये, शिखा ऊँची करते शिखियों से ही उसके अग जल गये; दिशाओ में अंधेरा करते मेघों से उसका मोहान्धकार बढ़ गया; अन्धकार का तिरस्कार करती चपला की चमक से ही सताप बढ़ गया। अर जल से बोझिल हुए बार-बार लगातार गंभीर गर्जना से मेघ आकाश में पृथ्वी के पीठ-बंध को कँपाते हैं। अंतरिक्ष में मेघ की जल धारा के कारण चातक चोच से शब्द करते हैं। पृथ्वी पर लगातार भंकार शब्द से धारा के जल को क्षीण करते हुए जलद पवनों के साथ दिशाओ में मेढ़क ऊँचे स्वर से टरटर करते हैं। वनों में मयूर मदमत्त

होकर केकर शब्द कर रहे हैं। पर्वतो मे भरने के ऊँचे-नीचे शिखरो से शिलाओं पर गिरने से कल-कल शब्द कर रहे हैं। नदियो मे ऊँची उछलती हुई तरंगो की टक्कर से प्रवाहो का निर्घोष बढ़ा हुआ है। धारा स्वर, स्थलो पर सर्वत्र विस्तार पा रहे हैं, गुफाओ मे घने हो जाते हैं, पहाडो पर प्रचंड लगते हैं, जल पर आपस मे मिल जाते हैं, पर्वतो के ढालो पर चतुर जान पडते हैं, हरी घास के मैदान पर मृदुल, पल्लवो पर चारु, वृक्षो पर गम्भीर और तृणो पर सूक्ष्म लगते हैं, ताल वन मे स्पष्ट मालूम होते हैं, जल-धाराओ के गिरने के समय सुनाई देते हैं। इस प्रकार के मधुर और हृदय मे गडने वाले धारा-स्वरो से राजपुत्र की उत्कठा तीव्र हो गई।^{१३९}

§ २२—राजा के पास से बाण जब अपने बन्धुओ को देखने के लिये लौटे उस समय शरत्काल था—‘मेघ विरल हो गये, चातक शरद् आतंकित हुए, और कलहंस बोलने लगे। यह समय दादुरो से द्वेष करता है, मयूरो का मद चुराता है, हस-रूमी यात्रियो का आतिथ्य सत्कार करता है। इस समय आकाश धुली तलवार की तरह निर्मल हो गया, सूर्य चमकने लगा, चाँद निर्मल हो गया, और तारे तरुण जान पडने लगे। इन्द्र-धनुष और विद्युत्-मालाएँ मिट गईं और विष्णु की नींद भी टूट गई। वैदूर्य मणि सा पानी बहने लगा, नीहार के समान हल्का मेघ विचरने लगा, और इन्द्र असफल हो गया। कदम्ब संकुचित हुए, कुटज कुसुमो से रहित और कन्दली मुकुलो से हीन हो गईं। लाल कमल कोमल हुए, नीले कमल मधु बरसने लगे और सफेद कमल फूलने लगे। शेफालिका से रातें शीतल हुईं, यूथिकाओ का परिमल फैल गया और खिलते कुमुदों से दसो दिशाएँ श्वेत हो गईं। छितौन की धूल से समीर धूसर हो गई और सुन्दर बन्धूको के गुच्छो से असमय ही सन्ध्या होने लगी।

घोड़ों का नीराजन किया जाने लगा, हाथी उच्छृंखल हुए और सॉड दर्प मत्त हो गये। कीचड़ क्षीण हो गया। पकने के कारण नीवार कुछ-कुछ सूख गया, प्रयंगु की मंजरी में पराग आ गया, त्रिपुस का झिलका कड़ा हो गया और सरकड़ा फूलों में हँसने लगा।^{४०} इसमें ऋतु के रूप को व्यापक रूप से दिखाया गया है, किसी प्रकार की दृश्य योजना नहीं हो सकी है।

§ २३—महाश्वेता अपनी माता के साथ जब सरोवर पर स्नान करने के लिये जाती है, उस समय वसंत ऋतु का प्रसार है। इस समय तक वह यौवन में प्रवेश कर चुकी है। 'प्र० भा०। वसंत
वसन्त के कारण अधिक शोभायमान फूले हुए अभिनव कमल, कुमुद, कुतलय, कन्हार से आच्छादित सरोवर (अच्छोद) में स्नान करने के लिये माता के साथ (मै) आई। वहाँ भ्रमरो के भार से लचके हुए गर्भ-तन्तु वाले जर्जरित कुमुदों से मनोहर लता-मडप थे, पुष्पित आम के पेड़ थे, उनकी खिलती हुई कलियों के डडों में कोकिलों ने नावाग्र से छेद कर छिपे थे और उनमें मधुधारा निकल रही थी। शीतल चन्दन वृक्षों के कुंज मदमत्त मयूरों के कल-कल से डरे सोंपों से त्याग दी गई थी। सुन्दर लताओं का वहाँ हिंडोला था, जिसके फूले हुए फूलों के गिरने से जान पड़ता था कि वनदेवियों ने वहाँ भूला भूला है'।^{४१} उत्तर भाग में उद्दीपन के रूप में वसंत का वर्णन है—'कामाग्नि का माना उद्दीपन करने के लिए सरस पल्लव-युक्त लताओं को नाचना सिखाने में चतुर क्षीण पवन बहने लगा और चैत्रमास पूरी तरह प्रारम्भ हो गया। वह चंचल लाल पल्लव वाले अशोक वृक्षों को केंपाने लगा; वाक्षित कर्ता तथा मंजरी के भार से छोटे-छोटे आम के वृक्षों को झुकाने लगा; कुरबकों के साथ बकुल, तिलक, चंपक और कदम्बों की कलियों से

४०. हर्ष०, उ० ३, पृ० २३-२४।

४१. काद० पू० भा०; पृ० २९७-२९८,

लादने लगा, किकिरात (कुरंटक) वृक्षों के साथ अर्जुन को भी पीला करने लगा। यह दक्षिण पवन वासन्ती लताओं का परिमल फैलाने लगा, पलाश वन को खिलाने लगा।.....वह सभी वनो और बगीचो के वृक्षों में कोपले निकालने लगा, फूलों आम के वृक्ष की गन्ध चारों ओर फैलाने लगी। वह मकरन्द के मद से मधुर हुए कोकिलों के आलापो से पथिक जनों के कानों का पीड़ित करने लगा, निरन्तर मकरन्द के कणों की वर्षा से दुर्दिन कर सब जीव लोक के हृदय को उन्मत्त करने लगा। वह दक्षिण पवन मदमत्त भ्रमण करते भौरो के गुंजार से विरही जनो के मन को व्याकुल कर काम जगाने लगा'।^{४२} इन उद्दीपन की भावना में भी बाण ने प्रकृति के रूप को गौण नहीं किया है।

पंचम प्रकरण

अन्य कवि

पिछले प्रकरणों में जिन कवियों को लिया गया है, उनके काव्य में प्रकृति का विस्तार से अवसर मिला है। इन सभी कवियों में प्रकृति का चित्रण केवल प्रासंगिक नहीं कहा जा सकता। शैली में विभिन्नता हो सकती है, परन्तु बाल्मीकि हो या कालिदास प्रवरसेन हो या बाण सभी कवियों ने प्रकृति को प्रत्यक्ष देखा है और अपने काव्य में मुक्त रूप से स्थान दिया है। अन्य कवियों में प्रकृति के प्रति इस प्रकार का दृष्टिकोण नहीं रहा। इसका कारण जैसे पहले ही संकेत किया गया है, महाकाव्य शैली में प्रकृति का कलात्मक प्रयोग तथा क्रमशः प्रकृति के प्रति उद्बोधन का दृष्टिकोण होते जाना है। नाटककारों में भवभूति ने प्रकृति को अधिक सहज तथा सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण से देखा है, परन्तु नाटकों में प्रकृति का सीमित प्रयोग है और उसमें से अत्रिक्वश का उल्लेख पिछले भाग में किया गया है। इस कारण हम उनके वर्णनों को यहाँ संकलित नहीं कर रहे हैं। अन्य कवियों के विषय में, पिछले भाग में, पर्याप्त विवेचना की गई है, यहाँ केवल उनके वर्णनों को संकलित करके प्रस्तुत किया जा रहा है।

बुद्धघोष

§ १—अश्वघोष के समान बुद्धघोष बौद्ध कवि हैं। परन्तु अश्वघोष महाकाव्य के प्रारम्भिक कवि हैं, इस कारण उनकी शैली और उनके वर्णनो मे कलात्मकता का पूर्ण विकास नहीं है। वे प्रभाविन प्रकृति सहज अधिक हैं, उनमे प्रकृति का अत्यंत संक्षिप्त प्रयोग है। परन्तु बुद्धघोष पर कालिदास का स्पष्ट प्रभाव है। अपनी शैली मे वे कालिदास की सहज कलात्मक शैली से प्रभावित हैं परन्तु विषय को उपस्थित करने की दृष्टि से उन्होने अश्वघोष का अनुकरण किया है। जन्म के अवसर पर प्रकृति प्रभावित उपस्थित होती है— 'सिद्धार्थ के जन्म के अवसर पर खिले हुए पाँचो वर्ण के कमलों से आच्छादित पृथ्वी, उनके लिये उपहार लिये प्रस्तुत सी जान पडी। प्र० भा०। आकाश मे कमल खिल कर मानो शरीरधारियों को यह सूचना दे रहे थे कि यहाँ हम लोगो की उत्पत्ति के समान पृथ्वी-तल पर बुद्ध का जन्म भी अमम्भव है। नरक की ज्वालाएँ शान्त हो गई। पर्वत के गिरने जैसे भार-युक्त उस महापुरुष के चरण न्यास को सहन करने मे असमर्थ होती हुई पृथ्वी शिथिल शैल बन्धनो वाली होकर काँप सी उठी। पृथ्वीतल को फोड़ कर जल-प्रवाह इस प्रकार ऊपर उछल रहे थे, मानो उस पुण्यात्मा के नमस्कार के लिये शेषनाग के वशज सर्प पृथ्वी फोड़ कर ऊपर उठ रहे हो। इस महापुरुष के आकाश गगा के जल जैसे घबल यश-समूह से नित सी समस्त दिशाएँ स्वच्छ हो उठी।—उन्नत तरंग रूपी हाथो वाले मागर बेला का अतिक्रमण कर प्रचलित हुए। प्र० भा०। अनेक बजने वाले मृदगो के घोष से दिगन्त में स्थित कन्दरा रूपी मुखो को मुखरित करने वाले, आनन्दातिरेक वश नृत्य के चक्कर के कारण भ्रमित पृथ्वी द्वारा पर्वतों को आन्दोलित करने वाले, परस्पर की धक्का-मुक्की से टूटे हुए हारों के सुक्ताफलो के द्वारा तारो के समान स्थिति वाले, बिखरे हुए गन्ध चूर्णों की मुष्टि से श्रृ गारित समस्त दिशाओ वाले, परस्पर गुँथे हुए आभूषणो वाले एवं

खिसकी हुई चूड़ामणियों वाले तीनों ही लोको ने एक घर के रहने वाले लोगों की तरह आनन्दोन्मत्त होकर उस महापुरुष के जन्म का उत्सव मनाया' ।^१

§ २—बुद्धघोष ने कुमार के मन बहलाने के लिये उद्यान-विलाम आदि का प्रसंग उपस्थित किया है।—‘वह उद्यान कोंकिला के पाठशाला कामदेव के दूसरे तुण्डीर, भ्रमर-बालाओं के मदिरालय उपवन तथा वसन्तध्री के क्रीडागृह के समान था। उस चराचर के अभिनन्दनीय अतिथि को पवन के संचलन में झुकी हुई शिखाओं वाले वृक्षों ने अपनी प्रवाल अजलियों से प्रणाम किया। उस उपवन में पराग रूपी सिकता फैली हुई थी, चूते हुए पुष्पों के रस से वह छिड़का हुआ था तथा शाखाओं से गिरे फूलों से बलि बनाई गई थी। कुमार को लगा कि वह कामदेव की सगीत-शाला में है, वहाँ लताओं के नर्तन हो रहे थे, भ्रमर ललित गीत गा रहे थे और कोयले मधुर तान ले रहे थे। वृक्षों के फूलों को चुनने की इच्छा करने वाली, धीरे-धीरे पैर रखती हुई विचरने वाली युवतियों को देख कर कुमार के मन में वनदेवियों की शंका हुई। हरिद्वारियों की अलाप सुन कोयल लज्जित हो क्षण भर के लिये मौन हो गये। नूपुर ध्वनि के व्याज से, मुझे दुःख न दो, इस प्रकार प्रार्थना करते हुए कमल जैसे कोमल चरण से किसी सुन्दरी ने धीरे से अशोक वृक्ष का स्पर्श किया। प्र० भा०। कोई सुन्दरी निकलते से अंकुर रूप रोमांच वाले आम्र वृक्ष को चाँद की किरण की आभा के समान शीतल अपने कर-कमल के स्पर्श-से पुन्नाग सा बना रही थी। सहसा आम्र वृक्ष ने, पथिक की वधुओं के मर्म को पीड़ित करने वाले, मनोभव के अभिमान कारण, सुन्दर पत्र-पत्र युक्त नवीन अंकुरों के बाणों को आविर्भूत किया। कहर और इन्दीवर से वासित मुख के मधुरस के कुल्ले से कोई सुन्दरी बकुल को अशोक बना

रही थी। किसी मुन्दरी ने चकुल के नीचे त्रिम्बरे हुए पुष्पो से लता-तन्तुओं के द्वारा काचीदाम की रचना की। किसी ने नवमल्लिका के सुगन्धित सुन्दले फूलों को अपने केशों में गूँथ कर मानो केशपाश को कामभट की तूणार बना डाला। प्र० भा०। प्रचण्ड धूप के कारण बढ़ती हुई मरीचिका सी बावली में विहार करने में वृत्त, उन सुन्दरियों के ताप को उग्र रूप से बढ़ाता हुआ, मध्याह्न काल का पवन चलने लगा। दूर तक चारों ओर फैली वृत्तों की छाया, प्रचण्ड आतप के फैलने पर सहने से असमर्थ हुई सी, धीरे-धीरे जल से सिंचने के कारण शीतल वृत्तों के मूलस्थ आन-बाल के पास आ गई।^२

क—वन का बहुत संह्रिप्त वर्णन तपस्या के प्रसंग के है—वह साल कानन पल्लवों की आभा रूरी बालातप से शोभित, मधुर कोकिल आलाप से मुग्धित तथा हरे प्रान्तरो वाला था।

कानन

मन्द पवन से क्रिचित कम्पित लता रूपी भूलों में भ्रमर-समूह चंचल था और बाल रसाल तरु की मंत्रियों के स्वाद से कोयल आनन्दित हो रहे थे। वह वन मन्दार पुष्प की कलियों के चुए हुए पुष्पो के रस से सुगन्धित तथा मन्द मन्द चलने वाले पवन से पूर्ण सन्तुष्ट था। प्र० भा०। पक्षियों के पंखों से उड़ाये पङ्क पुञ्ज से धूपर और आम का मधु-राशि से परिचय था। उसका पवन विक्रमित श्रेष्ठ पुष्प-लताओं से युक्त था और वसन्त सामन्त का मणिमय मंडप जैसा था। ताली, तमाल और हिन्ताल से सघन सालवन में ठहर कर सिद्धार्थ ने दोपहरी का ताप विनाया।^३

§३—उद्यान-विलास के बाद जल-क्रीड़ा प्रसंग में वापी का वर्णन है—'उस वापी की तरंग-मालाएँ मन्थर चलनेवाले पवन से आनन्दित थीं, और उनसे राजहंसियों दो नायमान जान पड़ती सर और सरिता थीं। उसमें विकसित कल्लार के फैलते सुरभित प्रवाह

२. वही, स० ७, २-८ १०-१४, २३, २४।

३. वही स० ९; ६२-६४, ६६-६८।

मे भ्रमरियों तैर सी रही थीं। उसमे कुमुदिनियों के कोष-पुट से चू कर मधु-धारा बह रही थी और वितान रूपी रत्न-जटित रगस्थली मे मञ्जलियाँ उछल रही थी। एक ओर नवीन श्वेत कमलों के विकास के कारण गंगा और दूसरी ओर रक्त कमलों के विकास से सोन नदी के समान जान पड़ती थी। पक्षिया के खिले हुए कमलों के पराग से वह दिशाओं को सिन्दूर भूषित सी कर रही थी और जन-सीकरो के उछले के कारण वह वर्षा ऋतु का अभिनय कर रही थी।^४ मार्ग मे अनवमा नदी का सञ्चित वर्णन है—‘यह नदी हसो के द्वारा आस्वादित मृणाल दलों से पूरित है, और इसके विशाल मकरो के नाद से दिशाएँ मुव गित हो रही हैं। जिस प्रकार आकाश तारागण से विषम हो जाना है, उसी प्रकार यह तरंगो के भाग से हो गयी है। कमलों की सुगन्ध से पवन गन्धमय हो गया है। इसमें जल-तरंगो से सारस पक्षो वलयित हो रहे हैं और इसकी कछोल मालाएँ हसिनियों के कंठहार बन जाती हैं। मञ्जलियों के द्राग हिलाये गये बह्हार के केसर के गिरने से इसका जल रजित हो गया है और इसका तरंगो मे खिले हुए कमला का मधु बह कर भित गया है’।^५

§ ४—यह वर्णन सूर्यास्त से प्रारम्भ होता है—‘इस बीच अन्यत लाल सूर्य-मडल नील आकाश-कोष से गिरे हुए मणि-दर्पण मा पच्छिम दिशा मे गिर पड़ा। प्र० भा०। विदेश कात परिवर्तन यात्रा के लिये उत्सुक भान्कर, पद्माङ्गो मे प्रतिबिम्बित होने के बहाने मानो अपने प्रिय बान्धवो कमलो से बिदाई लेने के लिये उनमे प्रविष्ट हुआ है। विष्णु के मरकत मणि से श्याम-वृक्ष पर कौस्तुभ मणि के समान, धीरे-धीरे सूर्य के बिम्ब ने पश्चिमी भाग के मध्य-भाग को शोभित किया। पश्चिमी समुद्र के भँवर के चक्र मे पडा

४. वही, स० ७; २८-६१।

५. वही; स० ९ १४-१७।

हुआ सूर्य मडल, विश्वकर्मा के द्वारा मानों काट-छाँट के लिए सान पर चढाया गया है। समुद्र तरंग रूपी हाथों पर सूर्य रूपी लोहा के तप्त गोला को लिये हुए मानों शपथ सा ले रहा था कि प्रलय-काल के बिना मैंने वेला का उल्लघन कभी नहीं किया। सन्ध्या रूपी स्वर्ण-परीक्षक ने, क्षीण-आभा हुए द्युमणि सूर्य को मानों बडवाग्नि में दीप्त करने के लिए समुद्र के अगार पुज में डाल दिया। प्र० भा०। सुगन्धि के लोभ से मडली हुई भ्रमर-पंक्ति कमल वनों में पति-वियोग से पीडित नलिनी युवतियों द्वारा मरने के लिए ठीक की गई रस्सी सी जान पडती थी। नलिनी प्रेमिका छोड़ कर सूर्य के प्रयाण करने पर, मेरा बाल सहचर अस्त (मृत) हो गया समझ चक्रवाक चक्रवाकी को छोड़ कातर भाव से बिलख रहा था। पश्चिम दिशा रूपी काठ के अन्तराल में फैलाती हुई सन्ध्या, दिवस तथा रात्रि के एक दूसरे के घर्षण से पैदा हुई आग की ज्वाला के समान जान पडती थी। सूर्य को अस्त हुआ देख कर, शोकाकुल सी अम्बरश्री ने, नक्षत्रों की अक्षमाला और सन्ध्या आतप का चीवर धागण किया। भ्रमर समूह तथा कमल-समूह के साथ, प्रणयन के लिये रुद्राक्षमाला के कड़ों से उज्ज्वल तपस्वियों के कर-पल्लव संकुचित हो गये, ।^६

क—इसके अनन्तर अन्धकार का वर्णन है—‘आकाश रूपी नील-कमल की भृगमालिका, दिशा सुन्दरी के आवरण-पर तथा विश्वम्भरा के कन्दरा-गृह के समान संसार को अधा सा करने
अन्धकार
वाची अधियाली फैली। खवित होते हुए चन्द्रकान्त मणियों के द्वारा बुझाये तपनोपल (सूर्यकान्त मणि) के पवन द्वारा आये धुँए के समूह के समान अन्धकार समूह आकाश में फैल गया। प्रदोष कलाकार ने हिमाशु श्रेष्ठ पुरुष के तारा रूपी प्रशस्ति-वर्णों का लेखन करने के लिए आकाश फलक पर अन्धकार की स्याही फेर दी।

सन्ध्या-काल में ताण्डव नृत्य करने वाले शिव के कण्ठ के प्रभा-पटल के समान अन्धकार समूह ज्वलित श्रौषधि वृक्षों के धुआँ के पुंज के समान आकाश में फैल गया। दिशाओं में व्यापे हुए अन्धकार-समूह वर्षा ऋतु जल-राशि को कालिन्दी के दोनों किनारों को डूबने वाले प्रवाह के समान नभ तल को छा लिया है। घरों में निशा सुन्दरी के चम्पक के कनफूलों जैसे दीप-समूह, चतुर अन्धकार द्वारा पालायन करते हुए सूर्य के बन्दी भास के समान जान पड़ते थे। अंधेरे में जुगनू अन्धकार की गति-विधि का पर्यवेक्षण करने के लिये, सूर्य के गुप्तचरों के समान विचरण कर रहे थे। और वे सन्ध्या रूपी अग्नि के स्फुलिंगो जैसे जान पड़ते थे'।^६

ख—आगे अंतरिक्ष और चन्द्रोदय का दृश्य सामने आता है—
 'रात्रि जनित अंधकार रूपी मेघ से बगसे हुए आलो जैसे सुन्दर तारागणों से आकाश कुमुद से शोभित सरोवरों जैसा लगता था। अत्यधिक कान्ति वाले तारागणों से आकाश ऐसा जान पड़ता है मानों अंधकार रूपी मत्त गजों के सूड द्वारा सीकर समूह बिखेर दिया गया है। तगर जैसे धवल तारागणों से आकाश, मुक्ता-समूह से भरे अगस्त्य द्वाग दिये गये समुद्र की शोभा का अपहरण कर रहा था। समुद्र गर्भ में अंधकार को हरने वाले चन्द्र-पुत्र को वारण करती हुई सन्ध्या सुन्दरी ने धीरे-धीरे अग्ने मुख पर पीलापन धारण किया। समुद्र में लीन चन्द्र की ऊपर उठती हुई किरणें, तिमियों से (मत्स्यो) छिद्र-युक्त शिरो से पीकर फेंकी गई धवल जल राशि के समान प्रतीत हो रही थी। तमाल पुष्प के समान नील, समुद्ररूपी विष्णु के भँवर-रूपी नाभि से क्वचित लक्षित चिह्न रूपी भ्रमर से मनोहर चन्द्र-कमल ऊपर को उठा। ऊँची तरंगों वाले समुद्र के मध्य भाग में ऊँचा उठता हुआ चन्द्रमा का मडल, मथे जाते हुए समुद्र से ऊपर को

उठते हुए ऐगवत के कुम्भ-स्थल के समान ज्ञात होता था। ऊपर उठता हुआ चन्द्र-बिम्ब विद्रुम के समान इसलिये लाल-लाल जान पड़ता था कि बडवाग्नि ने उसे समुद्र रूपा वर्तन में पिघलाये हुए रत्नों के द्रव से एकत्र किया था। चन्द्रमा रूपी राजसिंह के धैर्य के साथ तटों पर चरण रख कर आरूढ होने पर डर से अधकार रूमी मत्त गजों ने पर्वतों की गुफाओं का आश्रय लिया। आकाश में नवीन उदय के कारण किंचित लाल चन्द्रबिम्ब, सन्ध्या-काल रूमी मुद्राधिकारी के द्वारा धातु-द्रव से ढाले हुए एक चिह्न की भाँति शोभित हुआ। अपने कर-पल्लव से चन्द्रमा ने चकित कुमुनियों के कुमुद रूपी कट में भ्रमर-पंक्ति को मगल सूत्र माला पहना दी। चन्द्रदेव ने भ्रमरसमूह सुन्दरियों के कर्णामृत जैसे गान से सतुष्ट होकर मकरन्द-गर्भित कुछ खिले हुए कुमुद-समूह रूमी धन-राशि लुटा दी। प्र० भा०। आकाश-श्री, सुक्ति से च्युत मुक्ताफलों से व्याप्त अथवा आकाश गंगा के जल-कणों से व्याप्त सी विशेष रूप से शोभित थी। आकाश पर्यक पर लेटी हुई रात्रि रूमी किशारी की तिमिर रूमी साड़ी, प्रेमी सुधाकर के आने पर खिसक गयी। शिव ने कालकूट को तथा अगस्त्य ने समुद्र को जिन प्रकार पिया था, उसी प्रकार चन्द्रदेव ने अपने कर-पल्लव में गाढे अंशुकार को ले कर पी लिया। बिम्ब व्यथा से पीजे अगों वाली, मडराते भौरों के वाली वाली तथा मकरन्द-जल से पूर्ण पुष्प से व्याप्त कुमुदिनी को नायक चन्द्र ने अपने कौमल्य कर से अश्रवानन दिया। सारे रत्नों का एकमात्र आकर समुद्र, मणि दर्पण से निर्मल बेला जल में चन्द्र की छाया से मानो वरुण राज द्वारा मुद्रा लाञ्छित किया गया। बीच में बाल-तमान की सी आभा वाले चन्द्रदेव, ओठों तरु फैली राहु की दाढ़ से गिरे हुए विष द्रव से मुद्रित से प्रतीत होते थे। हरिण के चिह्न से लाञ्छित चन्द्र-मण्डल गंगा और यमुना के मिनने से उत्पन्न भँवर के मण्डल जैसा जान पड़ता था। बीच में मृग-कलक से युक्त शाश्वत देदीप्यमान द्विजराज का बम्ब, निशा सुन्दरी के मरकत जड़े हाथीदाँत के ताटक जैसा प्रतीत होता

था। मेघ युक्त पवन से मलिन हुए दर्पण जैसी कान्ति वाता, अन्तर्भाग में काला अमृताशु भिन्न कण्ठ-स्थित कालकूट का आभा से शबलित शिव के भिक्षा के कपाल-पात्र जैसा जान पड़ता था।^{१८}

§ ५—विलास-प्रसंग में ऋतुओं का वर्णन है। अश्वघोष ने बुद्धचरित में वसन्त ऋतु को ऐसे ही अवसर पर प्रस्तुत किया था।

ऋतु (१) वर्षा बुद्धघोष के वर्णन में विस्तार अधिक है। पदले वर्षा का वर्णन है—‘प्र० भा०। हे सरोजान्ति, आकाश-तल के विस्तार रूमी दर्पण में प्रविष्ट भूमण्डल के भिन्न जैसे मनुद्र के जल को चुराने वाले इन उमड़ते हुए बादल को तो देखो। नव मेघ-खण्डों से युक्त यह नभस्थली ऋतु-लक्ष्मी द्वारा विद्युन्मय दीपशिखा से भाड़े काजलो से युक्त पात्र सी जान पड़ती है। वर्षा ऋतु के आगमन से बुझती हुई महाग्नि के बढते हुए धुँएँ की तरंग कीसा मेघ-पक्तियों आकाश में व्याप्त हो रही हैं। मयूर सोने के काहल (वाद्य) की भाँति अपनी चोचो से सोंगो को पकड़े हुए, गभीर केका ध्वनि से आकाश को मुखरित करते हुए अपनी पँछ को गोल किये नाच रहे हैं। भैरा शरीर मलीन है, पर अन्तःकरण विशुद्ध है’ मानो इस बात को सूचित करता हुआ बादल चमकती चपला के मिस उसे फाड़ कर दिखा रहा है। आकाश रूमी कुल पर्वतों के तटों पर विद्युत् रेखाओं से मिली हुई मेघ-पक्तियों, भूमि को बहन करने वाले, भारवाह प्रलय-काल में एकत्र चारों समुद्र के मध्य में स्थित महावराह की हल जोतने की रेखाओं की भाँति जान पड़ती है। हे तरलान्ति, अद्भुत श्रांवाले, दान शौर्य में त्रिभुवन को जीत कर उठे हुए मेघों में विद्युत् रेखाएँ, उसके जय ध्वज का सन्देह उत्पन्न कर रही हैं। प्र० भा०। वर्षा-काल किरात ने विद्युत् प्रत्यंचा से युक्त इन्द्र-चाप को लेकर शर-समूह से अनायास ही पृथ्वी को पुण्डरीक व्याघ्रों से हीन बना रहा है। मयूरों में उगले सपों के फण-

मणियों की सी आभा वाली, प्रचण्ड धारा की चोट से रत्न उत्पन्न करने वाली भूमि के विवर से उत्पन्न रत्न-खण्ड सी कान्ति वाली इन्द्र-वधूटियाँ शोभित हो रही हैं। शरत्कालीन आकाश जैसे हरित भूभाग से ये इन्द्र गोप सन्ध्या समय के तारको से लगते हैं। ब्रह्मा द्वारा फैलाई हुई मापक रज्जुओं जैसी मेघ की जल-धाराएँ चारों ओर फैल रही हैं कि 'नभस्तल और पृथ्वीतल में कितना अन्तर है'। हे चकोराक्षि, प्रचुर निनाद करने वाली वक-मण्डली से युक्त, शंख लिये हुए सी यह पयोद मण्डली, दिशाओं में मानों विकास के विजय प्रयाण की स्पष्ट घोषणा सी कर रही है। वक-पंक्ति रूपी शंखों को गले में धारण किये हुए, इन्द्रायुध रूपी चित्रित कम्बल ओढ़े हुए नवीन मेघ रूपी गज मानों गर्जन पूर्वक वप्रक्रीडा के लिये पर्वतों की ओर मुड़ रहा है। विद्युत् की चम्पक माला से तथा इन्द्र-चाप के शिरोभूषण से दिशाएँ नवीन जल से भरे मेघों की पिचकारियों से मानों एक दूसरे को भिगो रही हैं। प्रवेश करने वाले चक्रवर्ती वर्षा-ऋतु के लिये आकाश के राज-प्रासाद में मेघों की तोरणमाला कैसी सम्यक शोभित हो रही है। कनपटी खुजलाने के कारण मेघ रूपी मत्त गज द्वारा दिगन्त भित्ति के कम्पित होने पर खिखरे हुए तारक-गणों से ये प्याज जैसे ओले गिर रहे हैं। ओले के टुकड़े ज़मीन पर गिरने से ऐसे लगते हैं मानों मेघों ने जल के साथ समुद्र के मोतियों को भी पी लिया हो और फिर मुख से बाहर कर दिया हो। वृष्टि के द्वारा जैसे-जैसे आकाश-मण्डल में विद्युन्मय आग प्रदीप्त हो रही है, वैसे ही वैसे पथिक जनो की युवतियों के चित्त में कामानल प्रदीप्त हो रहा है। निदाघ के ताप से तप्त वनस्थली, विकच कन्दली रूपी हाथ फैलाकर मयूर के केका स्वर से मेघ से जीवन की याचन कर रही है। खिले बनैले कदम्बों के फूलों के केसर के पराग को वहन करने वाला, मन्द चलने वाला पवन मयूरो के उद्दाम नृत्य के परिश्रम जनित स्वेद को दूर सा कर रहा है। आकाश के विस्तृत राज-मार्ग में इधर-उधर घूमने वाले बादलों के पैरों की धूल के समान जल की बूँदें चारों ओर

गिर रही हैं। तड़ित् से निनादित कर, नवीन विद्युत् की अग्नि को साक्षी बना कर मानों वर्षा ऋतु पुरोहित नदी और समुद्र के ऊर्मि रूपी पाणि-ग्रहण का उत्सव मना रहा है।^{१९}

क—वर्षा के पश्चात् शरद् का वर्णन प्रारम्भ होता है—‘प्रशसा के लिए कौतुक के साथ राजपुत्र के मुखर होने पर, सारे बादल लज्जित होकर दिशाओं के अन्तराल में खो गये। दिशा सुन्दरी के वर्ण विकास के लेप के समान, हसो के शरद् विहार की स्वच्छंद वाथी और कमलिनी के यौवन विलास जैसा शरत्काल आविर्भूत हुआ। विलास-शालिनी तड़ित् प्रिया और धवलित बालिका के वियोग में, मौन-व्रत के कारण मुख झुकाये बादलों ने दुःख से पाण्डरता धारण की। अपने गुणों के प्रकाशित न करने देने वाले वर्षा-काल बीत जाने पर दिशा सुन्दरियों के प्रसन्न हास के समान कलहस प्रकट हुए। उत्कण्ठित हसो के कानों को पीड़ा पहुँचाने वाले कोलाहल को सुनकर विरहिणियों ने मानसरोवर का मार्ग बनाने वाले परशुराम की हृदय से निन्दा की। रत्नाकर के फेंन जैसे, अनग के यश-समूह का भ्रम पैदा करने वाले हंसो से दिशाओं का विवर भर उठा। खिले हुए सप्तपर्ण के चारों ओर फैलने वाले परिमल ने दिशा सुन्दरियों के मुखों पर अधिवासक चूर्ण का भ्रम सा फैलाया। कलाधिनाथ ने चिर उत्कण्ठित कुमुदाकारों की प्रियो का मानो दृढ आलिंगन करने के लिये, उत्सुक होती दिशाओं में स्वच्छंदता के साथ अपने कर-समूह को फैलाया। धवल चन्द्रिकामय पाण्डर रेशमी वस्त्र से व्याप्त दिशा सुन्दरियों चन्द्र के दर्शन से लज्जित हुईं सी घुँघट काढ़े हुईं सी जान पड़ रही हैं। वर्षा के बीत जाने पर भी मत्त वन-गजों के मद-जल से महानदियों का जल बढ़ रहा है। शरत्काल के मेघखंडों ने सूर्य दावाग्नि से जलाये हुए तम रूपी तमाल के पवन द्वारा बिखेरे भस्म-पुंज का संदेह

पैदा किया। शरत्काल के आकाश ने फैलाने वाले मेघों से व्याप्त होकर, प्रलय के कारण क्षीर सागर की तरंगों से युक्त लवण सागर की आभा का अनुकरण किया। प्रथम बादलों के जल से नहाई हुई, फिर शरत्कालीन मेघखंडों का उत्तरीय धारण कर और चन्दन रूपी चन्द्र-किरणों का आलेप कर दिशा-बधुओं ने तारे के हारों को धारण किया। मेघ जल से समस्नात रुचिर आकाश की आभा वाली दिशा युवतियों के शरीर पर लगे पानी के कण जैसे तारक अत्यन्त शोभित हुए। चन्द्र-किरणों के स्पर्श में विकसित कैव समूह, शरत् ऋतु के कारण स्वच्छ सरोवर के जल में पड़े बिम्बों वाले तारक गणों जैसे प्रतीत हुए। कण्टक रूपी रोमावली को प्रकट करते हुए तथा पराग-कण रूपी हर्षाश्रु युक्त विकसित कमल-समूह चिर विरहित आये हुए शरत् को देखकर प्रसन्न मुख से दिखाई देने लगे। खिले हुए कमलों के चूते हुए मकरन्दों से अतीव भरे हुए सरोवर शरत्काल के कारण क्षीण होने पर भी अगाधता को प्राप्त हुए। भली भँति पकी हुई पुण्ड्र नामक ईश्व की गाठों से मुक्ताफल के आकार में चुये हुए रस बिन्दुओं से भरित उदार क्षेत्रों के समीपवर्ती नहरों के तट ताम्रपर्ण नदी के तट जैसे प्रतीत होते थे। विपाकाधिम्य के कारण फटे अनार के फलों से बिखरे नये बीजों से व्याप्त वनस्थलियों शरत्काल में भी वीर बहूटियों से व्याप्त सी प्रतीत हुईं। पूर्ण पाक के कारण शोभित बालियों से भुके जड़हन के खेत उगस्थित विनाश—विकार की चिन्ता करके अविक्र शोक से भुके हुए मनुष्य जैसे जान पड़े। उछाली मिट्टी से मलिन सींगों वाले, अपने अर्ध-चन्द्राकार खुर्गों से तट-प्रदेश को नष्ट करते हुए बार-बार हुकारते मद-मत्त बैलों ने नदियों का तट उखाड़ डाला'।^{१०}

• ख—अगले सर्ग में इसी प्रसंग में वसन्त का वर्णन किया गया है— फिर भ्रमरों के गुंजन, कोकिलों के कूजन की प्रस्तावना काम के

तूणीर तथा मलय पवन के निष्क्रमण के सुहूर्त का सा सुभग वसन्त काल का आगमन हुआ। यम के कुपित तथा प्रचंड महिष श्रेष्ठ से डरे हुए सूर्य्य देव ने घोड़ों को मोड़ कर उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया। चन्द्रोदय रूपी उज्ज्वल मुख आकाश रूपी सूदम वस्त्र को धारण किये वनराजि, मीनकेतन की घोषणा को फैलाते हुए से वसन्त के द्वागा-पत्नी में स्वीकार किये जाने पर पुष्प रूप वती हो गई। पुष्प वृद्धों की कोमल पल्लवों की श्री कुपित युवती-जनों के प्राणों का आस्वादन करने के लिये मानो वसन्त रूमी काल की फैली हुई जिह्वा है। प्र० भा०। मन्दवाही मलय रूपी रथ पर सवार होकर दिग्विजय के लिये रवाना मदन-राज के लिये फूल बिखरे गये लावा और कोकिल का कल्लव शब्द-ध्वनि है। मन्द अनिल द्वारा वनराजि के मध्य से जोरों से उठी पुष्पो तथा कलियों का पराग दिग्विजय के लिये उद्यत मदन-राज की सेना की धूलि के समान फैल रहा था। पुष्पायुध राजा के युद्ध में प्रयुक्त होने वाले सुन्दर पत्रों से युक्त सहकार रूपी बाणों का मानों संग्रह करने के लिये कोकिल समूह लीला उद्यानो मे घूम रहा था। चंचल भौरों से ढका हुआ फूलों वा गुच्छा काम सुभट द्वारा बाणों से भेदित करके महा-वृद्धों की शाखाओं मे बद्ध बिखरे बालों वाले शत्रुओं के सिर के समूह जैसा जान पड़ता था। भौरों से ढके मकरन्द प्रवाह से बोरभील पुष्प गुच्छ मदन राजा के अभिषेकार्थ वसन्त के द्वारा उपस्थित रत्न कलसों जैसे जान पड़ते थे। मलय पवन द्वारा संचलित पूर्व वन का पुष्पपुंज काम नृपति के लिये हिलते हुए चमर के समान जान पड़ते थे। फिर खिली रसाल मंजरियो वाले वनों मे कोकिलो ने, मदन नृपति के विजय श्लोकों की भोंति, पंचम स्वगलापो से युक्त विशद, मधुर, उज्ज्वल यथा कोमल तान छेड़ी। बहुत से एकत्र भौरों के मद-जल प्रवाह से युक्त उद्धत मलय पवन रूपी मत्त गज, मनस्विनी युवतियों के मान रूपी आर्द्र-तटों स्वच्छंद वप्रकीड़ा सा कर रहा था। मन्द पवन के यश प्रबन्ध के गायक, आम रूपी मदगज की डौडी तथा उहाम काम विजय

की घोषणा करने वाले षट्पदों का गुंजन स्वर व्याप्त हो रहा था। वन-वृद्धों का ऊपर से नीचे तक विकसित पल्लव-समूह मनस्विनी युवतियों के मान रूपी अन्धकार अपहरण के लिये छायातप का स्वंग सा कर रहा था। विकसित फूलोवाले वन, वृद्धों के मधूलक रूपी धारा-सम्पात से बढी हुई प्रवाहित नदियों के द्वारा नदीभातृक सा हो गया। प्र० भा० लता रूपी झूला पर गान करने वाली भृगी को बैठा भृग अपने पंखों की हवा से सानन्द झुला रहा था। प्र० भा०। लता अंगनाओं को प्राप्त कर उनके स्तवक रूपी स्तनों में भरे पुष्पासव रूपी दूध का शिशुओं ने अपनी सहज चपलता का त्याग कर पान किया। मार योद्धा ने अनेक संग्रामों में काम आने से शीर्ण हुई धनुष की प्रत्यंचा को दूर कर भ्रमरो की प्रत्यंचा बनाई। वसंत से सिखाये कोकिल शिशुओं ने वनों उपवनों के वृद्धों की शाखा शाखा पर मदन नृपति के विजय वृन्त का शनैः शनैः गान करना आरम्भ किया। शाखा भुजाओं को उठा कर आम के वृद्धों ने कान को मधुर लगाने वाले कोकिल स्वरो द्वारा पथिक जनो के लिये काम नृपति के शासन की उद्घोषणा की। टेढापन लिये पलाम के फूल ने, विलासिनियों के मान रूपी मत्तगज विनीत बनाने की इच्छा करने वाले काम-देव के सोने के अंकुश की शोभा धारण की। मंडराते भौरों से मिश्रित पलास वृद्धों की मजरियों ने धुएँ से युक्त जलती आग की आभा धारण की। सौरभ पर मोहित भौरों से ढँके फूलों के गुच्छे राहु-ग्रसित पूर्ण-चन्द्र-त्रिम्ब सा जान पड़ता। सपों के सम्पर्क के कारण चन्दन वृद्धों से आया मलय पवन विरही जनो को बार-बार मूर्च्छित करता था। मधु सीकरो के वर्षण जनित दुर्दिन के अंधकार में वन-श्री रूपी प्रणय दूतिका द्वारा उपनीत भ्रमर रूपी अभिसारिका से कामोन्मत्त भ्रमर नायक ने हिला सहित रमण किया। सौभाग्यवती युवतियों के मुख मदिरा के कुल्ले का आस्वदन कर बकुल वृद्धों की वाटिका नवीन अंकुरोदय के मिस रोमाच की शोभा को प्राप्त हुई। युवतियों के मुख-कमल के मंदिर के कुल्ले को आदर के साथ पीकर चूते हुए मकरन्द के मिस बकुल ने पीत

मदिरा का मानो उद्वमन किया। आम्र-वन में विचरण करती मधुलक्ष्मी के नूपुर-स्वर के समान कौकिलों का कल-प्रलय लोगो के कानों को तृप्त किया। दिशाओं के अन्तराल रूरी नदियों को प्लावित कर, पुष्प-वृद्धो के मकरन्द धाराओं में मन्द मलय पवन ने चिर काल तक विहार किया। चढ़े धनुष की डोरी की गभीर टकार के विष्फार से आकाश को भरता हुआ मा मनोभाव ने संपूर्ण सासारिक जनो के विवेक को हरण करने वाले आम्र-मंजरी वाले तीखे बाणों की बरसा की'।^{११}

भारवि

§ ६—भारवि ने प्रकृति का अपेक्षाकृत प्रसंगानुकूल वर्णन किया है। अर्जुन हिमालय पर तपस्या करने जाते हैं—प्र० भा०। वह पर्वत जिसके एक ओर सूर्य का प्रज्ज्वलित मण्डल था, दूसरी पर्वनादि ओर सतत सूर्य को अन्धकार था, पीछे हाथी का चर्म था और जिन्होंने अपनी हँसी से अन्धकार मिटा दिया था, ऐसे शंकर के समान जान पड़ता था। पृथ्वी आकाश तथा सुरलोक के निवासियों का स्थान जिसको आपस में न देख सकते थे ऐसा यह पर्वत लगता था मानों अपनी सर्वशक्तिमत्ता दिखाने के लिये बनाई शंकर की अपनी कृति है। प्र० भा०। हाथियों द्वारा तोड़े हुए तट वाली, प्रफुल्ल कमल तथा पवित्र जल वाली क्षिप्र गति से बहनेवाली नदियों से वह शोभित था। नवीन फूले हुए जवाकुसुम के समान रंगों से रजित, कहीं कचन की दीवारों से बनी हुई और लाल मणियों से स्थिति चोटियों से वह पर्वत शोभित था। इस पर्वत में विस्तृत कदम्ब सुन्दर राजियाँ थीं तमाल के कुंज थे, तुषार कण भरनो से भरते थे और सुन्दर सूँड़वाले हाथी थे। उसमें रत्न रहित एक भी चोटी न थी, लता-कुंज हीन कोई घाटी न थी, कमलों से रहित कोई नदी न थी और फूलों से ढके न हो

ऐसे वृक्ष न थे। यहाँ की पर्वतीय नदियों का पानी अमरों की स्त्रियों की जंघाओं द्वारा मथ डाले गया था। इसमें चारों ओर लताओं के फूलों के केशर के प्रेमी साँप रहते थे। अनेक रत्नों की प्रभा से दीपित सी पर्वत की चोटियाँ हैं जिन पर नीर-रहित, इन्द्र-धनुष युक्त तथा विजली की चमक में दिखाई देनेवाले बादल छाये थे। इस पर्वत पर प्रफुल्लित कमलों और हंस-गण से युक्त पवित्र मानस झील है। और अग्ने सेवकों से घिरे तथा पार्वती से प्रेम कलह करते हुए शिवजी भी रहते हैं। यहाँ जड़ी बूटियों से निकली हुई आग, ग्रहों विमानों तथा आकाश को प्रकाशन करती हैं, इनसे हर रात को उमागति के सेवकों को शंकर द्वारा त्रिपुर के भस्म किये जाने की याद दिलाती है। बीच में चट्टान आ जाने से लौटता, चक्कर काटता तथा भँवरें बनाता, ऊँची चोटियों पर बहनेवाली गंगाजों का पानी इस प्रकार बहता था मानों पर्वत ने पंख धारण किया हो। अपनी चोटियों से आकाश को छू कर उसे हजारों अंगों में बाँटनेवाला वह अचलाधीपति अपनी हिम-श्वेत आकृति से ही लोगों के सहस्रों पापों को नेष्ट करने योग्य है। सुन्दर पल्लव और पुष्पवाली लताओं से निर्मित मडलवाला यह पर्वत, जिस पर मेघ छाये रहते हैं और अथाह झील हैं धैर्यवान मानिनी स्त्रियाँ को भी उत्सुक बना रहा है।—इस पर्वतपर गुणों की अधिकता से औषधियाँ अविरल रूप से प्रकाशित होती हैं, जिस प्रकार यशस्वी राजा पर स्त्री मुस्काती है। यहाँ फूलों से पेड़ झुके जा रहे हैं, कुश-गण चिल्ला रहे हैं, कमलों से भरी, पेड़ों से आच्छादित तथा उशीर की जड़ों से भरी नदियाँ हाथियों का आनन्द देती हैं। इस पर्वत पर आम-मजरी के समान गन्ध वाले मद-जल से युक्त तथा अमर-पंक्तिवाले हाथियों के कपोलों के रगड़ने के स्थान बिना वर्षा-काल के कोकिल को मत्त बना रहे हैं। इस पर साँपों को प्यारी सुघा कहीं कहीं पाई जाती है, सुन्दर देवस्त्रियों विचारती है, सुन्दर चट्टानों पर नदियाँ मधुर शब्द कर रही हैं। पुष्पित लताओं के कुंज हैं, प्रकाशित बूटियाँ दीपक हैं और हरिचंदन के पल्लवों की सेज पर

कमल-गन्धवाली पवन रतिश्रम को दूर करती है; इस पर्वत पर देव-सुन्दरियाँ स्वर्ग भूल जाती हैं। यह पर्वत मन्दराचल के समान है, जिसमें वासुकि रहता है, जो आकाश को भेदता जान पड़ता है, जिससे देवताओं गच्छाओं ने समुद्र को मथा था और जिमने जल-विभाजित करके बताया था। यहाँ पर शिवजी ने साँप के भय से सहस्रो आँवों वाली पार्वती के मागलिक पदार्थों से युक्त तथा कौपते हुए साँप के बंधन से बंधे हाथ को ग्रहण किया था। सारे आकाश में फैली हुई और चारों ओर बिखरी हुई सूर्य की किरणें अम ख्य मणिया की चमक से मिलकर सहस्रो की संख्या से भी अधिक जान पड़ती थीं। यहाँ त्रैलोक्य विजेता को प्रसन्न करने के लिये कुबेर ने बड़े ऊँचे गोपुरोवाची अलका नगरी बनाई थी, ऐसे कैलाश के कारण सूर्य समय से पहले डूब जाता है। इस पर्वत के शिरो पर रत्नों की किरणों के पड़ने से जो दीवाली का भ्रम होता है, उसे निरन्तर चलने वाला पवन दूर करता है। यहाँ चरागाह अपनी नई आभा नहीं खोते, नलिनो-वन सदा श्याम ही बने रहते हैं और विचित्र फूलों वाले वृक्षों के पत्ते कभी पकते नहीं। निकट ही शुकों की भाँति 'हरी मणियों की किरणें जिन्हे हरिणियों हरी घास समझ कर छोड़ चुकी हैं, सूर्य की किरणों के साथ अत्यंत सुन्दर लगती हैं। फूली हुई स्थल-नलिनी, पवन के द्वारा चारों ओर से प्रताडित होकर अपने चारों ओर पराग फैला कर सोने के थाले के समान शोभित हुई। वृक्षों की शाखाओं के बीच से आती हुई सूर्य-किरणों का प्रकाश, चाँदी की भीति के प्रकाश से मिल कर बढ़ जाता है जो दर्पण के मण्डल के समान दिशाओं को प्रकाशित कर देता है। इस पर्वत की चोटियों पर मणियों के विभिन्न रंग जलहीन शरद के बादलों पर निकले हुए इन्द्र-धनुष सा बनाते हैं। यहाँ विविध मणि जलहीन बादल में क्षण भर के लिये उत्पन्न भिन्न इन्द्र-धनुष का आभा को उत्पन्न करते हैं। यहाँ शंकर के मस्तक पर शोभित चन्द्रमा अँधेरी रात में अपने प्रकाश से, अमृत के झरने से मानों लता-वृक्षों को नहलाता है। यहाँ पर सुनहले तटों

प्रकट करता था ।.....वहाँ मंद गति से अनुकूल तथा सुगन्धित समीर चारों ओर बहती थी, ताप के नाश हो जाने से सूर्य की तप्त किरणें शीतल हो गई थीं; बड़े-बड़े वृक्ष थे, फूल चुनने के समय जिनके नये पल्लव रूपी हाथ झुक जाते थे । वहाँ रात में सोने के लिये घास बिछी थी; निर्मल आकाश जल-कण गिरा कर धूल को दबा देता था' ।^{१३} अन्यत्र मृगया प्रसंग में वन का उल्लेख है—'किरातों के मृगया भ्रमण से पक्षियों तथा मृगों के समूह डर गए, वे इधर-उधर चिल्लाते फिरते थे और उनका शब्द गुफाओं में प्रतिध्वनित होता था मानो पहाड़ डर कर चिल्ला रहे हैं । विरोधी पशु-पक्षियों ने अपना शत्रु-भाव छोड़ दिया । चमरी मृग जिनकी पूछों में सुन्दर बाल थे जिनमें बॉस के गुच्छे लगे थे अत्यन्त भयभीत होकर किसी प्रकार धैर्य धारण कर रहे थे' । 'किरात सेना से भगी हुई पर्वतों की घाटियों, ढाल आदि कुछ ऊँचे लगने लगे, पर खाली होने पर फिर वैसे ही हो गये' गणपतियों ने चारों ओर फैल कर अपनी जाँघों से चन्दन तथा साल के वृक्षों, लताओं को तहस-नहस करते हुए मानो वन को नीचा कर दिया । नदी के तट कीचड़ से अगम्य हो गये थे, उसका पानी हाथियों द्वारा तोड़े हुए नन्दन वन के पेड़ों से मलिन हो गया था, और मछलियों उलटी पेट के बल उतरा रही थीं । पवन भैंसों द्वारा आस-पास के तमाल और उशीर के गंध से भरा हुआ था और वह तोते के रंग के शिला कुसुमों को बिखेरता हुआ वनचारियों की थकावट को दूर कर रहा था । पशुओं द्वारा मथा गया पानी ग्रीष्म-काल की भँति गँदला हो गया था । केले आदि टूट गये थे और कमल पाले दिखाई देते थे' ।^{१४}

८—जल-क्रीड़ा के बाद परम्परा के अनुसार सन्ध्या का वर्णन कवि प्रस्तुत करता है—'प्र० भा० । ऐसा लगता है मानों अतीव प्यासा

१३ वही, स० ६ ; ४, ८, ११, १३-१३, १८, -१५२२

१४. वही, म० १२ ; ४३-४८, स० १४ ; ३६, ३४ ; स० १२, प्र०-५२ ।

सूर्य्य अपने करो (किरणों) से जी भर कर कमलों का रस पी कर, डूबने के समय स्वयं लाल शरीर वाला हो गया है। जब सन्ध्या और चन्द्रोदय सँसो किरणों वाला सूर्य्य अत्यन्त लोहित हो गया और देखा जाने योग्य हो गया, उस समय बहुत सा ताप पृथ्वी से निकल कर चक्रवाक के हृदय में समा गया। सूर्य्य-मण्डल के डूबने के बाद, सूर्य्य को त्याग कर, नष्ट आभा वाली, पूर्व को छोड़ पश्चिम में इकट्ठा हुई किरणों का समूह अपना सारा आकर्षण खोकर दुःख में डूबी जान पड़ती थी, जिस प्रकार मालिक के मरने के बाद मग्न-मग्न होकर एकत्र हो। सूर्य्य की कुकुम्भ-ताम्र किरणों चट्टानों के गवाक्षों में प्रवेश करती हुई, स्त्रियों को जान पड़ती थी कि पतियो द्वारा भेजी हुई दूतियाँ हैं और इसलिये सायंकाल के शृंगार के लिये शीघ्रता कर देती थीं। अस्ताचल के वृद्धों को अपनी लाल किरणों से पकड़ कर, सूर्य्य ऐसा लगता था, जाने वह वन में, पृथ्वी या समुद्र में प्रवेश करेगा। दिनान्त में घोसलो के लिये विकल शब्दायमान पक्षियों से मुखर तथा सन्ध्या प्रभा से आलोकित सायंकाल प्रातः सन्ध्या के समान जान पड़ा। गगन का पश्चिमी भाग, सन्ध्या की आभा से प्रकाशित बादलों से, विद्रुम की द्युति से प्रकाशित लहरों से सुसज्जित समुद्र के समान भासित होता था। दिन की सुन्दरता को छिपाने में चतुर अन्धकार जो अब तक प्रभात के प्रकाश के डर से छिपा था, नीचे के स्थानों से निकल कर सारे संसार में छाता हुआ शात होता था। प्र० भा०। चक्रवाक पक्षियों का जोड़ा रात भर के लिये, एक दूसरे के साथ रहने की इच्छा रखते हुए भी अलग हो गया, शास्त्र-नियोग अनुलंघनीय है। प्र० भा०। रात्रि-राग से मलिन और जिनका विकास छूट गया था ऐसे कमलों को छोड़ कर श्री आकाश में चली गई थी। आकाश में तारे धीरे-धीरे दीख रहे थे, वास्तव में सभी वस्तुएँ निरापद स्थान में जाना पसंद करती हैं। केतकी कुसुम के पराग सा पीला चन्द्रमा का निकला हुआ किरण समूह कान्तपूर्ण हो पूर्व में प्रकाश फैला रहा था, मानों

कपूर का चूरा बिखर गया हो। चन्द्रमा के आने पर दुःख की भाँति अन्धकार का हटाती हुई पूर्व दिशा रश्मि-हास से प्रसन्न-चित्त हो गई। प्र० भा०। चन्द्र किरणों से आगे टकेला जाता हुआ काले काले बादलों जैसा अँधेरा आसमान में फैलता हुआ सुन्दर लगा, मानो शंभु अपने गज-चर्म को आगे उछाल रहे हो। चन्द्रमा से निकल कर किरण समूह ने अपनी वक्रता छोड़ दी, और गगन-तल अन्धकार के भार से मुक्त हो उच्छ्वासित-सा चमकदार निकल आया। प्र० भा०। तब चन्द्रमा कुंभ रंजित अरुण पयोधरो के समान, पूर्वी समुद्र से हेम-कुम्भ वा रश्मियों की धाराओं से आकाश में दीप्ति छिटकाता हुआ धीरे-धीरे निकला। अंधकार से रहित और निकलते हुए चन्द्रमा से आलोकित रजनी को अतृप्त होकर लोगों को देखते हैं, जैसी ब्रीडा से वक्र नव-वधू की घूँघट हटा हुआ मुख। चन्द्रमा ने नभ को पूरी तरह प्रकाशित कर दिया। वह वन-पर्वतों से अन्धकार न हटा सका और न दिशाओं को ही आलोकित कर सका, फिर भी आकाश के लिये एक आभ्र-वन के समान था। अश्रुमयी यामिनी नायिका की चितवनों को लेकर डरा हुआ सा चन्द्रमा धीरे-धीरे से आसमान में उठ रहा था। प्र० भा०। शशि-किरणों से रंजित पेड़ों के नीचे की छाया, घरों की फर्श सी जान पड़ती थी। अपनी वधू के साथ चक्रवाक सूरज की गर्मी में प्रसन्न था, पर अलग हुआ शीतल किरणों नहीं सह पा रहा है। प्र० भा०। यामिनी वनिता ने रश्मियों के समान पानी के स्रोतों में चमकते हुए चन्द्रा को मन्मथ को आभिषिक्त करने के लिये कमल से युक्त रजत-पात्र की भाँति समझी।^{१५}

§ ६—भारवि ने चतुर्थ सर्ग में शरद् ऋतु का वर्णन अधिक विस्तार से किया है, और वह मार्ग में अर्जुन को आकर्षित करते हुए

१५ वही : स० ९ ; ३-९, ११, १६, १४, १६-१८, २०, २१, २३-२६, २९, ३०, ३२।

उपस्थित होती है—। प्र० भा० । जो उसकी प्रेमिका की आँखों की चपलता छीन लाई थीं और जिनको वह भील अपने कमल रूपी कुछ मुँदे कुछ खुले हुए नेत्रों से विस्मय के साथ देखती थी, ऐसी घूमने वाली मछलियों से उसका मन आकर्षित हो गया । कमलों से युक्त पानी में कलम धान की सुन्दरता देख कर अर्जुन प्रसन्न हुआ । कमल के सौरभ तथा फेन से प्रच्छन्न सा पानी जब पाठनि मछलियों से आलोकित होता था, तो उसका यह भ्रम कि यह स्थल कमलों का प्रदेश है दूर हो जाता था । जो स्वयं शात होती जाती है ऐसी धीमे-धीमे बहने वाली सरिता के लहरों से स्पर्श किये जाते हुए दुकूल की भोंति श्वेत, लहरों के टकराने से पडी हुई रेखाओं वाले, तटों को देख कर वह प्रसन्न हुआ । प्र० भा० । जिनका अनुकरण उनकी सरलता के कारण उनका झुंड करता था, और चरागाहों को जो घर की भोंति ही प्रेम करते थे ऐसे चरवाहे अपनी गायों के समीप उसको बन्धुत्व की दृष्टि से देख रहे थे ।... अर्जुन ने साधुओं के आम्र के कुञ्जा के समान खिले हुए पुष्पों से युक्त ग्रह-लताओं की छाया में लोगों को बैठे देखा । इसके बाद यत्न शरद् ऋतु का वर्णन करता है—‘हे पार्थ, यह शरद् ऋतु, फलदायक भाग्य की भोंति परिश्रम का बदला फूलों से देती है । जिसमें जल स्वच्छ होता है और बादल जलहीन होते हैं ऐसी यह ऋतु तुम्हारी सफलता की कीर्ति बढ़ावे । धान के दानों में पकने की सुन्दरता आ जाती है, नदियों की अशान्ति नष्ट हो जाती है और धरती पकहीन हो जाती है । मैं समझता हूँ, वर्षा के प्रति परिचय के कारण जो प्रेम अधिक था, शरद् के नवीन सौन्दर्य से धुँधला पड़ गया है । इस ऋतु में श्वेत पक्षी आकाश में नहीं उड़ते, बादलों के समूह इन्द्रचाप के साथ उड़ते नहीं; और फिर आकाश की सुन्दरता चरम होती है, स्वाभाविक रूप से सुन्दर वस्तुओं को अर्जुन की जरूरत नहीं होती । प्र० भा० । माधुर्य नष्ट हो चुका है जिसका ऐसी मोरों की कटु ध्वनि की इच्छा को छोड़ कर लोगों के कान हंसों की बोली सुनने के लिये

उत्सुक रहते हैं, क्योंकि वस्तु गुणों से प्यारी होती है न कि निकटता में । दानो के पकने से पीले लगते और बालियों के गुच्छों के कारण झुके हुए धान के पीछे, मानों जल में उगे हुए तथा सुगन्धित के कारण दूर से जाने जा सकने वाले नील कमलों को सूँघने के लिए झुक रहे हैं । प्र० भा० । अब विद्युत् स्फुरण से आकाश दीपित नहीं होता, श्वेत बादलों से ताप भी शान्त हो गया है, और सरोज-वायु के द्वारा तथा पानी की फुहार से आकाश शीतल हो गया है । प्र० भा० । चगागाहों से लौटती हुई अपने झुण्ड से बिछुड़ी हुई अपने घरों के लिये आतुर गायें चूने हुए दूध वाले अपने का, अपने बच्चों के लिये मानों उपहार लिये जा रही हैं । जगत् प्रसूतिनी, जगत् को पावन करने वाली ये गायें बच्चों सहित अपने स्थानों पर मन्त्रो सहित दी हुई आहुति की भाँति बड़ी ही सुन्दर लगती थीं ।^{१६} दसवे सर्ग में विलास के प्रसंग में ऋतुओं का वर्णन संक्षेप में किया गया है—‘प्र० भा० । वर्षा में मालती पुष्पित हो गई, और तेज वर्षा की बूँदों के गिरने से पृथ्वी पर कमलों का नाश हो गया । प्र० भा० । कदम्ब की गन्ध से मस्त पवन और मयूर के कंका स्वर से किम धैर्यवान का मन चंचल नहीं हो जाता । कमल नाल के कड़े, कुमुद-वन के रेशमी वस्त्र तथा नीलभिरण्डी के बाण-पखों को धारण किये हुए शरद्-वधू का हाथ, वर्षा ऋतु ने निर्मल कमल रूनी करो से ग्रहण किया । मयूरों के मदमत्त कूजन के साथ हंसों का नाद और कुमुद-वनो के साथ कदम्ब की पुष्प-वर्षा से शोभा अत्याधिक बढ़ गई । प्र० भा० । जल से धोये गये घास के मैदानों की इन्द्र-वधूटियों तथा फूले हुए बन्धुजीव पुष्पों की शोभा का अतिक्रमण कर पलास ने शोभा प्राप्त की । हेमन्त काल में ओस पड़ती है, प्रयंगु अधिक फूलता है और फूले हुए कुन्द की गन्ध पवन से फैलती है । लवलीलता पुष्पित होती है और लोभ्र पुष्प की गन्ध चारों ओर फैल जाती है । कहीं-कहीं आम की मजरियों

से और कुछ-कुछ फूले सुन्दुवार पुष्पो से, शिशिर के पास कामदेव के बन्धु वसन्त के आने की सूचना मिलती है। प्र० भा० । फूले हुए कुसुमों के अधर में हँसती हुई कुरबक-राजि वधू को देखते हुए, अपने बाण के साथ अशोक पल्लव पर बैठे हुए कामदेव को देवागनाओं ने देखा। दक्षिण पवन से धीरे धीरे हिलाई जाती हुई, कमलों पर भ्रमर पंक्ति अलकावली जान पड़ी। मधु गन्ध आती है पुष्प रूपों मुख में जिसके तथा उच्छ्वास से पल्लव रूपी ओंठ हिल रहे हैं जिसके ऐसी क्रोध से कौपती शाल-लता वधू को भ्रमर द्वारा चूमी गई।^{१७} यहाँ ऋतुओं की वर्णन परम्परा का दृष्टि से हुआ है और आगे विलास-क्रीड़ा में खो गया है।

कुमारदास

§ १०—कुमारदास ने जानकी हरण में राम-वनवाम प्रसंग में वन-पर्वतो का उल्लेख भर क्रिया है, वर्णन नहीं। पहले मर्ग में दशरथ की मृगया का वर्णन विस्तार में है—पार्वती द्वारा पर्वतीय मृगया वात्सल्य प्राप्त, अपने विचित्र पुष्पाभरण से सुन्दर लगने वाले नवीन वृक्षों का हिमालय ने बढ स्नेहपूर्वक बहुत दिनों से पाला है। ऋक्ता वायु से हिम के दृट जाने पर निकले धातुओं की पत्तों को देखकर भोली गन्धर्व-कन्याओं के मन में त्वचा के निकालने का भ्रम होता है। प्र० भा० । हिमालय के सघन निकुंजों का अन्धकार नागसुन्दरियों द्वारा पहने गये रत्नों के प्रकाश से दूर हो जाता है, और रात-दिन का ज्ञान सरोवरों में उगे कमलों से होता है। जिनके छाल-पत्तों धातुओं की प्रभा से रजित हैं, जिसका ऊपरी भाग गुफाओं से (कार्तिकेय) शोभित है ऐमा पर्वत अपनी चन्द्र-किरणों जैसे श्वेत आभा से कार्तिकेय के मयूर की शोभा को प्राप्त करता है। प्र० भा० । अपने

तूणीर से शीघ्रता के साथ बाण निकाल कर घनुष पर संधान करते हुए प्रसिद्ध घनुषेर राजा ने अपने घोड़ों को दौड़ाते हुए जंगली जानवरों के मार्ग का अवरोध करना आरम्भ कर दिया। प्र० भा०। राजा द्वारा विद्ध श्रेष्ठ हरिन पूर्व गति वेग के कारण आकाश में उड़ा, मानो अपने स्वर्ग जाने वाले हृद्य का अनुसरण कर रहा है। आगे जाने वाले हरिण के मुख में घस कर फिर उसी समय हरिणों की कतार के मध्य भागों में दिखाई देने वाले बाण से ऐसा जान पड़ा मानो बाण के धागे से पंक्ति बद्ध हरिण विरोधिते गये हैं। राजा ने तेज वेग वाले बाण से भागते हुए भैसे के ललाट के बीच का भाग बेना, और उसके पुष्ट शरीर को छेद कर बाण ने पूँछ का रूप धारण किया। शल्य-चिकित्सक की तरह जब राजा गैडे को फाड़ रहा था, उस समय प्रतिध्वनियों से मानो भय से पहाड़ भयानक रूप से चिल्ला रहा हो। कन्द के समान राजा ने अपने चाप-दंड को खींचकर उस जंगली मुअर का निशाना बनाया, जो लड़ने के लिये अपने भँड से अलग हो गया था और जब तब भयानक करता था। इस प्रकार मृगया से थके राजा ने अपने घोड़ों को विश्राम के लिये छोड़ दिया और स्वयं उस नदी के तट को शोभित किया जहाँ मन्द पवन बेत की लताओं को चंचल कर रहा था। सारस के नाट को आकर्षित करने वाली, गन्धी की दुकान की सुगन्ध से सुखद पवन नील-कमला के पराग को उड़ा कर राजा के शरीर को पीला कर दिया। प्र० भा०। राजा सूर्य मण्डल को पश्चिम दिशा में देखकर आकर्षित हुआ, मानों काली दीवाल पर स्वर्ग बना पंखा टँगा हों।^{१८} इसके बाद कवि मुनि-पुत्र के वध की घटना की ओर पाठकों को ले जाता है।

§ ११—जल-क्रीडा के बाद राजा दशरथ सन्ध्या का वर्णन कर रहे हैं—‘प्र० भा०। सन्ध्या-वेला में विचरते हुए, मूँगा के समान लाल

१८. आ; सं० १, ४७, ४८, ५०, ५१, ५२, ५६, ५८, ५९, ६१-६४, ६६।

यह स्वर्ण बाहु ससार का सर्जन करने सूर्य-मण्डल अपने कमल-हस्त को कमलो के साथ संकुचित कर रहा है। पयोनिधि काल-परिवर्तन मे डूब कर जिसकी चमकती अगुलियाँ प्रत्यक्ष है, और सागर की लहरे जिसका वलय है ऐसे सागर के मस्तक पर रखे हाथ से मानो सूर्य जल प्रमाण नाभ रहा है। सन्ध्या की अरुणिमा चारों ओर फैल गई, अन्धकार पूर्वी दिशा से अन्धकार दूर हो गया और सूर्य के तेज के परिताप से लाल ससार क्रम से आनन्द की ओर बढ़ रहा है। शीत किरण चन्द्रमा कोमल प्रकाश फैला रहा है और जान पड़ता है पूर्व-दिशा के मुख पर मुस्कान है। अजन के समान अन्धकार के दूर हो जाने से आकाश-मण्डल केचुल जैसा शोभित है। प्रातःकाल का उल्लेख करते हुए चारण राजा को जगाते हैं—‘निद्रा का त्याग कीजिये। इस समय क्षितिज-रेखा पर सूर्योदय का समय आ गया है। अन्धकार को दूर करने वाले तुम्हारे जैसा प्रतापी सूर्य अपनी किरणों को फैला रहा है। हाथी जाग गये हैं, वे अपनी जँजीरे भँकार रहे हैं। और अपनी सूँड़ों को दाँत से उठाते हुए कान फटकार कर भौरो के झुंड को भगा रहे हैं। ढोल की आवाज़ सुनकर अपने वास की डालीपर एक पैर से खड़ा हुआ मयूर देर तक सोने के कारण भारीपन से अपने दूसरे पैर और पूँछ को फैला रहा है। सूर्य की उदयकालीन आभा देख कर, मयूर अपने पखों को फुलाकर हिमकणों को भाड़ते हुए ताडव-नृत्य की इच्छा करता हुआ अधिक प्रसन्न हुआ।^{१९} आठवें सर्ग में राम जानकी से सन्ध्या का वर्णन करते हैं— ‘जिस प्रकार प्रलय काल में सागर के केन्द्र की ओर आती हुई पृथ्वी डूब जाती है, उसी प्रकार सागर के मध्य में स्थित सूर्य की प्रभा उसी के मण्डल विलीन हो रही है। जिसका मण्डल सागर में स्थित है ऐसा सूर्य अन्धकार रूपी गाल से घिरा है, मानो पानी में छिपे हुए नाभ वाले पूर्ण विकसित कमल को भ्रमरों ने

घेर लिया है। जब पूर्ण चन्द्र का उदय हो रहा है, उदयाचल पर स्थित सूर्य-मण्डल जान पड़ता है, धातुओं के कीचड़ से मलिन आकाश-रथ का अकेला पहिया हो। अपनी किरणों को एकत्र करने से बोभिल हुआ सूर्य क्रमशः सागर में भारीपन के कारण मानों डूब रहा है। सागर में जिसकी श्री अन्तरित है ऐसे सूर्य की उलटी हुई किरणों से जान पड़ता है—मानो सागर को अभिभूत कर बड़वाग्नि की शिखा ऊपर निकलकर शोभित है। दिन बीतने के समय सन्ध्या के सामने रुद्ध अन्धकार वर्षा-कालमें नदियों के जल से भिन्न हुए सागर जल के समान जान पड़ता है। सन्ध्या राग से लाल हुआ, कोमल पल्लवों से सघन पत्र-समूह वाला वन प्रौढ़ सौन्दर्य से शोभित है। काले साँप की भाँति मलिन अन्धकार से चारों ओर घिरती हुई दिशा रूपी परिवर्ण सकुचित हो रही है। अन्धकार के जाल से रुद्ध अन्त मयूर के कण्ठ के समान चितकमरा आकाश जान पड़ता है मानो सूर्य-दीप के ताप से उत्पन्न गहरे काजल से मलिन हो गया है। देखो, यह मानने उगती हुई दीन आभामयी ज्योति जान पड़ती है, गहरे डूबे हुए सूर्य की किरणों से भास्वर काले साँप की भाँति सुन्दर विष्णु-पथ का एक छेद हो। रवि रथ के लोहे के पहिये से मेरु-शिखर के टकाराने से उठी हुई चिंगारियों के समान लोहित वर्ण के तारे पश्चिम में शोभित हैं। रवि के भय से छिपे हुए और किरण समूह से आहत होने से लाल तारे, सूर्य किरणों के वीत जाने पर, दिशाओं को अलंकृत करने के लिये चारों ओर से खुल रहे हैं। पूर्वी सागर के तल से क्रमशः उदित होता हुआ चन्द्रमा ने अपना पूर्ण विकास प्राप्त कर लिया है, जो वह एक पक्ष में प्राप्त करता। प्र० भा०। उदय के समय क्षीण आकार वाला चन्द्र चारों ओर से अपनी किरणों से बढ़ता हुआ मानों सूर्य के आकाश में लगे हुए तेज में विलीन हो गया है। राग रूपी लालिमा अनुरक्त होकर प्रसन्न हुआ चन्द्रमा, इन्द्र की दिशा को छोड़कर शोक से दीन हुआ पाण्डु आभा से क्रमशः दुबला हो गया है। अमर,-समूह के समान

अन्धकार, जो चन्द्रमा ने पी लिया था, उसके निर्मल शरीर में शशक के रूप में दिखाई दे रहा है। प्र० भा०। अपनी किरणों से अन्धकार को नष्ट करने वाले चन्द्र-मण्डल में शशक की आकृति के रूप में मानो वेग से उड़ी हुई धूल की समूह है। प्र० भा०। चाँदी के टुकड़ा के समान चमकीले तारे ऐसे शोभित हैं मानों उदयाचल से आते हुए चन्द्रमा के मार्ग में दिग्बधुओं ने लावा बिखेर दिया हो। क्रीड़ा सरोवर में हंस बहुत देर तक नाद करने के बाद चुप हो गये हैं और कमल मुँद गये हैं, मानों अपने प्रिय के वियोग में देर तक रुदन करने के बाद उसने मूर्च्छित होकर आँखें बन्द करली हैं। प्र०। कमलों में बन्द होकर मानों चंचल आर विकसित पत्र-समूह वाली कुमुदिनियों को विकसित होने का स्थान दिया है। नील कमल की आभा वाला मृग-चिह्न से युक्त चाँद जान पड़ता है दर्पण है जिसमें श्यामल सुन्दरियों की कान्ति की परिछाही पड़ रही है। सघन बादलों से घिरा हुई किरणों वाला चन्द्रमा जान पड़ता है मानों यौवन की की आभा से उज्ज्वल तुम्हारे मुख से लज्जित हो छिप रहा है। शशि-चिह्न से अंकित चन्द्रमा काले बादलों के मध्य से क्रमशः निकल रहा है जैसे उसके मध्य में वाले मेष का टुकड़ा लग गया है। इस चन्द्रमा के बीच में जो कृष्ण मृग का चिह्न है, वह मानो तुम्हारे कुन्द जैसे सफेद दाँतों को बनाने के लिये ब्रह्मा द्वारा निकाल लिया गया है। यह चन्द्रकान्त मणि का तोरण, तुम्हारे मुख से जिसके मण्डल की शोभा जीत ली गई है तथा अमृत आभा वाले चन्द्रमा के कलरु को देख कर शोक के आँसू बहा रहा है'।^{२०}

क—जानकीहरण में सर्ग तीन के पहले १३ श्लोकों में वसन्त का वर्णन। इसका अधिकांश प्रथम भाग में उद्धृत किया गया है—
'लक्ष्मी की घरा पर अक्षरित होने की इच्छा को जान कर प्राण के

समान उमको चाहने वाला वसन्तसुमनो की समृद्धि के साथ पृथ्वी पर पहले ही फैल गया। अब दक्षिण दिशा को अपनी किरणों से प्रकाशित करने वाले भ्रमणशील सूर्य ने निर्धन होता के समान, प्रकाश प्राप्त करने के लिये कुबेर (उत्तर) की दिशा की ओर प्रस्थान किया। प्र० भा०। कटीले नाल वाले नये कमल, जो पानी में रहने से शीत के कारण सकुचित हो गये थे वसन्त में गर्मी पाने के लिये ऊपर उठ गये हैं। प्र० भा०। रात्रि प्रिय के विरह में क्षीण हो रही है, और दिन मानो गर्मी से शिथिल हुआ धीरे-धीरे बीतता है।^{२१}

माघ

§ १२—माघ ने द्वारिका से प्रस्थान के समय सन्देश में सागर का वर्णन किया है—‘मुरारि कृष्ण ने बाहर निकल कर देखा, समुद्र के उस पार नीले पत्र समूह वाली वन-पंक्ति है जो सागर द्वारा प्रतिक्षण लाई जाती शिवार जान पड़ती है। प्र० भा०। प्यासे सागर के चन्द्र-किरणों से बड़े हुए शरीर में समा न सकने से मानो उगली हुई किरणों ही मोतियों की श्रेणी के रूप में वहाँ थीं। जल वर्षा से सारी पृथ्वी को डुबाने वाले और सदा गरजते हुए मेघ सागर के एक भाग में पानी पी रहे थे। जिस प्रकार वेदों से निकली हुई स्मृतियों फिर उन्हीं में समा जाते हैं, उसी प्रकार सागर के जल को मेघ से ग्रहण कर नदियों सब सागर में गिर रही हैं।.....भक्ति के कारण सागर के भीतर से निकलने की इच्छा करते हुए सर्प-गण, श्रीकृष्ण की ध्वजा के समान, अपनी निःवास से जल को ऊपर उछालने लगे। युगान्त के बन्धु श्रीकृष्ण मेरी गोद में आ रहे हैं, यह देख कर समुद्र, मानो अत्यन्त आनन्द से अपनी उच्च तरंगों रूमी भुजाओं को फैला कर उनकी ओर बढ़ा। जल-कणों

२१. वही, स० ३; १, २, ४, १३।

से युक्त तथा इलायची की गन्ध से भरी हुई समुद्री हवा प्रतिक्षण समुद्र के किनारे जाते हुए श्रीकृष्ण का पसीना सुखा रही थी। बाद में सेना, जहाँ ऊँचे-ऊँचे ताड़ वृक्षों के वन की वायु केतकी के सिर के बालों के दो भागों को बाँट रही थी ऐसे कच्छ प्रदेश में पहुँची। सैनिकों ने लंबंग मालाओं से शरीर सजाया, नारियल का पानी पिया और हरी सुपारी चबाई, मानो इस सागर ने उनका आतिथ्य किया हो'।^{२२}

§ १२—श्रीकृष्ण की सेना रैवतक पर्वत पर पहुँचती है। इस प्रकार चौथे सर्ग में इस पर्वत का वर्णन है।—‘प्र० भा०। कहीं-कहीं धुले हुए उत्तरीय वस्त्र के समान जलहीन सफेद मेघों रैवतक पर्वत को धारण किये हुए वह पर्वत, पार्वती के सम्पर्क से जिसकी भस्म असमान हो गई है ऐसे शिव के शरीर के समान है। मस्ती से चंचल और आलसी तथा प्रियाओं के मधुर वचन सुनने के अभिलाषी पत्नी-समूह पर पर्वत पिंगल-वर्ण के पत्तों वाले कमल रूपी छत्रों से छाया कर रहा था। डालों पर नीलकण्ठ बैठे हुए थे और शरीर में साँप व्याप्त थे ऐसे ऊपरी भुज-लताओं को हिला-हिला कर नृत्य करने वाले वृक्षों को पर्वत अनेक रूपों के समान धारण किये था। प्र० भा०। पद्मसमूह पर भौरे फिर रहे थे, वृक्षों की श्रेणी धूप के ताप दूर कर रही थी। अत्यंत ऊँचे रैवतक के उन स्थानों पर जहाँ समीप होने से सूर्य ताप अधिक है कमल खिल रहे थे और भुंड के भुंड भौरे घूम-घूम कर मधुपान करते हुए मस्त होकर उनकी छाया में ताप का कष्ट नहीं पाते। सहस्राक्ष इन्द्र से शोभित ऐरावत के समान इस पर्वत की रजतमय चट्टानों वृक्षों पर में सहस्रो फूल खिल रहे थे। अरुण की आभा से लाल हुए श्याम वर्ण के सूर्य के घोड़ों को बाँस के अंकुरों के समान नीले रंग की चारों ओर फैली हुई नील मणियों की किरणों ने फिर श्याम वर्ण प्रदान कर दिया। छाप हुए मेघों से साँपों

से भरे हुए उसके वन बार-बार भीग रहे थे, जिमसे सॉपो के बिष की अग्नि से उत्पन्न विपत्ति वनों को क्षति नहीं पहुँचाती थी। सूर्यकान्त मणियों पर सूर्य की किरणों का स्पर्श अग्नि का तेज प्रकट कर रहा था, सत्पात्र में गुण अधिक शोभा देता है। इस पर्वत को श्रीकृष्ण ने कई बार देखा था, परन्तु इस बार वह नये आश्चर्य उत्पन्न कर रहा था, क्षण-क्षण नवीनता धारण करने वाली ही रमणीयता होती है। पर्वत के ऊँचे प्रदेशों में पक्षी शब्द कर रहे थे।^{२३} इसके आगे दारुक कृष्ण से पर्वत का वर्णन करता है—‘अपनी ऊँची और विशाल चोटियों से विस्तृत दिशाओं, आकाश तथा उन्नत भूतल को व्याप्त करने वाले तथा जिसके ऊपरी भाग में चन्द्र-किरणें पड़ती हैं ऐसे श्रेष्ठ पर्वत को देख कर ससार में कौन व्यक्ति चकित न होगा। उस पर रज्जु के समान पड़ी हुई, उदय होते सूर्य तथा अस्त होते चन्द्रमा की किरणों से जान पड़ता है मानों विशाल हाथी के गले में दो घंटे भूल रहे हों। मणि माणिक्य को नूतन किरणों से और ज्वारों और दुर्वायुक्त स्वर्णमय भूमि से शोभित यह हरताल के पीले रंग के वस्त्रों से युक्त आप के समान यह शोभित है। इसकी चोटियों पर बैठ कर हरिण को गोदी में लिये हुए मृगांक का, ललनाओं के मुख से पूर्ण समता रखने वाला, निष्कलंक और घनी किरणों वाला पृष्ठ भाग है। वृद्ध वानप्रस्थ पुरुष के समान इस पर्वत के झरनों का जल ऊँचे स्थान से पत्थरों पर गिर कर बूँद-बूँद होकर आकाश की ओर उठ कर कामार्त्त अप्सराओं के शरीर को शीतल करता है। मेघा जल बरसा कर चातक पक्षियों की दुःखभरी पुकारों को शान्त करके तथा सुवर्ण समूह को बिजली के समान उज्ज्वल करके छाये हुए हैं, और कहीं पर सूर्य की किरणें सुवर्ण-राशि को उद्भासित कर पिंगल वर्ण प्रसारित कर रही हैं।’^{२४}

२३. वही ; स० ४ , ५-७, ९, १२-१८।

२४. वही ; वही ; १९-२४।

‘प्रगाढ श्वेत लेप के समान चमकती हुई सफेद रंग की सोने की रेखाओं से अकित ऊँची-ऊँची चाँदी की दीवारें श्वेत भस्मयुक्त तथा अग्निमय नेत्र से शोभित शिव के ललाट के समान जान पड़ती हैं। रैवतक पर ऊँचे और अत्यंत कठिन स्थान हैं, विशाल मेघ भूलते हुए स्थानों को ढके रहते हैं, प्राणियों के लिये दुरगम्य हैं और दिग्गजों ने अपने तिरछे दाँत मारकर उन स्थानों को चिह्नित किया है। प्र० भा०। खिले हुए चम्पा के फूलों के समान रंगवाले गगन-स्पर्शी स्वर्णमय स्थानों से यह पर्वत सुमेरु पर्वत के नितम्ब प्रदेश के समान शोभा धारण कर रहा है। इस पर्वत पर नाना वर्णों के सुन्दर रोमों वाले ‘प्रिपक’ नाम के विशेष प्रकार के मृग विचरते हैं, जिससे जान पड़ता है मानों विविध रत्नों वाले रैवतक के अपने अंग इधर-उधर घूम रहे हैं। यहाँ जवान हाथियों के झुंड सरोवरों के बीच में घुस कर आनन्द पूर्वक विकसित कमलों से खेल रहे हैं। अन्धकार सूर्य पर आक्रमण करता है, किन्तु सूर्य फिर दीति (पत्नी) से मिलने के लिये समय की प्रतीक्षा करता है। रात को इसी दीति की औषधियाँ रक्षा करती हैं, अन्य कोई उसका पराभव नहीं कर सकता। इसमें लताएँ मणियों के हाथों के समान अपने कोमल कसलयों को वृद्धों के तनों पर स्थापित किये हुए हैं। उत लताओं के फूलों पर भौरे बैठे हैं जो काजल लगे हुए नेत्रों के समान जान पड़ते हैं। यह कदम्ब के फूलों की सुगन्ध से सुवासित होता रहता है, यहाँ पक्षीगण नाना शब्द करते हैं और पवन नये कदम्ब वनों को कँपाता हुआ और मेघों को घुमाता हुआ संचरण करता है। यह पर्वत समस्त निधियों का धारण किये हुए है और यहाँ किन्नर-किन्नरियाँ क्रीडा करती हैं। इसकी चोटी पर फैले हुए वन में ताल और तमाल के वृद्ध दूर तक फैले हुए हैं और इसमें सूर्य की किरणें भी तिरोहित हो गई हैं। इसमें कोई अनफूली लता नहीं है। कुजवन से पूर्व अधित्यकाएँ सुन्दर हैं। उत्तम रत्नों की किरणों से चोटियाँ भी चित्रित हो रही हैं, निर्मल शिलाओं तथा मणियों

से मेखलाएँ परिपूर्ण हैं, इनकी चोटियाँ विस्तृत हैं और अधित्यकाओं से रमणियाँ विहार करती हैं। इन पर्वत में नफेद चाँदी की भूमि पर हीरों के टुकड़े पड़े रहते हैं, इससे यह भूमि मेघ द्वारा तत्काल बरमाये गये और बुलबुले पड़े जल के समान दिखाई पड़ती है। घने बाँस के जंगलों में आती हुई चमरी गाये पूँछ के एक बाल कट जाने पर दुःखी होकर वही खड़ी हो जाती है, किन्तु जान पड़ता है मानो वे बाँस में प्रविष्ट छिद्रों से निकलने वाले पवन के मधुर गीत सुनने को खड़ी हो गई हैं। इन्द्रनील मणियों की शिलाएँ जिनमें पड़ी हैं ऐसे सरोवरों में बादलों से मोतियों के समान श्वेत जल बरसा करता है, जो पहले दूध के समान दीखता है, किन्तु फिर छुरी के समान नीले रंग की उन इन्द्रनील मणियों की किरणों, शीघ्र ही उस जल को नील के रस के समान नीला कर डालती हैं। नाना प्रकार के रत्नों की किरणों से मिलकर चन्द्र की किरणें हजारों गुनी चमकती हैं, इस कारण रात्रि में भी कमलनियाँ उसे सूर्य समझ कर विकसित ही रहती हैं। अपने से उत्पन्न हुई अपनी पुत्री रूपी जो नदियाँ निःशंकभाव से अपनी गोदी में खेलने या लोटने की अभ्यस्त थीं, वे अब अपने पति समुद्र के साथ सम्मिलित होने के लिये सन्मुख की ओर जा रही हैं। इस कारण मानों पत्नियों के कर्ण शब्दों द्वारा वात्सल्य-वश उन्हें लक्ष्य करके रैवतक रो रहा है। इसमें बहुत से वृद्ध अपनी शाखाओं के भार से झुके पड़ते हैं और उनको भ्रमर रूपी लम्पटगण चूम रहे हैं। यहाँ पर असंख्य लताएँ परिपक्व होकर पीले रंग की हुई हैं और रेगुराशि गिर कर पर्वत के नितम्ब देश को भूरे रंग की कर रही है। भरनो के ऊपर से नीचे गिरती हुई जलधारा नाना प्रकार के रत्नों की किरणों से रंगीन हो रही है, लगता है कि सिन्दूर से रंगी हुई हाथी सूँड़ हो और ऊपर की दिशा विस्तृत इन्द्र-धनुष के समान मनोहर जान पड़ती है। शिखर रूपी केश-कलाप मोरों के शेखरों को धारण कर, क्षण भर के लिये लम्बे-लम्बे पिच्छों की झूलती हुई मालाएँ कल्पवृक्ष के नाना वणों के विकसित पुष्पों से गुँथी हुई सी शोभित

होती हैं। प्र० भा०। यहाँ पडती हुई नवीन मणियों से उत्पन्न हुई किरण-राशि ऊपर उठकर, परस्पर मिलकर मनोहर तथा विचित्र होकर त्रिना दीवार के भी आकाश में एक प्रकार का चित्र निर्माण करती है, और उसको देखकर आकाशयामी प्राणी विस्मयापन्न होते हैं। इस पर्वत में वृद्धों की शाखाओं के भीतर से सूर्य की किरणें पडकर नंचे की मरकत मणि वाली भूमि की धूल रंगी जाकर चकाचौंध उत्पन्न करती करती है, और सूर्य की किरणों ने मोरो के गला झुकाने पर जैसी शोभा होती है वैसी शोभा धारण की।'

‘इस पर्वत की चोटियाँ, रात में चन्द्र की किरणों के स्पर्श से, चन्द्रकान्त मणियाँ से निकले हुए जल द्वारा स्नान करती हैं और दिन में सूर्यकान्त मणियों से निकली ज्वाला से सन्तप्त रहती हैं। इस प्रकार मानो चोटियाँ तपस्या करती हों। इसमें अति काले और भ्रमणशील भौरों की वीणा की अव्यक्त मधुर ध्वनि के समान गुंजार से आकर्षित हुई क्रौन रमणी मान छोड़ प्रिय के सन्मुख अवनत नहीं हो जाती। इस पर्वत के विशाल सरोवरो में अविरहितरामा लक्ष्मणा (पतियुक्त सारमी) रहती है, अधिक जल से (कपियों) से इसकी शोभा है और वायुजनित वेग से क्षोभित है (पवन-पुत्र का वर्णन), और इस प्रकार ये वाल्मीकि रचित रामायण के सट्टश हैं। प्रत्येक दिशा में हाथियों के प्रसन्न बच्चे बार बार मधुर और भयंकर शब्द करते हैं, प्रत्येक वन में चमरी गायें घूमती हैं और सोने तथा रत्नों की भूमि की किरणें दीप्त हो रही हैं। पवन बाँसों के छिद्रों में भर कर उनसे निकलते हुए मधुर गीत को स्वयं सुनता है, कोमल रोंएँ वाले कम्बल मृगों को छूता है, और कस्तूरी मृग के शरीर को छूकर सुगन्धित होता है। रति क्रीडा भ्रम को यहाँ मेघ शान्त करते हैं और सन्तोष के लिये सूर्य को ढक देते हैं, दिन में अन्धकार हो

२५. वही ; वही, २८, २९, ३१-३६, ३९-४१, ४३, ४४, ४६-५०, ५३, ५६।

जाती है। सॉप जिसमें रहता है ऐसे फूलों के भार से झुके हुए वृक्ष को मदमत्त हाथी ने तोड़ डाला है, इससे कुपित हुआ सॉप तौब्र विष उगल रहा है। हिमालय में शीत के कारण शिवजी हाथी के चमड़े को ओढ़ते हैं परन्तु यहाँ अकिंचन व्यक्ति को भी शीत और गर्मों का दुःख नहीं सताता। स्फटिकमय स्थान शुभ्र वर्ण के हैं, मध्य भाग नवीन वृक्षों को श्रेणी से श्याम वर्ण है, इस प्रकार यह पर्वत शरीर में भस्म लगाये और कटि-प्रदेश में काले सॉप लपेटे शंकर के समान जान पड़ता है। वहाँ बहुत सी नदियाँ प्रवाहित हैं जिनके दोनों किनारों पर जल में कमल खिले हैं। सघन अन्धकार को बेधकर सूर्य की किरणों, दर्पण के समान निर्मल सामने की चोटी की दीवारों पर प्रतिफलित होकर उन स्वर्ग गुफाओं के भीतर घुस कर युवतियों को लज्जित करती हैं। इस पर्वत-शिखर की कान्ति का अनुकरण करने वाले बलराम के वस्त्रों के समान काले मेघ पवन से ऊपर उमड़ते हुए उठ रहे हैं, और जान पड़ता है पर्वत ऊँचा उठकर आपका सम्मान कर रहा है।^{२६}

§ १४—क्रीडा-विलास प्रसंग में ही रैवतक सन्ध्या का वर्णन भी है—‘अपने तेज के ताप को अधिक सह न सकने के कारण ही मानों सूर्य पश्चिम समुद्र के जल में डूबने की इच्छा से सन्ध्याकाल अस्ताचल पर चढ़ने के लिये दौड़ा। दिन और सूर्य दोनों बुढ़ापे से शिथिल हो गये थे, उनकी देह की प्रभा कम हो गई, शरीर की गरमाहट कम हो गई, दिशाओं में रहने वाले निर्मल मेघ ही मानों उसके मस्तक बने हुए हैं और सूर्य रूनी नेत्र कमजोर हो गये हैं। प्र० भा०। सन्ध्या होने के पहले सूर्य की विरल रश्मियाँ पर्वत की चोटियों पर जा रहीं, विनाश के समय भी सज्जनो का स्थान ऊँचा रहता है। अन्त होते समय सूर्य की हजारों किरणों काम न आईं, विधाता के विपरित होने पर कोई उपाय सफल नहीं होता। प्र० भा०। अस्त

होते समय जवा कुसुम की तरह लाल रंग का सूर्य पश्चिम दिशा के मध्य भाग में लाल रंग के पद्मराग मणि के कंकण की भाँति शोभित हो गया । अग्नि ताप से प्रकाशमान सोने के टुकड़े की तरह शोभित, समुद्र जल में आधा डूबा हुआ सूर्य-मण्डल, सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा के नख के आघात से दो भागों में विभक्त ब्रह्माण्ड के एक बड़े खण्ड के समान था । पश्चिमी दिशा रूपी वेश्या ने, अनुरक्त नेत्रों को सुख देनेवाले और शान्तचित्त निर्धनी आकाश रूपी घर से सूर्य नायक को निकाल दिया । प्र० भा० । आकाश में नक्षत्र और चन्द्रमण्डल दिखाई नहीं पड़ते, सूर्य अस्त हो गया है, ताप और अन्वकार भी नहीं था, फिर भी आकाश शोभित हो रहा था । कान्तिपुंज पति के देशान्तर चले जाने पर निर्मल प्रभावली कान्तियाँ अग्नि में प्रविष्ट हुईं, अन्यथा दूसरे जन्म में वही सूर्य पति कैसे मिल सकता है । सन्ध्या ने खिले हुए कुसुम के फूलों के समान आभा धारण कर जन-समूह के नमस्कार स्वरूप स्वागत को अपनाया, ब्रह्मा ने अपनी मूर्ति रूपी सन्ध्या को त्याग दिया था फिर भी उसने अपने स्वाभाविक पूज्य भाव को नहीं त्यागा । सन्ध्या की घनी प्रगाढ़ लाल किरणों में रंगे हुए चकवा-चकवी ऐसे जान पड़ते हैं मानों उनका हृदय विरह से विदीर्ण हो गया है और उस खून से रंगे हुए वे अलग-अलग उड़ गये हैं । कमल में लक्ष्मी का वास है, यह प्रसिद्ध होने पर भी दिन के अवसान होने पर लक्ष्मी कमल को छोड़ गई, चंचल व्यक्ति के लिये यह उचित ही है । दिन अस्त होने पर, मै अबला होकर इस तेजोघाम सूर्य के विरह से दुःखी इस ससार में क्यों रहूँ, इस प्रकार विचार कर मानों सन्ध्या ने तत्क्षण अपने को नष्ट कर दिया' ।^{२७}

क—आगे अँधेरे का वर्णन है—सागर के जल में अपना प्रतिबिम्ब देख, सूर्य रूपी सिंह मारने की इच्छा से कूद पड़ा, और तब हाथियों

के समूह के समान काले रंग का अन्धकार चारों ओर संसार में फैल गया। गाढे कीचड़ के समान काले रंग का अन्धकार अन्धकार पर्वतो की गुफाओं में अपना पूरा अधिकार जमाने की चेष्टा में सघन हो गया। इस बात का निर्णय कोई नहीं कर सकता कि अन्धकार आकाश में नीचे की ओर आ रहा है, या भूतल से ऊपर की ओर उठ रहा है या दिशाओं से तिरछा आ रहा है। तम चारों ओर से घिरता आ रहा है। अन्धकार ने आकाश और भूतल में फैल कर लोगों की दृष्टि को अन्धी कर दिया। दिन में सूर्य की किरणों से हारे हुए कान्तिहीन ग्रह नहीं दिखाई पड़ते थे, पर रात्रि के अन्धकार में चमकने लगे हैं, क्षुद्र नीच के आश्रय में ही प्रकाशित होते हैं।^{२८}

ख—अनन्तर चन्द्रोदय का दृश्य सामने आता है—‘शेषनाग के फणों पर स्थित हजारों मणियों की कान्ति समूह की भाँति, पूर्व दिशा के चन्द्रोदय भीतर से निकली चन्द्रमा की किरणराशि प्रकाशित हुई। प्र० भा०। चन्द्रमा की कला देखकर लीग क्षण भर के लिये आकाश को, चन्द्र किरणों से स्वल्प और अन्धकार रूपी जटाओं से शोभित शिव की मूर्ति समझ बैठे। अन्धकार रूपी केशपाशों में नई चाँदनी रूपी फूलों से शोभित, चाँद जिसका ललाट देश है, ऐसा पूर्व दिशा मुख सफेद चन्दन लेप किये हुए के समान जान पड़ता था। चन्द्रमा एक कला में उदित हुआ, आधा प्रकाशित हुआ, और सम्पूर्ण उदित हुआ और अन्त में बड़े आकार में फैल गया। तेजस्वी पुरुष क्रमशः वृद्धि लाभ करते हैं। प्र० भा०। अत्यन्त मुग्धकर आकाश रूपी दूकान में उपस्थित हुए चन्द्र रूपी धनिक से, समुद्र बनिये की तरह कला रूपी मूल धन से अपनी वृद्धि के लिये स्वागत-सत्कार कर रहा है। रात्रि को पाकर चाँद शोभित हुआ और उसने रात्रि का सौन्दर्य बढ़ा दिया। दिन में सूर्य-किरण के कर्णों से

प्रताडित, भ्रमरों की गुंजार के रूप में रुदन करती कुमुदिनी नायिका को चाँद शीतल किरणों से छूकर संतुष्ट करने लगा। चन्द्र रूपी वेद्य ने अमृतमय किरण-कर से कमल-नयनी न्नियों के शरीर को अमृत रम से सिंचित कर व्यापक और सन्ताप-जनक मान-रूपी विष को उनके शरीर से निकाल दिया। सम्पूर्ण दिशाओं में विशेष रूप में फैली हुई चन्द्रमा की किरणें युवतियों के उज्ज्वल निर्मल कपोलों पर प्रतिबिम्बित होकर अधिक परिमाण में विस्तृत हो रही थीं। तरंग रूपी हाथों से तीर को आलिंगन करने वाले समुद्र को चन्द्रमा ने शोभित कर दिया, फिर यदि विलामी यादों को उत्तेजित किया तो इसमें आश्चर्य क्या! असर्मथ हुआ घर के भीतर अलस भाव से सोया हुआ कामदेव अब भरोखों से आती हुई स्फटिक दण्ड के समान चन्द्र-किरणों को पाकर चैतन्य हो गया। अन्धकार के कारण लक्ष्यहीन हुए कामदेव ने, चन्द्रोदय से दिशाओं के प्रकाशित हो जाने पर, अपना धनुष खींचा। चन्द्रोदय के साथ ही कुमुद खिल गये, इससे कामदेव को पुण्यमय धनुष में बाण चढ़ाने का मौका और भ्रमरों को कुमुद में रहने का स्थान मिल गया, साथ ही कामिनियों के हृदय में उत्कण्ठा जाग गई। सहसा दिशाओं को प्रकाशित कर तथा रति के लिये उत्कण्ठा पैदा कर, अत्रि के नेत्रों से उत्पन्न हुई अग्नि के समान चन्द्रमा ने कामदेव को उत्तेजित किया।^{२९} इसके बाद सारे सर्ग में क्रीड़ा-विलास का वर्णन है।

§ १५—ग्यारहवें सर्ग में रैवतक पर्वत के क्रीडा-विलास के वातावरण में ही प्रातःकाल भी होता है।—‘बालकृष्ण के छोटे पाद-
 प्रभातकाल
 पद्म के आघात से शकटासुर का विशाल शरीर
 फैल कर गिर गया था, उसी की तरह यह सप्तर्षि
 मण्डल फैले हुए क्षीण ध्रुव नक्षत्र के ऊपरी भाग में दृष्ट शोभा
 पा रहे हैं। पके हुए कमल की जड़ के टुकड़ों के समान शुभ्र

वर्ण, अस्तकाल की लाली से रंजित हो केसर मिले हुए चन्दन की धूल के समान किरणों द्वारा चन्द्रमा अलंकृत कर शोभा पा रहा था। चन्द्र होते कुमुदों से क्षीयमाण शोभा को धारण करते कुमुद-ममूह और खिलने वाले कमलों से बढ़ती हुई कान्ति को पाकर भँवरो के गुंजार से भूषित पद्म-समूह प्रातःकाल में समान अवस्था को धारण कर रहे हैं। प्र० भा० । प्रभातकालीन वायु ने मालती के फूलों के पराग को फैला कर अलसित अंगो वाली युवतियों की कामाग्नि भड़का दी। सूट्योदय के कारण मन्द प्रकाश की ज्योति अब निद्रातुर हो, घर के नयन की तरह घूम रही है। प्रभात वायु प्रस्फुटित पद्मों की गन्ध से भौरों को मोहित करता हुआ धीरे-धीरे बहने लगा। अन्तिम प्रहर में चन्द्र रूपी पति के साथ अभिसार कर, इस समय मनोहर सौरभ युक्त निश्वास से वामित किरण रूमी अंगराज से व्याप्त वल्ल को संभालती हुई रात्रि मानों शीघ्र ही चली जा रही है। नवीन कुमुद-वन की शोभा की हास्य-केलि से आसक्त हुआ रातभर का जागा कान्तिसम्पन्न चन्द्रमा, इस समय मानो शयन की इच्छा कर अलसित करों से पश्चिम दिशा की गोद में अपने पीले तथा थके शरीर को सुलाना चाहता है। प्र० भा० । जब तक सूर्य्य दृष्टिगत हो अरुण ने सारा अन्धकार दूर कर दिया। प्र० भा० । इन काल पवन प्रत्येक वन में कमलों को हिलाती हुई लता समूहों को झुलाती हुई और सब वृक्षों को कँपाती हुई, कहीं भी न रुक घर के भीतर आकर स्थिर हो गई क्योंकि घर के भीतर से रमणियों और फूलों की गन्ध बाहर निकल रही थीं। पूर्व दिशा में नवीन स्वर्ण के ममान पिंगल वर्ण सूर्य्य की किरणें प्रकाशित हैं, इससे जान पड़ता है मानों बडवानल की शिखा समुद्र के ऊपर जल रही है। समस्त दिशाएँ एकत्र हो, पक्षियों के कलरव में कोलाहल करती हुई मानों किरणों की विस्तृत रस्ती से सूर्य्य के भारी कलश को समुद्र के भीतर से ऊपर उठा रही थीं। निश्चय ही सागर के जल में डूब कर बडवानल से दग्ध होते रहने के कारण सूर्य्य उदय होने के समय जलते हुए खैर के अंगारों

के समान लाल उज्ज्वल आभा वाला है। प्र० भा०। उदयाचल को शिखर के आँगन में घूमता हुआ पद्मिनियों के हास्य के साथ देखा जाता बाल सूर्य आकाश के पक्षियों द्वारा बुलाया जाता है। वह कोमल किरणों के अगले भाग को विस्तृत कर खेलता हुआ आकाश की गोद में गिर पड़ा। पर्वत शिखर पर कुछ काल बैठ सूर्य ने भूतल पर चरण रखे और सबको नमस्कार कर सन्तुष्ट होते देख सारे ससार को भली भाँति देखता हुआ सिंहासन तुल्य पर्वत के ऊपर के भाग से ऊपर उठा। नदी का दोनों किनारों से रुका हुआ जल सूर्य की नव-रश्मियों से रजित हो पक्के मद्य की भाँति लाल रंग का हो गया, जिससे प्रतीत होता था कि सूर्य-किरण रूपी बाणों द्वारा सभी दिशाओं में अन्धकार रूपी हाथियों के ताड़न से रक्त को बहाती हुई नदियाँ शोभा पा रही हैं। भूरोखो के भीतर से घर के भीतर पड़ने वाली किरणें कामदेव से फेंके हुए जलते बाणों की शोभा (रमणियों के लिये) धारण कर रही थीं। अन्धकार दूर करने के लिये उदित हो सूर्य ने नक्षत्रों को भी बलपूर्वक नष्ट किया। पर्वतों के बाहर का अन्धकार दूर कर सूर्य ने अपनी प्रतिबिम्बित किरणों से गुफाओं के भीतर का अंधेरा भी दूर कर दिया। उसने घर के बाहर-भीतर का अन्धकार दूर कर दिया। उदय होने वाले कमल पुष्पों को विकसित करता हुआ सूर्य, चपलता के कारण बंधन में बँधे हुए भौरों के इस व्यापार को छुड़ा कर मंडा-फोड़ कर रहा है। कौतुक वश अपनी सहस्र-किरणों द्वारा सहस्र कमल-दलों को खिला कर सूर्य मानों भ्रमरों के गान से सन्तुष्ट हुई कमलों में रहने वाली श्री को आदर से देख रहा है। किरणों के अगले भाग से चन्द्रमा का निर्दयता से निष्पीडन कर, प्रभात के समय उदय राग से रंजित हुआ सूर्य, उसी समय निकले हुए मेघ के नवीन जल के समान शुभ्र वर्ण वाले चन्द्र की कान्तिसार के मानों सफेद कमलों के भीतर फैला रहा है। सारे जगत् को प्रकाशित कर द्वितीय नयन के समान सूर्य एक दिशा में अधिक काल के लिये

प्रकाशित होता है, और प्रभाहीन चाँद द्वारा यह आकाश मानो काने के समान दीख पड़ता है। कैसा आश्चर्य है—एक ओर कुमुद-वन शोभाहीन हो गया है, दूसरी ओर कमल-वन शोभाशाली हो गया है; उल्लू आनन्द रहित हो गया है और चकवा आनन्दिता है; चन्द्र अस्त हो रहा है और सूर्य उदय हो रहा है। दिशा बहुओं का पति सूर्य कुछ काल के लिये विदेश जा कर फिर पूर्व दिशा में उपस्थित हो गया है, इसलिये गलित-किरण वाला यह चाँद उपपति के समान भुका पश्चिम प्रान्त से शीघ्रतापूर्वक चला गया। कल्पान्त में समस्त जगत् का संहार कर, अनुरक्ता लक्ष्मी के साथ जिस प्रकार विष्णु अकेले ही सागर में निवास का सोते हैं, इसी प्रकार अत्यन्त शोभाशाली सूर्य शीघ्र ही समस्त नक्षत्र-लोक को नष्ट कर, उदय-काल की रक्त वर्ण शोभा को नष्ट कर रात के अन्त में आकाश में एकाकी शोभा पा रहा है। सारे लोक को चैतन्य करता हुआ, समस्त अन्धकार का नाश करता हुआ, बहुत से गुणों से युक्त, कुमुद तथा नक्षत्रों की शोभा नाश करने का तथा कामियों के विच्छेद का किञ्चित् दोष रखने वाला कृती दिन का स्वामी सूर्य, हे कामह कृष्ण, आपके लिये सुप्रभात करें।^{३०}

§ १६—रैवतक पर्वत पर श्रीकृष्ण के विहार के अवसर पर सभी ऋतुओं का वर्णन प्रस्तुत किया गया है—‘उन्होंने वसन्त ऋतु के दर्शन किये, पलाश वन में नये-नये पत्ते निकल आये थे, ऋतु-वर्णन पराग से भरे हुए कमल खिल गये थे, धूप के ताप से लताओं के कोमल पत्ते कुछ मुरझा गये थे और अनेक प्रकार के फूलों से सुगन्ध फैल रही थी। रमणियों के त्रिखरे हुए केश-कलाप हिलाता हुआ, उनके मस्तक के स्वेद-कणों को सुखाता हुआ, सगेवरो में छोटी लहरियों को उठा हुआ और कमलों को विकसित कर समीर

चलने लगा । सफेद कुरबक के फूलों के गुच्छों पर बैठे हुए भौरो का श्वेत रंग से उत्कर्ष को प्राप्त हुआ नीला रंग श्रीकृष्ण की स्त्रियों के नेत्रों की पुतलियों के समान था । स्वर्ण जैसी आभा वाले चम्पा के फूलों के मध्य में खिला हुआ शोभायमान अशोक का फूल ऐसा जान पड़ता है मानो विरह की ज्वाला से विरहियों का हृदय विदीर्ण हो गया है और मास पीला पड़ गया है । प्र० भा० । मौलश्री के फूलों की रस मदिरा को पी कर भौरो का कण्ठ सुमधुर हो गया था मानों कामदेव के आकाश से वे प्रियतमों के प्रति कुपित कामिनियों को मनाने के लिये निकल पड़े । प्र० भा० । पलाश के पुष्प समूह ऊँचाई पर स्थित सारे पर्वत और सारे वन को ही लाल करके और बार बार पथिकों को संतप्त करते दावानल की शोभा धारण कर रहे थे ।^{३१} इसके बाद ग्रीष्म का उल्लेख है—‘जिस ऋतु में शिरीष के फूलों के पराग की कान्ति सूर्य के घोड़ों के सट्टा होती है ऐसी ग्रीष्म ऋतु नवमल्लिका की सुगन्ध को चिरस्थायी करती हुई उपस्थित हुई । पाटल के फूलों की कोमल कलियों को खिल्लाता हुआ, उन्मत्त भौरो को भ्रमाता हुआ, विलासियों की रमणियों की निश्वास के समान ग्रीष्मानल विलासी लोगों के काम की चंचलता बढ़ाने लगा’ ।^{३२} अनन्तर वर्षा ऋतु का वर्णन है—‘मण्डलाकार इन्द्रधनुष को धारण करने वाली विचित्र मेघमाला, नाना प्रकार के मणियों से खचित कर्ण-कुण्डलों की किरणों से शोभित कृष्ण के शरीर के समान, जान पड़ती थी कि बलि के मानमर्दन के समय नारायण के शरीर की विचित्र शोभा का अनुकरण कर रही थी । प्र० भा० । फूले हुए कदली के फूलों को कँपाता हुआ सौरभमय वर्षा का पवन मानस्विनी मानिनी रमणियों का मान भंग करता हुआ और प्रवासी लोगों को उद्विग्न करता हुआ वनों को

३१. वही ; स० ६ , २-५, ७, २१ ।

३२ वही ; वही ; २२, २३ ।

भ्रुकाने लगा । अपने गर्जन से ममाला लगे हुए नगाड़ो के शब्द को अरमानित कर मेत्र समूह मधुर शब्द करने वाले मत्त भौरो को नचाने लगा । प्र० भा० । मेत्रो की थोड़ी थोड़ी पहली वृष्टि ने, ग्रीष्म के ताप को दूर कर दिया, भूतल की धूल दूर कर दी और रैवतक के तट को सुगन्धित करके रमणियों के सुख-संचारक के योग्य कर दिया । प्र० भा० । मिसे हुए मोतियों के चूर्ण के समान, सफेद भ्रानो के उज्ज्वल भाग के समान, कुंजो के फूलो का पराग साफ दही के समान जान पड़ता था । प्र० भा० । वर्षा काल ने सूर्य को तिरोहित कर लिया, पक्षियों को अपने घोसलो मे छिग दिया था तथा दिशाओं के ठीक-ठीक ज्ञान मे बाधा डाल दी थी' ।^{३३}

फिर शरद् ऋतु का विकास होता है—'श्रीकृष्ण ने देखा कमल नेत्रो वाली खलित हुए वल्गो जिस्के मेत्र हैं ऐसी शरद् रमणी मानो राजा का गोद मे बैठी हो । सूर्य अपनी किरणो से संसार के रात्रि के अन्धकार, आकाश के मेघ-समूह के अन्धकार और कमलो के निद्रा-जन्य अन्धकार को दूर करने लगा । समय प्राणियों को निर्बन और बलवान बना देता है, मानो ऐसा कहते हुए हसो का स्वर मधुर और मोरो का स्वर कठोर हो गया । हसों ने अपने स्वर से मोरो के नाद का हरा दिया, इसी से उनके पंख भरने लगे, शत्रु द्वारा किया हुआ तिरस्कार असह्य होता है । प्र० भा० । सोने के खड समान पीले दल वाले, जो पराग भोर अरुण केशर से जो अधिक मनोहर लग रहे थे और जो पति से अपमानित हुई भामिनी रमणियों के मान को नाश करने वाले ऐसे असन (बन्धूक) के फूल अपने नाम को सार्थक कर रहे थे । चक्रोर-नयना सुन्दरियों के मद से लाल मुख-कमलो की शोभा का अनुसरण करने वाले बालातप से रंगे हुए जल-कमलो ने किसे उत्कठित नहीं किया । सतपर्ण के फूलो के गुच्छो की गन्ध से

सुगन्धित और भ्रमरो के गाने से प्रशसा प्राप्त पवन, मञ्जुषावी और तीनों लोकों को आकुल करने वाले कार्तिक माम रूपी हाथी के आने की सूचना देते हुए बहने लगा । प्र० भा० । आकाश में उडती हुई, ताम्र वर्ण के मुँह वाले तोतो की पंक्ति, देवताओं द्वारा बनाई हुई हरे पत्तों की माला, जिसमें कोमल पल्लव भी बीच में पिरो दिये गये हो, के समान दिखाई देती हुई कृष्णजी को आनन्दित कर रही थी' ।^{३४} इसके बाद है—'हेमन्त काल का पवन हाथियों को डूबो देने वाली गहरी नदियों को शीतल करके, पथिकों की स्त्रियों के नेत्रों में से अत्यन्त सताप के आँसू बहाने लगा' ।^{३५} परन्तु इस ऋतु में केवल संयोग का वर्णन है । अनन्तर वन में प्रियगु लताओं पर फूल खिलने वाला और भँवरियों के मद विकसित रव हुंकार से युक्त शिशिर ऋतु का पवन, मानिनी स्त्रियों की मानों भर्त्सना करने लगा । माघ मास का सूर्य प्रबल शीत को दूर नहीं कर पाता, कालक्रम से सशक्त हुए शत्रु की हानि बलवान व्यक्ति नहीं कर पाते । सेना द्वारा उड़ाई धूल के समान सफेद लोभ्र के फूलों का पराग सभी दिशाओं में फैल गया, मानो कामदेव की, सेना लेकर त्रिभुवन पर आक्रमण करने की इच्छा को प्रख्यात कर रहा है । प्र० भा० । अत्यधिक फूलों की वृद्धि से कल्पवृक्ष झुक गया और वसन्त के आगमन की घोषणा करने वाली दुन्दुभी स्वरूप तरुण कोयल प्रेमी लोगों को अनुराग वृद्धि के लिये कूकने लगी' ।^{३६} इस प्रकार उस वर्णन में ऋतुओं का एक बार पुनः उल्लेख हो जाता है । वास्तव में शिशुपाल-वध में प्रकृति का सारा विस्तार क्रीड़ा विलास के साथ हुआ है ।

३४ वही, वही, ४२-४५, ४७, ४८, ५०, ५३ ।

३५ वही; वही, ५५ ।

३६ वही, वही, ६२-६४, ६७ ।

श्रीहर्ष

§ १७—दमयन्ती के स्वयंवर प्रसंग में सरस्वती अनेक राजाओं के साथ उनके देश का परिचय भी देती है—‘पुष्कर द्वीप में—हिमालय के समान शीतल वट वृक्षों के मंडप के तले ब्रह्मा स्वयं देशों का उल्लेख रहता है। वह अपने पके लाल फलों और नीले पत्तों की कान्ति से द्वीप के मोर-पंखों के छत्र के समान है और आकाश के आतप को वह रोके हैं (न्यग्रोध) और शाखाओं से उत्पन्न जड़ों से अपने भार को स्वयं धारण करता है। शाकद्वीप में—तोते के पंख जैसी कान्ति वाले पत्तों की माला धारण करता शाक नामक वृक्ष है, इसके पत्तों से दिशाएँ हरी हैं। इसके पत्तों से उत्पन्न पवन स्पर्श से अपूर्व हर्ष देने वाली है। वहाँ क्षीर समुद्र की बेला-भूमि में वन-पंक्ति के प्रतिबिम्ब से विचित्र हुई तरंगें सुन्दर हैं। सागर की तरंगों से चलायमान होने से निकट आये, जीवन के औषध-भूत बहुत से दुग्ध रस से परिपुष्ट तथा सर्वदा अपनी मूर्ति कुण्डलाकार रखने वाले शेषनाग के ऊपर विष्णु निवास करते हैं। वहाँ उदयाचल की शिलाएँ बाल सूर्य की किरणों से गौरिकता का अनुभव करती हैं। क्रौंच देश—चारों ओर सफेद दधिमण्डल नाम के समुद्र के गोल प्रवाह से घिरा है। यहाँ क्रौंच पर्वत कार्तिकेय के बाण से बनाये मार्ग से आये हंसों से निनादित है। कुश देश में—घनी छाया वाले वृक्ष समुद्र का तट है। वहाँ वायु चलने से चंचल पत्र रूपी खंगों से भिन्न हुए, आकाश तक पहुँच गई शिला वाले मेघ मंडल से भरे हुए पानी से कुशा की क्यारियों की सिंचाई होती है। मन्दर की कन्दराएँ वहाँ समुद्र-मथन के समय निकली हुई लक्ष्मी के चरण-कमलों से पवित्र शिला-चल वाली हो गई हैं। वासुकि सौ बार लपेटने से घिसकर बनी हुई लक्ष्मीकानो मन्दाचल पर चढ़ने के लिये सीढियाँ बन गई हैं। उन लक्ष्मी में सफेद पानी की धाराएँ से वह मन्दर अपने भार से आक्रान्त

मस्तक वाले शेषनाग के बचे हुए अंग से लपटा हुआ जान पड़ता है। शाल्मल द्वीप—सुता के अक्षय समुद्र से यह घिरा हुआ है। वशीकरण औषधो से दीप्त द्रोण पर्वत उस द्वीप के दीप के समान है और मेघो से आच्छादित शिखर काजल जैसा सुन्दर है। इसमें शाल्मली वृक्ष का भुआ मार्ग को कोमल कर देना है। प्लक्ष द्वीप—पाकड़-वृक्ष का देश है। पाकड़ की विशाल शाखाओं पर भूले पड़े रहते हैं। इसमें विपाट नामक नदी वर्षाकाल में भी तटों के बाहर नहीं बहती। और उसमें कमल फूलते हैं। जम्बू द्वीप—सब ओर अन्तरिपो से घिरा यह सबका राजा जान पड़ता है। मेरू इसकी सुवर्ण दंड का बड़ा छत्र है तथा कैलास से निकला किरण-समूह इसके चामर-चक्र का चिह्न है। इस पर जम्बू वृक्ष विशेष हैं। इसकी सीमा पर जम्बू नदी बहती है जो जामुनो के रस से उत्पन्न है और उसका जल अमृत जैसा है। उस नदी की समस्त मिट्टी सुवर्ण नाम से प्रसिद्ध है। अवन्ती—यहाँ शिप्रानदी बहती है, तरंगे चंचल हैं और उसका कमल समान मुख निरंतर हास्य से रमणीय है। मध्यदेश में पृथ्वी रोमाली के समान यमुना प्रवाहित है, मालूम होता है मथुरा की स्त्रियों के कपड़ों से धुली हुई कस्तूरी से श्याम हो गई है और सपराज कालिय का महाहृद मानों उसकी नाभि है। वृन्दावन सुगन्धित फूलों से व्याप्त है, गोवर्धन पर्वत पर रहनेवाले मयूरो के संचार के कारण सोंप स्थान छोड़ गये हैं, १३७ इसी प्रकार राजा के साथ उसके देश का संकेतात्मक वर्णन श्रीहर्ष ने कालिदास के अनुकरण पर प्रस्तुत किया है। परन्तु कालिदास का स्वाभाविक सौन्दर्य इसमें नहीं है।

§ १८—प्रथम सर्ग में नल उद्यान में पहुँचता है—‘निकलते हुए पत्तों की कतार पर बैठे हुए भ्रमरो के बहाने दिशाओं में फलते, शिव

३७. नैष०; स० ११; २९, ३०, ३८-४१, ४३, ४९, ५०, ५८-६२, ६९-७०, ७४, ७७, ८४-८६, ८९, १०६, १०७ ।

द्वारा वर्जन किये जाने से मिले अपयश को धारण करते हुए केतकी के फूल को नल ने देखा। काँटो से क्रूर, काम के नुक़ीले बाण की तरह वियोगियो के हृदय को बेधने वाले केतकी की उसने महादेव के समान निन्दा की। पुष्पमय घनुष से उद्यान चूते हुए रस से गीले हाथ वाला कामदेव केतकी की धूल से हाथ मल कर, दमयन्ती पर अनुरक्त (नल) मुक्त पर बाण चलाता है। फूले हुए अनार तथा उस पर बैठे हुए पक्षियों को देख कर उसका वियोग तीव्र हुआ। कामदेव के अर्ध चन्द्राकार बाण के समान तथा विरहियों का हृदय विदीर्ण करने वाले पलाश में नाल ऐसा जान पड़ता है मनों जिगर चिपटा हो। प्र० भा०। चम्पे की कलियाँ थीं कि कामदेव को बलि देने को मानों दीपकाएँ हो। दीपिक पतंगों को मारने के कारण काजल के बहाने पाप उपार्जन करता है, और चम्पे की कलियाँ पार्थ को मारने के कारण भ्रमर रूपी पाप उपार्जन कर रही थीं। पूर्व काल में शिव पर चलाये गये काम के पुष्प बाण में लगी भस्म के समान फूलों का पराग वियोगियों को अन्धा कर देने वाला था। प्र० भा०। काम के बाणों पर धार रखने से जिससे चिंगारी निकल रही हो ऐसे सान के पत्थर के समान नागकेसर के फूल से पराग उड़ रहा था और घूमती हुई भ्रमरों की पंक्ति उस पर बैठी थी। हवा से हिलाये गये पत्तों की नोक से क्षत किया गया, चन्दन के समान मुन्दर गन्ध फैलाता हुआ पका हुआ विल्व फल था। पाटल के फूलों का गुच्छा काम के तूषार के समान था। वन में फूले हुए काले रंग के अगस्त्य वृक्ष, राहु के समान निगले हुए चन्द्रमा के कला-कलाप को मानों उगल रहा हो। पुष्पों से क्रीड़ा करते हुए पवन ने पहले हठ-पूर्वक तुषार से सफेद हुए पत्तों को चंचल किया और फिर लता-मंडपों में खूब भ्रमण किया। अभिवृद्ध करती है, इस कारण पृथ्वी वृक्षों की धात्री है; वे वृक्ष फलों की समृद्धि से नीचे झुक कर मानों उसका अभिनन्दन करते हैं। श्रीशोक पल्लवों रूप में काम का अस्त्र-जाल ग्रहण कर पथिकों को मारने वाला के

हुआ । बावली के तट पर तरंगो ने, कोयल के गान ने, मयूरों के नृत्य चातुर्य ने वन में नल की आराधना की । तोते और सारिकाएँ भी उसका गान कर रही थीं ।

§ १६—उद्यान में घूमने के बाद नल सरोवर को देखता है—
 'वह ऐसा जान पड़ता मानों बहुत समय से पुराने रत्नों की सम्पत्ति को
 सरोवर मन्थन के भय से लेकर समुद्र उस वन में छिप कर
 रहता है । जल से आधे टके तथा तट के पास की
 जगह तोड़ कर निकले मृणाल-जाल के बहाने जल में डूबे ऐरावतों के
 झुंड के दाँतों को, शेषनाग की पूँछ के समान सरोवर धारण करता
 था । तट पर ठहरे हुए नल के घोड़ों के समूह के प्रतिबिम्ब से ऐसा
 जान पड़ता था मानों लहरों की चाबुक से ताड़ना होने पर हजारों
 चंचल उच्चैःश्रवाओं को उसने आश्रय दिया हो । प्र० भा० । सरोवर
 में कमलों के समूह के रूप में मानों विष्णु शयन कर रहे हों, क्योंकि
 उसमें चक्र के समान चक्रवाक, लक्ष्मी के रूप में कमल भ्रमर के समान
 अंबर है और मृणाल रूपी शेषनाग से कमल का समूह उत्पन्न हुआ है ।
 प्र० भा० । श्वेत तथा नीले कमलों के बहाने मानों सरोवर में चन्द्रमा
 तथा विष की दीप्ति फैल रही थी । तरंग के विलास से चलायमान हुए
 शैवाल लताओं के समूह ऐसे मालूम होते थे मानो वड़वानल से निकला
 हुआ धुँआ इकट्ठा हो गया हो । सूर्य के ससर्ग से रोमांचित हो
 गई और बहुत सुगन्ध प्रकट करती हुई कमलिनी अपने विकसित
 शरीर से अप्सरा के समान मालूम हुई । प्रवाह में प्रतिबिम्बित
 तट का वृक्ष ऐसा जान पड़ा मानो हवा से चलायमान की गई
 लहरों से चंचल तथा पंखों को कँपाता मैनाक पर्वत भीतर घुस
 गया हो' ।^{३९}

३८ वही , १०१ , ७८, ७९, ८१-८४, ८६, ८७, ९२-९७, १०१-१०३ ।

३९. वही ; वही ; १०७-१०९, १११, ११३-११६ ।

§ २०—नल और दमयन्ती के विवाह के बाद कवि ने अनेक क्रीडा-विलासों के वर्णन के साथ प्रातः और सायं सन्ध्याओं का वर्णन भी किया है। कालिदास के अनुकरण पर प्रभात का वर्णन वैतालिकों द्वारा कराया गया है—‘इन्द्र की महिषी (पूर्व दिशा)
 प्रातःकाल दिन का आरम्भ होते ही अपने मुख के नैर्मल्य के बहाने परिहास समेत प्रकट करती है, मानों वह वरुण की भार्या (पश्चिम दिशा) को, किरणों के बल्ल के एक एक के क्रम से हट जाने के कारण दिग्म्बर हुए जाते हुए चन्द्रमा दिखाती है। प्र० भा० । महावर की शोभा का तिरस्कार करने वाली सूर्य किरणों के संसर्ग से अन्धकार का समूह उस पंक-समूह के समान जान पड़ता है जिसपर कमल की नाल खोदने के लिये बहुत से हंस अपनी चंचल चोंचें मार रहे हों। काली भ्रमरी भी सूर्य किरणों के संसर्ग में धुँ के रंग की जान पड़ती है। प्र० भा० । रवि की प्रातःकालीन किरण रूपी ऋचाओं के ओंकारो पर स्पष्ट और निर्मल अनुस्वार लगाने के लिये कोई आकाश में तारो को चुनता जा रहा है और उन्हीं ऋचाओं के ऊपर उदात्त चिह्न की रेखाएँ बनाने के लिए चन्द्रमण्डल से किरणें चुन ली गई हैं। अन्धकार रूपी बालों को पकड़ कर सूर्य रात्रि का शीघ्र नाश करता है, यह देखकर कुमुद संकोच को प्राप्त होता है, आप के नयन खुलते हैं और चन्द्रमा निष्तेज होता जाता है; जैसे राम की मायामयी भार्या को मेघनाद ने बाल पकड़ कर मारा, तत्र कुमुद वानर मोहित हो गया, नल ने आँखें बन्द कर लीं और सुग्रीव बलहीन हो गया। देव-मिथुन के क्रीडा-मंच रूपी आकाश में तारों का समूह गिरे हुए हारों के बिलखे हुए पुष्पों की अत्यन्त शोभा धारण करता है तथा पूर्ण चन्द्रमा अत्यन्त मृदु किरण रूपी रुई के गालों से भरे तकियों के समान है। चारों वेदों की हजार शाखाओं की मूर्तियों के रूप में सूर्य की किरणें अब हमारे पास के देश को भूषित करती हैं, इस कारण वेदपाठियों के वदन-कन्दराओं से सूर्य की किरणों का ही वेद-पद-रूप प्रतिशब्द

आकाश में ऊपर जाता है। कमलो के अकारण बन्धु सूर्य ने इन्द्र के महल के बुर्ज को अपना पायादान बनाया है, और जाते हुए शत्रु अन्धकार को पश्चिम गगन तल में लीन करके स्वर्णाचल के चारों ओर घूमने का उसका विलास सफल हो गया है। प्र० भा०। सुख-क्रीड़ा में टूटे हुए हारो के मोती के समान फैले हुए, देवताओं के आँगन आकाश में तारो को प्रातःकाल बहुकर ने साफ कर दिया और अब आकाश स्वाभाविक शोभा से युक्त दिखाई देता है। प्र० भा०। सूर्य के विहार-स्थल उदयाचल शिखर पर, अधिकार जमाने के लिये दिन और रात्रि के युद्ध के समय, पिघले हुए शिलाजीत का प्रवाह सा बह रहा है। अरुण और प्रणाम करने आये हुए रक्त-वर्ण गरुड के ससर्ग से इस शिखर पर पकी हुई नई हँटो का प्राकार मानो बन गया है। नैषधीय में कारण सम्बन्धी विचित्र कल्पनाएँ अधिक हैं जिनसे चित्र का रूप सामने नहीं आता—‘सन्ध्या सूर्य की किरण रूपी अग्नि मे नक्षत्र रूपी लाजो का होम करती है और उसी के साथ सूर्य का विवाह होता है, उसके सामने सूर्य भी अग्नि की प्रदक्षिणा करेगा’।^{४०}

‘किंचित निकली हुई सूर्य किरणो से आकाश अनुलेपन कर रहा है। सकुचित होते कुमुदो को छोड़ कर विकसित होते कमलो मे हर्ष से जाने वाली लक्ष्मी समुद्र से निकले हुए सूर्य रूरी सुनहरे कुम्भ को देखने की इच्छा करती है। पुरुष शक्ति वाले भ्रमरो ने कमलों में प्रवेश कर मधु लाकर अपनी स्त्रियों को नया भोजन कराया। खिली हुई पखुडियों के साथ कमलिनी जान पड़ती है, सूर्य किरणो का भोग लगाने के लिये आपोशान मन्त्र से दिये गये जल को ग्रहण करने के लिये चुल्लु खाली कर रही है। तट के वृद्धो मे वर्तमान पक्षियों के कलरव से मानो सरोवर में कमलिनी ने संकुचित फूलो को खिला कर नींद त्याग दी, और

भ्रमर उनके मधु को, बीच-बीच में भ्रमरी के मुख से अधर सुधा लेकर, स्वाद से पीता है। गत दिन के नाश होने पर दया का मानो आविर्भाव होने से शोक से संकुचित हुए कमलो की कलियों के बीच के कोटर में रात बिता कर, उपवास करने वाले भ्रमर इस समय विकसित कमलो के निकट घूम रहे हैं और सहचरी के साथ मकरन्द से पारण करते हैं। अन्धकार के विरह के कारण, जिनमें कहीं कहीं तारे दीखते हैं ऐसी दिशाएँ श्वेत हो गई हैं। कौन सा सरोवर कमलों के विकास से श्वेत नहीं दीखता ? केवल आकाश का मध्य भाग, शरणा आये अन्धकार को विनाश करने वाली सूर्य-प्रभा का आदर करने के कारण अपनी अकीर्ति के भार से काला जान पड़ता है। मित्र सूर्य के उदय होने पर क्या कमल बन हँमेंगे नहीं ? मित्र चन्द्रमा की लक्ष्मा चले जाने पर क्या कुमुद तन्द्रिल न होंगे ? अथवा कमलो ने निद्रा के बदले में कुमुदों से यह स्मित ले लिया है जिसकी शोभा हिमगिरि की शिला जैसी है। नवागत भ्रमर कमल का मधु पिये या न पिये, क्योंकि उन्होंने गत में कुमुदों का छक कर मकरन्द पान किया है, परन्तु पूरी रात प्यासे रहे चक्रवाक अपनी वधू के कमल-मुख का अधर-रस पान करते हैं। प्रातःकाल क्रीड़ा-सरोवर पर चक्रवाक वियोग के कारण तरल हुई जिह्वा से अत्यन्त विह्वल सहचरी को नाम लेकर बार बार पुकारता है। उनका ताप हृदय छोड़कर सूर्यकान्त में जाना चाहता है और युवती का वियोग रात छोड़ने वाले चाँद में प्रवेश कर गया है। कली रूमी आँखों से अन्धत्व स्वीकार करने वाली कुमुदिनी सूर्य को नहीं देखती, तो लोग उसे दुष्ट क्यों बताते हैं, राजाओं की स्त्रियों भी तो काव्य में असूर्यपश्या कही गई हैं। आकाश में उड़ते हुए भ्रमर, चुल्लू में लेकर अन्धकार-समुद्र पीने वाले सूर्य की अंजली से गिरे हुए पानी की मानों बूँटें हों। फूलों से रिसती हुई कमल-मधु की धाराओं के दोनों ओर चिपटे हुए भौरे जान पड़ते हैं अन्धकार समुद्र को चुल्लू से पी जाने के बाद तलछट रह गई है। कुंकुम के फूलों की शोभा को अपमानित करने

वाली तथा सरोवरो के तटों पर संचरणशील बाल सूर्य की किरणों ने कमल-पश्मिल के आनन्द से उड़ती हुई भौरो की पंक्ति के मिश्रण से मानो आधी लाल और आधी काली गुंजा की शोभा धारण करने की इच्छा की है। निश्चय ही सरोवर अनेक रंगों का हो गया है, सूर्य की बाल किरणों से वह रक्त वर्ण का है, कमल मकरन्द के स्वाद के लिये गिरवी हुई भ्रमर पंक्ति उसे नीला कर रही है और खिलती हुई कलियों से उसका मध्य भाग सफेद है'।^{४१}

‘पति सूर्य के अस्त होने पर जो पिछले दिन अग्नि में प्रविष्ट हो गई थी, वही अनुरक्त दीप्ति पाताल से हठ-पूर्वक सूर्य का उद्धार कर सतीव्रत की मूर्ति के समान शोभित है। शुभ्र-वर्ण सूर्य की अन्धकार पीने वाली देह से यम, यमुना और शनि पैदा हुए, विद्वानों का कथन ठीक है कि बच्चों का रंग पिता के आहार के अनुसार होता है। सभी दिशाओं के प्रान्त देश में वर्तमान अन्धकार परम्परा को क्षण भर में विनाश करने वाली सूर्य की किरणें वृद्धों के नीचे छाया रूप अन्धकार का नाश करने में असमर्थ है। सूर्य अश्विनीकुमारों के पिता हैं, इस कारण जगत् के अन्धकार का नाशक है और कमल की मूर्च्छा को दूर करता है। सायंकाल में उदित होकर चन्द्रमा ने अस्त हुए सूर्य से छोड़ी गई उसकी भार्या पद्मिनी को पीड़ा दी, तब कुमुदिनी हँसने लगी थी, अतः अब कर्कन्धू फल के समान लाल सूर्य के उदय होने पर भय से चाँद और कुमुदिनी दोनों प्रभाहीन हो गये। हर रात सहस्र फन वाला शेषनाग, पाताल मार्ग से रात्रि को परिभ्रमण करने वाले तथा वेदमय शरीर वाले सूर्य की किरणों की हज़ारों शाखाओं में एक-एक फन के दोनों नेत्र लगा कर—एक से सुनता और दूसरे से देखता है कि वे स्वरो के साथ वर्तमान और देदीप्यमान हैं। कमलों के मित्र सूर्य की मूँगे जैसी किरणों के नख जैसे अगले भाग से जान पड़ता है कि

खिड़कियों से निकली हुई अँगुलियों की शोभा धारण कर रहा है। कमल के नाल के समान सुन्दर सूर्य के करो की अँगुलियाँ खिड़की से प्रवेश कर रही हैं। खिड़की में प्रविष्ट हुई किरणों के बीच में घूमता हुआ धूल-कणों का समूह, स्वर्ग के बढाई के द्वार सान पर धरे जाने से उडती हुई धूल सा क्या नहीं जान पडता ? नाई की तरह दिन ने सूर्य-किरण के पैने उस्तों से अन्धकार की वेणी काट कर रात्रि को बाहर निकाल दिया, और उसीके बातों के गुच्छों से पृथ्वी, वृक्ष आदि की छाया के बहाने, काली हो गई है'। श्रीहर्ष को वैचिन्त्य प्रधान कल्पना की ऊहात्मकता में कभी कभी सौन्दर्य सर्जन होता है, और कभी उनकी पर्यावेक्षण शक्ति का पता भी चलता है। कमलों का विकास करने वाला सूर्य से पीडित चन्द्रमा शंख काटने वाली आरी के समान है जो शंख के चूर्ण के लेप से सफेद है। कुमुद ने अपनी पंखुड़ी रूपी आँखों को खोलकर कमलिनी पर सारी रात पहरा दिया, अब वह दिन होने पर आनन्द से गहरी नींद ले रहा है तथा अपने भीतर भ्रमण करते भ्रमरों से निनादित है। इन्द्र के महल का सुनहला कुंभ सूर्य, कुंकुम से रक्त आभा वाली ध्वजा की एकत्र हुई नई किरणों से चित्त को प्रसन्न करता है। अन्धकार के तमाल-वन को जलाने वाली दो-तीन किरणों ने ही कमल की सभा को दिन का महोत्सव दिया; इस कारण पृथ्वी तल पर अटके हुए तथा आकाश में व्याप्त अन्धकार को नाश करने वाली किरणों का जाल फैलाने को सूर्य व्यर्थ जल्दी करता है। तिमिर समुद्र का सूर्य बढवानल है, खिल कमल-वन को विकसित करने वाला है। यह दूर तक आकाश मार्ग में चढ़कर भी अपने सहज भास्वर रूप को क्यों नहीं धारण करता और इसकी किरणें क्यों आकाश को लाल करती हैं? ४२

§ २१—अन्तिम सर्ग में नल दमयन्ती से सन्ध्या का वर्णन करते

हैं—'यह पश्चिम दिशा महावर के रस से धुली हुई और कुंकुम के रंग से पूर्ण हुई सी जान पडती है । प्र० भा० । अस्ताचल के शिखर पर बने हुए घरों के पालतू प्रहरान्त में शब्द करने के लिये उल्लसित हुए मुरगो की शिखाओं से क्या पश्चिम दिशा अकस्मात् लाल हो गई है ? शीघ्र अस्त होते हुए सूर्य से बाहर निकलती हुई किरणावली रूप सिगरफ से लाल हुआ बँत जिसके पास हे ऐसी नायिका रात्रि का द्वारपाल सायंकाल अपने अधिकार से दिन को अन्दर घुसने नहीं देता । मैनसिल के समान चमकने वाली सन्ध्या देवी का ध्यान करके शिव अस्त होते सूर्य की रोशनी में नाचते हैं और उनका अंग रूप आकाश तारो के हार से विभूषित हो गया है । प्र० भा० । काल शबर ने विकसित कमलो वाले दिन रूपी हाथी को मार डाला, उसके अधर की धारा सन्ध्या है और कुम्भस्थल से निकले हुए मोती तारे हैं । सन्ध्या से पश्चिम दिशा ऐसी लाल है कि विवाह के अवसर पर महादेव ने उसे पुष्प-सिन्दूरिका के उत्सव में धारण किया था । प्र० भा० । सूर्य सोने के टुकड़े को बँचकर आकाश ने बदले में तारा की कौडियाँ ली हैं, अस्ताचल की कसौटी पर सन्ध्या की चमक उसका निशान है । अनार खाने वाले काल ने अपने आप सूर्य-मण्डल का अनार फल आकाश-वृक्ष से तोड़कर उसका सन्ध्या रूपी छिलका फेंक दिया है और तारा समूह के रूप में बीजों को थूक दिया है । सन्ध्या-वन्दन के बाद ताडव नृत्य के लिये उठे हुए महादेव के चरणों के दृढ आघात से गिरे हुए कैलाश पर्वत स्फटिक टुकड़ों से आकाश शोभित है । इस प्रकार स्तुति से उत्पन्न हुई लज्जा से मानों सन्ध्या का प्रस्थान हुआ और आकाश में अन्धकार और तारे फैल गये । राम बाण से सागर ऊपर चला गया था, उसी में जल-जन्तुओं के समूह से मिश्रित मछलियाँ और शंख दिखाई उड़ रहे हैं (चन्द्र और तारे) । रात्रि में विरह से व्याकुल, मन्दाकिनी के कूल पर रहने वाली—चक्रवाकियों के नेत्रों से उत्पन्न हुए अश्रु-जल के बूँद ही तारे हैं और उनके मण्डल

उनके आँसुओं की धाराएँ हैं। नक्षत्र मन्दाकिनी के जल-जन्तु हैं, जो जल-क्रीडा करते हुए देवताओं के डर से तल में रहते हैं और यहाँ से साफ़ दिखाई देते हैं। आगे श्रीहर्ष ने अपने नक्षत्र-ज्ञान के आधार पर विचित्र कल्पनाएँ प्रस्तुत की हैं।—‘अन्धकार दिन की मर्यादा के नाश से स्वतंत्र होकर ऐरावत के मद-जल के काले प्रवाह के समान पूर्व दिशा में सब ओर फैलता है। राम के सेतु की रोमावली वाला यम का वाहन भैसा अन्धकार के समान घूमता है, और उसे देख डरते हुए अपने घोड़ों को लेकर सूर्य भाग गया जान पड़ता है। पश्चिम दिशा में वर्तमान अस्ताचल के शिखर पर सूर्य-त्रिम्ब इन्द्रायन फल जैसा था, और उसी के शिला पर गिरने पर यह काले बीजो जैसा अन्धकार बिगड़ गया है। कुवेर-वन के समान पत्र-वल्लरियों से युक्त उत्तर दिशा का कस्तूरी जैसा अन्धकार हिमालय का अपरा है, क्योंकि सूर्य ने सुमेरु की परिक्रमा करके उसकी अवज्ञा की है। सहस्र-रश्मि की किरणों जिस आकाश को ऊँचाई पर धारण किया था, वही सूर्य की अनुपस्थिति में सन्ध्या के बहुत पास आ गया है। प्र० भा०। रात्रि के इस चन्द्रहीन समय, अन्धकार का काला वस्त्र पहने और कामदेव के तारे रूपी पुष्प वाणों से घिरी अभिसारिकाओं के समान लज्जापूर्ण दिशाएँ मेरी (नल) ओर आ रही हैं। विष्णु के सूर्य-नेत्र के बन्द कर पलकों को चपका लेने पर उनकी बरौनी हा अन्धकार के रूप में श्याम रंग से चन्द्रमा के कलंक को भी जीत लेती है। जान पड़ता है अपनी किरणों के रूप में सूर्य लोगों के नेत्र ले गया है, जिससे अन्धता अन्धकार के रूप में फैल गई है’।^{४३}

क—उल्लुओं ने ग्रहों के राजा सूर्य की प्रभा से टक गये तारों की

४३. वही : स० २२ ; ३, ५-७, ९, १०, १३-१७, १९, २०, २६-३१,

सायंकाल धूर्त ने आकाश को लाल चाँद के बहाने नकली सोने का सिक्का सूर्य मणि लेकर दे दिया, अब वह भूठा सिक्का क्षण मात्र में सफेद चाँदी का हो गया। सायंकाल बालक चन्द्र बिम्ब का सुन्दर लट्ठू नचाता है, और क्रम से आकाश में नाचता हुआ वह लाल सूत की लत्ती से अलग हो जाता है। रात्रि ने काले आकाश में तारे की खडिया के अक्षरों से अन्धकार की प्रशंसा लिखी थी, उसे पोछने से चाँद की लाल किरणें सफेद हो गई हैं। दिशा सुन्दरियों ने सन्ध्या के शुरू होने के समय उत्पन्न लाल किरण रूप कुकुम का लेप किया, सन्ध्या के बाद अन्धकार कस्तूरी लगाई और इसके बाद चन्द्र-किरणों के चन्दन का लेप किया। विधाता शिशिर ऋतु के दिनों को काट-काट कर उनके टुकड़ों से चाँदनी रात बनाता है नहीं ये रातें शिशिर के दिनों के बराबर क्यों हैं और शिशिर के दिन छोटे क्यों होते हैं। नल के आग्रह से दमयन्ती चन्द्रमा का वर्णन करती है—(समुद्र में प्वार लाने के लिये यह चन्द्रमा कितना जल चन्द्रकान्त मणि से और कितना जल चक्रवाक के वियोग से खिन्न हुई चकवी के नेत्रों से लेता है ? रात्रि के यमुना प्रवाह का अनुकरण करने वाले अन्धकार के विलुप्त होने पर निर्मल चन्द्र दीपक की दीप्ति से युक्त ज्योत्स्ना रूप बालुकामय द्वीप गोचर होता है। और कुमुदों के विकास की दीप्ति से ससार दूध के समान धवल हो गया है, क्योंकि दिन में सब कुमुद संकुचित हों जाते हैं तब चन्द्र के होने पर भी सब संसार वैसा नहीं पड़ता। मृत्युंजय की जटा में रहने वाला चन्द्रमा क्षीण नहीं होता, क्योंकि शका से मृत्यु भागती है, लेकिन वह अपनी सुधा से जीवित किये कंकाल-माला के मुण्ड रूपी राहुओं के भय से बढ़ता भी नहीं है। चन्द्रमा चकोरों को अपनी किरणें, देवताओं को अमृत तथा शिव को अपनी कला देता है, फिर भी कल्पद्रुम का भाई होने से उसका यह उपकार कम है। विधाता ने चन्द्रमा को कामदेव की आधी जली हुई अस्थियों से बनाया है, इसी से उसकी कान्ति सफेद और काली है। मृग के लोभ से

राहु चन्द्र को प्रसता है, लेकिन चाँद अपनी गोद के हरिन को हिलाने नहीं देता, इस प्रकार राहु उसे प्रसन्नता से त्याग देता है। ठीक ही है कृष्ण पक्ष में देवता चन्द्रमा को पी कर अमावस्या के दिन खाली कर देते हैं। पुराने समय में इसके पिता समुद्र को भी अगस्य ने पी लिया था। मन्दाकिनी के समान चारो दिशाओं को पूर्ण करती चाँदनी ही, क्षीर सागर के प्रवाह में निवास करने के चन्द्रमा के दुःख का नाश करती है। चाँद की पुत्री चाँदनी समुद्र को नृत्य की शिक्षा देती है, चकोर की भोजन की वस्तु है और लोक के नेत्र को सुख देती है, तब भी उसके कौमुदी नाम से कुमुदों से उसका अनिर्वचनीय सम्बंध प्रकट है। चाँदनी के जल से धवलित भूतल के पदार्थों की छाया के बहाने छिद्र धारण करने वाली, चन्द्र के धवल भाग की किरणें भूमि में कलक की नीली कान्ति से मिश्रित प्रभा से शोभायमान होती हैं। चन्द्रमा ने अन्धकार दूर कर आकाश के हिस्से को विशद कर दिया है, पर किरणों से बढाये गये लवण सागर के जल से वह काला भी हो गया है। प्रवह वायु के रथ से छुटा हुआ प्यासा मृग जल-शून्य आकाश में चन्द्रमा के अमृत बिन्दुओं पीता हुआ बार-बार मुख से उनका स्वाद लिया चाहता है। बालक चन्द्र के पास हरिन न था; तरुण सोने पर उसकी प्रिया औषधियों ने जो हरिन उसे उपहार में भेजा, उसे उसने सन्देश मान कर वक्षःस्थल में धारण किया। और यह मृग चन्द्र की सेवा के लिये आई हुई औषधियों के पल्लव का स्वाद लेता है, उसकी सुधा धाराओं को पी कर सुख से रहता है। चन्द्र के शश के पीछे के रोमों की लाली वर्तमान है, तब भी हमको नहीं दीखती, क्यों कि दूर की लाल और नीली वस्तु का केवल नीलापन दिखाई देता है। ज्योतिष के अनुसार चन्द्रमा गोल था, परन्तु राहु की दोनों दाढ़ों के यंत्र से दब कर अमृत निकल जाने से वह चपटा हो गया है। प्राचीन काल में चन्द्रमा विष्णु का कमल-नेत्र बना था, तब उसका कलंक ही आँखों की पुतली और अमर की शोभा धारण

करता था' । ४४

‘पद्मिनी के टाह के विकार से हिम में आग की कल्पना होती है चन्द्रमा का कलंक उससे उठे हुए धुम्रो का समूह है। पसीने के रूप में बहती नदियों से धिरी पृथ्वी जब ससार के भार से थक जाती है, तब छाया के बहाने अमृत के सागर चन्द्रमा में डूब कर अपनी थकावट दूर करती है। सुनहरा सुमेरु पर्वत, पुराना होने के कारण, नीला काई से नीला हो गया है, नहीं तो पृथ्वी का चन्द्रमा पर पीला प्रतिबिम्ब पड़ता। वर्षा और धूम में पड़े हुए दिशा रूपी काष्ठ पर पैदा हुआ चन्द्रमा छात्राक के समान है। दिवस के अवसान के समय सूर्य के नीचे लटक जाने पर संसार के नेत्र रात्रि में चन्द्रमा की सहायता से विपत्ति नदी के समान अन्वकार के देश में घूमते हैं। . . . शब्द पथिक दिन के आतप से सतत होकर उतना शीघ्र नहीं चल पाता जितना रात में चन्द्रमा की अमृत-किरणों को पी कर या अन्वकार के वन में विश्राम पाकर। रात्रि रूपी धोबिन दुग्ध धारा के समान किरणों से आकाश-स्थित अन्धकार मय नीली रात्रि को क्षण भर में धो डालती है। शरद् ऋतु ने मेघों की कालिमा दूर कर दी, चाँद के कलक की किंचित कालिमा दूर न कर सकी। . . . क्रीड़ा सरोवर में पड़ते हुए चन्द्र-बिम्ब का स्नान करती हुई राजहंसी हस समझ कर चुम्बन करती है। देवताओं ने अमृत पी कर खाली कर दिया है, इस कारण चन्द्रमा प्रतिबिम्ब के बहाने क्रीड़ा-नदी में मग्न होकर फिर अमृत से भर गया। कुमोदिनी के पुष्प रूप हाथ से चन्द्र-किरणों के मिलने से मानों मधु के बहाने मानों कन्यादान के जल का अभिषेक हो रहा है। इस केलि नदी में खिले हुए पुष्प रूपी नेत्र वाली कुमुदिनी वन में रहने वाली हरिणी है, और वह अपने प्रिय हरिन को तुम्हारे (दयपन्ती के) मुख-

४४. वही, वही; ३७-४१, ४३-५२, ५४, ५५, ५९-६३, ६५-७१, ७५-७७, ७७, ८५, ८८।

चन्द्र में धोखे से देख रही है। जलमें तप करते कुमुदों को ध्यान भंग करने वाली अप्सरा चन्द्रमुखी रात्रि ही है; अमृत उसका अघर है और किरणों में वह हँसती है।^{४५} श्रीहर्ष के वर्णनों चित्रमयता का सर्वत्र अभाव है, पर कल्पना वैचित्र्य में उनकी प्रतिभा का परिचय मिलता है।



^{४५} वही ; वही ; ९०-९२, ९६, ९७, १०८, १११, ११२, १२०-१२४ ।

अनुक्रमणिका

अभिनवगुप्त-४३, ४३ टि, ५१ टि ।

अभिज्ञानशाकुन्तल-७४, ७४ टि; २११,
२४५, २४७, २४८ टि, २५५,
२५६ टि, २६२, २६२ टि, २६७,
२६७ टि, २७४, २७५ टि । द्वि०
भा० ; द्वि० प्र० ; ३७१, ३७२
टि, ३८३, ३८४ टि, ३८५ टि ।

अमरुशतक-१३९ ।

अरिस्टाटिल-५ टि, ३८ ।

अलेक्जेंडर (एस०)-२२ ।

अजवघोष-७१, ७७, ७९, ८८, १००,
१७७, १८३, १९४, १९७, २०६,
२०८, ३०५, ३०६ ।

आनन्दवर्धनाचार्य-३९ टि, ४५ टि, ४८,
४८ टि ।

आर्यासप्तशती-१३९, १४१ टि, १४३ टि,
१४४ टि, १५३ टि, २९५ टि,
२९६ टि ।

उत्तररामचरित-७५, ७५टि; २४५, २५०,
२५१, २५८, २५९, २६० टि,
२६३, २६६, २६६ टि, २७१,
२७१ टि, २७७, २७८ टि, ३३० ।

उद्भट-४९ ।

एस्थिटिक्स-२० टि, २२ ।

एस्थिटिक प्रिन्सिपल-२१ टि ।

ऋग्वेद-१२६ टि ।

ऋतुसंहार-७१, ७२ टि, १३९, १४६,

१४७, १४७ टि, १४८ टि, १५०,
१५५, १५५ टि, २९७, २९८,
२९८ टि, ३०० टि, ३०१, ३०१टि,
३०२ टि, ३०३ टि, ३०४ टि, ३०७,
३१० । द्वि० भा० ; द्वि० प्र० ;
३९१, ३९३, ३९३ टि, ३९५,
३९५ टि, ३९६ टि, ३९७, ३९८,
३९८ टि, ४०० टि ।

कात-५ टि, २१ ।

कादम्बरी-७६ टि, १०४ टि, २२८,
२३० टि--२४४ टि, २४०, २४१,
३०३, ३२३ टि--३२५ टि । द्वि०
भा० ; च० प्र०, ४५९--५०० ।

कारलाइल-४७ ।

कालिदास-६८, ७१, ७४, ७५, ७८, ७९,
८१, ८५, ८६, ८८--९०, ९२,
९५--९७, १०१--३, १०९, १११,
११३, ११४, १३०, १३१, १३३,
१३५--३९, १४६, १५५, १७७,
१७८, १८०, १८४, १८८, १९०,
१९१, १९४, १९८, १९९, २०३,
२०४, २०८, २११, २१५, २१८,
२४६--४८, २५५, २६२, २६४,
२६७, २७३, २७४, २७६, २९०,
२९७, २९८, ३०१, ३०६-१०,
३२६, ३३०, ६ द्वि० भा० ; द्वि०
प्र० ३६७--४०३ ; ४०४ ।

- कालिनडड--३८ टि ।
 कार्लग्रास--२१ ।
 काव्यप्रकाश--५० टि ।
 काव्यमीमांसा--५७, ५७ टि, ५९ ।
 काव्यादर्श--४३ टि, ४७ टि ।
 काव्यानुशासन--५४, ५६ टि ।
 काव्यार्लकार--४३ टि ।
 काव्यार्लकारसूत्रवृत्ति--४३ टि, ४५ टि ।
 किरातार्जुनीय--६८, ६९ टि, ७३ टि,
 ८४ टि, ९३ टि, ९९ टि, १०६ टि,
 १११ टि, ११५, १४९ टि,
 १५१ टि, १५४ टि, १५६ टि,
 १८२ टि, १८६ टि, १९३, १९३ टि,
 १९६, १९६ टि, २०३ टि, २१०,
 २१० टि, २१६, २१६ टि, २१९,
 २२० टि, २२२, २२२ टि, २२४,
 २२५ टि, ३१५, ३१५ टि,
 ३१७ टि । द्वि० भा० ; ५० प्र०.
 ५१६--२४ ।
 कुन्तल--४२, ४३ ।
 कुन्दमाला--२४९, २४९, २४९ टि, २५५,
 २५५ टि, २६२, २६२ टि, २६५,
 २६५ टि, २६८, २६८ टि, २७३,
 २७३ टि, ३२९, ३२९ टि ।
 कुमारदास--८०, ८१, ८३, ९०, ९१,
 ९७, ९८, १०५, १०७, १११,
 ११५, १८१, १८८, १९०, २०२,
 ३१३ ।
 कुमारसम्भव--७९ टि, ८९ टि, ९६ टि,
 १८०, १८२ टि, १९१, १९१ टि,
 १९४, १९५ टि, १९९, १९९ टि,
 २०९ टि, २११, २११ टि, २१४,
 २१५ टि, २२२, २२२ टि, ३०७--१०,
 ३०७ टि, ३०९ टि । द्वि० भा०,
 द्वि० प्र० ; ३७१ ३७१ टि, ३७४,
 ३७४ टि, ३७५, ३७५ टि, ३८०,
 ३८० टि, ३८१, ३८१ टि, ३८२
 टि, ३८८, ३८९ टि, ३९० टि,
 ३९१ टि, ४०२, ४०२ टि ।
 कौरट (ई० एफ०) --२०, २० टि,
 ३८ टि ।
 क्रिटिकल हिस्ट्री ऑव माडर्न एस्थिटिक्स
 २२ टि, ४१ टि ।
 क्रोशे--२०, २० टि, २२, ३८, ३८ टि, ।
 क्षेमेन्द्र--४८ टि, ५६ ।
 गाथासप्तशती--१३९ टि, १४० टि, १४२
 टि, १४४ टि, १५३, २९५, २९५
 टि, २९६ टि, २९७ टि ।
 गीतगोविन्द--१२८, १२९, १२९ टि,
 २८६, २८७ टि, २८८ टि, २८९,
 २८९ टि ।
 गोवर्धनाचार्य--१४० (आर्या के कवि),
 १४१, १४४, १५३
 चण्डीदास--१२८ ।
 जगन्नाथ (पडितराज)--२८ टि, ४५,
 ४५ टि ।
 जयदेव--२८६ ।
 जान ओमन--९ टि ।
 जानकीहरण--८१ टि, ९१ टि, ९८ टि,
 १०५ टि, १११ टि, ११२ टि,
 ११५ टि, १४९ १४९ टि, १७९,

- १७९, टि; १८२ टि, १८४, १८५
 टि, १९० टि, २०९, २०९ टि,
 २१२, २१२ टि, २१९, २१९ टि,
 २२३, २२४ टि, ३१३, ३१४ टि,
 ३१५, ३१५ टि । द्वि० भा० , पं०
 प्र० ५२५--२९ ।
- जेम्स वार्ड--६ टि, १२ टि ।
 टाइप्स ऑव एस्थिटिक जजमेंट--२३ टि ।
 डब्लू० जेम्स--१८ टि ।
 डार्विन--१० टि ।
 थियुी ऑव ब्यूटी--२० टि ।
 थेरगाथा--१२७ टि ।
 थेरीगाथा--१२८ टि ।
 दण्डी--४२, ४३, ४३ टि, ४७ टि, ४९ ।
 दिङ्कनाग--२४९ ।
 देसू--४१ टि ।
 धोयी--१३१, १३२ ।
 ध्वन्यालोक--३९ टि, ४५ टि, ४८ टि ।
 नागानन्द--२४५, २५२, २५३, २५४ टि,
 २६१ टि, २६३, २६४ टि, २६५,
 २६५ टि, २७०, २७० टि, २७४,
 ३२९, ३२९ टि ।
 नाट्य-शास्त्र--४३ ।
 नेचुरल एन्ड सुपरनेचुरल--९ टि ।
 नेचुर्लिङ्ग एन्ड एग्नास्टिसिङ्ग--६ टि,
 १२ टि ।
 नैषधीय--८७ टि, ९४ टि, १०० टि,
 १०६ टि, १११ टि । ११२ टि,
 ११३ टि, ११५ टि, ११६ टि,
 १५२ टि, १५४ टि, १५६ टि,
 १८७ टि, १९७ टि, २१६ टि,
- २२०, २२० टि, २२५, २३६ टि,
 ३१७, ३१७ टि, ३१८ टि, ३२०
 टि । द्वि० भा०, पं० प्र० ५४५-६० ।
 पद्य चूडामणि--८० टि, ९० टि, ९७ टि,
 १०३ टि, १०९ टि, ११५ टि,
 १७९ टि, १८१ टि, १९२, १९२
 टि, १९५ टि, २०० टि, २०६ टि,
 २१५, २१५ टि, २२३ टि, ३१०
 ३११, टि । द्वि० भा०; पं० प्र०
 ५०२--१५ ।
 पवनदूत--१३३ टि, १३४ टि, १३६ टि,
 १३७ टि, २९०, २९१, २९१ टि,
 २९२ टि, २९३ टि, २९४ टि, ।
 प्रतापरुद्रयशोभूषण--५३ टि ।
 प्रतिमा--२४५, २४६ टि, २५४, २७३-
 २७३ टि, ।
 प्रवरसेन--७३, ८१, ८२, ८३, ८५, ९१,
 ९२, ९७, ९८, १०७, १११,
 ११४, १५५, १८२, १८५, १९०,
 १९२ १९६, २००, २०४, २३५,
 ३१२, द्वि० भा० , तृ० प्र०,
 ४०४--४५८ ।
 प्रबोध-चन्द्रोदय--२४५ ।
 प्रिन्सिपल्स ऑव साइकॉलजी (दि)-
 १८ टि ।
 प्रियदर्शिका--२५२, २५३, २५३ टि,
 २५४ टि, २६०, २६९, २७० टि ।
 प्ले ऑव मैन (दि)--२१ टि ।
 प्लेटो--५ टि, ३७ ।
 फॉकिल्ट--४१ टि ।
 फ़ेजर (जे० जी०)--९ टि ।

बाण--७५, ८५, ८६, ९३, ९९, १०५,
१०६, १०८, १११, ११५, ११६,
१५२, १५४, १५६, १८७, २०२,
२१६, ३१५, ३१७, ३१९, ३२०,
३२१ । द्वि० भा०, च० प्र०,
४५९--५०० ।

बार्कले--५ टि ।

बुद्ध घोष--७९, ८०, ९०, ९७, १०३,
१०९, १११, ११४, १७७, १७८,
१८२, १९२, १९५, १९९, २०६,
२१५, २२३, ३१० । द्वि० भा० ;
प० प्र०, ५०२--६१५ ।

बुद्धचरित--८८ टि, १९२, १९२ टि, १९४
टि, २०६, ३०६ टि ।

ब्यूटी एण्ड अदर फार्मिस--२३ टि ।

भट्ट नायक--५१ टि ।

लोल्लट--५१ टि ।

भरत--४३, ४३, टि, ४९, ५१ ।

भवभूति--७५, २५०, २५२, २५८, २६३,
२६५, २६७, २७१, २७३, २७६,
३३० ।

भामह--३८, ३९ टि, ४२, ४२, टि, ४३
४३ टि, ४९ ।

भारवि--७३, ८३--८५, ९२, ९४, ९९,
१०५, १०६, १०८, १११, ११२,
११४, ११५, १४९, १५३, १५४,
१५६, १८२, १८६, १९६, २०२,
२०३, ३१५ । द्वि० भा०, प०
प्र०, ५१५--२४ ।

भास--२४५ ।

भस्मट--४३, ५० टि ।

महाभारत--६६, ६७, ६७ टि, ६९, ७०
टि, १५८, १५९ टि, १६०, १६०
१६१, १६१, टि १७२, २८२,
२८२, २८३ टि, ३३५ ।

महागीरचरित--२४५, २५०, २५० टि,
२५८, २५८ टि, २६६, २७१
२७१ टि ।

माइन्ड ऐन्ड मैटर--४ टि ।

माघ--८३--८५, ८६, ९३, ९९, १०५,
१०६, १०८, १११, ११५, ११६
१५२, १५४, १५६, १८७, २०२,
२१६, ३१५, ३१७, ३१९--२१ ।
द्वि० भा०, प० प्र० ५२९--४४ ।

मार्शल (एच० आर०)--२१, २१ टि ।

मालतीमाधव--७४ टि, २४५, २५०, २५८,
२६३, २६३ टि, २६६, २६६, टि,
२६७, २७२, २७२ टि, २७६
२७७ टि, ३२६, ३३०, ३३१, टि
३३२ टि ।

मालविकाग्निमित्र--७४ टि, २४५, २४६,
३२७, ३२७ टि, द्वि० भा० ; द्वि०
प्र०, ३७२, ३७२ टि, ३८८,
४०२, ४०३ टि ।

मुद्राराक्षस--२४४, २४८, २४८ टि ।

मेगडूगल--१६ टि ।

मेघदूत--१३१, १३१ टि, १३२ टि, १३३,
१३४ टि ३७ टि, १३७, २११,
२९० टि--९४ टि, २९२ । द्वि०
भा०; द्वि० प्र०, ३६९, ३७० टि,
३७१ टि, ३७६, ३७६ टि, ३७८,
३७८ टि, ३७९, ३७९ टि ।

- मृच्छकटिक--२४५, २४९, २४९ टि,
 २६४, २६४ टि, २६९, २६९ टि,
 ३२६, ३२७, ३२८ टि ।
 रघुवश--८६ टि, ७२ टि, ७८ टि, १०३
 टि, १०९ टि, ११३, १५१,
 १५१ टि, १७८ टि, १८०,
 १८० टि, १८४ टि, १८९ टि,
 १९८, १९९ टि, २०३, २०४,
 २०४ टि, २०५, २०६ टि,
 २०८ टि, २११, २११ टि, २१२,
 २१३, २१४ टि, ३०७ टि-१० टि ।
 द्वि०भा०; द्वि० प्र०, ३६९, ३७१,
 ३७१ टि, ३७३, ३७३ टि-
 ७७ टि, ३८०, ३८१, ३८३,
 ३८३ टि, ३८५, ३८७ टि,
 ३८८ टि, ३९३, ३९३ टि, ३९७,
 ३९७ टि, ४००, ४०१ टि ।
 रत्नावली--२४५, २५२, २५२ टि,
 २६०, २६० टि, २६३, २६३ टि,
 २६९, २७०, २७० टि, ३२९,
 ३३० टि ।
 रवीन्द्रनाथ--१७४ ।
 रसगगाधर--२८ टि ।
 रसार्णवसुधाकर--५३ टि ।
 राजशेखर-५६, ५७, ५७, ५७ टि ५९, टि ।
 रामायण--६७, ६७ टि, ७०, ७० टि,
 ७१, ७१ टि, १००, १५८, १६१,
 १६३, १६३ टि, १६५ टि-६८ टि,
 १७०-१७२, १७० टि-७२ टि,
 २१७, २२२, २२८, २८३,
 २८४ टि, २८५, २८५ टि । द्वि०
- भा०, प्र० प्र०, ३३५--३६६ ।
 रिबोट--१५ टि ।
 रुद्रट--४९ ।
 लिस्टोवैल (अर्ल आर्व) ४१ टि ।
 लोचन--४३ टि ।
 वक्रोक्तिजीवित--४२ टि, ४३ ।
 वर्गसों (एच०)--१० टि ।
 वर्तलेट (ई० एम०)--२३ ।
 वार्शिप आर्व नेवर--९ टि ।
 वाग्भट्ट--५६ ।
 वामन--४३ टि, ४५ टि, ४९ ।
 वाल्मीकि--१६५, १६७, १६८, १७२, १७३
 (कवि), २२२, २१७ । द्वि० भा०,
 प्र० प्र०, ३३५--३६६, ३६७,
 (आदिकवि), ३७३ ।
 विक्रमोर्वशीय--२४५, २४६, २५७,
 २५७ टि, २६७, २६८ टि, २७४,
 २७५, २७६ टि, ३२६, ३२६ टि,
 ३३२ । द्वि० भा० ; द्वि० प्र०,
 ३७२, १७२ टि, ३७३, ३७३ टि ।
 विद्यापति--१२८ ।
 विशाखदत्त--२४८, २४९ ।
 दिश्वनाथ--४५, ४५ टि, ४६ टि ।
 शिशुपालवध--८६ टि, ९४, १०० टि,
 १०६ टि, १११ टि-११३ टि,
 ११५ टि, ११६ टि, १५२ टि,
 १५४ टि, १५६ टि, १८७ टि,
 १९७, २१६ टि, २२०, २२० टि,
 २२५, २२६, टि, ३१७, ३१७
 टि, ३१८ टि, ३२० टि । द्वि०
 भा०; प्र० प्र०, ५३०--४४ ।

- शुद्धक--२४९, ३५०, ३२७ ।
श्री विद्यानाथ--५३ टि ।
श्री शङ्कुक--५१ टि ।
श्री शिङ्गमूाल--५३ टि ।
श्री हर्ष (कवि)--८३, ८५, ८६, ९३,,
९४, ९९, १००, १०५, १०६,
११०, ११२, ११५, ११६, १५६,
१८७, १८८, २०२, २०५, ३१५
३२१, ३२२ । प्र० भा०, ५०
प्र० ५४५--६० ।
श्री हर्ष (नाटककार)--२५२, २६०,
२६३, २६९ ।
संस्कृत पोष्टिकस--४० टि ।
सन्दायन (सो०)--२१, २१ टि, २३ टि ।
साइकोलॉजी ऑव इमोशनस (दि)--
१५ टि ।
साहित्यदर्पण--४५, ४६ टि, ४७
(कार) ।
सुबन्धु--२२८, २२९ ।
सुशीलकुमार डे--३९, ४०, ४० टि, ४१
४२, ४२ टि ।
सेंस ऑव ब्यूटी (दि)--२१ टि, २३ टि ।
सेतुबन्ध--७३ टि, ८३ टि, ९१, ९८ टि,
११० टि, ११४ टि, १५५ टि,
१७९, १७९ टि, १८२ टि, १८५,
१८६ टि, १९०, १९२, १९३ टि,
१९६, १९६ टि, २०० टि, २०१,
२०१ टि, २०२ टि, २०५ टि,
२०६, २०७ टि, २०९, २१० टि,
२१२, २१२ टि, २१५, २१६ टि,
२२२, २२४, २२४ टि, ३१२ ।
द्वि०, भा०, तु० प्र०, ४०५--५८ ।
सौन्दरनन्द--७८ टि, १७७, १७७ टि,
१८३, १८३ टि, १९०, १९१ टि,
१९७, १९७ टि, २७०, २०८ टि ।
स्टाबट--४ टि ।
स्विनोजा--५ टि ।
स्पेन्सर--२१ ।
स्वप्नवासवदत्ता--२२८, २२९, २३९,
२४५, २४६ टि ।
हर्षचरित--२२९, २३९ । द्वि० भा ;
च० प्र० ।
हास--५ टि ।
हाल--१३९, १४०, १५३ । (गाथाकार) ।
हेगल--५ टि ।
हेमचन्द्र--५४, ५६, ५६ टि,
हेराक्लायूटस--७ टि ।
ह्यूम--५ टि ।

शुद्धि-पत्र

प्रेस और प्रूफ की भूलों से पुस्तक में अनेक अशुद्धियाँ रह गई हैं। उनमें से केवल उद्धरणों का शुद्ध-पाठ यहाँ दिया जा रहा है।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४२	२६	भूथ	भूत
४८	२७	गतः	गताः
५३	२३	सार	सुधाकर
५५	४	वापुर्विन	वापुर्विन
५५	१०	वर्त	वर्त
६८	१५	तीर्ण	तीर्ण
६९	२	कुकुभ	ककुभ
७२	१४	स्पर्शः	स्पर्शः
७३	४	विमिक्त	विमुक्त
७६	२	सारसम	सारसम्
७६	५	दुर्दिन	दुर्दिन
८०	२	प्योद	पयोद
८१	११	चम्का	चम्पका
८१	१२	सहास्र	सहस्र
८४	२	नैर्द्वु	नैर्द्वि
८५	९	द्रत	द्रुत
८७	५	दण्ड	दण्डं
८९	१	दुर	दूर
९२	१४	अवरि	अविर
९३	२	विल	विल

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६४	२२	द्रभाव	द्वभाव
६४	२३	बुहु	बहु
६७	५	मद्भत	मद्भुत
१०६	४	रुणि	रुणि
११६	१६	किसल	किशल
११६	१८	गति	गमि
१२५	३	कशया	कशया
१२६	२	३	३
१२८	६	खण्ड	सण्ड
१४१	२	निविड	निविड
१४६	५	नीलौ	नीलौ
१५१	६	जन्य	जन्म
१५६	६	स्वरा	स्वरा
१५६	२०	पये	पपे
१५६	१८	जान	जान्
१६३	२	घष	घष
१७०	८	संवेद	संवेद
१७२	२०	भित्वा	भित्वा
१७८	१४	विहारा	विहरा
१८२	२३	युपुषि	युषि
१८५	१७	द्रुमाः	द्रुमाः
१९०	१३	रन्ध्रे	रन्ध्रे
१९४	१८	विष्व	विश्व
१९४	१९	रात्रिः	रात्रेः
१९५	४	मिवा	मिवा
२०३	७	रुह्य	रुह्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०५	१	नन्त	अनन्त
२०५	१०	वद्धि	वार्द्ध
२०६	६	मन्तः	मन्तं
२०८	७	णोञ्जिभ	णोञ्जिभ
२१२	१५	पन्त्रा	पन्त्रा
२१३	८	निहृत	निहृत
२३८	२	पथ	प्रथ
२५१	२४	कूजत	कूजत्
२६४	३	वाध्वं	वाध्वं
२६५	१६	डच्चै	उच्चै
२६६	१३	कुर्व्व	कुर्व्व
२७०	२०	पाणा	पाणा
२७३	२१	ष्यः	प्याः
२८४	१४	मद	मर्द
२८८	२२	प्रग	प्रक
२८८	२३	बन्धुः	बन्धुः
२९२	१२	यासं	याम्बं
२९४	१४	दैनि	दैनि
२९४	१५	व्या	व्या
३०५	२३	वक	वकं
३०५	२३	निर्म	निर्म
३०६	११	पाण्डु	पाण्ड
३११	२७	बुद्ध०	पद्य०
३१४	१	ऊद्भृ	उद्भृ
३१४	१४	स्तरशि	स्तरशि
३१७	१५	शिला	शैली

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१८	२२	व्यंव	व्यव
३२१	१६	तर्जनी	तर्जना
३२३	२१	विद्रते	विद्रुते
३२५	२१	हवा	इवा
३२५	२२	तस	तंस